

प्रकाशक—

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ

उदयपुर

प्रथम संस्करण, संवत् २०१२

मूल्य १०)

मुद्रक—

व्यवस्थापक

विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर

प्रकाशकीय

राजस्थान में प्राचीन-साहित्य, लोक साहित्य, इतिहास, पुरातत्व एवम् कला-विषयक प्रचुर सामग्री यत्र तत्र बिखरी हुई है। आवश्यकता है उसे खोज कर संग्रह और संपादित करने की। राजस्थान विश्व विद्यापीठ (तत्कालीन हिन्दी विद्यापीठ) उदयपुर ने इस आवश्यकता को अनिवार्य समझकर वि० सं० १९६८ में “साहित्य संस्थान” (उस समय प्राचीन साहित्य शोध-संस्थान) की ओर से एक योजना बना कर राजस्थान की साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक निधि को एकत्रित करने का काम हाथ में लिया। योजना के अनुसार “साहित्य-संस्थान” के अन्तर्गत विभिन्न प्रवृत्तियाँ निम्न छ विभागों में विकसित हो रही हैं (१) प्राचीन साहित्य विभाग, (२) लोक साहित्य विभाग, (३) पुरातत्व एवं इतिहास विभाग, (४) नव साहित्य-सृजन विभाग, (५) अध्ययन गृह एवं सामान्य-विभाग।

१. साहित्य-संस्थान द्वारा सर्व प्रथम राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए हिन्दी और संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज और संग्रह का काम प्रारम्भ किया गया। राजकीय पुस्तकालय, जागीरदारों के ऐसे संग्रहालय एवं जहाँ भी ऐसी पुस्तकें थीं और देखने नहीं दी जाती थीं, धीरे-२ इसके लिए वातावरण बनाकर काम कराया जाने लगा। सब से पहले साहित्य-संस्थान द्वारा ‘राजस्थान में हिन्दी के हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज’ (बिब्लियोग्राफी) का काम हाथ में लिया, जिसे अब तक चार भाग ‘राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज’ नाम से प्रकाशित किये जा चुके हैं और पाँचवाँ भाग शीघ्र ही प्रेस में दिया जाने वाला है।

प्राचीन साहित्य विभाग में ‘हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज’ के अतिरिक्त १६००० चारण गीत विभिन्न विषयों के एकत्रित किये जा चुके हैं।

२. लोक साहित्य-विभाग द्वारा हजारों कहावतें, लोक-गीत, मुहावरे, लोक कहानियाँ, वात-ख्यात ख्याल, पहेलियाँ, बैठकों के गीत आदि संग्रह किये जा चुके हैं। लोक साहित्य में कहावतों के तीन भाग (१) मेवाड़ की कहावतें, (२) मालवी कहावतें तथा (३) राजस्थानी भीलों की कहावतें नाम से छप चुके हैं। लोक गीतों में

“राजस्थानी-भीलों के लोकगीत भाग १” प्रकाशित हो चुकी है तथा ‘ओम्ना-सन्ध’ नामक पुस्तक का प्रकाशन हो चुका है। लोक-साहित्य की तीन चार और भी महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशनार्थ तैयार हैं। ‘साहित्य-संस्थान’ के पास होने वाली पुस्तकें प्रेस में दे दी जायेंगी।

३ पुरातत्व और इतिहास-विभाग के अन्तर्गत पट्टे, परमाने, तापक, पाषाण, ऐतिहासिक महत्व के अन्य कागज-पत्रों का संग्रह किया जाता है। पाषाण, सिक्के, शिलालेख, चित्र तथा अन्य कला कृतियाँ एकत्रित की जाती हैं। इनमें पत्रों की सामग्री एकत्रित करली गई है।

साहित्य-संस्थान के काम और उसकी उपयोगिता के तत्पर प्रसिद्ध परमाने वेत्ता स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओम्ना ने अपने समस्त प्रकाशित और अप्रकाशित ऐतिहासिक एवं पुरातत्व सम्बन्धी निबन्ध-सम्बन्धों को प्रदान कर दिये थे। उन सब का प्रकाशन चार भागों में ‘ओम्ना-निबन्ध-संग्रह’ के नाम से किया जा चुका है। पुरातत्वज्ञों और ऐतिहासिकों के लिए ये निबन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी हैं।

इसी विभाग के अन्तर्गत स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओम्ना की स्मृति में राजस्थान के इतिहास कार्य के लिए “ओम्ना आसन” स्थापित है जिसमें प्रतिवर्ष राजस्थान के इतिहास से सम्बन्धित तीन भाषण लिखित रूप से अधिकारी विद्वान् द्वारा कराये जाते हैं इस आसन से “पूर्व आधुनिक राजस्थान” नामक पुस्तक का प्रकाशन हो चुका है, जिसके लिए यू० पी० सरकार ने पुस्तक के लेखक को ५५०) रु० का पुरस्कार भी प्रदान किया है।

४ प्राचीन साहित्य की शोध-खोज के अलावा नवीन प्रगतिशील साहित्य की ओर भी विद्यापीठ का ध्यान गया और इसके अन्तर्गत साहित्य सृजन का कार्य प्रारम्भ किया गया। अब तक इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत एक “आचार्य-चारणक्य” नाटक दूसरी बृज भाषा का खड काव्य “तुलसी दास” एवं तीसरी “नयाचीन” नामकी पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं।

पुस्तकों के सृजन के साथ साथ नवीन प्रगतिशील लेखकों को प्रोत्साहित करने और साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिये “राजस्थान-साहित्य” नामक मासिक पत्र का प्रकाशन किया जाता है।

५. अध्ययन गृह और संग्रहालय में अब तक १००० महत्व पूर्ण हस्त लिखित ग्रन्थ एवं २५०० मुद्रित ग्रन्थ एकत्रित किये जा चुके हैं। इसके अन्तर्गत प्राचीन चित्र, शिल्प कला के नमूने तथा ऐसी ही कलात्मक सामग्री इकट्ठी की जा रही है।

६. सामान्य विभाग में राजस्थानी के प्रसिद्ध महाकवि सूर्यमल की स्मृति में “सूर्यमल आसन” स्थापित है। इस आसन से प्रतिवर्ष “राजस्थानी भाषा और साहित्य” विषय पर किसी अधिकारी विद्वान् के तीन मौलिक भाषण आयोजित किये जाते हैं और उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाता है। इस आसन से “राजस्थानी भाषा” नामक पुस्तक प्रसिद्ध भाषा तत्वज्ञ डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की प्रकाशित हो चुकी है।

इसी के अन्तर्गत शोध-खोज सम्बन्धी साहित्य को प्रकाश में लाने के लिए “शोध-पत्रिका” नामक त्रैमासिक का प्रकाशन किया जाता है। इसके सम्पादक मंडल में साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। देश के सभी विद्वानों का सहयोग इस पत्रिका को प्राप्त है।

इस प्रकार साहित्य-संस्थान अपनी बहुमुखी कार्य-योजना द्वारा राजस्थान के विखरे हुए साहित्य को एकत्रित कर प्रकाश में लाने का नम्र किन्तु अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। हमारे देश की प्राचीन साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराओं तथा चिंतन-स्रोतों को सदैव गतिशील एवं अमर बनाये रखना है तो इस काम को और अधिक व्यापक बनाना होगा। राजस्थान और भारत के विद्वानों, विचारकों और साहित्यकारों का इस प्रकार के शोध-पूर्ण कार्यों की और अधिकाधिक प्रवृत्त होना आवश्यक है।

साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर पिछले दस वर्ष से हिन्दी के आदि महाकाव्य “पृथ्वीराज रासो” का प्रामाणिक संस्करण हिन्दी अनुवाद सहित करवा रहा था, अब वह सम्पूर्ण रूप से तैयार हो चुका है और ‘प्रथम खण्ड’ का प्रकाशन गत वर्ष किया जा चुका है। प्रथम खण्ड के प्रकाशन के लिये राजस्थान सरकार को अपनी ओर से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस वर्ष साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ की ओर से राजस्थान सरकार के द्वारा भारत सरकार के शिक्षा-सचिवालय से महायता के लिये निवेदन

किया गया था। राजस्थान सरकार के शिक्षा-सचिवालय द्वारा भेजे गये साहित्य संस्थान के प्रार्थना-पत्र पर भारत सरकार के शिक्षा-सचिवालय ने ४८५००) अड़तालीस हजार पाँच सौ रुपये की सहायता निम्न कार्यों के लिये स्वीकार की—

“पृथ्वीराज रासो” के तीन खण्डों के प्रकाशन के लिये, पुस्तकालय के विकास के लिये एवं ध्वनि सुरक्षा यंत्र (साउण्ड रेकॉर्डिंग मशीन) खरीदने के लिये।

उक्त चारों मदों के लिए भारत सरकार के शिक्षा विकास-सचिवालय की ओर से उपयुक्त सहायता स्वीकार की गई। इस स्वीकृत सहायता की रकम में संस्था की अपनी ओर से ३ एक तिहाई रकम मिलाकर मार्च १९५६ के पूर्व उक्त कार्यों को समाप्त करने की शर्त रखी गई थी। उसके अनुकूल ही हमने प्रस्तुत ‘ रासो ’ के प्रकाशन का कार्य किया है। भारत सरकार के शिक्षा-विकास-सचिवालय की ओर से प्रदान की गई इस अनिवार्य सहायता के लिये साहित्य-संस्थान की ओर से उक्त सचिवालय के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। साथ ही राजस्थान सरकार के शिक्षा सचिवालय और शिक्षा विभाग का अत्यन्त आभारी हूँ कि जिन्होंने संस्थान के कार्य को ध्यान में रखकर उक्त सहायता प्रदान करवाने में पूरा २ योग दिया। विशेष कर राजस्थान के मुख्य मंत्री (जो शिक्षा मंत्री भी हैं) माननीय श्री मोहन-लालजी सुखाड़िया का अत्यन्त अनुग्रहीत हूँ जिन्होंने साहित्य-संस्थान के काम को और उसके द्वारा किये जाने वाले परिश्रम को महत्वपूर्ण और अनिवार्य उपयोगी मानकर सहायता प्रदान करने के लिये भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय को सिफारिश की। सच तो यह है कि उक्त सहायता श्री सुखाड़िया, भारत सरकार के डिप्टी शिक्षा सलाहकार डॉ० पी० डी० शुक्ला, डॉ० भान तथा असिस्टेंट शिक्षा सलाहकार श्री मोहनसिंह एम० ए० (लदन) और उपशिक्षा मंत्री डॉ० श्रीमाली की प्रेरणा से ही मिल सकी है। इसलिए इन सब का मैं अत्यन्त आभारी हूँ और आशा करता हूँ कि आगे भी संस्थान के कार्य-विकास में आप सबका सक्रिय योग मिलता रहेगा।

राजस्थान विश्व विद्यापीठ के पीठमन्त्री और मेरे सहयोगी भाई भगवती लाल भट्ट ने इस सहायता को प्राप्त करने में काफी कष्ट उठाया, उसके लिए मैं इनका कृतज्ञ हूँ।

उन सब महानुभावों का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने रामो के सम्पादन में ज्ञान^{*} और प्राचीन प्रतियों द्वारा संस्थान और संपादक को सहायता दी है। आशा है भविष्य में भी संस्थान को उन सब की सहायता मिलती रहेगी, क्योंकि संस्था उन्हीं की है।

गिरिधारीलाल शर्मा

अध्यक्ष

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

वसन्त पंचमी {
वि० सं० २०१२ {

* महा पंडित राहुल सांकृत्यायनजी ने सम्पादन की प्रणाली के बारे में सुझाव दिये और श्री लक्ष्मीलालजी जोशी (प्रचेता, राजस्थान विश्व विद्यापीठ) से हमें इस कार्य में समय २ पर उत्साह एवं प्रेरणा मिलती रही है, अतः मैं उक्त दोनों महानुभावों का आभार प्रदर्शित करता हूँ।

संस्था की ओर से

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर के अन्तर्गत आज से एक युग पूर्व प्राचीन साहित्य की शोध-खोज, संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन कार्य के लिये “प्राचीन साहित्य खोज विभाग” की स्थापना की गई थी। तब से आज तक इसके नाम मे कार्य और प्रवृत्तियों के विकास एवं विस्तार के साथ अनेक परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे हैं। इस समय यह ‘साहित्य-संस्थान’ के नाम से प्रख्यात है। प्राचीन-साहित्य की शोध-खोज, संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन के अतिरिक्त आज इसमें लोक-साहित्य, इतिहास, पुरातत्व और कला-विषयक सामग्री की शोध-खोज कर, उसका सम्पादन एवं प्रकाशन का काम होता है। साथ ही नवीन-साहित्य के सृजन और विकास के लिये भी क्षेत्र तथा वातावरण तय्यार किया जाता है। नवीन उदीयमान प्रतिभाशाली लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन की समुचित-व्यवस्था करने के लिये साधन-सुविधाएँ एकत्रित की जाती हैं और उनके लिये अवसर उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। साहित्य-संस्थान विगत एक युग से भारतीय साहित्य, उसकी सस्कृति और विविध कलात्मक सामग्री के पुनर्शोधन के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है। संस्थान की ओर से अब तक कई महत्वपूर्ण प्रकाशन किये जा चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ भी उसी का परिणाम है।

दस वर्षों के अथक परिश्रम और अव्यवसाय के कारण ही आज यह हिन्दी साहित्य का आदि महाकाव्य हिन्दी अनुवाद सहित हिन्दी जगत के सामने प्रस्तुत किया जा सका है। इसके सम्पादन का आधार विभिन्न काल की विभिन्न हस्तलिखित ‘पृथ्वोगज-रासो’ की प्रतियाँ ही रही हैं। इसके सम्पादन और प्रकाशन मे त्रिपुलश्रम, शक्ति और धन का व्यय साहित्य-संस्थान की ओर से किया गया है।

सम्पादकीय

कविवर केशव ने ठीक ही कहा है—

राजत रञ्च न दोष युत, कविता वनिता मित्र ।

बुन्दक हाला परत ही, गंगा—घट अपवित्र ॥

जिस प्रकार अल्प मात्र भी दूषण आजाने से स्त्री और मित्र अच्छे नहीं लगते, उसी प्रकार कविता में भी रञ्च मात्र दोष आजाने पर वह अशोभनीय हो जाती है। ठीक यही स्थिति महाकवि चन्द वरदाई की गंगा-प्रवाह तुल्य काव्य-धारा में बूंद रूप ही नहीं अपितु महान् अपवित्र वारुणी-धारा के रूप में मूल रासो से भी दुगुनी संख्या से ऊपर (मूल रचना ५००० चन्द पुत्रों की रचना २००० के अतिरिक्त ११०००) क्षेपक छन्दों के मिल जाने से हुई है, फिर भी सहृदय विद्वानों के हृदय में उसका महत्त्व बना हुआ है। विरोधी पक्ष वाले विद्वानों में से एक-दो ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'चन्द को अनुस्वार तक का ज्ञान नहीं था।' किन्तु उन्हीं का अनुसरण करने वाले विद्वान् अथ रासो के काव्य-सौष्ठव का लोहा मानने लगे हैं। उनके विचार में रासो एक अद्वितीय काव्य-सिन्धु है, और यह ठीक भी है क्योंकि रासो से स्पष्ट है कि महाकवि चन्द वरदाई का पूरा नाम "पृथ्वीचन्द" या "पृथ्वीभट्ट" था, जिसके लिए उसीका समकालीन पंडित जयानक अपने 'पृथ्वी-राज विजय' नामक महाकाव्य (अपूर्ण) में लिखता है कि पृथ्वीराज का बंदीराज पृथ्वीभट्ट अनेकों इतिहासों का ज्ञाता होने से व्यास बन गया है।^१ यह कथन रासो की पुराण शैली का सुदृढ़ प्रमाण है, एव इससे रासो के ऐतिहासिक तथ्य पर भी पूर्णतः प्रकाश पड़ता है। महात्मा मूर ने भी अपने को चन्द-वशज लिख कर गौरव का अनुभव किया—“भये चन्द चारु नवीन।” आज से तीन सौ वर्ष पूर्व कविवर दयालदास राव^२ अपने “राणा रासो” ग्रन्थ के अंत में चन्द की धारा-प्रवाह रचना के विषय में लिखते हैं—

(१) “इतिहास शताम्याम व्यास. द्वावास (सन्निधौ)।”

इतिहास शुचि बन्दी भूयो-मुदहरद् गिरम् ।” (पृ० वि० सर्ग ११, श्लोक १७)

(२) यद्यपि दयालदास ने अपने ‘राणा रासो’ में अपनी जाति का कहीं उल्लेख नहीं किया है, फिर भी ग्रन्थान्त में हमें निम्न संकेत मिलता है—‘त्रिदाइ विष्टि वदी वदे’।

चन्द छन्द चहुआन के, बोली उभा विशाल ।

राण रास इतिहास को, दोरे न पलत दगाल ॥

इसके कुछ बाद (वि० स० १७२० से कुछ पूर्व) राजस्थानी भाषा के प्रमुख चारण कवि जोगीदास ने अपने “हरि पिंगल प्रबन्ध” के मगला चरण में संस्कृत के महान् कवियों की वन्दना के साथ २ महाकवि चन्द को कालिदास की सम कक्षा में स्थापित किया है—‘चन्दह कालिदास’ ।

इस प्रकार वर्तमान समय के साहित्य-प्रेमी ही नहीं, अपितु चन्द के सम-कालीन और उसके परवर्ती कवियों ने भी रासो और रासोकार के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित की है । इसका कारण यह है कि साहित्य-सृष्टि में सर्वत्र सरसता का साम्राज्य और नीरसता का अभाव रहता है । यहाँ तक कि इतिहास में भी केवल मात्र इतिवृत्त ही नहीं रह कर कल्पना विलास की प्रधानता हो जाती है जिसके कारण प्रत्येक स्थल विविध काव्य-कुसुमों से परिपूर्ण होकर सारे जगत् को सौरभ और मधुर पराग प्रदान करता रहता है । कल्पना और अतिशयोक्ति पूर्ण होते हुए भी वह वास्तविक इतिहास की क्षतिपूर्ति करने में समर्थ होता है । शुष्क हृदय प्राणी वहाँ प्रथम तो पहुँच ही नहीं सकते और यदि पहुँच भी जाते हैं तो सुरम्य वाटिका में निवास करने वाले कौशिक, काग और चिमगादड़ों के समान विविध पुष्पो-फलों का उपयोग नहीं कर सकते । ऐसे स्थलों (काव्य-कुञ्जों) की रचना तो भगवती वीणा पाणि ने रस-मुग्ध भ्रमरों, कोकिलाओं और चातकों के लिए ही की है । रासो भी काव्यात्मक इतिहास है जिसको समझने के लिए कवि-हृदय की आवश्यकता होती है । इसके गूढ़ तत्व की प्राप्ति के लिए केवल वाच्यार्थ से ही काम नहीं चलता, इससे तो उलटे उसकी गहनता में उलझना ही संभव हो जाता है । साहित्यकारों की धारणा सर्वदा उसके गहनतल में प्रवेश करके वास्तविक तथ्य को खोज कर जन समुदाय के समक्ष रखने की होती है अतः अब तक रासो के अन्तःसाक्ष्य और बहिर्साक्ष्य विवेचन से उस पर जो कुछ भी प्रकाश पड़ा है उससे हमने लाभ उठाया है । बाह्य पक्ष के आधार पर लेखनी उठाने वालों की भ्रमात्मकता का केवल मात्र कारण रासो के क्षेपक अंश ही हैं जो स्वाभाविक भी था । हमने दोनों पक्षों को अपने समक्ष रखते हुए इसका अनुवाद किया है जिसके फलस्वरूप यह तृतीय भाग विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है । इसमें ऐतिहासिक प्रवृत्तियों का प्रकाश इस प्रकार वर्णित है -

‘वरुण-कथा’ में पृथ्वीराज के विरक्त पिता सोमेश्वर^१ ने मथुरा तीर्थ की यात्रा करके चन्द्रग्रहण के अवसर पर यमुना स्नान के पश्चात् शोडप प्रकार का दान किया ।

‘सोमवध’ में भीम ने अपने सामंतों को सोमेश्वर पर चढ़ाई करने के लिए बुलाया, उनमें रानिङ्ग मकवाना और वीर धवल भी^२ था । इसी स्थल पर एक अन्य (भोलाराय समय में शहाबुद्दीन द्वारा मारे गये सारंगदेव मकवाना के अतिरिक्त) राजपद धारी सारंग मकवाने के सम्मिलित होने का भी उल्लेख है^३ । युद्ध में सोमेश्वर के मारे जाने पर पृथ्वीराज ने चालूककी वीरों को नष्ट करने की प्रतिज्ञा करके^४ पाटोत्सव मनाया जिसमें जनता भी सम्मिलित थी ।

‘पञ्जून छोंगा’ में बालुक भीम ने रानिङ्ग भाला के महाबली विरुद्धारी पुत्र के सिर पर छोंगा (किलंगी) बँधाकर सेनापति बनाया ” । उसने जालोर पर चढ़ाई की तब पृथ्वीराज के सामन्त कछवाहे पञ्जून और उसके पुत्र मलयसिंह ने महाबली का छोंगा (किलंगी) छीन लिया और पृथ्वीराज को जाकर उसे समर्पित किया । पृथ्वीराज ने उस छोंगा को मलयसिंह को ही दे दिया ।

‘पञ्जून चालुक्य’ में बालुक भीम ने^५ जयचन्द और यवन सेना के बल पर पृथ्वीराज पर चढ़ाई की । पृथ्वीराज की ओर से कछवाहे पञ्जून ने अपने भाइयों और पुत्रों सहित सामना किया । पृथ्वीराज के अन्य सामन्त भी इस युद्ध में सम्मिलित हुए । यह युद्ध खोखन्द नामक स्थान पर हुआ था जिसमें पञ्जून की विजय हुई ।

(१) “सा दिव्य नृपराज तात जलय विमच्छ यद्ध्या कुध” वरुण कथा के ६१, ६२, ६३ पद्य में भी सोमेश्वर के ज्ञान वाक्य से उसकी ससार में विरक्ति (वानप्रस्थ अवस्था) स्पष्ट है ।

(२) “वीर धौलंगी देवधर”

(३) “धौल हरै सुलितान, वीर सारंग मकवान”

(४) बालुक भीम मर मजिकै, कटौ तात उदरह सुखम”

(५) “विरद बुलावै महाबली, छोंगा सच्यौ स धूय”

(६) “बालुकका हिंदू कमध, ओर सु गौरि साहि”, “आई खबरि चहुआन, सुदल बालुककराई मजि ।”

‘चन्द्र द्वारिका गमन’ में पृथ्वीराज से पापा लेकर चन्द्र विमान (विमान) में हाथी जोते जाते थे उसे उन्द्र विमान कहते हैं) पर पापा लेकर पृथ्वीराज (चन्द्र वरदाई) ने^१ द्वारिका के लिए प्रस्थान किया ‘पौर पित्तो’ होता है पापा द्वारिका पहुँचा । पुन लौटते हुए कुन्दनपुर में भोला भीम, कविचन्द्र से पाकर मिला ‘पौर उसे सम्मानित किया । तब कविचन्द्र दिल्ली लौट आया ।

‘भीम बंध’ में पृथ्वीराज ने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए भीम को बन्धन में ले लेने की प्रतिज्ञा की^२ । ज्योतिषी द्वारा मुहूर्त देखकर भी इस बात की पुष्टि की गई^३ । कविचन्द्र ने कहा कि इस समय पृथ्वीराज और चित्तौड़ेश्वर रावल समर-विक्रम दोनों ही शक्तिशाली हैं और भारत की डाँगाडोल अवस्था के समय भारत का भार इन्हीं कंधों पर है^४ । तत्पश्चान् पृथ्वीराज ने गुर्जर प्रदेश पर चढ़ाई की । दोनों सेनाओं में साबरमती के तट पर भयानक युद्ध हुआ । युद्ध के अंत में भोरा भीम पृथ्वीराज की दया का पात्र बना (बन्धन में लेकर छोड़ दिया गया)^५ ।

“कैमास युद्ध” में पृथ्वीराज शिकार खेलने के लिए खट्खुवन में गया । इसकी सूचना धर्मायन ने शाह को दी । शाह रवाना होकर पारसपुर में ठहरा और सिन्ध नदी को पार कर अ० स० ११४७ (वि० स० १२३८) में पंजाब की ओर चला । रास्ते में सारुण्डे होता हुआ लाडन् पहुँचा । पृथ्वीराज को इसकी सूचना मिलने पर कैमास ने कहा कि यह शाह बार-बार चढ़ आता है और सधि भग करता है । अतः मैं इसे पकड़ कर वन्दी बनाऊँगा^६ । पृथ्वीराज सेना सहित रवाना होकर गोविन्दपुर और पॉचोसर नामक स्थान पर ठहरा । युद्ध करते हुए कैमास ने शाह को बन्धन में ले लिया ।

(१) सत गयद रथरूढ, साज आसन “प्रथि” रज्जह ।

(२) “जदिन भीम मग्रहौ, सोम उग्रहो तदिण रिण”

(३) ‘व्याम आनि दग्गवी लगन, घरी अस पल जोह ।
इहि समग्रै जौ सज्जिये, सही जिति तौ होह ॥”

(४) “निकम अरु चहुआन नृप, पर धरती सक बध ।
अमम समे साहम करन, हिन्दु राज दुश् कध ॥

(५) “दया देह उद्धरै” ।

(६) “वेर-वेर आवत इह, मानै मेख न मधि ।
उह लौन पृथिवीराज सो, आनो माहि सु अधि ॥”

“हंसावती समय” में हंसावती के पिता भानुराय देवास से (शरण रूप में) रणथंभौर आकर रहने लगे । इसका कारण यह था कि कन्नौजेश्वर शशिवृता वाली घटना के कारण रुष्ट था ही, शहाबुद्दीन भी उसके संकेत से देवास पर अपनी क्रूर दृष्टि लगाये था । इधर राजकुमारी हंसावती के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर शिशुपाल वंशी पंचायन भी उससे विवाह करने को उत्सुक था । भानुराय यादव के रणथंभौर पर सकुटुम्ब रहने पर पंचायन ने रणथंभौर पर चढ़ाई की । यह देख कर भानुराय की बसही (देवास से साथ में आये हुए आश्रितों की टोली) युद्धार्थ रणथंभौर से उतर पड़ी^२ । उस समय रणथंभौर का वास्तविक राजा पृथ्वीराज यश-लता तुल्य और शरण में आया हुआ राजा भानु फल-स्वरूप दिखाई दिया^३ । एक ओर यादव राजा भानु युद्धार्थ उतर पड़ा, दूसरी ओर पृथ्वीराज द्वारा भेजे गये कन्हू ने रावल समर से निवेदन किया कि बलवान होते हुए भी यादव राजा भानु की पृथ्वी छूट गई है^४ । तब वीर एव शरणागत-रक्षक रावलजी और पृथ्वीराज ने मिल कर पंचायन को परास्त किया । फिर उस मध्यदेशीय मालव राजा भानु की सुन्दरी राजकुमारी हंसावती का प्रेम पृथ्वीराज की ओर उमड़ पड़ा^५ । पृथ्वीराज ने उस राजकुमारी से विवाह किया और एक मास तक राजा भानु को रणथंभौर पर रखा^६ । युद्ध के बाद चित्तौड़ेश्वर चित्तौड़ को और पृथ्वीराज हंसावती सहित दिल्ली आगये, तब राजा भानु भी देवास लौट गया ।^७ हंसावती-विवाह के समय पृथ्वीराज की आयु २२ वर्ष और चित्तौड़ेश्वर रावल समर-विक्रम की ५७ वर्ष की थी ।^८

(१) “रनथम मंडि छडी सरन”, “सरन रक्खि कहुइ न”, “मालव दुग देवास ।”

(२) “वर रन थम उत्तरी, वीर बस्ती आहुटी”^१ ।

(३) “जस बेली रनथम नृप, फल पच्छे नृप आइ”

(४) “धरति धवर नह तांम”

(५) “मध्यदेश मालव नरिंद, हंस हसध्वज मीनी”

(६) “मास वीथ विस्ते नृपति”

(७) “देव-राज जइम बहिय”

(८) “विच कविच उगाह करि, चद छंद कवि चद ।

समर अठारह बरष दस, दिवस त्रिपच रविंद ॥”^१

“पहाडराय” समय की युद्ध घटना पृ० सं० ११७७ (पृ० ग० १२३६) की है। इसमें पृथ्वीराज और शाह की सेना में युद्ध हुआ, जिसमें पृ० गीराज की पक्ष के बल पर पहाडराय तैवर ने कन्दहार (पेशावर, गजनी आदि) के वास्तविक को बन्धन में ले लिया। (ज्ञात रहे इस ‘समय’ का कम भी विचारणीय है। जीवना में ठीक नहीं कर सके अतः पाठक पढ़ते समय क्रम का ध्यान रखें)।

“विनय मंगल” में मदन ब्राह्मणी और उसके पति को पुराण शैली पर गंधर्व दुम्पति (यक्ष-यक्षिणी) का रूप दिया गया है। जिस समय मदन ब्राह्मणी से संयोगिता ने विनय (स्त्रियोचित ज्ञान) का पाठ पढ़ा, उस समय उसकी आयु पूर्ण आयु से आधी (१४ वर्ष) की हो चुकी थी। कवि ने स्पष्ट भी कर दिया है कि वह उस समय १२ वर्ष ६ माह और ५ दिन की हुई थी (१४ वा लगने आया था)^१। सर्व प्रथम संयोगिता ने मदन ब्राह्मणी से ही पृथ्वीराज का परिचय पाया। संयोगिता की माता जुन्हाई थी, जो विशेष मानवती थी^२।

“संयोगिता नैमाचरण” में जब संयोगिता ने पृथ्वीराज को ही वरण करने की दृढ प्रतिज्ञा की तो जयचन्द ने क्रुद्ध होकर उसे गगातट के महलों में रख दिया।

“शुक वर्णन” में मदन ब्राह्मणी और उसके पति को पुराण शैली के आधार पर ‘शुक-शुकी’ एवं ‘दुज-दुजी’ (ब्राह्मण-ब्राह्मणी) कहा गया है। उन दोनों ने दिल्ली जाकर संयोगिता के प्रेम को पृथ्वीराज पर प्रकट किया।

“बालुकाराय” में जयचन्द ने यज्ञ और संयोगिता का स्वयंवर करने का विचार किया और पृथ्वीराज की स्वर्ण प्रतिमा द्वार पर (द्वारपाल के स्थान पर) स्थापित कर दी। तब पृथ्वीराज ने चढ़ाई करके जयचन्द के भाइयों में से मकेशराय के पुत्र बालुकाराय को युद्ध में मार डाला और इस प्रकार जयचन्द के यज्ञ और कुमारी के स्वयंवर में बाधा डाली।

‘पग यज्ञ विध्वंस’ में जयचन्द ने पृथ्वीराज को बन्धन में लेकर ही यज्ञ करने की प्रतिज्ञा की, किन्तु उसकी रानी ने अपने मधुर उपदेश से समझाया कि

(१) ‘जनम सजोग विखटि’, ‘पूगन बाल खट विग बरख, नव मासह दिन पंच वर’।

(२) “मह जजर स जान, जुन्हाई नेय जानय तत्त”

पृथ्वीराज भी सामान्य वीर नहीं हैं। भविष्य में न जाने क्या हो, 'अंत' उसने कुमारी का स्वयंवर करके ही बाद में यज्ञ करने की सलाह दी, जिसे जयचन्द ने भी मान लिया। तब जयचन्द ने पृथ्वीराज के भूभाग पर-यत्र तत्र अपने सामंतों को आक्रमण करने के लिए नियुक्त कर दिये। पृथ्वीराज अपनी जनता को सुरक्षित स्थान में पहुँचा कर राजौरवन में आकर ठहरा। उसके भूभाग की रक्षा के लिए उसके साथी और सम्बन्धी रावलजी भी सहायक हुए। यह देखकर जयचन्द के नियुक्त किये हुए सामंत पृथ्वीराज के भूभाग से हट गये।

“संयोगिता पूर्व जन्म” की कथा पुराण शैली के आधार पर गंधर्व दम्पति रूपी मंदना ब्राह्मणी और उसके पति मे परस्पर प्रश्नोत्तर के रूप में प्रारम्भ हुई है। इन्द्र ने रंभा आसरा द्वारा सुमंत ऋषि की तपस्या को नष्ट कराया, तब सुमंत के पिता (या गुरु) जरज ने रंभा को श्राप दिया कि वह अपने पिता और पति के कुल का नाश कराने वाली होगी। रंभा ने उनसे दया की भिन्ना माँगी तो उन्होंने कहा कि यह पृथ्वीराज को प्राप्त करेगी और गंगा-स्नान से श्राप का प्रभाव छूट जावेगा।

“हॉसी प्रथम युद्ध” समय से ज्ञात होता है कि धर तो पृथ्वीराज ने शिकार के बहाने कन्नौज, गुर्जर और दक्षिण प्रदेश तक अपनी आतंक फैला दिया, उधर दिल्ली स्थित चामुण्डराय और भोज कुमार (संभव है यह कोई सामंतकुमार हो) ने दिल्ली और नागौर को सुरक्षित रखा। यह व्यवस्था एक वर्ष तक रही। पृथ्वीराज हॉसी के भूभाग को सुरक्षित रखने के लिए कछवाहे पञ्जून के नैवतुव में कुछ सामंतों को वहाँ पर नियुक्त कर दिया। इसकी सूचना पाकर वल्लोची पहाड़ी ने बादशाह को सूचना दी और कहला भेजा—“यदि आप हमारी सहायता करें तो मैं अपनी वेगमों के बहाने से हॉसी स्थित पृथ्वीराज के सामंतों से रास्ता माँगकर छेड़-झाड़ करूँ, क्योंकि हम कधारी और वल्लोची आपकी सीमा पर रहने वाले भूमिया (भूस्वामी) हैं। हमारी यह रीति है कि हम अपने अधिकृत भूभाग को ससान रूप से बाँट लेते हैं।” शाह को यह सूचना देकर वल्लोची हिंसार की ओर बढ़ा। पृथ्वीराज के सामंतों ने रात्रि में व्यापार कर वल्लोची और उसकी सहायक सेना को तितर-वितर कर दिया और वल्लोची की बेसमो को लुटकर छोड़ दिया। तब शाह स्वयं वल्लोची के पक्ष में चढ़ आया और हॉसी से दस कोस की दूरी पर रह कर अपने प्रमुख यवन योद्धाओं द्वारा हॉसीपुर को घेर लिया। दिल्ली और नागौर की

रक्षा-व्यवस्था के बाद चामुण्डराय भी हॉमी आ पहुँचा और उसने सामंतों सहित शाही सेना के व्यूह को तोड़ कर प्रमुख यवन योद्धाओं को वहाँ से भगा दिया।

“हॉसी द्वितीय युद्ध” की घटनाएँ इस प्रकार हैं—हॉसी से भाग कर आई हुई सेना को एकत्रित कर शाह ने हॉसी दुर्ग को घेर लिया और दुर्ग स्थित सामंतों को कहलाया—‘या तो शस्त्र ग्रहण करो या धर्मद्वार (दुर्ग में एक ऐसा द्वार होता है जिससे पराजित योद्धा निकल भागते हैं और उन्हें विपत्ती भी अभयदान दे देता है। इसे ‘भागन सेरी’ भी कहते हैं) से निकल जाओ।’ यह सुन कर अनेक योद्धा उस धर्म द्वार से निकल भागे किन्तु सहस्र मल्ल और देवकर्ण आदि वीर योद्धा वहीं टिके रहे, जो आगे चलकर युद्ध करते हुए मारे गये। उधर बंदीराज पृथ्वी-भट्ट (कविचन्द)^१ ने स्वप्न में हॉसी दुर्ग की रक्षा की पुकार सुनकर पृथ्वीराज को सचेत किया। पृथ्वीराज ने महामंत्री कैमास की सम्मति से रावल समर-विक्रम को हॉसी पहुँचने का सदेश दिया। इधर रावल समर द्रुत गति से हॉसी पहुँचे, उधर पृथ्वीराज ने हॉसी से भागे हुए हरिसिंह (पृथ्वीराज का भाई हरिराय)^२ और अन्य सामंतों को उत्साहित किया एवं सेना सजा कर प्रस्थान किया। रावल-समर के पहले पहुँच जाने पर भयभीत सामंतों में उत्साह और प्रसन्न यवनों में भय छा गया। रावल समर-विक्रम ने यवनों से युद्ध करके अपने ‘विक्रम’ नाम को सार्थक कर दिया^३। युद्ध के समाप्त होते होते पृथ्वीराज भी हॉसी पहुँचा और दोनों की सेना ने मिलकर शाह और उसकी सेना को हॉसी से भगा दिया। शाह भी हॉसी को छोड़कर दिल्ली पर आक्रमण करने को चल पड़ा, किन्तु रावल समर और पृथ्वीराज ने उसका रास्ता रोककर उसे फिर परास्त कर भगा दिया। इस युद्ध का श्रेय नृप-केशरी (पृथ्वीराज) और बल-केशरी (विक्रम-केशरी) को समान रूप से ही प्राप्त हुआ^४।

“पञ्जून महोवा” में पहले की पराजय की जलन और पञ्जून द्वारा महोवे के भूभाग को दबा लेने पर शाह ने उत्तार की मलाह से महोवे पर चढ़ाई की। पञ्जून ने शाह से लोहा लिया और उसे परास्त कर दिया।

(१) “पुष्कराखि नृप “राह”, “हॉमी पुच्छे ‘पृथुभिगय’”

(२) “निट्टर वर हरिसिंघ”, “अचल अटल हरिसिंघ”

(३) “सवर” सच जपन सु।”

(४) “केम नरिंद” “केम बलह”, नेग चित्ति चित्ति लहरि,”

“पञ्जून पातशाह युद्ध” मे पृथ्वीराज ने नागौर की रक्षा के लिए पञ्जून को कई सामंतों सहित नियुक्त किया। जब बादशाह ने उस पर चढ़ाई की और युद्ध हुआ तो पञ्जून के पुत्र मलयसिंह ने उसे वन्यन में ले लिया।

“सामंत पग” समय मे पृथ्वीराज के भूभाग पर आक्रमण करने से पूर्व जयचन्द ने चित्तौड़ेश्वर रावल समर को अपनी ओर मिलाने हेतु मंत्री सुमत को चित्तौड़ भेजा, किन्तु रावल समर ने उसके इस आग्रह को नहीं माना और उसे यज्ञ नहीं करने के लिए समझाया। इस पर जयचन्द ने पृथ्वीराज के भूभाग पर चढ़ाई कर दी। पृथ्वीराज ने सामंतों के बल की परीक्षा लेने के लिए कैमास सहित ग्यारह सामंतों को कन्नौजेश्वर से भिड़ने की आज्ञा दी और स्वयं आखेट मे रत हो गया। सामंतों ने पंगुराज को रात्रि मे छापा मारकर भगा दिया। जिस रात्रि में सामंतों ने जयचन्द पर छापा मारा, उस रात्रि को पृथ्वीराज भी शिकार छोड़कर दिल्ली आगया और रानी पुंड़ीरनी से पेम-विनोद में लीन होगया। युद्ध से लौटता हुआ पंगुराज प्रतना के स्थानों को जलाता हुआ मेवाड़ प्रदेश की ओर रावल समर विक्रम पर आक्रमण करने के लिए समैन्य चल पड़ा।

“समर पग” समय में पंगुराज मेवाड़ पर चढ़ आया। रावल समर विक्रम भी युद्धार्थ तत्पर हुआ और युद्ध मंत्रणा की। इस मंत्रणा मे पृथ्वीराज का भाई हरिमिह भी सम्मिलित था^१। पंगुराज और समर विक्रम में दुर्गापुर (वर्तमान शाहपुरा राज्य मे धनोप या धनोक) के पास खारी नदी के तट पर युद्ध हुआ। जब रावलजी शत्रुओं द्वारा घिर गये तब अन्य योद्धाओं के साथ २ चारह रावल (राज घराने के योद्धा) युद्ध करते हुए घायल होगये और मारे गये। घायल होने वाले योद्धाओं में रणसिंह (युवराज) और मारे जाने वालों में महनसी भी था^२। इस युद्ध में रावल पराक्रम राज (विक्रम केशरी, समर)^३ की विजय हुई।

“कैमास वध” का कथानक इस प्रकार है—राजा शिकाराथे गया हुआ था। लौटने पर उसने दिल्ली के निकट ही वाटिका के महलों में विश्राम किया।

(१) “तब दू दा-हगइ”

(२) “रूपगम रणसिंह”, “माहेस महनमी महनव”

(३) “.....”

हुए वीरों में उल्लिखित है।' मारे गये वीरों में 'महनसिंह' का उल्लेख है। वह आहड़ नागदा की रावल शाखा वाले "महणसिंह कनिष्ठ भ्राता, क्षेमसिंह तत सुनू। सामत सिंह नाम्ना, भूपति भूतले जात" के अनुसार रावल समरसिंह के पिता क्षेमसिंह के बड़े भाई महणसिंह (मथनसिंह) ही थे। कैमास युद्ध में शाह के बार २ चढ़ आने और मधि भग करने के कथन की पुष्टि 'हम्मीर महाकाव्य' के लेख से भी होती है जिसमें लिखा है कि गौरीशाह उस हठी बच्चे की तरह है जो ताड़ना देने पर भी अपनी आदत नहीं छोड़ता और बार बार चढ़ आता है। हसावती के पिता वास्तव में मालव प्रान्तीय देवास के ही थे, किन्तु जब उनका भूभाग उनसे छूट गया तो वे रणथम्भौर में आकर रहने लगे। रणथम्भौर को घेरने पर सर्व प्रथम हंसावती के पिता (भानुराय यादव) की अडाकू बसही (देवास से साथ आने वाली जनता) युद्ध करने के लिए आगे बढ़ी। इससे स्पष्ट होता है कि सामतगण ही नहीं अपितु जनता भी युद्धों में साथ देती थी। चित्तौड़ेश्वर रावल समर विक्रम पृथ्वीराज से आयु में बड़े थे (पृथाकुमारी रावलजी की पॉंचवी रानी थी) जब हसावती का व्याह पृथ्वीराज से हुआ उस समय पृथ्वीराज की आयु २२ वर्ष की और रावलजी की ५७ वर्ष की थी। महोबे पर पृथ्वीराज का अधिकार होने की पुष्टि मदनपुर के देवालय के स्तम्भ पर लिखे लेख से हो जाती है। मदन ब्राह्मणी और उनके पति को शुरु-शुकी, गवर्ष दम्भति और सयोगिता का असरा का रूप देना कवि कथित पुराण गैली के ही रूप हैं। जयानक ने भी इसी शैली को ग्रहण करके पृथ्वीराज को राम और उसकी प्रेमिका को तिलोत्तमा का रूप दिया है। विय पाठ पढ़ने के समय सयोगिता की पूर्ण आयु में से आधी आयु हो चुकी थी। उस समय वह १४ वर्ष के लगभग थी अतः उसकी पूरी आयु २८ वर्ष की थी। वह वि० स० १२४६ में पृथ्वीराज के साथ सती हुई। इसका तात्पर्य यह है कि उसका जन्म वि० स० १२२१ में हुआ था। सयोगिता की माता जुन्हाई को विशेष मानवती कहा गया है, यह भी ऐतिहासिक तथ्य है। उसने अपने पति जयचन्द की उप-पत्नी से द्वेष के कारण गौरी को बुला कर कन्नौज का सर्वनाश करा दिया। जयचन्द के यज्ञ विपयक

(१) स्वर्गीय प० रामनारायणजी दुग्गड़ 'ग्वित राग स्तार' पृ० में स्पष्ट है कि ए० प्राचीन ग्याति में उन्हें ज्ञात होगया था कि युवराज ग्णसिंह रावल विक्रम और पृथा कुमारी का पुत्र था।

विचार में बाधा देने को जिस बालुकाराय को मार दिया उसका बालुकाराय नाम हो या राष्ट्रवर क्षत्रियों का पहले गुर्जर भूमि पर शासन रहने से उसे उपाधि रूप में बालुकाराय (वल्लभेश्वर) लिखा गया हो। पृथ्वीराज के सामंतों में हरिसिंह का उल्लेख है। वह वीर पृथ्वीराज का छोटा भाई (हरिराय या हरिराज) ही था, जो 'होसी युद्ध' और 'समरपग युद्ध' में सम्मिलित था। कैमास की अन्तिम घटना (पृथ्वीराज द्वारा मारे जाने) वाले पद्य मुनि जिन विजयजी के प्रयास से 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' (जो १५०० के आसपास का लिखा हुआ है) में प्राप्त हुए हैं; अतः स्वयं सिद्ध है। बंदीजन दुर्गामट्ट का उल्लेख प्राचीन तवारीखों में भी मिलता है। जयचन्द का यज्ञ विषयक विचार और पृथ्वीराज की स्वर्ण प्रतिमा द्वारपाल के स्थान पर स्थापित करना लोक प्रसिद्ध है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रासो में वर्णित घटनाएँ और स्थान काल्पनिक नहीं हैं। साहित्य की पृष्ठ भूमि में ऐतिहासिक तथ्य भी छिपे हुए हैं। रासो में युद्ध-बाहुल्य का प्रमाण प्रबन्ध चिंतामणि (जो १३०० के आसपास लिखी गई थी) में शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के बीच २१ बार युद्ध होना लिखने से मिलता है। हम्मीर महाकाव्य और प्रबन्ध संग्रह में सात बार युद्ध होना भी उसकी पुष्टि करता है। शाह को अनेकों बार बन्धन में लेने की पुष्टि भी हम्मीर महाकाव्य से हो जाती है, जिसमें लिखा है कि अन्तिम युद्ध में जब पृथ्वीराज पर घेरा डाला जा रहा था तब एक यवन सैनिक ने शहाबुद्दीन से कहा कि पृथ्वीराज ने आपको कितनी ही बार बन्धन में लेकर छोड़ दिया है, अतः आप भी उसे एक बार छोड़ दें।^१

इस प्रकार रासो साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं अपितु ऐतिहासिक रूप में भी अपनी विशेषता रखता है। अतः इसका अध्ययन एवं मनन करने वालों को उसके दोनों रूपों को सामने रखना चाहिए।

मेरा विद्वानों से एक और आग्रह है—रासो (प्रथम भाग) गत वर्ष राजस्थान सरकार और स्वर्गीय महाराणा की सहायता से एक मास में ही छपा था, और इस वर्ष भी रासो के शेष तीन भाग भारत सरकार की सहायता से दो मास में

(१) "पृथ्वीराज चरित्र" रामनारायण दुग्गड (भूमिका पृ० ६६-७०)

(२) "पृथ्वीराज चरित्र" रामनारायण दुग्गड (भूमिका पृ० ७१-७२)

ही छपे हैं। इस अल्पकालीन अवधि में ही मूल प्रतियों को देखना, शुद्ध करना, प्रेस में पचासों की सख्या में प्रूफ देखना, चौथे भाग की प्रेस-कापी तैयार करना, शब्दार्थ और पाठादि लिखवाना, सम्पादकीय लेख लिखना, विषय सूची देना इत्यादि अनेकों कार्यों से भूल होजाना सम्भव है। इसके अतिरिक्त वृद्धावस्था की अस्वस्थता और अस्वस्थता के कारण भी समय क्रम, अर्थ और पाठों में कहीं २ अशुद्धियाँ रह गई हैं। अतः उनका विवरण शुद्धि-पत्र में दिया जायगा। पाठकगण कृपया उसे सुधार कर पढ़ें।

हमारे इस आपत्तिकाल में प्रूफ देखने के कार्य में प्रेस-व्यवस्थापक श्री मदनलालजी लाहोटी और प्रकाशन में स्मृति लाने में फोरमेन श्री मुरलीधर वर्मा ने जो श्रम किया है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। विद्यापीठ में रासो के कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व हमारे भवन पर ही रासो के अध्ययन करते हुए साहित्य-प्रेमी मित्र श्री नन्दकिशोरजी पालीवाल ने भी हमारे उत्साह में समय २५८ जो वृद्धि की, उसके लिए उनका साहित्य-प्रेम भी नहीं मुलाया जा सकता।

रासो का प्रस्तुत भाग पाठकों के सम्मुख है। इसमें दी गई ऐतिहासिक घटनाएँ विद्वत् समुदाय में रासो के बारे में उठी हुई भ्रान्तियों का निराकरण करने में थोड़ी भी सफल हुई, तो सम्पादक अपने श्रम को-सार्थक मानेगा।

सम्पादक -

पृथ्वीराज रासो

साहित्य संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

काव्य-सौष्ठव

कितना अपूर्व, दिव्य और पृथ्वी की शोभा-स्वरूप था वह ज्योत्स्ना-स्तात शरद्राका का रास, जो भगवान् वेदव्यास की अमर देव वाणी से प्रकट हुआ। कालान्तर में यही अपूर्वता और दिव्यता हिन्दी साहित्याकाश के आदि महाकवि चन्द की साहित्य-प्रभा से मंडित 'पृथ्वीराजरासो' ('पृथ्वी-राज-रास' — पृथ्वी का शोभा स्वरूपी रास) में अवतरित हुई। एक में मन-मोहक नृत्य विलास है तो दूसरे में आश्चर्यान्वित कर देने वाला विकट युद्ध-तांडव। एक में कंकणों और नूपुरों का क्वणन, त्वरित चरण संचार, वंशीवादन और दिव्य संगीत का स्वर है तो दूसरे में खड्ग मंकार, युद्ध वाद्यों की प्रबल टंकार, वीरों की हुंकार और सिन्धुराग। वहां पवित्र शृंगार की मादक सुरा का सागर लहरा रहा है तो यहां हृदय में उत्साह और उल्लास का संचार कर देने वाली वीर रस की रज्जोतस्विनी प्रवाहित है। वहां अपने प्रिय में लीन हो जाने की उत्कट तन्मयता है तो यहां अपना सर्वस्व समर्पण कराने वाली स्थायी स्वामि-भक्ति। एक शृंगार और भक्ति का सुमेरु है तो द्वितीय वीर और रौद्र की चरम सीमा। दोनों ही अपने क्षेत्र के निराले हैं। एक कवि ने व्यास होकर पुराण-साहित्य का प्रणयन किया तो दूसरा कवि भी अपनी अपूर्व प्रतिभा के बल पर व्यास होगया।

रासो इतिहास की पृष्ठभूमि पर निर्मित वीर रस का विशालकाय प्रबन्ध-काव्य है। चन्द के आश्रय दाता दिल्ली पति पृथ्वीराज इस काव्य के नायक हैं। ऐतिहासिक आधार होते हुए भी उसमें काव्यत्व की ही प्रधानता है। इतिहास तो केवल मात्र किसी समय विशेष की विघटित घटनावली का अस्थि-मंकलन मात्र ही होता है, उसमें वह प्राण तत्व कहां— जो काव्य-पुरुष को सजीव बनाये रखता है ? अतीत जीवन के अनुभूत तथ्यों का तदारुण वर्णन होने से इतिहास में नीरसता और शुष्कता का साम्राज्य स्थापित रहता है, किन्तु काव्य में उर्वर कल्पना-विलास की प्रचुरता होने के कारण उसकी कलात्मकता में अनुपम निखार आ जाता है। अतः प्रत्येक ऐतिहासिक काव्य में तथ्य और कल्पना का आशातीत सम्मिश्रण अवश्य रहता है। "सभी ऐतिहासिक काव्यों के समान इसमें (पृथ्वीराज रासो में) भी इतिहास और

कल्पना का - फेक्ट और फिक्शन का - मिश्रण है। सभी ऐतिहासिक मानी जाने वाली रचनाओं के समान इसमें भी काव्यगत और कथानक-प्रथित रूढ़ियों का सहारा लिया गया है। इसमें भी रस सृष्टि की ओर अधिक ध्यान दिया गया है, संभावनाओं पर अधिक जोर दिया गया है और कल्पना को महत्वपूर्ण रूप से स्वीकार किया गया गया है।^१ इस तथ्य से अनभिज्ञ इतिहास-जीवी विद्वानों ने रासो में काव्यत्व-मंडित इतिहास-रत्न को पारखी आंखों से नहीं देखने के कारण उस पर विविध प्रकार की सभ्य-असंभव शंकाएँ की हैं। काव्य-कला-कौशल की चकाचौध में उन्हें वह इतिहास-रत्न दृष्टिगोचर नहीं हुआ— इसका यह तात्पर्य नहीं कि उसमें इतिहास-रत्न है ही नहीं। यद्यपि इसमें कहीं भी इतिहास का उल्लघन नहीं मिलता है,^२ फिर भी 'ऐसे काव्य में यदि यदा-कदा ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लघन होगया हो तो उससे कुछ नहीं बिगड़ना, क्योंकि इसमें तथ्यों से भी बड़े मानवीय सत्त्यों की अवहेलना नहीं की गई है, बल्कि सच तो यह है कि कवि ने मानवीय सत्य की रक्षा के लिये ही सुविधानुसार ऐतिहासिक तथ्यों से ड़धर - उधर हटकर अपनी कल्पना-शक्ति का जौहर दिखाया है।'^३ अतः रासो में हमें जहाँ अपूर्व काव्य-कला के दर्शन होते हैं, वहाँ तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

प्रस्तुत समीक्षा में हमारा लक्ष्य रासो की ऐतिहासिक सामग्री न होकर उसके काव्य-सौष्ठव का प्रदर्शन ही है।

कथा-प्रवाह:—

महाकाव्य की कथा वस्तु में एक गति होती है, प्रवाह होता है। इसी कथा-वस्तु के सहारे महाकवि अपने निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। यद्यपि वह अनेकों स्थानों पर प्रस्तुत विषय का जम कर वर्णन करता है, फिर भी उससे कथानक की गति में उसी प्रकार बाधा उपस्थित नहीं होती, जिस प्रकार पहाड़ी

(१) हिन्दी-साहित्य का आदिकाल — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (पृ० ८६)

(२) देखिये पृथ्वीराज रासो— (भाग १, २, ३ और ४ के सम्पादकीय)—सम्पादक कविराव मोहनमिह और शोध पात्रका—रजस्थान विश्व विद्यापीठ (भाग २ अंक ३, ४ और भाग ३ अंक १)

(३) सज्जित पृथ्वीराज रासो— डा० हजारीप्रसाद नामवरमिश्र

धरातल से उतर कर आने वाली वेगवती स्रोतस्विनी विस्तीर्ण प्रांगण में वेगहीन दिखाई देने पर भी प्रवाहित होती रहती है। तृतीय भाग का कथानक 'वसुण कथा' से प्रारम्भ होता है। सर्व प्रथम राजा सोमेश्वर के अपार ऐश्वर्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

सुख लुहहि लुहहि मयन, अरिधर लुहहि धाहि ।
अंग अनमि न उवरै, हय खुर खगहि गाहि ॥

‘राजा सोमेश्वर सुख का उपभोग करता और कामदेव पर विजय पाता हुआ शत्रुओं में आतंक फैलाकर उनके भू-भाग को लूटता रहता था। उसके सामने कभी नहीं झुकने वाले शत्रु की काया भी नहीं बच पाती थी, क्योंकि वह घोड़े के खुर और तलवार द्वारा उसे कुचल देता था।’ इसके पश्चात् कवि ने सोमेश्वर की दिन चर्चा से समस्त राजाओं की दिन चर्चा का दिग्दर्शन करा दिया है। राजाओं के लिए ‘उत्तम समय ते प्रहर लों, सतजुग’, ‘दुतिय प्रहर त्रेता’, ‘द्वापर मध्याह्न ते, त्रितिय पहर लों’ और ‘चतुर पहर कलि कहत सव’ कह कर कवि ने एक ही दिन में चारों युगों के कर्मों का पर्यवसान कर दिया है। आगे चलकर विप्रों द्वारा चन्द्र-ग्रहण के अवसर पर षोडश प्रकार के दान की महत्ता सुनकर जब सोमेश्वर मथुरा में यमुना के किनारे मुक्त हस्त होकर धर्म कार्य करते हुए दान देने लगा तो कवि दान देने वाले राजाओं की महत्ता बताता हुआ कहता है—

अमय नहीं कलि कोइ, इक्क कर रहै उंच किय
संसार सार गल्हा रहै, पिखवत हू नृप नहि रसत ।
भुवलोक पाप घट भरिगलत, जिमि अकाश तारा खसत ॥

यहाँ पापी राजाओं के नष्ट होजाने की तुलना आकाश मण्डल में (प्रातः काल होने पर) छिप जाने वाले नक्षत्र समूह से सुन्दर बन पड़ी है।

इसी अवसर पर कवि को चन्द्रोदय की प्रथम किरण के साथ ही प्रकृति वर्णन का अवसर मिल गया और वह कह उठा —

मुंदित मुख कमोद हंसति कला, चक्कीय चक्कं चितं ।
चंद्रं कुंति कलन्ति षोडशि पिथं, भान कला छीनं ॥

कल्पना का - फेकट और फिक्शन का - मिश्रण है। सभी ऐतिहासिक मानी जाने वाली रचनाओं के समान इसमें भी काव्यगत और कथानक-प्रथित रूढ़ियों का सहारा लिया गया है। इसमें भी रस सृष्टि की ओर अधिक ध्यान दिया गया है, संभावनाओं पर अधिक जोर दिया गया है और कल्पना को महत्वपूर्ण रूप से स्वीकार किया गया गया है।^१ इस तथ्य से अनभिज्ञ इतिहास-जीवी विद्वानों ने रासो में काव्यत्व-मंडित इतिहास-रत्न को पारखी आंखों से नहीं देखने के कारण उस पर विविध प्रकार की संभव-असंभव शंकाएँ की हैं। काव्य-कला-कौशल की चकाचौंध में उन्हें वह इतिहास-रत्न दृष्टिगोचर नहीं हुआ— इसका यह तात्पर्य नहीं कि उसमें इतिहास-रत्न है ही नहीं। यद्यपि इसमें कहीं भी इतिहास का उल्लेख नहीं मिलता है,^२ फिर भी 'ऐसे काव्य में यदि यदा-कदा ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख हो गया हो तो उससे कुछ नहीं बिगड़ना, क्योंकि इसमें तथ्यों से भी बड़े मानवीय सत्यों की अवहेलना नहीं की गई है, बल्कि सच तो यह है कि कवि ने मानवीय सत्य की रक्षा के लिये ही सुविधानुसार ऐतिहासिक तथ्यों से उधर - उधर हटकर अपनी कल्पना-शक्ति का जौहर दिखाया है।'^३ अतः रासो में हमें जहाँ अपूर्व काव्य-कला के दर्शन होते हैं, वहाँ तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

प्रस्तुत समीक्षा में हमारा लक्ष्य रासो की ऐतिहासिक सामग्री न होकर उसके काव्य-सौष्ठव का प्रदर्शन ही है।

कथा-प्रवाह:—

महाकाव्य की कथा वस्तु में एक गति होती है, प्रवाह होता है। इसी कथा-वस्तु के सहारे महाकवि अपने निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। यद्यपि वह अनेकों स्थानों पर प्रस्तुत विषय का जम कर वर्णन करता है, फिर भी उससे कथानक की गति में उसी प्रकार बाधा उपस्थित नहीं होती, जिस प्रकार पहाड़ी

(१) हिन्दी-साहित्य का आदिकाल — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (पृ० ८६)

(२) देखिये पृथ्वीराज रासो— (भाग १, २, ३ और ४ के सम्पादकीय)—सम्पादक कविराव मोहनमिह और शोध पात्रका—रजस्थान विश्व विद्यापीठ (भाग २ अंक ३, ४ और भाग ३ अंक १)

(३) सत्सिद्ध पृथ्वीराज रासो— डा० हजारीप्रसाद नामवरमिश्र

धरातल से उतर कर आने वाली वेगवती खोतस्विनी विस्तीर्ण प्रांगण में वेगहीन दिखाई देने पर भी प्रवाहित होती रहती है। तृतीय भाग का कथानक 'वरुण कथा' से प्रारम्भ होता है। सर्व प्रथम राजा सोमेश्वर के अपार ऐश्वर्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

सुख लुहहि लुहहि मयन, अरिघर लुहहि धाहि ।

अंग अतन्मि न उव्वरै, हय खुर खग्गहि गाहि ॥

‘राजा सोमेश्वर सुख का उपभोग करता और कामदेव पर विजय पाता हुआ शत्रुओं में आतंक फैलाकर उनके भू-भाग को लूटता रहता था। उसके सामने कभी नहीं मुकने वाले शत्रु की काया भी नहीं बच पाती थी, क्योंकि वह घोड़े के खुर और तलवार द्वारा उसे कुचल देता था।’ इसके पश्चात् कवि ने सोमेश्वर की दिन चर्चा से समस्त राजाओं की दिन चर्चा का दिग्दर्शन करा दिया है। राजाओं के लिए ‘उल्ल समय ते प्रहर लों, सतजुग’, ‘दुतिय प्रहर त्रेता’, ‘द्वापर मध्याह्न ते, त्रितिय पहर लों’ और ‘चतुर पहर कलि कहत सव’ कह कर कवि ने एक ही दिन में चारों युगों के कर्मों का पर्यवसान कर दिया है। आगे चलकर विप्रों द्वारा चन्द्र-ग्रहण के अवसर पर षोडश प्रकार के दान की महत्ता सुनकर जब सोमेश्वर मथुरा में शमुना के किनारे मुक्त हस्त होकर धर्म कार्य करते हुए दान देने लगा तो कवि दान देने वाले राजाओं की महत्ता बताता हुआ कहता है—

अमव नहीं कलि कोइ, इक्क करु रहै उंच क्रिय

संसार सार गल्हां रहै, पिख्लत हू नृप नहि रसत ।

भुवलोक पाप घट भरिगलत, जिमि अकाश तारा खसत ॥

यहाँ पापी राजाओं के नष्ट होजाने की तुलना आकाश मण्डल में (प्रात काल होने पर) छिप जाने वाले नक्षत्र समूह से सुन्दर बन पड़ी है।

इसी अवसर पर कवि को चन्द्रोदय की प्रथम किरण के साथ ही प्रकृति वर्णन का अवसर मिल गया और वह कह उठा —

मुंदित मुखल कमोद हंसति कला, चक्कीय चक्कं चितं ।

चद् कुंनि कदन्ति पोडनि पिय, भानं कला छीन ॥

वानं मन्मथ मत्त रत्त जुगय, भोग्य च भोगं भवं ।

निन्द्रावस्य जग तत्त भक्त जनयं, वा जग्य कामी नर ॥

अंतिम पंक्ति से ज्ञात होता है कि चन्द्रोदय एक ओर भक्त जनों के हृदय में ज्ञान और भक्ति को दृढ़ करता है तो दूसरी ओर वह कामोदीपक भी होता है ।

इसी पृष्ठ भूमि पर कवि ने सोमेश्वर, उसके सामन्तों और वरुण दूतों के बीच युद्ध की अवतारणा की है । बात यह हुई कि सोमेश्वर रात्रि में वरुण का स्मरण किये बिना ही यमुना के जल में उतर कर एक गुप्त-मन्त्र का साधन करने लगा । इस पर वरुण-दूत क्रोधित हो गये और दोनों दलों में द्वन्द्व-युद्ध प्रारम्भ होगया । कवि ने इस युद्ध में युद्ध करते हुए सामन्तों की त्वरा का एक शब्द-चित्र सा खींच दिया है —

‘सामंत भूमि भंजहि भिरहि, गिरहि परहि उठ्ठहि तरहि’

युद्ध करते हुए सामन्तों द्वारा यह कहना कि —

“हम समन कोई समार महँ, मरण जियन चित्तह डरण ।

जीयहि जुद्ध भुव भुगवहि, मरहित सुर पुर हिरि सरण ॥”

हमें गीता की निम्न पंक्ति का स्मरण करा देता है —

“हतो वा प्राप्समी स्वर्गं, जीत्वा वा भोक्तृसे महीम्”

प्रातः काल होने पर पृथ्वीराज उस युद्ध भूमि में उपस्थित हुआ और अपने सामन्तों को अचेत अवस्था में देख कर यमुना की स्तुति करके उन्हें सचेत किया । तब —

क्यन कृत नृप सोम, पोडण दान विप्रय द्य न ।

जुध जीते दिव दूत, अमुत वत्त प्रगटि छिति छाई ॥

‘सोमवध’ समय में सोजत्री युद्ध में हार जाने से द्वेष के कारण पृथ्वीराज के उत्तर दिशा में चले जाने पर चालुक्येश्वर भीम ने दिल्ली पर चढ़ाई की । तब चालुक्यों के आने की खबर सुनते ही सोमेश्वर में इस प्रकार उत्साह छलकने लगा, जैसे सतियों में मतीत्व भलकता हो —

‘मुनत पुकारत छोह छकि, मत्तिय मत्त समान’

इस पर सोमेश्वर भी अपनी सेना सजाकर चला । उस समय उसकी सेना ने वसन्त का रूप धारण किया । उसका चलना त्रिविध पवन के समान हो गया । उसने शीतल रूप में जाकर शत्रुओं के हृदय को प्रकम्पित कर दिया और मंद-मंद भूमती हुई चलते हुए सुगन्धित रूप में यश-सौरभ फैला दिया । युद्ध-भेरी के स्वर ने कोकिला का काम किया । हिलते हुए चेंबरों की ध्वनि इस प्रकार होने लगी, जैसे भँवर गुंजार करते हों । वहादुरों के मिर पर रेंधे हुए मोड़ों ने नवीन मजरियों की शोभा पाई—

त्रिविध साज वद्धिदय अवाज, वज्जि भेरिय कोकिल सुर ।

भँवर रुज्ज भंकार, चौर मोरह सु नुतवर ॥

वन वसंत सम फौज

यहाँ कवि ने सोमेश्वर की सेना से वसंत का सांग-रूपक बँधा है, जो उत्तम वन पड़ा है । इसके पश्चात् युद्ध की विभीषिका प्रारम्भ होती है जो कवि का प्रिय विषय है । वह लिखता है—

कहर भगर सम खेल, ठेल सेलणि ठेलिज्जहि ।

इक्क धुक्त धर दुट्ठि, इक्क वत्थनि मेलिज्जहि ॥

इक्क कमध उठन्त, इक्क अंतन आलुज्जहि ।

इक्क हत्थ पग खिरहि, टिक्कि खग-पग विनु मुज्जहि ॥

❀

❀

❀

रिद्धि सिद्धि वित्थुरिय, लुत्थि पर लुत्थि अहुट्ठिय ।

श्रोनि सलिल वटि चलिग, मरण मन किंकन जुट्ठिय ॥

कमल सीस वहि चलिय, नयन अलि वास सुवासिय ।

जघ मकर कर मीन. कच्छ खुप्परि खग त्रामिय ॥

पोयनि अंत सेवाल कच, अंगुलि-कर-पग म्भ्यग भरि ।

इन युद्ध-वर्णनों में अनुप्रास, टवर्ग बहुलता और द्वित्त वर्णों की प्रधानता हुई है, जिससे भाषा में ओज गुण की वृद्धि होने के कारण वर्णन में सजीवता आगई है । साथ ही श्रोणित-सरोवर का सांग-रूपक बँधने से युद्ध भूमि का दृश्य नैत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है ।

यह छन्द जहाँ नरनाह कन्ह के अपार भुजवल का सूचक है, वहाँ आगे बलकर पृथ्वीराज की विजय के लिए शुभ शकुन का भी काम करता है। कवि ने इस छन्द में अपनी चित्रोपम-शक्ति का जौहर दिखाया है। ऐसा प्रतीत होता है मानों यह युद्ध हमारे नैत्रों के सम्मुख ही हो रहा हो। दृश्य को सजीव कर देने की क्षमता कवि को ऐसे वर्णनों में ही मिलती है।

युद्ध करने के लिए आगे बढ़ते हुए सामन्तो के सांसारिक मोह में कमी होने की तुलना ज्योतिषी द्वारा बीते हुए वर्ष का पञ्चांग छोड़ते जाने से की गई है, जो बहुत सुन्दर बन पड़ी है—

कृच कृच जिम जिम चलिय तिम तिम छडिय मोह ।

जिम वन्यौ दुजराज नै, तिथि पत्रा नहिं सोह ॥

यहीं क्षत्रिय-धर्म की भी व्याख्या करदी है। सच्चा क्षत्रिय वही है जो युद्ध के समय स्वामि-धर्म में रत होकर शरीर को तिनके के समान खण्ड करदे—

समर समय रत स्वामि, तनहि तिनका जिमि खडन ।

ऐसा करते समय उनको इस वान का गर्व रहता है कि उनके शरीर में स्वामी के अन्न कांही बल होता है—

उदर लवन तुम हमहि बल ।

इसके बाद कवि ने चौहान और चालुक्यों की सेना के बीच युद्ध का जम कर वर्णन किया है। इसमें कवि ने वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स की सगम-स्थली उपस्थित करदी है। युद्ध-स्थल का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

कर पत्र मत्र जुगिणि जपहि, रजि पलहारी रक्त चर ।

चमरैत चैत जनु क्यमु वनु, हम रण रजिय सोम भर ॥

भयानक रस का स्वाभाविक वर्णन भी इस प्रकार किया गया है—

खिमि नर्यद हय नवि, वज्जि खुरतार कपि भुव ।

अष्ट सु चलि दह विचलि, कपि सपात पात हुव ॥

उट्टि मुखव मुख वफि, सीस लग्गौ असमान ।

पवि जान पाँ न, करहि कुण्डलि क्रमान ॥

धरि डक्क घाड विभ्रम भयौ हाड हाड मन्थौ हलक ।

तिहि सह स्यंभ स्यभासनह, उघरि अप्पु दिक्खिय पलक ॥

अंत में 'दया देह उद्धरै, बंध बंधी यह देही' कह कर कवि ने भोरा भीम की ओर व्यंग किया है । पृथ्वीराज ने भोरा भीम को बन्धन में लेकर उसको दया वश छोड़ दिया; यह उसकी दया वीरता का उज्ज्वलतम रूप है ।

पृथ्वीराज की दया वीरता का उदाहरण 'कैमास युद्ध' में भी मिलता है । पृथ्वीराज ने शाह को बन्धन में लेकर उसे दंडित करके छोड़ दिया । दंड में प्राप्त धन से से आधा कैमास और चामुण्डराय को एवं जेप उन सामंतों में बाँट दिया, जो युद्ध-स्थल से घायल उठाये गये थे ।

अरध दंड पृथीराज, दियौ कैमास चौड तिन ।

दंड अरध दिय राज, सुभर उपरि मंभरिन ॥

संगम पार सागर के नील जल में जिस प्रकार गंगा जल की एक धारा दूर तक प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है, ठीक उसी प्रकार 'हसावती विवाहे' समय में युद्ध घटनाओं के वीर-विभत्सादि रसों के बीच शृंगार की पवित्र धारा भी बह रही है । प्रारम्भ में यादव राजा भान पर शिशुपाल वंशी वीर पंचायन ने आक्रमण किया । उस चढ़ाई की कारण थी—हसावती, जो—

हसावति तिन नाम, हसवती गति मारी ॥

अवनि रूप सुन्दरी, काम करतार सु कीनी ।

मन मन्वें विचार, रूप सिंगारस लीनी ॥

लक्खन वत्तीस लच्छी सहज, अति सुन्दरि सो भासु—कवि ।

अस्तम्भ उदें वर चक्र विच, दिक्खिन कहु चक्रंत रवि ॥

कवि ने उसका नव-शिव-वर्णन इस प्रकार किया है—

नाग वेनि सुह पीन, कंति दम्भनह सोभत सम ।

अखि पदम पत मानु, भाल अप्पम रति पति क्रम ॥

सिखा-नामि गज गत्ति, नाभि दृढनावृत सोभै ।

सिंघ सार कटि चारु, जघ रंभा जुखि लौभे ॥

सुन्दरी सीत सम वरि चरित, चतुर चित्त हरनी विदुख ।

सतपत्र गंध मुख ससिय सम, नैन रभ आरंभ रुख ॥

रमावती का यह नव-विद्यमान परम्परा प्राप्त काव्य रसिकों के पात्रों पर किया गया है। काव्य में सौन्दर्य के उपमान रूढ़ हुआ करते हैं जिनका प्रायः सभी कवि एक समान ही उपयोग करते दिखाई देते हैं। चन्द्र ने भी प्रायः अपनी समस्त नायिका-उपनायिकाओं की सृष्टि उसी सौन्दर्य-द्राक्षा को निचोड़ करके की है। रमावती के इसी रूप विलास की मादक सुरा से पचायन पागल होगया और रणथमौर से अपने सदेश का विपरीत उत्तर प्राप्त करने पर वह क्रोधित होगया—

सुनी वसी मसिपाल, वीर पचायन कोयौ ।

मह मह गज जेमि, तमसि धीरज सम लोयौ ॥

इस छन्द में पंचायन के जोश में धैर्य भूल जाने से रौद्र रस की अच्युत व्यंजना हुई है।

पचायन ने रणथमौर पर चढ़ाई की। पृथ्वीराज ने पचायन से घिरे हुए नगर के बाईं ओर से और चित्तौड़ेश्वर ने दाहिनी ओर से इस प्रकार घेर लिया, कवि इसकी उत्प्रेक्षा करता हुआ कहता है, मानों शत्रु रूपी जल में चक्कर खाते हुए कुम्भ रूपी नगर को हाथों के बल पर उन्होंने पकड़ लिया हो—

कुम्भ अम्ब डोलत, हथ वर नैर मसाई ।

इन नवीन उपमानों को देखने से स्पष्ट है कि कवि ने केवल रूढ़ उपमानों का ही प्रयोग नहीं किया है, अपितु अपनी नव-नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा के कारण नवीन उपमानों की सृष्टि की है। इनकी विशेषता यही है कि ये नये उपमान रस के सामजस्य को नष्ट करने वाले नहीं हुए हैं।

पृथ्वीराज, रावल समर विक्रम और पचायन क्रमशः सूर्य, चन्द्र और सुमेर के तुल्य थे। चन्द्र और सूर्य के बीच उज्ज्वल सुमेरु होने के कारण दोनों के रथ-भाग अस्त होगये। किन्तु कवि कहता है कि उस नभ चुम्बित सुमेरु (पचानन) को खड्ग द्वारा ब्रिलि में मिलाते हुए शशि सूर्य तुल्य दोनों राजा (पृथ्वीराज और रावल समर) युद्ध में एक दूसरे को दिखाई देने लगे (चंदेल को कुचल कर वे एक दूसरे से आकर मिल गये)।

मनु राका रवि उदै, अस्त होने रथ भगी ।

मसिपाल वीर वसी विमल, दुहुन बीच मन मेर हुआ ।

खट मिलै खेह खगड हर्यौ, चवै चन्द्र रवि दद हुआ ॥

इसी युद्ध-प्रसंग में कवि ने अद्भुत रस का एक हलका छीटा भी डाल दिया है ।

वर वंसी समिपाल, समर रावर रत जुद्धे ।

अमर वव चिजंग, वीर पंचाइन वद्धे ॥

सवै सत्य सामन्त, खेत होहो विरुमाइय ।

गुरिन गयौ अरि ग्रह न, लद्ध नन लुब्ध न पाइय ॥

प्रथिराज वीर जोगिन्द ब्रप, दिष्ट देव अकुरि रहिय ।

वधनह वत्त वद्धन दिवन, दिष्ट कृद हसि-हसि कहिय ॥

युद्ध विजय के पश्चान् रात्रि में पृथ्वीराज को स्वप्न में एक बाला दिखाई दी ।

हम सुगति माननी, चढ जामिनि प्रति घट्टी ।

इक तरंग सुन्दरि सुचग, सुमति हँस नयन प्रगट्टी ॥

हस कला अवतरी, कुमुद वर फुल्लि समथ्यै ।

एक चित मोड वाल, भीत संकर अस रथ्यै ॥

तेहि बाल संग मे पुहुप लिय, वरन वीर मगति जु वह ।

जाप्रत्त देवि बोली न कह्यु नवह देव नन मानवह ॥

चन्द्र ने यहाँ उसी स्वप्न दर्शन की कथानक रूढ़ी का प्रयोग किया है, जिसका संस्कृत वाङ्मय में प्रचुर प्रयोग हुआ है । इस स्वप्न-दर्शन से पृथ्वीराज को उस बालिका में अनुराग उत्पन्न हो गया । उस अनुराग को उद्दीप्त करने का प्रयास किया—यादव राजा भानु द्वारा लग्न भेजने ने । पृथ्वीराज की वीरता की ख्याति हंसावती के पास पहुँची और उसे भी श्रोतानुराग हो गया ।

अवन रवन अरु मिल भवन, पवन त्रिविध तन लग्ग ।

वापी कृप तडाग वृष, विधि ब्रन्नन कवि लग्ग ॥

हमावती के शिनागुड तुल्य कानो द्वारा पृथ्वीराज की प्रशंसा (श्रोतानुराग) के त्रिविध पवन (शीतल, मंद और सुगन्धित) ने उसके शरीर को स्पर्श किया । उस श्रोतानुराग रूपा पवन की शीतलता वापी-कृप के जल के समान, मंदता तालाव की मंद-२ चलने वाली बीचिमाला की तरह और सुगन्धित वृक्षों की सुरभि के समान

धी ।' इस प्रकार कवि ने द्विपक्षीय अनुराग दिव्याकर पवित्र शृंगार-रस की पुष्टि की है । हसावती के अनुराग में वृद्धि होती है और उसे श्रोतानुराग के पश्चान अपने प्रियतम के प्रत्यक्ष दर्शन भी हो जाते हैं —

सा सुन्दरि हसावती, सुनि श्रोतान सुरुक्ख ।

वर दिष्टानन मानियै, वेला लगि गवक्ख ॥

यहाँ कवि ने हसावती का झरोखे के पास आकर खड़े होने की स्वर्णिम लतिका से जो उपमा दी है, वह अपूर्व बन पड़ी है । लतिका गवाक्ष के एक किनारे पर चढ़ती है, हसावती भी खिड़की के ठीक बीच में आकर अपने प्रिय के दर्शन नहीं करती, किन्तु दीवार की ओट में से खिड़की में थोड़ी सी झुक कर ही करती है । इससे हंसावती में नारी सुलभ लज्जा की व्यञ्जना होती है । किन्तु हसावती का इस प्रकार अपनी सखियों के बीच से उठकर अपने वर को देखना उसकी लज्जा हीनता और धृष्टता का भी द्योतक हो सकता है, अतः कवि ने इसका भी निराकरण इस प्रकार कर दिया है—

सुनि आयो चहुआन अप, गुरुजन बध्यौ जानि ।

तव मति सुन्दरि चितवै, भेदक गोख बखानि ॥

हसावती के इस अपूर्व दृश्य को देख कर कवि को कल्पना शक्ति जागृत हो जाती है और वह उस स्वर्गीय दृश्य को अपने शब्दों में इस प्रकार अंकित कर देता है—

पथ वाल पिय भव्वि, सुभ्रित विटिय सु राजै ।

मनौ चद उडगन विचाल, चद मेरह चढि भाजै ॥

वह हसावती आसरा तुल्य थी, फिर उसका प्रियतम केवल साधारण मानव कैसे हो सकता है ? यद्यपि उसकी सखियों ने अपने साकेतिक वचनों से उसे बतला दिया था कि पृथ्वीराज भ्रमर, कामदेव और कमल के समान है तथा प्रेम की मस्ती और काम कला से भरा हुआ है, किन्तु उमने तो उसे देवकर देवतुल्य ही माना—

सुनिय श्रवन दै सैन, अलिन अलि मैनस राज ।

रति मन्धर मति काम, जानि अच्छिरि सुर साज ॥

यहाँ 'सैन' शब्द का प्रयोग भी अपनी महत्ता रखता है । राजकुमारी और उसकी सखियाँ सभी समवयस्का थीं, अतः उनमें परस्पर एक दूसरे से हँसी-मजाक

करते हुए भी शिष्ट-लज्जा रखना स्वाभाविक है। इसीलिए वे राजकुमारी के सम्मुख मुग्ध नहीं होकर सांकेतिक भाषा में ही अपने भावों को व्यक्त कर देती हैं।

श्रोतानुराग और फिर प्रत्यक्ष-दर्शन कर वह वाला यौवन के द्वार में प्रवेश कर गई। उस समय वह इतनी प्रफुल्ल एवं विकसित हो गई, जितना कि बीज का चन्द्रमा पूर्ण होकर होता है—

बीज चन्द प्ररन्न जिम, वधै कला मनि जीय ।

भूषणों को उतार कर स्नान करते समय तो हंसावती विहारी की उस नायिका के समान हो गई, जिसका चित्र उतारने में चतुर चितेरे भी समर्थ नहीं हो सके। यौवन के भार से झुक कर दबे हुए उसके शिशुत्व को देख कर कवि चंद जैसा समर्थ कवि भी विचार-सागर में गहरे गोते लगा कर भी उसके लिए उपयुक्त उपमा नहीं ढूँढ सका, फिर साधारण कवियों की क्या बात—

वर सैसंव वर चंपि, कंपि चिहु कोद भपायौ ।

मो ओपम कवि चन्द, जौन्ह बूडत न लथायौ ॥

इन पंक्तियों से हंसावती के अपूर्व मौन्दर्य की ही व्यञ्जना होती है। उस समय वह वाला अपनी वय-सधि पर थी। वय-सन्धि के कारण उसके नैत्र उम जल-घटिका तुल्य थे जो स्नेह रूपी जल में डूबा हुआ हो—

वर मैसव अन्धर नहीं, जोघन जल वरमै न ।

बाल घरी घरियार ज्यौ, नेह नीर बुडि नैन ॥

मंडप-गृह में वर-वधू का मात्नात्कार होते ही दोनों के नैत्र परस्पर रस-पान करने के लिए अत्यधिक आतुर हो गये। नैत्रों का परस्पर समागम ऐसा प्रतीत हुआ, मानों पृथ्वीराज के नैत्र-भ्रमर कुमारी के नैत्र-कमल में प्रवेश कर एकाकार हो गये हों या उन एकाकार भ्रमर और कमलवत नैत्रों को मधु रस झुल्ला रहा हो—

द्रिग मूँ द्रिग सम्मुहे, पीय उमगे द्रिग ओरन ।

सो ओपम प्रथिराज, चन्द ज्यौँ चन्द चकोरन ॥

नव भर्वर पिट्ट वर कमल मे, कै मकरन्द झुलावहीं ।

इधर दोनों के अचल का गठ-बन्धन हुआ और उधर तत्क्षण उनके चित्त का भी गठ-बन्धन होगया —

हंसावती मुग्धावस्था में शंकित रही, मध्यावस्था में लज्जा युक्त नैत्रों से निःप-
छिप कर अपने प्रियतम को देखने लगी, किन्तु प्रौढावस्था में तो दोनों के नैत्र रक्त
होकर प्रेम मार्ग पर तलवार सदृश टकराने लगे ।

इस प्रकार उम रानी के प्रात काल स्वरूपी पातिव्रत ने राजा को प्रारम्भ में ही
भुका दिया—

इय प्रात-पतिवृत प्रथम पदु, नवति चित्त आचंभ लहि ।

प्रात काल के समय ही वन्दना की जाती है, अतः यहाँ हंसावती के पातिव्रत
को प्रात काल का रूप देना अत्यन्त सार्थक सिद्ध हुआ है ।

सम्पूर्ण हंसावती समय में कवि ने वीर और शृङ्गार रस की संगम-स्थली
उपस्थित कर दी है और जिस प्रसंग को उठाया है उसका जमकर वर्णन किया है ।
कथा प्रवाह के लिए इस प्रकार के प्रसंग अत्यन्त सार्थक होते हैं । प्रबन्धकार कवि
की भावुकता का पता भी ऐसे ही चित्रणों को देखने से मिलता है ।

‘पहाडराय’ समय का प्रारम्भ पौराणिक शैली के आधार पर हुआ है,
जिसमें किसी नवीन कथा को प्रारम्भ करने के पूर्व दो पात्रों में परस्पर वार्तालाप
हुआ करता है । महाकवि चन्द ने पुराणों का अध्ययन किया था और इसीलिए इस
शैली का अपने ‘रासो’ में भी प्रयोग किया है । यहाँ सर्व प्रथम चन्द्रमुखी (कविचन्द
की स्त्री) चन्द (कविचन्द) से प्रश्न करती है—

दुज समु दुजी सु उच्चरिय, ससि निसि उज्जल देस ।

किम तौवर पाहार पदु, गहिय सु असुर नरेस ॥

इस प्रश्न के उत्तर में कवि सारी कथा का वर्णन करता है । यहाँ ध्यान देने
की बात यह है कि कविचन्द और उसकी स्त्री के प्रश्नोत्तर के रूप में जिन-जिन
समयों का प्रारम्भ हुआ है, उसमें कवि अपने को कहीं शुक, कहीं द्विज और अपनी
स्त्री को कहीं शुकी और कहीं द्विजी लिखता है । शुक-शुकी से स्वकीय और स्वकीया
पद द्विज-द्विजी से चन्द्र और चन्द्रमुखी अर्थ हो जाता है, क्योंकि चन्द और उसकी
पत्नी को भी ब्राह्मण-ब्राह्मणी माना गया है । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तो शुक-शुकी-
संवाद से प्रारम्भ होने वाले समयों के कथानकों को ही प्रधानता देकर रासो के
अभेद्य चेतनों के प्रचुर मागर से मूल रासों के मुक्ताकण ढूँढने का प्रयास किया

है। वे लिखते हैं—“यह शुक्र-शुकी वाला संवाद काफी महत्व पूर्ण है और इसके द्वारा हम कथा-सूत्रों की योजना करके रासो के मूल रूप को पहचान सकते हैं।”^१ इस प्रकार की पौराणिक शैली प्रायः मुख्य २ सभी काव्यों में प्रयोजित हुई है।

इस समय में पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने को जाते हुए शहाबुद्दीन की सेना के आतंक से भयानक रस का वातावरण उपस्थित कर दिया गया है—

अरुन कोर वर अरुन, बरि साहाव साहि चढ़ि ।

दिसि प्राची दिखन विपथ्य, पच्छिम उत्तर बढि ॥

सैस भाग भै भाग, भौमि संकुचि कुकंपि निल ।

गमन सेन उड़ि रेन, गेन रवि पत्त धुंध झल ॥

उस समय उसकी सेना की अरुण पताकाएँ सूर्य का स्पर्श करती हुई इस प्रकार हिलने लगीं, जैसे दीपशिखा हिलती हो या पृथ्वीराज द्वारा विशेष रूप से दबाये जाने पर शाह का तन मन व्यथित और प्रकंपित होता हो —

रति निसान डग मंग अरुन, जिम दीपक वसि वात ।

सुनिव चंप अति साह मन, तन विकंप अकुलात ॥

यहाँ हिलती हुई पताकाओं की शाह के कम्पित हृदय से तुलना करके भविष्य की ओर इङ्गित कर दिया गया है।

युद्ध में म्यान से तलवारें निकाल कर अश्वारोही आगे बढ़ते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों कोई नृत्य कारिणी रंगभूमि में नृत्य करती हुई आगे बढ़ती हो—

नव बढ़िय नाटिका, खग कट्टी असु हक्किय

इस युद्ध में पहाडराय ने शाह को इस प्रकार पकड़ लिया, मानों वक्र चन्द्रमा को राहु लग गया हो।

गहयो साहि तोंवर पुरिस, जानि राह समि वक्र ।

वक्र चन्द्रमा को राहु नहीं ग्रस सकता, किन्तु राहुतुल्य बर्तन वीर ने वक्र चन्द्र-शाह को ग्रस लिया। यहा उपमान से उपमेय में विशेषता बता कर व्यतिरेक अलंकार सिद्ध किया गया है।

‘विनय मगल’ समय जयचन्द की पुत्री सयोगिता को मदन ब्राह्मणी द्वारा बध्-धर्म (विनय) की शिक्षा देने की कथा से सम्बन्धित है। चन्द के पूर्व भी विवाह से सम्बन्धित ऐसे मगल काव्यों की रचना मिली है। उनके परवर्ती महाकवि तुलसी ने भी ‘जानकी-मगल’ और ‘पार्वती मगल’ नामक विवाह काव्यों की रचना की है। इससे ज्ञात होता है कि इन मगल काव्यों की एक दीर्घ परम्परा बन गई थी। संभवत इसी परम्परा से प्रेरणा प्राप्त कर चन्द ने भी सयोगिता के विवाह के सम्बन्धित ‘विनय-मगल’ नामक समय की अवतारणा की हो।

सयोगिता अपने समय की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी। बाल्यावस्था के वीत जाने पर उसमें काम (यौवन) की वृद्धि होने से नित्य नवीन सरसता का संचार होने लगा। ऐसी अवस्था में मदन ब्राह्मणी सयोगिता के हृदय में सुघडता और पदुता की शिक्षा उतारने लगी।

ता दिनह बाल सजोग उर, मदन वृद्ध मडिय सुघर।

उसने कामदेवरूपी पृथ्वीराज के गुणों का वर्णन कर सयोगिता के हृदय में श्रोतानुराग उत्पन्न कर दिया, इसमें सयोगिता की दशा जहाज का सहारा छूट जाने वाले व्यक्ति के समान होगई। उसके महल में अश्रु प्रवाह रूपी जल प्रवाह होने लग गया और उसकी आंतरिक सतप्तता ही तपस्या के समान होने से वह चलते फिरते जोगी के समान दिवाई देने लगी।

अति कोविद गुन कव्य, मदन कीनी अति वृद्धह।

जोग जिहाजन जाड, ताहि जल मद्धित सद्धह॥

❀

❀

❀

❀

आरभ अत्र ता वाम मवि

।

सजीव जोग जगम वसे, तपसु तप मध्या सुल्लिखि॥

सयोगिता की यह दशा प्रानुराग में प्रिय के नहीं मिलने की आकुलता से सम्बन्धित है, जिसे साहित्य शास्त्रियों ने नृगार के वियोग पक्ष में स्थान दिया है। उनके अनुसार श्रोतानुराग भी प्रानुराग का ही एक रूप है। काव्यक्षेत्र में इस प्रकार का प्रेम-वर्णन भी एक कथानक-रन्दी के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है।

जब संयोगिता झूला झूलती थी, उस समय वह ऐसी दिखाई देती थी, मानों ऊँची स्वर्ण की छड़ी हो। उसे इस अवस्था में देखकर इन्द्र को इन्द्राणी की भी शका हो सकती थी जब वह झूला चढ़ाती तब ऐसा प्रतीत होता था मानों कामदेव ने स्वर्ण स्तम्भ स्थित चन्द्रमा को झूले पर रख दिया हो। उस समय उसकी बेसी उसके नितवों पर बार बार लगती हुई ऐसी सुशोभित होती थी मानों चंचल तुरंत रूपीसंयोगिता के शरीर से शिशुत्व के प्रयाण करते हो उसे शिञ्चित बनाने के लिए उस पर कामदेव रूपी अश्व-शिञ्जक ने चावुक उठाया हो।

मदन वृद्ध व्रभनिय, ग्रहे हिंडोल सजोइय ।

कनक डड पर चंड, इन्द्र इन्द्रिय वरजोइय ॥

परहि लत्त हिंडोल, दुजनि उप्पम तिन पाइय ।

कनक खभ पर काम, चन्द चकडोल फिराइय ॥

लभे नितव विन्नी उवटि, मो कवि इह उप्पम कही ।

मैसव पयान के करत ही, काम अवगगी कर गही ॥

इस छन्द की 'अन्तिम उत्प्रेक्षा कवि की मौलिक सूक्त-वृक्त की द्योतक है।

इसी अवस्था में चतुर मदन ब्राह्मणी संयोगिता को विनय का पाठ पढ़ाती है। 'संसार सार विनयौ बडौ' कह कर वह पृथ्वी का सबसे बड़ा तत्व 'विनय' ही बताती है। 'मान' जो कि विनय का विरोधी होता है, वह शीतल होने पर भी तुपार रूप होता है, क्योंकि वह प्रेम रूपी वन को दग्ध कर देता है—

सीतल मान सु जपियै, तौ वन दमै तुंग्वार ।

अतः स्त्री ज्यों-ज्यों विनय का अभ्यास करती जाती है त्यों-त्यों वह प्रियतम के मन में स्थान पाती जाती है—

जिस जिम विनय अभ्यासी है, तिम तिम पिय मन पग ।

ऐसी अवस्था में विनय से अलकृत सुन्दरी को अन्य शृङ्गार प्रसाधनों की भी आवश्यकता नहीं रहती। विनय-रहित सुन्दरी उसी प्रकार दिखाई देती है जिस प्रकार संध्या होने पर दीपक रहित घर असुन्दर दीख पड़ता है, या उद्यान में खिला हुआ क्षणिक पुष्प, जो माली द्वारा तोड़ लिया जाता है—

विनय विना सुन्दरि डमी, विन्दु दीपक ग्रह सभक्त ।

ॐ

५

४

विनय विना सुन्दरि डमी, पसुन होउ उगान अमर ॥

इस प्रकार विनय का पाठ पढ़ा कर मदना ब्राह्मणी सयोगिता से कहती है कि वह इस विनय के द्वारा ही बलशाली वीरों को वश में करने वाले अपने प्रियतम पृथ्वीराज को वश में कर सकेगी ।

मदना ब्राह्मणी से विनय का पाठ पढ़ कर और पृथ्वीराज के गुणों को श्रवण कर उसक हृदय में श्रोतानुराग जागृत हो जाता है और वह 'सयोगिता नेमा चरण' समय में प्रतिज्ञा करती है कि या तो वह पृथ्वीराज से ही वरण करेगी, अन्यथा गंगा में डूब मरेगी—

कैं वहि गगहि सचरौ, (कैं) पानि ग्रहण पृथिराज ।

वह परिचारिका के सम्मुख तर्क उपस्थित करती है कि जिन व्यक्तियों को मेरे पिता ने बधन में लेलिया है, या जिन्होंने मेरे पिता का नमक खाया है, वे तो मेरे पिता के क्रमशः कदी और स्तुति पाठक हैं । फिर उनमें से मुझे कौन वरण कर सकता है ? अर्थात् पृथ्वीराज ही ऐसा व्यक्ति है जिसे न तो मेरे पिता ने बधन में लिया है और न उसने उनका नमक ही खाया है ।

जो बधे पित सकरह, जे खद्दे पित लोन ।

ते बदीजन बापुरे, वरै संजोगी कौन ॥

सयोगिता की धाय पृथ्वीराज के लिए 'लहुआ लुहान पुत्त' कहकर श्लेष में उसे खनी और लुहार की सजा देती है, तब वह उमी शब्द को लेकर पृथ्वीराज (लुहार) के आतक का तर्क देती हुई कहती है ।

जिहि लुहार सुनि दुत्त, साहि सकर गदि बध्यौ ।

जिहि लुहार गदि खग, पग जगह घर रुध्यौ ॥

जिहि लुहार साड्यो, भीम बालुक अहि साहिय ।

जिहि लुहार आरन्न, वरे वर मानस गाहिय ॥

इस प्रकार वह यह व्रत स्थापित कर लेती है कि पृथ्वीराज मेरा प्राणेश्वर होकर ही रहेगा—'प्राणेश दिल्लीश्वरम्' ।

उधर संयोगिता यह व्रत ग्रहण कर लेती है, उधर द्विज-दम्पति दिल्ली पहुँच कर पृथ्वीराज के सम्मुख संयोगिता की विरह वेदना और सौन्दर्य वर्णन करके उसके हृदय में भी श्रोतानुराग उत्पन्न करती है—

ज हम दिखव डक्क तेज घन तड़ित अकारिं ।

कनवज्जह जैचंद, ग्रहे संजोगि कुमारिं ॥

❀

❀

❀

आपन तन छवि दिखव, सिखव भेदाड दुखनो जीवी ।

दुखव सभरिाइ, कहियं राज आतमं नीरं ॥

इस प्रकार संयोगिता की विरह कातर दशा का वर्णन करके वह उसका नख-शिख वर्णन करती है—

चढ़ वढ़नि भग नयनि, काम कौवंड भोह वनि ।

गग मग तरयल तरंग व्रैनी, अंग वनि ॥

कीर नास भ्रगु दिपति, दसन दामिनि दारिम कन ।

छीन लंक श्रीफलउ पीन, चम्पक वरनं तन ॥

इच्छति भ्रतारु ग्रथिराज तहि, अहनिमि पूजति मिव सकति ।

अध-तेरह वरख पंडमिनि, हस गमनि पिक्खिय नृपति ॥

इस नख-शिख वर्णन में भी, जैसा कि कहा जा चुका है कवि ने सौन्दर्य के रूढ उपमानों का ही प्रयोग किया है। संयोगिता की विरह दशा और सौन्दर्य वर्णन सुनकर पृथ्वीराज को भी श्रोतानुराग उत्पन्न होगया—

इह सुनि नृपति नरिंद चित, भय श्रोतान सुराग ।

उस द्विज दम्पति के दिल्ली लौट कर पृथ्वीराज के श्रोतानुराग की मूचना देने पर संयोगिता के हृदय में पृथ्वीराज को वर रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा अधिक उद्दीप्त हो गई ।

इस समय का नाम करण 'शुक वर्णन' किया गया है। इस नाम करण में भी कवि ने प्रचलित कथानक-रूढ़ी का ही प्रयोग किया है। संस्कृत-वाङ्मय के अध्ययन से ज्ञात होता है कि काव्य में सरसता का मंचार करने के लिए अनेकों

कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग मिलता है। इन कथानक-रूढ़ियों में 'शुरू' को विशेष महत्व दिया गया है। शुरू के अनेक कार्यों में नायक और नायिका के बीच प्रेम-सदेश भेजना भी एक कार्य-कलाप है। वह नायक-नायिका में परस्पर श्रोतानुराग उत्पन्न कराने वाला भी बनता है। यहाँ उसी कथानक-रूढ़ी का प्रयोग मिलता है।

'बालुकाराय' समय के प्रारम्भ में सयोगिता के पूर्वानुराग से उत्पन्न वियोग का दिग्दर्शन किया गया है। संयोग काल की सुखद स्मृतियाँ और प्राकृतिक वस्तुएँ विरही के लिए दुःख-वर्धक हो जाती हैं, किन्तु यहाँ प्रत्यक्ष संयोग नहीं होने पर भी पूर्वानुराग में प्रिय के नहीं मिलने की विकलता से सुखद पदार्थदुःख-वर्धन में सहायक हो रहे हैं—

बबूरे मलय मरुतं, जगुरेव पिक पराग परपच ।

उत्कंठं भार तरला, मम मानस किम्भ खमती ॥

यहाँ सयोगिता को मलय-मारुत बबूल के काँटों के समान तीक्ष्ण, पिक स्वर और पुष्प रज मिश्र-प्रपच के समान एवं अभिज्ञावा भार स्वरूपी लग रही है। उसका मन बार बार बिजली के समान कौध जाता है (उसमें कभी हर्ष और कभी विपाद भर जाता है)।

प्रिय-मिलन में अनेक बाधाएँ देख कर उसके हृदय में अन्य वालाओं के प्रति ही नहीं अपितु गुडियों का पाणिग्रहण कराते समय भी ईर्ष्या की स्वाभाविक प्रवृत्ति जागृत होती है, साथ ही उन्हें एकान्त सहवास की शैया पर देव कर निराशा के साथ ही साथ लज्जा भी आती है—

मानीय दाह वाले, पुत्तलिका पानि ग्रहनाय ।

एकत सैज महवं, लज्जावीय न आसाई ॥

इन गाथाओं में कवि ने विरहिणी सयोगिता के मानसिक उदापोह द्वारा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में सफलता प्राप्त हुई है।

अब तब तो यह अनुगम की सरिता सयोगिता के हृदय में ही प्रवाहित हो रही थी, किन्तु 'पग जग्य विन्धन' में तो उसने उन्माद और प्रलाप की अवस्था में अपने

प्रियतम के नाम को सय पर प्रकट कर दिया और निरन्तर 'राजा-२' (पृथ्वीराज का नाम) जपने लगी ।

प्रगट नवल वल्लह करी ।

राज राज उच्चित फिरी ॥

'संयोगिता पूर्व जन्म' समय में कवि ने कथानक-रूढियों और काव्य-रूढियों का खुलकर प्रयोग किया है । प्रारम्भ में चंडिका और इन्द्र का वार्तालाप होता है, जिसमें चंडिका शोणित से अपनी तृपा बुझाने की मांग करती है । इन्द्र इसकी पूर्ति हेतु एक गन्धर्व को तोते के रूप में कन्नौज और दिल्ली के बीच वैमनस्य बढ़ाकर महाभारत के समान युद्ध करवाने को भेजता है । इसी प्रकार का प्रसंग राम-कथा में भी मिलता है, जहाँ देवनागण अपनी स्वार्थ-पूर्ति हेतु सरस्वती को मथुरा की बुद्धि भ्रष्ट करने को भेजते हैं । इसके पश्चात् गन्धर्व की स्त्री के पूछने पर गन्धर्व द्वारा संयोगिता के जन्म की कथा भी इन्हीं कथानक-रूढियों पर आधारित है—ध्यान रत तपस्वी सुमन्त की तपस्या से सुरलोक काप गया, इन्द्र के नैत्र शिथिल होगये और कांति मलिन होगई—'तप वल कपित सुर भवन', 'सुस्त तेज दिग सिथिल हुआ ।' तब इन्द्र ने सुमन्त का तप-भ्रष्ट करने के लिए रंभा नामक आसुरा को ऋषि के पास भेजा । आसुरा ने पहले तो अपने वशीवादन, सौन्दर्य और अचिताम से मोहित करना चाहा, किन्तु अपने प्रयास में सफलता नहीं मिलने पर उसने योगिनी का रूप धारण किया और ऋषि के पास पहुँची । ऋषि ने प्रसंगवश दशावतार का वर्णन करते हुए नृसिंह के रौद्र और भयानक रूप का वर्णन किया तब भयातुर और कॉपती हुई उस आसुरा ने दौड़कर ऋषि को अपने बाहुपाश में बाँध लिया—

भय भीति कामिनि कुटिल, धाय विप्र अंकह भर्यौ ।

उस भयातुर वाला के उरोजों का मुनि के हृदय में स्पर्श होते ही उसमें काम जागृत होगया, रोमांच हो आया और अग शिथिल पड़ गये—

उर उरोज लगत सु मुनि, मर सरोज हति काम ।

रोमाचित अग-अग शिथिल, मन मोहो सुर वाम ॥

तब उसका चित्त चंचल होगया, मन डगमगाने लगा और अंत में वह उसके रूप के रस-रग में लीन होगया—

चिन्त चल्थौ मन टगसग्यौ, रन्गौ रूप रस रग ॥

यहाँ कवि ने कथानक रूढियों की परम्परा से थोड़ा हट कर अपनी मौलिकता भी प्रदर्शित की है। सुमन्त द्वारा दशावतार प्रसंग में नृसिंह के भयानक रूप का वर्णन करना और उसके फल स्वरूप रमा का ऋषि से चिपट जाना और इस प्रकार सुमन्त का तप भ्रष्ट हो जाना एक अत्यन्त मरस और नाटकीय वातावरण की सृष्टि करने वाला वन पड़ा है। महा कवियों की मौलिकता एवं प्रसंगोद्भावक-कल्पना ऐसे ही स्थलों में देखी जाती है। रमा और सुमन्त के काम-रस में लीन हो जाने पर सुमन्त के पिता जरज वहा आये और उन्होंने यह दृश्य देखकर रमा को श्राप दिया—

कलह करन ही डहि कुबुवि, कलहतर कहि एह ।

पहुमी भर उतारनह, जनमि पग के गेह ॥

किन्तु रमा के प्रार्थना करने पर दयार्द्र ऋषि ने उस श्राप के शमन की विधि और अवधि भी बता दी।

इन सभी वर्णनों को पढ़ कर कहा जा सकता है कि कवि ने जहाँ परम्परा से प्राप्त प्रचलित कथानक रूढियाँ का आशानीत प्रयोग किया है, वहाँ उसमें अपनी मौलिक उद्भावना शक्ति का भी मणि-काचन संयोग अवश्य रखा है। रूढियों के प्रयोग से जहाँ काव्य में मरसता का संचार हुआ है वहाँ कथा-प्रवाह में भी गति आगई है।

कथानक-रूढियों के अनुसार ही कवि ने अम्सराओं के नव-शिख वर्णन में भी काव्य-रूढियों का प्रचुर प्रयोग किया है। वे ही परम्परा प्राप्त उपमाएँ, उपेक्षाएँ और रूपक देवने को मिलते हैं जो स्त्री-सौन्दर्य के लिये काव्य में रूढ होगये हैं।

‘हॉसी प्रथम युद्ध’ से लेकर ‘सम रपग’ युद्ध तक के समय वीर रस से ओतप्रोत है। इनमें वीर रस का एकछत्र साम्राज्य दिव्यार्द देता है। युद्ध की तैया-रियाँ, सैन्यसंचालन, सेना का युद्धार्थ गमन करते हुए आउतर पूर्ण दृश्य, वीरों का उत्साह, व्यूह-रचना, कवियों का युद्ध, शोणित और माम-मञ्जा में प्लावित युद्ध-भूमि, अम्सराओं, गिद्धों और गिद्धिनियों के आनन्दानिर्गम का सजीव चित्रण दिव्यार्द देता है।

वीर नृत्राणियों की गौरव-गाथाएँ अनेक सुनी हैं, जिनमें वे पत्नी के रूप में अपने कायर पतियों और माता के रूप में कायर पुत्रों के हृदय में उत्साह का संचार करती हुई प्रदर्शित की गई हैं। महाकवि चन्द ने अपने रासो में यवन-नारियों के उसी वीरता पूर्ण रूप को भी दिखाया है। युद्ध से भागे हुए यवन सैनिकों की पत्नियाँ शहाबुद्दीन के पास जाकर इसी प्रकार के वाक्य कहती हैं—

औ गौरी सुरतान माहिव वर, साहाव साहावनं ।
जैनं जीयत तस्य सेवक वृत, मानस्य मर्द जगं ॥
वीर्य जाचत अर्थवीर्य धनयो, धनयोपि जीवोधिग ।
धिगता तस्यय सेवकाय वरय, ना दीन सा मानय ॥

इसी प्रकार शहाबुद्दीन की कायरता देखकर उसकी माता शोक प्रकट करती हुई अपने गर्भ धारण करने को धिक्कारने लगी—

मैं प्रभू भूयो धर्यौ, सु ठि न खट्खी खान ।

इस एक ही वाक्य में माता के हृदय की समस्त करुणा और समस्त क्षोभ उमड़ता दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों अपने स्तन्य की लज्जा नहीं रखने वाले कायर पुत्र को देख कर माता का हृदय फट पड़ा हो और वह अपने जीवन को ही धिक्कार ममझने लग गयी हो। ऐसे ही सूक्ष्म वाक्य हृदय-स्पर्शी होते हैं। उक्त मवाद हमें महाभारत-वर्णित 'विदुला-तनु-पुत्र-स्मवाद' की याद दिला देता है। माता का उपर्युक्त कथन विदुला के इस कथन से कितनी साम्यता रखना है—

अनन्दन । मयाजात । द्विपता हर्ष वर्धन ।

न मया त्व न पित्रा च जात क्वाभ्यागतोऽसि ॥

यह बात शाह के हृदय में जिस तीव्रता से चुभी ऐसी चुभन तीक्ष्ण तीर में भी नहीं देखी गयी—

जितौ कस्म सुरतान कौ, तितौ न दिक्खू तीर ।

हौसी दुर्ग में अपने सामंतों की कायरता पर आश्चर्य प्रकट करते हुए पृथ्वी-गज में एक से अधिक रसों का सामजस्य किया गया है—

इह भविष्य चित्तै नृपति, भयो करुन रम चित्त ।

रुद्र वीर अरु हाम रस औ अपुव्व कथ चित्त ॥

यहो हासीपुर की जनता की दुःखद घटना से करुण, शत्रुओं पर क्रोध करने से रौद्र और वीर एवं ब्रह्मादुरों का धर्मद्वार से बाहर निकल जाना ही हास्य का कारण हुआ है ।

इसी प्रकार रावल समर के युद्ध करने पर भी एक ही छन्द में नवो रसों का पर्यवसान किया गया है—

सगन सग आवयन नाग भिजे नागिन रुधि ।
 परै नाग हलहलिय, नाग भागै कमटु सुधि ॥
 मननि सीस मुक्ययौ, इहे दम्पत्ति विचारै ।
 तिहिन सग आवै न, सग नागिन हक्कारै ॥
 घरि एक भयौ विभ्रमत मन, बहुरिस हार सिगार किय ।
 नव रस विलास नव रस सु कथ, राज उठि सग्राम लिय ॥

यहाँ नाग और नागिन का पृथ्वी के नीचे दब कर रक्त-रजित होने में 'बीभत्स', शेषनाग का भयातुर होकर शरीर को हिलाने से 'भयानक', कच्छप सहित नाग के शरीर दब जाने में 'अद्भुत', सिर से मणियाँ छूट जाने में 'करुण', नागिन के ललकारने में 'रौद्र', उसके ललकारने पर भी नहीं उठने में 'हास्य', 'हे प्रभु ! यह कैसा उत्पात होगया' इस प्रकार की विभ्रमता में प्रभु स्मरण करने में 'शान्त', उत्साह पूर्वक पृथ्वी को सँभालने में 'वीर' और नागिन के शृङ्गार करने में 'शृङ्गार' रस भागित होता है ।

इसी प्रसंग में युद्ध करते हुए पृ०वीराज की जो उत्प्रेक्षा की गयी है, वह बहुत अपूर्व बन पड़ी है—

पृथीराज गज सहित तेग बकी कर वारिय ।
 घन हट्टोर धिय चद, बीज उज्जली सु वारिय ॥
 सेत चमर सम भिजि रही लट एक समिज्जिग ।
 स्थाम सेत अरु पीत, अग अगन कृन रज्जिग ॥
 अज्जलन कट ते उत्तरहि, घन नन्दी सग्राम तिय ।
 चित्रङ्ग राव रावर चर्व, सुवर बीर भारत्य कथ ॥

पृ०वीराज तलवार हाथ में धारण किये हुए हाथी पर सवार ऐसा दिवाई पड़

रहा था, मानों दूसरा ही चन्द्रमा उज्ज्वल विजली लेकर बादल को वहन कर रहा हो। राजा पर दो चँवर चल रहे थे। महावत द्वारा चलाया जाने वाला चँवर हाथी के मढ़ से भींग कर श्याम हो गया था। पीछे से चलाया जाने वाला सफेद ही था। इस प्रकार श्याम-श्वेत-पीत वर्ण (कवच की चमचमाहट) प्रभा हाथी से छूटती हुई ऐसी दिखाई पड़ी, मानों कज्जल गिरि से तीन सरिताएँ रण-तीर्थ में प्रवाहित हो गई हों। इस प्रकार की उत्प्रेक्षाएँ कवि की मौलिक और नवन्वोन्मेष शालिनी प्रतिभा की द्योतक हैं।

“कैमास वध” में कवि ने अपने नाटकीय कौशल को प्रदर्शित करने में अभूत पूर्व सफलता प्राप्त की है। समस्त समय घटनाओं के आरोह-अवरोह, पात्रों की क्रिया-शीलता और अभिनय कला की पूर्णता से सजीव बन गया है।

कैमास की गुण-स्तुति से कथा का प्रारम्भ करके अन्त में यह बतलाया गया है कि जो मन्त्रो ऐसा विबुध था वह दासी के प्रेम में फँस गया—‘स विवधा-कैमास दासी रता’—और इसीलिए विषय वासना के कारण उसका विनाश हुआ, यह दैविक गति सीमा से परे है—

सा मन्त्री कयमास नास विपया, दैवी विह्वल गती ।

कैमास की कामवासना को जागृत करने के लिए कवि ने जिस प्राकृतिक पृष्ठ-भूमि की नियोजना की है, वह बहुत उपयुक्त बन पड़ी है। उस समय संध्या होने को थी, पूर्वाषाढा नक्षत्र तथा भाद्रपद मास था, आकाश मंडल में गहरे बादल छाये हुए थे, मयूर बोल रहे थे, दादुरों का शोरगुल हो रहा था, आकाश में वक्र-पक्षि उड़ रही थी, समस्त दिग्मंडल श्याम वर्ण हो रहा था और इन्द्र धनुष शोभा दे रहा था—

पुष्पपाद भवौ मुगाढ, घन वाढ व्योम किन ॥

दहकि मोर ददुरनि रोर, वहल वग पतिय ।

वनि दिसान मसिवान, चाप वासव चित मंडिय ॥

ऐसे वातावरण में कैमास ने जब अन्तरंग मखियों से आवृत कर्नाटी और आकाश मंडल के मेघाडंबर को एक साथ देखा, तब कामदेव ने उसके चित्त में मस्ती भर दी और दोनों की दृष्टि मिलते ही हृदय में काम जागृत होगया—

ऊँच महल करनाटि, दिखि उम्बर घन पम्पर ।

विट्ठि गवक्ख स-सक्खि, सुमन मती अरि सभर ॥

सम दिट्ठि उट्ठि दाहिम्म दुअ, जगि मार उम्भार चित ।

उधर कर्नाटी वैश्या की भी यही दशा थी—

कन्नाटी कयमास, दिट्ठि दिक्खत मनु लग्यो ।

कलमलि चित्त सु हित्त, मयन पूरन जुरि जग्यो ॥

कैमास के कर्नाटी वैश्या के महल में प्रवेश करने पर पास के महला से रानी प्रमारिनी ने उसे देखा और उसने एक दासी भेजकर आखेट रत पृथ्वीराज को बुलाया । पृथ्वीराज ने आकर एक बाण चलाया, किन्तु क्रोधावेश में उसके चूक जाने पर दूसरे बाण से उसने कैमास का वध कर दिया । बाण लगने से कैमास का धड़ जमीन पर इस प्रकार गिर पड़ा, मानों राज-पताका गिर गई हो या उल्कापात हुआ हो—

भरिग वान चहुआन, जानु दनु देव नाग नर ।

दिट्ठि मुट्ठि रिस डुलिग, चुक्कि निक्करिय इक्क सर ॥

दुतिय आनि दिय हत्थ, पुट्ठि पम्मारि पचार्यो ।

वान वृत्ति छटिकन, सुनत सुर धरनि अखारयो ॥

यह कव्य सव्य सरसै गुणित, पुनित कव्यौ कवि चन्द तति ।

यों पर्यो केवास अवास तें, जानि निसान नछित्र पति ॥

राजपताका का गिरना और उल्कापात होना भावी अनिष्ट के सूचक होते हैं । अतः यहाँ कैमास के गिर पड़ने से राजपताका के गिरने और उल्कापात होने की उत्प्रेक्षा करके पृथ्वीराज के राज्य के भावी अनिष्ट की सूचना दे दी गई है ।

तब पृथ्वीराज ने उसके शव को पृथ्वी में छिपा दिया । इधर दासी कर्नाटी भागकर सकुशल कन्नौज पहुँची और उसने जयचन्द को सारा घृतान्त कह दिया—

खनि गड्यो नृप सम धनह, सो दासी सुर-पात ।

दिव्व धार ने जलधि ते, लीला कहिग सु प्रात ॥

यहाँ 'सुर-पात' का अर्थ 'पतित देव' अर्थात् 'जयन्त' का 'जय' शब्द और 'दिव्य धारने जलधि' (जलधि द्वारा धारण किया हुआ दिव्य पदार्थ) अर्थात् 'चन्द' मिलाकर कवि ने कृष्ट शैली के आधार पर 'जयचन्द' का प्रयोग किया है । आगे चल कर मर में भी इस प्रकार की शैली का प्रयोग मिलता है ।

देवी ने कवि चन्द को स्वप्न मे कैमास-वध की सूचना देदी । प्रातःकाल पृथ्वीराज के हठपूर्वक पूछने और वर्जित करने पर भी नहीं मानने पर कवि चन्द ने आद्यान्त वृत्तान्त सभा में वतला दिया । जिस प्रकार प्रवल हवा के साथ प्रकट होकर ज्वाला कटे हुए धान के ढेर में फैल जाती है, उसी प्रकार कैमास सी मृत्यु का यह वृत्तान्त कहने पर सब सामंतों के हृदय में ज्वाला प्रकट होगई—

भूमामि भार लग्गी, समया वढामि भट्ट वचनानी ।

किन्तु कवि चन्द ने सब को शान्त ही नहीं किया अपितु कैमास का शव भी उसकी पत्नी को दिला दिया । जब कैमास का अग्नि-सस्कार किया गया, उस समय पृथ्वीराज के ज्वालाभय नैत्र भी अश्रु जल से स्नान करने लग गये और वह कवि से कहने लगा कि हे कवि ! तुम्हारा यह राजा अब भी जीवित रहना चाहता है, अतः इसमे कौनसा सयानापन है—

ढोउ कंठ लग्गिय अगनि, नयन ज्वाल जल न्हान ।

अब जीवनु वछहि नृपति, कहि कवि कौन सयान ॥

यहाँ कैमास की मृत्यु आलम्बन विभाव, चिता का जलना आदि उद्दीपन विभाव, रोषपूर्ण आँखों का जल पूर्ण हो जाने और अपने जीवन को धिक्कारने से अश्रुभाव एवं ग्लानि, विषाद आदि संचारी होने से करुण रस की अवतारणा हुई है ।

‘दुर्गा केदार’ के प्रारम्भ में पृथ्वीराज की शोकपूर्ण स्थिति वतला कर करुण रस का ही वातावरण उपस्थित किया गया है । इसके बाद दुर्गा केदार का प्रसंग उठाया गया है । गौरीशाह का बंदीराज केदार भट्ट देवी के निषेध करने पर भी शाह से आज्ञा लेकर पृथ्वीराज के पाम पानीपत आया और कवि चन्द से शास्त्रार्थ करने को उत्सुक हुआ । पृथ्वीराज ने एक कवि को बाल-शशि और पूर्ण-शशि का एवं दूसरे को ऋतुराज वसन्त का प्रबन्ध-काव्य के लक्षणों से युक्त वर्णन करने का आदेश दिया । यहीं से दोनों कवियों का साहित्यिक-शास्त्रार्थ प्रारम्भ होता है । कवि चन्द ने एक ही छन्द में बालचन्द्र और चन्द्रमुखी बाला का श्लेष युक्त वर्णन किया, तब केदार भट्ट ने भी एक ही छन्द में बाला की वयसन्धि और वसन्त का श्लेष युक्त वर्णन कर दिया । यह देखकर कवि चन्द ने पुनः एक ही छन्द में बाला की वयसन्धि, पूर्ण शशि, बालचन्द्र और वसन्त विषयक श्लेष पूर्ण वर्णन किया ।

इन वर्णनों में कवि ने काव्य-रुद्धियों का तो प्रयोग किया ही है, किन्तु प्रत्येक नये उपमानों का कथन करके अपनी मौलिकता भी प्रदर्शित की है। बाल चन्द्रमा को काम स्वरूपी बाज पक्षी का नख, धनुषधारी मदन का वक्रशर और तलवार, दिशा सुन्दरी का अर्ध अधर, सुरति-रत बाला का कटाक्ष और कामदेव का दीपक कहना और इसी तरह वय संधि की उपमा कुकवि के छन्दों की गति और दूटे हुए मुक्ता-हार से देना नवीन प्रयोग है। इन वर्णनों में हमें कवि की काव्य-प्रतिभा और चमत्कार-कौशल के दर्शन होते हैं।

कवि चन्द से शास्त्रार्थ करने पर केदार के मनोरथ उसी तरह मन में रह गये, जिस तरह कृष्ण की छाया कृष्ण में और समुद्र की तरंगें समुद्र में ही विलीन हो जाती हैं—

वाद वीर सबाद, रहे मन मभक्त मनोरथ ।

कृष्ण छाह सिधू तरंग, मूर लग्यौ कि बान पथ ॥

शास्त्रार्थ में पराजित हो जाने पर भी दयालु राजा पृथ्वीराज ने उसको योग्यता से भी विशेष दान दिया और चन्द ने भी उसे अपना जाति बन्धु समझ कर उसके गुणों पर प्रकाश डाला।

‘जगम कथा’ में फिर से सयोगिता का प्रसंग आता है। एक जगम ने आकर पृथ्वीराज को सयोगिता-स्वयंवर और उसके द्वारा तीन बार पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा को वर माला पहनाने की सूचना दी। यह सुनकर पृथ्वीराज ने खाना-पीना, सोना बैठना, आगम और सुख से रहना छोड़ दिया। उसको तो प्रत्येक समय सयोगिता के व्रत को पूर्ण करने का ही ध्यान रहने लगा—

असन मार आराध सुख, सुख सयन्न कत राज ।

उर मल्लै मजोग व्रत, सभरि नाथ समाज ॥

तब उसने कविचन्द से मिलकर कन्नौज जाने की मन्त्रणा की। इसके पश्चात् शिकार में लौट कर उसने शिव से इस प्रकार वन्दना की—

राज दरमि हर मरम नर, उर उदित आनन्द ।

रुल रुलन निरमल कर, जै जै ममर निकट ॥

यहाँ शिव को 'समर निकन्द' कहना परिस्थिति के बहुत अनुकूल बन पड़ा है। जेमेन्द्र के अनुसार ऐसे ही प्रसंगों को पदौचित्य के अंतर्गत लिया जा सकता है।

इस कथा प्रवाह को देख कर कहा जा सकता है कि 'चन्द की प्रतिभा का प्रस्फुटन, कला की छाप तथा चरित्रों का खासा चित्रण रासो में दिखाई देता है। कथा का तारतम्य निभाने तथा पात्रों का चरित्रांकन करने में तो चन्द सिद्ध-हस्त थे ही, वर्य्य-विषय को साकार रूप देने की अद्भुत शक्ति भी उनमें विद्यमान थी। अतः जिस विषय को उन्होंने पकड़ा, उसका ऐसा सांगोपांग, सजीव और विशद वर्णन किया है कि वह मूर्तिमान होकर हमारी आँखों के सामने घूमने लगता है। वस्तुतः रासो में महाकाव्य की भव्यता और दृश्य काव्य की सजीवता है। इसकी कथा के वर्णन में बड़ा वेग, बड़ी गति है। बड़ी गति के साथ कथा-प्रवाह आगे बढ़ता है और पाठकों को भी अपने साथ लेता चलता है । '

चरित्राङ्कन कौशलः—

रासो घटना-प्रधान महा काव्य होते हुए भी चरित काव्य है। इसमें काव्य-नायक के रूप में पृथ्वीराज का जीवन-चरित्र अंकित किया गया है। पृथ्वीराज दिल्ली का पराक्रमी नरेश था। उसके विरोधियों में कमधञ्ज जयचन्द, चालुक्य भोरा भीम और गौरी शहाबुद्दीन प्रमुख थे। उसने अनेक विवाह किये थे। अतः पृथ्वीराज, उसके सामन्तों, रानियों और सम्बन्धियों से लेकर जयचन्द, भीमदेव और शहाबुद्दीन एवं उनके अनेकों प्रमुख सामन्तों तक का इसमें चरित्र-चित्रण मिलता है। इन सभी पात्रों में जो विशेषता मिलती है, वह है "कर्म-समारोह की व्यस्तता, पात्रों की क्रियाशीलता। इसमें एक भी पात्र ऐसा नहीं है जो निश्चेष्ट एवं अकर्मण्य हो। सभी को कुछ न कुछ करना है। अपनी २ धुन में मस्त सभी चले जा रहे हैं। कोई शैल्य-शिविर में, कोई रणागण में और कोई राज दरबार में ।^{१२} प्रमुख पात्रों को छोड़कर शेष सामन्तों की सामान्य विशेषताएँ—उनका युद्धोत्साह, स्वामी के लिए मर मिटने की उत्कट भाषि-भक्ति-युक्त तन्मयता और अपार शत्रु-संहारक शक्ति।

मुख लुहहि लुटहि मयन, अरिधर लुटहि धाहि ।

अंग अनमि न उवरै, हय खुर खगहि गाहि ॥

वह वेदोक्त नियमों का पालन करने वाला, चारों वर्णों का प्रतिपालक सत्त्वा ईश्वरानुरागी, महान् दानी, न्याय परायण, विशिष्ट युद्धकर्त्ता और गुप्तमन्त्रों का ज्ञाता था । उसकी दिनचर्या, चन्द्रग्रहण के अवसर पर यमुना किनारे किया गया षोडश प्रकार का दान और वरुणदूतों एवं चालुक्यों से युद्ध करना इस कथन की पुष्टि करते हैं । कवि ने सोमेश्वर के हृदय में युद्धार्थ उत्साह के झलकने की तुलना सतियों में सतीत्व झलकने से की है—

सुनत पुकारत छोह ब्रकि, सत्तिय सत्त ममान ।

रावल समरः—

रावलजी का चरित्र तो कवि की उस उक्ति से ही चरितार्थ हो जाता है, जब वह कहता है कि विक्रम केशरी और पृथ्वीराज दोनों पराई भूमि को अधिकृत करने में समर्थ हैं और आपत्ति के समय (यवनों के पराक्रम के समय) भारत भूमि का शासन भाग इन्हीं दोनों के कंधों पर है—

विक्रम अरु चहुआन नृप, पर धरती सक वध ।

अगम समै साहस करन, हिन्दु राज दुअ कथ ॥

पृथ्वीराज को रावलजी की वीरता पर अगाध विश्वास था और इसीलिए वह सकट कालीन स्थिति में सर्वदा उनकी सहायता लिया करता था । 'हंसावती विवाह' में पचायन से युद्ध करने और हामी युद्ध में विजय प्राप्त करने का श्रेय भी रावलजी को ही दिया जा सकता है । रावलजी को कवि ने (सामंतों के शब्दों में) योगीन्द्र उपाधिधारी और उनके यश को कलक-नाशक कहा है जिसकी पुष्टि सर्वत्र की गई है । कन्ह के युद्धार्थ निमन्त्रण देने पर रावलजी का कहना कि "तुम अगो हम आई है" उनके सच्चे क्षत्रियत्व और शरणागत-सहायक रूप का प्रदर्शक है । रावलजी की निलिप्तता और सच्चे जनक-रूप का दर्शन तो हमें उस समय होता है जब पृथ्वीराज चित्तौड़ेश्वर को साबर का सकल्प करना चाहते हैं तो वे सनद को फेंक देते हैं और बोधित होकर कहते हैं—

हथ नीच करतार हथ उपर जगत्तु गुर ।

हम आहुट मम नामि, स्वामि कहिजै सु उच वर ॥

कालंक राइ कापन विरुद, कुलह कलंक न लगयौ ।

दग्यौ न हाथ चितौर पति, हम जगत्त सब दग्यौ ॥

रावलजी का आध्यात्मिक ज्ञान भी बहुत ऊँचा था और वे 'हरि विचारि लग्यौ चरण' में विश्वास रखते थे । वे कलियुग में यज्ञ से अधिक शोडप प्रकार के दान को महत्व देते थे । कवि ने यदा कदा उनके राजर्षि, त्रिकालदर्शी, मोह और ममत्व से हीन रूप को भी प्रदर्शित किया है । 'ममर पग युद्ध' में उनके द्वारा दिया गया उपदेश उनके सच्चे दार्शनिक रूप का सूचक है । अतः कहा जा सकता है कि कवि ने रावलजी के उज्ज्वल चरित्र का निरूपण करने में सफलता प्राप्त की है ।

कवि ने उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त पृथ्वीराज के प्रतिपक्षी भीमदेव चालुक्य, जयचन्द और शहाबुद्दीन के चरित्रों को भी स्पष्ट किया है । भीमदेव महावली भीम के समान था, उसकी सीमा कोई नहीं दवा सकता था । उसके हृदय में पृथ्वीराज का दिल्ली-पति हो जाना खटकता था और इसीलिए वह पृथ्वीराज पर बराबर आक्रमण करता था । जैन धर्मावलम्बी होने के कारण उसकी हिन्दू नरेश पृथ्वीराज से बराबर टक्कर होती रहती थी । वह सर्वथा अपने सामंतों की मंत्रणा के अनुसार ही कार्य करने वाला था—

जं तुम जपौ त करउ, तुम छत मो सुख न्यद ।

इतना होते हुए भी वह कवियों का आदर करने वाला था । द्वारिका से आते हुए चन्द से उसका भेंट करना और उसे दान मान से सत्कृत करना इसी बात का सूचक है ।

जयचन्द भी पृथ्वीराज का विरोधी था । उसके चरित्र को कवि ने इस प्रकार अंकित किया है— वह अधिक पृथ्वी और द्रव्य को अपने यहाँ मचित करने की इच्छा वाला था, वह इन्द्र के समान सुख भोगता था और उसके द्वार पर जूत्रियों की भीड़ लगी रहती थी । वह अनेकों राजाओं को अपने अधिकार में करने योग्य था—

बहु भुम्भि द्रव्य ग्रह उग्रहै, इम अन्धै रठौर पहु ।

सुख इन्द्र व्यद्र छत्री दरहु, मुकट बंध ववमान बहु ॥

वह रावण के समान कुलह प्रिय और काल के समान क्रोधी भी था, इसलिए उसने पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के लिए यज्ञ का आरम्भ किया, पृथ्वीराज ने अनु-राग युक्त मयोगिता को गंगातट पर बन्दी बना लिया एवं पृथ्वीराज की स्पर्श प्रतिमा

को द्वार पर स्थित की। शहाबुद्दीन तो पृथ्वीराज का प्रबल शत्रु था ही। वह वीर था, उसके पास प्रबल सेना थी, फिर भी उसकी धृष्टता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि पृथ्वीराज से अनेकों बार हार जाने और छोड़ दिये जाने पर भी वह बार बार चढ़ आता था। पृथ्वीराज को सबसे अधिक शहाबुद्दीन से ही युद्ध करना पड़ता था। कवि ने शहाबुद्दीन के परिस्थिति-अनुरूप वीर-कायर आदि रूपों का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है।

इनके अतिरिक्त नरनाह कन्ह, कैमास, पञ्जून और पञ्जून पुत्र मलयर्मिह, पहाडराय, तत्तारखॉ आदि २ वीरों के अपूर्व युद्ध-कौशल का भी यत्र-तत्र प्रसंगानुकूल प्रदर्शन किया गया है।

स्त्री पात्रों में (इस भाग) में मुख्य रूप से हसावती, मझना ब्राह्मणी, सयोगिता और उसकी माता जुन्हाई का चरित्र चित्रण हुआ है। हसावती और सयोगिता दोनों ही पृथ्वीराज में अनुरक्ता-राजकुमारियाँ हैं और उनके इसी रूप का चित्रण मिलता है। हसावती जहाँ पूर्णरूपेण अनुराग मयी रानी के रूप में वर्णित है, वहाँ सयोगिता को उसकी माता के ही समान मानवती और कलह कारिणी बताया गया है। मझना ब्राह्मणी सयोगिता के हृदय में श्रोतानुराग उत्पन्न करके पृथ्वीराज के हृदय में भी उसके प्रति प्रेम उत्पन्न करती है। उसका यह रूप कव्य की व्यापक कथानकरूढ़ियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

कविचन्द स्वयं भी एक पात्र के रूप में उपस्थित होता है। 'चन्द द्वारिका गमन' से ज्ञात होता है कि वह कट्टर हिन्दू भक्त था। उसके प्रस्थान करते समय राजा और सामन्तों से उसे दान दिये जाने से ज्ञात होता है कि वह पृथ्वीराज और सामन्तों-सभी से अपनी व्यवहार कुशलता के कारण स्नेह भाजन बना हुआ था। वह जितना दान लेता था उतना देता भी था। द्वारिका में मुक्त हस्त होकर दान करना इस कथन की पुष्टि करता है। भरे दरवार में कैमास वय की घटना का मझाफोड़ कर देने में कवि की स्पष्ट वादिता झलकती है। यही नहीं, ऐसे अवसर पर वह पृथ्वीराज को कुछ सटु वाक्य भी कहता है। चन्द के ही साहस से कैमान की स्त्री को उसके पति का शव और उसके पुत्र को पिता की जागीर मिल सकी। चन्द बरदाई काव्य-गात्र में भी विशिष्ट ज्ञाता था, उसका यह यश दूर-दूर तक

कैला हुआ था। शहाबुद्दीन का बंदीजन भट्ट कैदार चन्द से शास्त्रार्थ करने पानीपत आया और वहाँ राजा ने एक को बालचन्द्र और वयः सन्धि एवं दूसरे को वसन्त वर्णन का विषय दिया। दोनों कवियों ने श्लेष पूर्ण वर्णन किये, किन्तु चन्द ने एक ही छन्द में वसन्त, बालचन्द्र, पूर्णचन्द्र और चन्द्रमुखी वाला का श्लेष पूर्ण वर्णन करके उसे परास्त कर दिया। यही नहीं, पराजित होने पर भी उसका विशेष सम्मान किया। चन्द साहित्य का ही विद्वान् नहीं था, वह अत्यन्त नीति निपुण और ज्योतिष-शास्त्र का भी ज्ञाता था। इनके उदाहरण प्रायः सर्वत्र देखे जा सकते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कवि ने पृथ्वीराज के चरित्र की विविध सरणियों के अतिरिक्त अन्य पात्रों के केवल धीर रूप का ही चित्रण किया है जो रासो के कथानक को देखने पर उपयुक्त ही जान पड़ता है। बात यह है कि रासो धीर रस पूर्ण काव्य है और इसीलिए इसमें पात्रों की उन चारित्रिक विशेषताओं को ही स्थान मिला है जो युद्ध की घटनाओं से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त इसका कारण यह है कि कवि को उनके सम्पूर्ण चरित्र का उद्घाटन करना अभीष्ट भी नहीं था। वस्तुतः रासो चरित्र-प्रधान काव्य न होकर घटना-प्रधान चरित काव्य ही है।

‘व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण के अतिरिक्त ममष्टि रूप में हिन्दू-मुसलमान दो जातियों का चरित्रोद्घाटन भी रासो में खूब हुआ है। मुसलमानों की वर्चस्वता एवं राजपूतों के शौर्य, उनकी डाँवाडोल स्थिति और पतनादि का जैसा मार्मिक, प्रकृत और क्षोभपूर्ण वर्णन रासो में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कहने को तो रामो पृथ्वीराज का जीवन चरित्र है परन्तु असल में वह हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की अमर कहानी है।’

शिल्प सौंदर्यः—

मानव के मन-मानस में उठने वाली भावों और विचारों की तरंगें शब्द और अर्थ द्वारा अभिव्यक्त होने पर ही सद्दृश्यों के हृदय में रम-तरंगिणी बहाने में समर्थ होती हैं। यद्यपि शब्द और अर्थ पर सभी का अधिकार होता है, किन्तु कवि उनका प्रयोग अभिव्यक्ति की प्रणाली को रमणीय और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए करना

घन घाड अघाड सुघाड घट तेक तानि नचिय करस'-पहाड़. ३८

× × ×

२ यमक- सुकल पच्छ बभनि सुकल, सुकल सु जुवति चरित्त --- विनय. ८

× × ×

अति आदर आ-दर कियौ, कह्यौ आप डह वैन-संयो. पूर्व. १६

× × ×

धवल दिव्य सुनि कन्न, धवल कढढै धवली असि ।

धवल वृषभ चढ़ि धवल, धल वंधै सुव्रह्म वसि ॥—समर पग २०

× × ×

३ श्लेष- मुगधे मुगधा रसया, उवर जे भयन रस एवी ।

लहुआ लुहान पुत्त, तूं पुत्ती राज ग्रोहाय ॥—सयों. नेमा १५

× × ×

४ उपमा- सुनत पुकारति छोह छकि, सत्तिय सत्त समान — सोम १६

× × ×

अकवर कुकवि कवित्त ज्यौं, गति गुन तुट्टा द्वार — दुर्गा. ५७

× × ×

यह उत्तम दह त्रिमल, पुलिन वर पसु भीन सम — दुर्गा. ८०

× × ×

५ रूपक- कड्डै सु रत्न किन्तीय मयि सुकवि चद किन्तौ कहन — सोम २६
(पर० रूपक)

× × ×

श्रानि मलिल वढ़ि चलिग,

कमल सीस वढ़ि चलिय, नयन अलि वास सुवासिय ।

जघ मकर कर मीन कच्छ खुपरि खग त्रासिय ॥

पोयनि अत सेवाल कच, अगुलि-कर-पग-भयग भरि ।

चहुवान सूर सोमेस रण, भीम भयानक जुद्ध करि ॥ —सोम २४

(साग रूपक)

^ × ^

बाल मान सरिता उतंग, तोइ आनंग अंग सुज ।
 रूप सु तट मोहन तड़ाग, भाइ भ्रम भए कटाच्छ दुज ।
 प्रेम पूर विस्तार, जोग मनसा विध्वंसनि ।
 दुति ग्रह नेह अथाह, चित्त करखन पिय तूसनि ॥
 मनसा विसुद्ध बोहिथ्य वर, नहि थिर चित जुगिगद तिहि ।
 उत्तरन पार पावै नहीं, मीन तलफि लागि मत्त विहि ॥ - संयो. पूर्व. १२
 (सांग-रूपक)

× × ×

दनु देयं सम जुद्धं, मुनियं सत्य त्रितय दुति आई । — वरुण. ६६
 (तद्रूप रूपक)

६ उत्प्रेक्षा- परहि भाव जल पूर, भरहि फल मनहु सघन वन — वरुण. ४५

× × ×

हालाहल डर भाल, माल मुप्ती दुति राजै ।
 रवि कंठह जनु गंग ईस जनु सीस धिराजै ॥ — भीम. ४६

× × ×

७ संदेह- यौ रति रहि रवि उदिकर, ज्यो ससि कोरह राह ।
 हरि डढ़ां धर रब्जई, कै हरि चंपत राह ॥ — वरुण. ५४

× × ×

८ व्यतिरेक- वैनि नाग लुट्यौ, वदन ससि राका लुट्यौ ।
 नैन पदम पंखुरिय, कुंभ कुच नारिंग लुट्यौ ॥ — हंसा. ६५

× × ×

वावन लिद्ध जु पायं, इंस चक्खि मुचिय सहयं ।
 इक्कं पाइ म सूरं, सा जित्तेव त्यंतयं लोकं ॥ — भीम. ६८

× × ×

९ असंगति- गाहा नक्किय तत्ती, सदान नूपुर उरवा ।
 जिह अंकुर पन्वितं, भूत जुध्याइ मग भंगुरया ॥ — हंसा० ८८

× × ×

१० व्याज निन्दा-विकट भूमि वकट सुभट, अंगड पग नर्यद ।

सो पृथिराज सु अंगवै, धरि जयचंद नर्यद ॥—सामत पंग ३५

X

X

X

११ आवृति दीपक-जुगति न मगल विना, भुगति विन शकर धारी ।

मुगति न हरि बिनु लहिय, नेह बिनु बाल वृथारी ॥ —विनय ३०

अलकारों के इन कतिपय प्रयोगों को देखने से ज्ञात होता है कि कवि ने इन अलकारों का प्रयोग करते समय भावों को रमणीय बनाने और अर्थ-गौरव में वृद्धि करने का पूर्ण ध्यान रखा है ।

छन्दः—

कवि ने जिन छन्दों के प्रयोग किये हैं उनमें छप्पय (कवित्त) प्रमुख है । शिवसिंह सरोज ने तो चन्द को 'छप्पयों का राजा' कहा है । कविराजा श्यामलदास भी रासो में छप्पय और दोहे का ही अस्तित्व स्वीकार करते थे । मुनि जिन विजय ने भी 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में चन्द के जिन छन्दों का उल्लेख किया है, वे छप्पय ही हैं । कवि ने कवित्त और दोहों में सभी भाषाओं का प्रयोग किया है, किन्तु साटक और श्लोकों में संस्कृत पदावली और गाथा में प्राकृत-अपभ्रंश के प्रयोग मिलते हैं ।

कवि की बहुज्ञता—

महा कविचन्द उच्चकोटि के कवि ही नहीं, बहुश्रुत और बहुज्ञाता भी थे । उनका ज्योतिष शास्त्र, नीति और दर्शन का अध्ययन भी अत्यन्त विराद था, जिसका सफल प्रयोग उन्होंने रासो में किया है ।

दार्शनिक विचारः—

दर्शन और काव्य का घनिष्ठ सम्बन्ध होने से कवि अपनी दार्शनिक विचार-धारा का प्रयोग अपने काव्य में करता है । महाकवि चन्द ने भी रासो में यत्र तत्र अपने आध्यात्मिक ज्ञान को प्रकट किया है ।

कवि कहता है कि जीवन जल-तरंग के तुल्य क्षण-भंगुर है, फिर भी मनुष्य अपनी काया के लिए कठिन कर्म और चाटुकारिता करता रहता है, किन्तु यम के द्वारा वह अकस्मात् ही पकड़ लिया जाता है—

जीवी धारि तरंग चंचल धिय

× × ×

दीहं अगिग सु कर्म दारुण धरे आवस्य चट्टू करं ।

अतएव यह संसार निस्सार है—‘संसार निस्सारयम्’—मनुष्य दिन रात किसी वस्तु की आशा में बैठा रहता है, किन्तु आशा सजल सरोवर के समान है । इसमें दुविधा रूपी पद्मी, सुख-दुःख रूपी वृक्ष, त्रिगुण रूपी शाखाएँ और मोह रूपी पत्ते होते हैं—

आसा अस्य सरोवरीय सलिल, पंखी वर दुन्धय ।

सुखं दुःखस्य मध्य व्रच्छति तिय, सावस्य त्रिगुण वर ॥

संसार में देखा गया है कि सब वस्तुएँ स्वान तुल्य होती हैं और जो कुछ आँखों से दिखाई देता है, वह नाशवान है—

यह संसार प्रमान, सुपन सोहे सु वस्त सह ।

दिष्टि मान विनसि हैं. मोह वंध्यौ सुकाल ग्रह ॥

कर्म और काल कसाई तुल्य हैं, जिसके द्वार पर मानव शरीर बकरे के समान बँधा रहता है—

कर्म काल खट्टीक, अजा वध्यौ नरु प्रेही ।

प्राणी जिस दिन से जन्म लेता है, उसी दिन से उसके पीछे कर्म, सुख-दुःख जय-पराजय, लोभ और माया आदि लग जाते हैं और उसे छेदते रहते हैं । काल के कलह में पड़कर उसका तन मोह में उलझ जाता है, इसी से उसे मुक्ति-मार्ग नहीं दिखाई देता—

जदिन जीव य जम, क्रम्म तदिन जम पच्छे ।

सुख दुःख जय अजय, लोभ माया तन अच्छे ॥

काल कलह सग्रहो, मोह पजर आलुद्धौ ।

मुक्ति मग्गु सुमयो न, ग्यान अतह क्यं सुद्धौ ॥

मुक्ति मार्ग को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि यह पंचतत्व मय शरीर कर्मों से छुटकारा नहीं पाता । मन उसमें लिप्त होकर छिप जाता है । अतः मुक्ति-मार्ग को प्राप्त करने के लिए पहले मन को वश में करना आवश्यक हो जाता है—

मुक्ति कठिन मारग ।

मनु प्रथम आपु बस किजिए, समर राउ इम उच्चरे ॥

मन को बश में करके उसे ईश्वर-भक्ति की ओर केन्द्रित करना चाहिए, क्योंकि भक्ति से ही कर्मों का उद्धार होता है—

भुगति क्रम सह उद्वरे ।

जहाँ कवि भक्ति को प्रधानता देता है, वहाँ वह प्रतिबिम्बवाद को भी मानता है। उसकी दृष्टि में भी आत्मा परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब है—

प्रतिव्यं व अं व जमह जुगति ।

संक्षेप में यही कवि की दार्शनिक विचार धारा है ।

नीति कथन—

कवि ने प्रस्तुत भाग में अनेक नीति वाक्य भी कहे हैं। ये नीति वाक्य केवल मात्र वाक्य-ज्ञान ही नहीं हैं, अपितु कवि ने परिस्थिति के अनुकूल सरस योजना करके इन्हें 'कान्ता सम्मित उपदेश' के रूप में प्रस्तुत किये हैं। इन नीति कथनों को निम्नलिखित रूप में बताया जा सकता है—

१ दान— अमर नहीं कलि कोइ, इक्क कर रहै उ च किय — वरुण. २६

× × ×

२ याचक— तिन तैं तुस तैं तूल तैं, फेंन फूल तैं जान ।
हँसि जम्पै गौरी गरुअ, भगन है हरु आन ॥ — दुर्गा २४

× × ×

३ कीर्ति— घरियार रूप कुठार घट, तत मुक्कि लग्गी नदिय ।
सिंचीय किक्ती तर अमिय में, धूँअ बाव नन लगन दिय ॥ — हसा ३८

× × ×

मरदा खेती खग मरन, अग्निय सम्पन हथ्य ।

सो सच्चा कच्चा अवर कौड दिन रहै सुकथ्य ॥ — पहाड़ १८

× × ^

अपकित्ति कित्ति जैहैं न जग, रहै मग खित्री सुवर ।—पजून. पात. १५

× × ×

जम्म लम्भ सोइ कित्ति, कित्ति भंजियै तनह पुनि — समर पंग २१

× × ×

४ दाम्पत्य जीवन-पिय आरंभन त्रिययं, त्रिय आरम्भ कंत वित्ताय ।

सो तिय पिय पिय, पतौ मा पिमं विद्रुदमं धामं ॥ — हंसा० ६०

× × ×

अब्जासन जो होब्जा, कंठायं पयोहर फलयं ।

दीहं ते सय लख्वं, हसनं रसनाय स बकियं होई ॥ — हंसा० ६१

× × ×

जो ती अह रस हाऔ, उरुचसि या कील कंताई ।

सो तिय अग सुहाई, दिस असि नीरसं नायं ॥ — हंसा० ६२

× × ×

५ मन की चपलता-घरी इक्क घट सुख में, घटी इक्क दुख धान ।

घरी इक्क जोगहि ग्रहै, घरीक मोह समान ॥ — समर पंग ७

× × ×

६ विनय- इक्के विनय सुभग गुन, तजियत विनय अरिष्ट ।

जाने भर सूना सुआ, भोजन ता करि मिष्ट ॥ — विनय० ४५

× × ×

विनय सार संसार, विनय बंध्यौ जु जगत बस ।

विनय फाल निष्काल, विनय संसार सूर रस ॥ — विनय० ६५

× × ×

७ कान्य — विधि विधि वरन सु अर्थ लिय, अति द क्यो न उधार ।

अक्खर सुकवि कवित्त यों, ज्यों सु चतुर स्त्री हार ॥ — दुर्गा० ४५

अंत में कहा जा सकता है कि “रासो मानव जीवन की विविध परिस्थितियों और भाव दशाओं का महा सागर है । यही वह विशेषता है जिसने हास युग के सभी काव्यों में रासो को सर्वोपरि स्थान दिया है । निश्चय ही यह उस युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा पूर्व-परम्पराओं का वृहद् कोष है और है मध्य युगीन भारतीय समाज का एक काव्यात्मक इतिहास ।”^१

—नरेन्द्र व्यास, एम०ए०

विषय-सूची

विषय

पृष्ठ

वरुण कथा—

वाराहराय (कौला पिथोरा “पृथ्वीराज”) के प्रताप से सोमेश्वर का सानन्द शासन करना और उसकी दिनचर्या का वर्णन, एक दिन मतवाले हाथी का बदलना और उसे काबू में लाना ।

१ से ६

चन्द्र-पर्व पर सोमेश्वर का सकुटुम्ब मथुरा जाना और वहाँ से यमुना तट पर स्वर्ण-तुला एवं शोड़ष प्रकार का दान करना । ग्रहण समय एक मंत्र का साधन करना, वरुण देव के कोप से राजा एवं उसके सामंतों का अस्वस्थ होना (पुराण शैली के रूप में) वरुण दूतों से युद्ध होना, ससार से विरक्त सोमेश्वर को क्रोध युक्त देखकर पृथ्वीराज का चकित होना, यमुना की स्तुति से सबका स्वस्थ होना ।

१० से ३२

मसार-विरक्त राजा सोमेश्वर के ज्ञान-वाक्य-कथन, सोमेश्वर द्वारा शोड़ष दान करने की सुन कर कन्तौजेश्वर जयचन्द का ईर्ष्या वश यज्ञ करने का विचार करना ।

३३ से ३७

सोम-वध—

पृथ्वीराज का उत्तर दिशा के राजाओं पर विजय करने को प्रस्थान करना, पीछे से सोमेश्वर और भीम में युद्ध होना और सोमेश्वर का चालुक्यों द्वारा मारा जाना ।

३८ से ५८

पृथ्वीराज का सोमेश्वर की अंतिम क्रिया करना और विविध प्रकार का दान देना एवं चालुक्यों को नष्ट करने की प्रतिज्ञा करना, पृथ्वीराज का पादोत्सव वर्णन ।

५६ से ६४

पञ्जून छाँगा—

भोला भीम का राणिंग पुत्र महाबली मरुवाना के सिर पर छाँगा (तुरी) बँधवा कर उसे सेनापति बनाकर सोनिंगरों के स्थान (सभव है जालोर) पर आक्रमण कराना, उधर से पृथ्वीराज का अपने सामन्त कछवाहा पञ्जून को सेनापति बनाना। दोनों सेनाओं में युद्ध होना, पञ्जून-पुत्र मलयसिंह का महाबली मरुवाने के सिर से छाँगा (तुरी) छीन लेना।

६५ से ६६

पञ्जून चालुक्य—

कन्नोजेश्वर जयचंद और गौरी शाह के बल पर चालुक्यों का चढ़ाई करना, उधर पृथ्वीराज की ओर से अपने भ्राता और पुत्रों सहित कछवाहा पञ्जून का युद्धार्थ सजना, दोनों सेनाओं में युद्ध छिड़ना, पञ्जून की विजय।

७० से ७६

चन्द द्वारिका—

“पृथ्वी कवि (कविचंद)” का पृथ्वीराज से आज्ञा लेकर द्वारिका के दर्शनार्थ रथारूढ होना, चित्तौड़ होते हुए द्वारिका जाना, लौटते समय कुन्दनपुर में भोला-भीम का कविचंद से मिल कर उसका सम्मान करना, कविचंद का दिल्ली लौट आना।

८० से ८५

भीम बंध—

पृथ्वीराज का भोला भीम को बन्धन में लेने की प्रतिज्ञा करना, ज्योतिपी द्वारा विजय का मुहूर्त निरुलवाना, कविचंद का चित्तौड़ेश्वर रावल विक्रम और पृथ्वीराज के विषय में प्रशंसा करना, पृथ्वीराज का भोला भीम पर चढ़ाई करना, गुर्जर प्रदेश स्थित सावरमती नदी पर चालुक्यों के साथ पृथ्वीराज की लड़ाई होना, युद्ध के अन्त में पृथ्वीराज द्वारा भोला-भीम को प्राणदान देना।

८८ से १२०

कैमास युद्ध—

शाह का पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने का विचार करके नदी के तट पर पारस पुर में आकर डेरा डालना, पृथ्वीराज का खट्टू वन में शिकारार्थ जाने का विचार करना, जिसकी सूचना धर्मायन कायस्थ द्वारा बादशाह को मिलना, बादशाह का सिन्ध नदी को पार करना, पृथ्वीराज को भी शाह के चढ़ आने की सूचना मिलना, तब उसका भी गोविन्दपुर होते हुए पांचोसर पहुँचना। शाह का सारुंडे होते हुए लाडनू पहुँचना, दोनों सेनाओं में सामना होना। इस युद्ध में कैमास का शाह को पकड़ लेना।

१२१ से १४६

हंसावती विवाह—

हंसावती के सौन्दर्य की चर्चा सुन कर शिशुपाल वंशी पचायन का शहाबुद्दीन के बल पर रणथम्भोर (जहाँ पर हंसावती के पिता ने देवास से आकर शरण ग्रहण की थी) पर चढ़ाई करना, रणथम्भोर से यादव राजा की वीर बसही (देवास से साथ आई हुई जनता) का दुर्ग त्याग कर उससे लोहा लेना, शरणार्थी रूप में आये हुए राजा (यादव) का शस्त्र ग्रहण करना और इस युद्ध की सूचना पृथ्वीराज को देना।

१४७ से १५४

पृथ्वीराज का चित्तौड़ेश्वर को सूचना देना, चित्तौड़ेश्वर का (शरण आये हुए की रक्षा करना अपना धर्म है, यह कह कर) सहायतार्थ चढ़ाई करना, पृथ्वीराज का भी सहायतार्थ चढ़ आना, चित्तौड़ेश्वर रावल समर-केशरी और पृथ्वीराज दोनों का मिल कर चदेली सेना और शाही सेना को परास्त करना, पचायन का मारा जाना।

१५५ से १६८

युद्ध के बाद यादव राजा द्वारा उसकी पुत्री हंसावती को वरण करने के लिए पृथ्वीराज को श्रीफल भोजना, विजयी

पृथ्वीराज पर मध्यदेशीय यादव राजा की पुत्री हंसावती का मुग्ध हो जाना, पृथ्वीराज का उसे वरण करना ।

१६६ से १७८

पराजित शाही सेना का पुनः हमला करना, किन्तु चित्तौड़ेश्वर का उसे मार भगाना, पश्चात् चित्तौड़ेश्वर का अपने स्थान को लौटना, हंसावती सहित पृथ्वीराज का भी यादव राजा को एक माह पर्यन्त रणथंभोर पर ही रहने की सम्मति देकर दिल्ली लौट आना, देवास की राजकुमारी हंसावती के साथ राजा का विनोद-रत होना, यादव राजा का भी अपने स्थान को लौट जाना, इस युद्ध समय पृथ्वीराज और चित्तौड़ेश्वर की आयु का कवि द्वारा संकेत करना ।

१७६ से १६३

पहाडराय—

पृथ्वीराज पर चढ़ाईकरा ने के विषय में शहाबुद्दीन का मन्त्रणा कर दूतों द्वारा पृथ्वीराज को सूचना देकर चढ़ाई करना, सूचना पाकर पृथ्वीराज का भी सामने चढ़ आना, दोनों सेनाओं में युद्ध छिड़ना और अंत में पहाडराय तोमर द्वारा शाह का पकड़ा जाकर दंडित किया जाना ।

१६४ से २१४

विनय मंगल—

यत्न स्वरूपी मदना के पति द्वारा संयोगिता को रभा स्वरूपी और कलह-प्रिया कहा जाना, पश्चात् मदना ब्राह्मणी द्वारा संयोगिता को स्त्रियोचित पाठ पढ़ाया जाना और उम्मी मदना द्वारा संयोगिता में पृथ्वीराज के प्रति श्रोतानुसार उत्पन्न होता, फिर मदना और उसके पति का दिल्ली को प्रस्थान करना ।

२१५ से २३४

संयोगिता नेमाचरण—

पृथ्वीराज और उसके सामंतों के विषय में दूतों द्वारा भेद प्राप्त करके जयचन्द का अपने मंत्री को बुलाकर उन्हें नष्ट करने का विचार करना । मंत्री का पहले संयोगिता का

स्वयंवर कर देने के लिए कहना, रानी जुन्हाई का भी राजा को यही सलाह देना, जयचंद का एक प्रचारिका को भेजकर संयोगिता को पृथ्वीराज से जो प्रेम होगया था, उसे छोड़ने को कहलाना । किन्तु संयोगिता का इस बात को स्वीकार न करके पृथ्वीराज को ही वरण करने की हृदय प्रतिज्ञा करना । धाय (धात्री) के कहने पर भी कुमारी का हृदय नहीं छोड़ना, तब राजा जयचंद का उसे गंगा तट स्थित महलों में रखना ।

२३५ से २४३

शुक्र वर्णन—

मदना ब्राह्मणी और उसके पति का दिल्ली पहुँच कर संयोगिता के रूप-गुणादि को पृथ्वीराज के समक्ष प्रकट करना, जिससे पृथ्वीराज को श्रोतानुराग होना, लौटते समय द्विज-दम्पति का पृथ्वीराज को संयोगिता की स्मृति रखने को आप्रह्व करना, द्विज दम्पति के कनवज्ज लौट आने पर संयोगिता की पृथ्वीराज के प्रति और भी अधिक उत्कंठा बढ़ना ।

२४४ से २५१

वालुकाराय—

जयचंद का यज्ञारम्भ की तैयारी करना संयोगिता की अज्ञात विरह वेदना का वर्णन, जयचंद द्वारा पृथ्वीराज की स्वर्ण प्रतिमा को द्वार पर स्थापित करने की सूचना पाकर पृथ्वीराज का जयचंद के साथी वालुकाराय के खोवंद-नगर पर आक्रमण करना, वालुकाराय का मारा जाना ।

२५२ से २६१

पंग जय विध्वंस—

वालुकाराय की मृत्यु से यज्ञ में बाधा पड़ना जानकर जयचंद का पृथ्वीराज को पकड़ने की प्रतिज्ञा करना, रानी जुन्हाई का समझाना कि पहले संयोगिता का व्याह कर दिया जाय, तत्पश्चान् पृथ्वीराज को बांधने का

विचार किया जाय । इस बात पर स्वयं जयचंद का रुक जाना, संयोगिता को ज्ञात होना कि पृथ्वीराज ने भी उसको वरण करने की प्रतिज्ञा की है, जिससे उसके विचार और भी हृद हो जाना । जयचंद का स्वयं चढ़ाई न करके अपने सैनिकों द्वारा पृथ्वीराज के भू-भाग पर हमला कराना, पृथ्वीराज का राजोर वन में ठहरना, पृथ्वीराज की जनता को रावल समर-विक्रम द्वारा सुरक्षित रखना, सामन्तों और पृथ्वीराज द्वारा आक्रमण होने पर जयचंद के सैनिकों का पृथ्वीराज के भू-भाग से हट जाना ।

२६२ से २६६

संयोगिता पूर्व जन्म—

(पुराण शैली के आधार पर)— देवी का इन्द्र से कहना कि मुझे रक्त से तृप्त कीजिये । इन्द्र का कहना कि कन्नौज और दिल्ली की शत्रुता होने वाली है, जिसमें तू तृप्त हो जावेगी । इन्द्राज्ञा से गन्धर्व का शुक रूप में मदना ब्राह्मणी के घर आना । सुमन्त ऋषि की तपस्या से इन्द्र का चिन्तित होना, अग्निरात्रियों को ऋषि के तप को भंग करने के लिए बुलाया जाना, उनमें से रभा का इस कार्य के लिए अग्रसर होना, उसके स्पर्श से सुमन्त का तप भग होना, इतने में उसके पिता जरज ऋषि का आना और रभा को श्राप देना (कि तू कन्नौज में जयचंद के यहां जन्म लेकर पिता और पति दोनों कुलों का नाश करावेगी, फिर तेरा उद्धार होगा)।

२७० से २६८

हॉसी प्रथम युद्ध—

हॉसी की रक्षा का भार देकर पृथ्वीराज का कुछ सामानों को नियुक्त करना, स्वयं पृथ्वीराज का मेवास, गुर्जर, दक्षिण आदि देशों पर चढ़ना, बलों की पहाड़ी का शहाबुद्दीन से सहायता प्राप्त कर अपनी बेगमों सहित हॉसी की ओर चल कर रास्ता देने को कहना, सामन्तों का उसे और शाही दल

को मार भगाना और बेरामों को लूटना, बेगमों और शाहजुहीन की माता का मुस्लिम यौद्धाओं को ताना मारना, शाह का हॉसी दुर्ग पर चढ़ाई करना और हॉसी दुर्ग से स्वयं दस कोस दूर रह कर अपने यौद्धाओं को हॉसी दुर्ग को घेरने की आज्ञा देना, उधर से सामन्तों का आक्रमण कर शाही दल को तितर-बितर कर देना ।

२६६ से ३२२

हॉसी द्वितीय युद्ध—

बिखरी हुई सेना को एकत्रित कर स्वयं शाह का हॉसी दुर्ग को घेरना, सामन्तों को कहलाना कि या तो शस्त्र ग्रहण करो, नहीं तो धर्म-द्वार (पराजय स्वीकार कर भगने के द्वार) से निकल जाओ । कुछ सामन्तों का विचलित होकर दुर्ग छोड़ना, सहस्र मल्ल और देवकर्ण का दुर्ग के लिए डटकर युद्ध करना, हॉसी दुर्ग का पट्टमिराय (राव कवि पृथ्वी भट्ट, कवि चन्द) को स्वप्न देना, कवि चन्द का राजा को हॉसी-रक्षा के लिए सूचित करना चित्तौड़ेश्वर को हॉसी युद्ध में सम्मिलित होने को निमन्त्रित करना, हॉसी दुर्ग से भागकर पृथ्वीराज के भाई हरिसिंह (हरिराज) आदि सामन्तों का दिल्ली आना, निमन्त्रण पाकर चित्तौड़ेश्वर का हॉसी पहुँचना, दुर्ग स्थित सामन्तों का रावल समर विक्रम के आने पर बल बढ़ाना, पृथ्वीराज के आने के पूर्व ही चित्तौड़ेश्वर का शाही दल में खलबली मचा देना, युद्ध में चित्तौड़ेश्वर के भाइयों में से अमर का मारा जाना, पृथ्वीराज का भी सामन्तों को उत्साहित कर हॉसी दुर्ग पर पहुँचना चित्तौड़ेश्वर और पृथ्वीराज का मिलकर शाही सेना को हॉसी से मार भगाना, शाह का हॉसी को छोड़कर दिल्ली की ओर बढ़ना, पृथ्वीराज और रावल-समर-विक्रम का रास्ते में उसे रोककर लोहा लेना, शाह का लौट जाना, रावल-समर-विक्रम का चित्तौड़ विज्ञा होना, पृथ्वीराज का रावलजी के भाई अमर

रानी इच्छनी के महलों में चुपके से आना, विजली के प्रकाश में कर्नाटी के महल की ओर बाण चलाना, किन्तु चूक जाना, तब दूसरे बाण द्वारा कैमास को मार गिराना, कर्नाटी का निकल भागना और जयचन्द के पास कन्नौज पहुँचना, कैमास के मृत शव को जमीन में गाड़ देना, उमी रात्रि को स्वप्न में कवि चन्द का कैमास की मृत्यु के हाल से परिचित होना, सुबह होने पर पृथ्वीराज के पूछने पर सारा हाल कह सुनाना जिससे सामंतों में भय छा जाना, कैमास का शव कविचन्द द्वारा कैमास की स्त्री को प्राप्त होने पर उसका मती होना कैमास की मृत्यु पर राजा का दुःखी होना, कन्नौज जाने का विचार करना, कैमास के पुत्र को उसके पिता के सिंहासन पर बिठाना ।

४६० से ४६७

दुर्गा केदार—

कैमास की मृत्यु के कारण पृथ्वीराज का चिंतित होना, यह देख कर सामन्तों का उसे शिकार करने के लिए चलने को कहना, शिकार करते हुए राजा का पानीपत पर पहुँचना, धर्मायन का दूतों द्वारा शाह को पत्र देना, केदार भट्ट (बंदीजन) का शाह से विदा ले कविचन्द से विवाद करने को पानीपत पहुँचना, साहित्य-विषयक-विवाद में कविचन्द का जीतना, पृथ्वीराज का केदार को बहुत सा द्रव्य देकर समान पूर्वक विदा करना, पृथ्वीराज का शिकार में होने की सूचना पाकर शाह का चढ़ाई करना, दुर्गा केदार का उससे रास्ते में मिलना, शाह की चढ़ाई की बात ज्ञात होने पर इसकी सूचना देने को दुर्गा केदार का अपने भाई को पृथ्वीराज के पास पानीपत भेजना, शाह के चढ़ आने की सूचना पाकर पृथ्वीराज का भी युद्धार्थ तत्पर होना, शाह का भी पृथ्वीराज की ओर आतुरता से बढ़ना, दोनों

सेनाओं में मुठभेड़ और पहाड़राय तोमर द्वारा शहाबुद्दीन का पकड़ा जाना, पृथ्वीराज का शाह को दंडित कर छोड़ना ।

४६३ से ५४५

जंगम कथा—

एक जंगम का पृथ्वीराज के पास आना, जंगम का संयोगिता के स्वयंवर के विषय में कहना कि सभा मंडप में अनेकों राजा बैठे हुए थे, सभा के द्वार पर द्वारपाल के स्थान पर आपकी स्वर्णिम-प्रतिमा थी जयचंद के बदीराज “देव” ने कुमारी को सब का परिचय दिया, इस प्रकार तीन बार संयोगिता को सभा में घुमाया गया, किन्तु उसने आपकी स्वर्णिम-प्रतिमा के गले में ही माला पहनाई । यह सुनकर पृथ्वीराज का संयोगिता के प्रति प्रेम बढ़ना, इस समय वसन्त ऋतु का प्रारम्भ होना, पृथ्वीराज का कवि चन्द को बुला कर कहना—हे कवि ! द्वारपाल के स्थान पर जयचंद ने मेरी स्वर्णिम प्रतिमा स्थापित कर मेरा अपमान किया है, क्या अब भी हमको जीवित रहना चाहिये ? कवि चंद का कहना कि जयचंद से भिड़ना काल को निमंत्रित करना है, पश्चात् राजा का शिकार के लिए जाना, लौटते समय शिव की पूजा करना ।

५४६ से ५६४



पृथ्वीराज रासो

तृतीय भाग

वरुण कथा

दोहा

रुक्ख लुहहि लुट्टहि मयन, अरिधर लुट्टहि धाहि ।

अंग अनम्मि न उव्वरै, हय खुर खग्गहि गाहि ॥ १ ॥

शब्दार्थः—लुहहि=लूटना, उपभोग करना । लुट्टहि=विजय किया । मयन=काम देव । धाहि=थाह दे, आतंक फैलाकर । अंग=काया । अनम्मि=नहीं नमने वाले । उव्वरै=वच पात्रे, घोड़े के मुँह । खग्गहि=तलवार से । गाहि=कुचल देते ।

अर्थः—राजा सोमेश्वर सुख का उपभोग करता हुआ और कामदेव पर विजय पाता हुआ शत्रुओं पर आतंक फैलाकर उनके भू-भाग को लूटता था । नहीं मुकने वाले शत्रु की काया उसके सामने वच नहीं पाती थी । वह घोड़े के खुर और तलवार द्वारा उसे कुचल देता था ।

श्लोक

सोमेश्वर महावीरं, त्रिगुणं तत्र व्यापकं ।

आनन्दमेघ कृतं उत्तं, वाराहं च प्रसादयं ॥ २ ॥

शब्दार्थः—महावीरं=महान् वीर । त्रिगुणं=सत्त्व, रज, तम । तत्र=वहाँ । व्यापकं=व्याप्त था । आनन्दमेघ=(आनन्दराम) चहुआनों के मूल पुरुष अनलया सोमेश्वर के पिता अरणोदराज । कृतं=कर्म किया । उत्तं=उत्तम । वाराहं=वाराह राय कौलाराय (कौला पिथोरा) । प्रसादयं=रूपा से ।

अर्थः—महान् वीर सोमेश्वर त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम) युक्त, प्रसिद्ध था, आनन्द-राज (मूल पुरुष अनल या अरणोदराज) के समान ही उसके कर्म उत्तम थे, उसके शौर्य का कारण वाराहराय (कौला पिथोरा, पृथ्वीराज के शुभ जन्म) का प्रताप था ।

चारि जाम दिनं नित्तं, चौ जुगं व्यवहारयं ।

चतुर्वेदं कृतं धीनं, चौवृत्तं प्रति पालयं ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—चारि=चारों । जाम=याम, पहर । दिन=दिन के । नित्त=नित्य, हमेशा । चौजुग=चारों युग (सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग) । व्यवहारय=व्यवहार में । चतुर्वेद=चारों वेद । मन्त=मार्ग किये । धीनं=बुद्धि से । चौवननं=चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) । प्रतिपालय=प्रतिपालन करता था ।

अर्थः—दिन के चार प्रहर होते हैं उन्हें चारों युग (सत, त्रेता, द्वापर, कलि) की भांति वह व्यवहार में लाता था, उसकी बुद्धि चारों वेदोक्त नियमों का पालन करती थी और वह चारों वर्णों का प्रतिपालन करता था ।

कवित्त

प्रथम प्रहर असनान, दरसि अरकान अर्घकरि ।

तर्पन अर्पन पित्र, देव दुज सेव चित्त धरि ॥

गुरु मन्त्रहि आराधि, प्रणिठ पौराण कथ सुनि ।

पादोदक रस सचि, रचिय लिल्लाट तिलक पुणि ॥

दै दान विप्र विधि वेद मत, नित्य नेम सम प्रेम करि ।

इय क्रम सौम प्रथमह प्रहर, पाप सत्र सब जात जरि ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—असनान=स्नान । दरसि=दर्शन । अरकानि=सूर्य के । अर्घ करि=अर्घ्य देकर । पित्त=पितृओं के । दुज=द्विज । ब्राह्मण । सेव=सेवता, सेवा करना । चित्त धरि=मन लगाकर । गुरु मन्त्रहि=गुरु द्वारा दिया हुआ मन्त्र । आराधि=आराधना, भक्ति । प्रणिठ=पुनित, पवित्र । पौराण=पुराण । कथ=कथा । पादोदक=चरणोदक, चरणामृत । रद=हृदय को । सचि=प्रक्षालन कर । रचिय=लगाया । लिल्लाट=ललाट, माल । पुणि=पुन । दै=देता । विधि=तरीका । मत=सम्प्रति । नित्य नेम=नित्य कर्म । सम=मे । इय=ऐसे । क्रम=गति । सौम=सोमेश्वर । मन्त्र=शत्रु । सत्र=सब । जात जरि=जल जाता ।

अर्थः—दिवस के प्रथम प्रहर में वह स्नान करता और सूर्य का दर्शन कर उसे अर्घ्य देता था । पित्रों का तर्पण कर देवता और ब्रह्माणों की चित्त लगाकर सेवा करता था और गुरु मन्त्र की उपासना कर पवित्र पौराणिक कथा का श्रवण करता था और ईश्वर के पादोदक-चरणामृत से हृदय को सींच कर (शुद्ध करता, प्रक्षालन करता) वह अपने भाल पर तिलक करता था । ब्रह्मा रचित वेद के विधान-अनुसार वह ब्राह्मणों को दान देता था । इस प्रकार वह सप्रेम नित्य कृत्य कर इन कर्मों द्वारा राजा सोमेश्वर अपने पाप रूपी शत्रुओं को जलाता था ।

दोहा

ऊख समय तें प्रहर लों, सतजुग विबुध कहंत ।

दुतिय प्रहर त्रेता तहाँ, राजन रीति रहंत ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—ऊख समय=उपा । तें=से । लों=तक । सतजुग=सत्ययुग । विबुध=पंडित । दुतिय=दूसरी । तहाँ=वहाँ । रहंत=रहती है, निवास करती है ।

अर्थः—राजाओं की दिन चर्या के विषय में पंडित जन कहते हैं कि उपाकाल से एक प्रहर तक सत्ययुग, उसके पश्चात् एक प्रहर तक उनके यहाँ पर त्रेता बसता है ।

कवित्त

दुतिय प्रहर दैवान, भान सम आनि दरसु दिय ।

महावीर सामंत, नवनि लघु दिघ सवनि किय ॥

नंत मजनि हय चपल, आई सव न्यौध नजरि सव ।

इकनि थपि इक उथपि, आनि दासि पहुँचि जव ॥

राग रंग भापा कवित, अति अभूत नाटक ठिन्यऊ ।

जर कस जराय सूरंत दुति, सता इन्द्र देवनि वन्यउ ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—दैवान=देवान खाना, समा स्थल । भान=भाव सूर्य । आनि=आकर । दरसु =दर्शन नवनि=नमस्कार । लघु दिघ=छोटे वड़े । सवनि=सबों ने । मत=मत वाले । गजनि=हाथी । हय=घोड़े । चपल=चंचल । आई=आये, लाये गये । न्यौध=निरीक्षणार्थ । इक=एक । थपि=स्थापित किया, सच्चा माना । उथपि=उखाड़ दिया, झूठा माना । अरदासि=अर्जियाँ, प्रार्थना पत्र । जव=जब । अभूत=अदभूत । ठिन्यउ=ठिया गया । जरकत=जरीन । जराय=जड़े हुए । सूरंत=सूर्य की । दुति=कति । देवनि=देवों सहित । वन्यउ=की हो ।

अर्थः—दिवस के दूसरे प्रहर में राजा सोमेश्वर सभा में सूर्य तुल्य आकर दर्शन देता था । उस समय बड़े बड़े वीर योद्धा और छोटी बड़ी श्रेणी के सब उसके सामने आकर सिर नवाते थे, इसके पश्चात् समस्त मतवाले हाथी और चंचल घोड़े निरीक्षणार्थ सामने लाये जाते थे । उसके बाद प्रार्थना पत्र (अर्जियाँ) पेश होते थे । और उन पर किसी का उत्थापन होता था (न्याय मिलता) और किसी की स्थापन

इसी समय पर संगीत, कविता और नाट्यकारों की कला का अद्भुत प्रदर्शन भी होता था। सोमेश्वर जड़ाऊ भूषणों और जरीन पोशाक में सूर्य-प्रभा को प्राप्त कर सामन्तों में इन्द्र के समान देवता मालूम होता था।

दोहा

द्वापर मध्यान्ह ते, त्रितयि प्रहर लौ होइ ।

पिक्खि रीति सोमेस दर, किति करे सहलोइ ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—द्वग=युग । पिक्खि=पेख, देखकर । दर=दरवाजा । किति=कीर्ति । लोइ=लोग ।

अर्थः—दिवस के द्वितीय प्रहर से तृतीय प्रहर तक सोमेश्वर के द्वार पर द्वापर रहता था । उस रस्म को देखकर सब उसका कीर्तिगान करते थे ।

कवित्त

भोजन साल पधारि, संग प्रथिराज सुभट सब ।

घृत पक्व जल पक्व, पक्व पावक्क परुसि^१ तव ॥

दूध पक्व पक्कवान, मस रस भति अमेय ।

साक फलणि सधान, छ रस व्यञ्जन^२ वनेय ॥

तिन पच्छ पछावरि, स्वाद सुचि, अन्न जात पवि पियतही ।

अचमन्न अचइकर विटिय मुख कपुर^३ पूर चदह कही ॥ ८ ॥

प्रा०पा०संशोधित १, २, ३ ।

शब्दार्थः—भोजन साल=भोजन शाला । पधारि=आवर । घृतपक्व=घी द्वारा पकाई हुई ।

पावक्क=अग्नि । परस=परोसना । मस=मांस । भति=भाति । अनेय=अनेक, विविध । साक=शाक ।

फलणि=फल । संधान=बधी हुई (मिठाई) लड्डू आदि । मौसमी सौंठ, अजवान आदि के साथे हुए

मीठे पक्कवान को सघीणा करते हैं जो दवा के रूप में काम में ली जाती है । छ रस=घटरस ।

व्यजन=बने हुए । तिन=उनके । पच्छ=पश्चात् । पछावरि=छाछ, गट्टा (घृत निकालने के बाद छाछ

रहती है उसे पछावरि कहा गया है । राजस्थान में आज भी इस शब्द का रूप हटके शासन के लिए

“पछाड़ा” नाम काम में लिया जाता है । सचि=पवित्र । जात=जाता । पवि=इजम ।

अचमन्न=आचमन । अचइ=करके । विरिये=वीर्य (ताम्रपत्र), कूर । पूर=भिलावर । कहि=कहा ।

अर्थः—कवि कृता है दोपहर के पश्चात् राजा सोमेश्वर युवराज पृथ्वीराज और

सामन्त सहित भोजनशाला पधारने थे । यहाँ घृत पक्व, जल पक्व, अग्नि पक्व,

दूध पक्व, पक्वान्न मांस तथा विविध रस युक्त भोजन करते थे। शाक, फल, वंघे हुए लड्डू आदि षट रस व्यजन काम में लिये जाते थे। उसके बाद भोजन को पचा जाने वाली पवित्र सुस्वाद छाछ (मट्ठा) को पान करते थे और आचमन कर कपूर मिलाया हुआ ताम्बूल (पान) काम में लेते थे।

दोहा

चतुर पहर कलि कहत सव, विलसत संभरिवार ।

महासत सामंत सव, जित तित भूयनि भार ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—चतुर पहर=चतुर्थ पहर। कलि=कलियुग। विलसत=विनोद करना। समरिवार=संभरि नरेश्वर। महासत=महान मतवाले। जित तित=यत्र तत्र (यहाँ, वहाँ) भूयनि=राजाओं के लिए। भार=भार स्वरूप, दुख प्रद या देखना।

अर्थः—दिवस का चतुर्थ प्रहर सभरेश्वर का विविध विलास युक्त देखकर सव केलि का अनुमान लगाते थे। उसके महान मतवाले समस्त सामंत यत्र-तत्र राजाओं को भार स्वरूपी (दुख प्रद) दीख पड़ते थे। या यत्र-तत्र के राजा लोग उनके चरित्र को देखते ही रह जाते थे।

कवित्त

भइय वंघ चहुवान, चंपि चवगान चढ़न कंई ।

हय पक्खरि पग पौन, तेज विफरिण लगत रह ॥

गर्जत गज मद गलित, कलित अटुव पग छुट्टिय ।

सजि आये सहसेन, जानु जल निधि जल फुट्टिय ॥

धज नेज चौर चोने विरद, गलित गंध मादक मननि ।

हंकारि हंकि न्हंकत खुरिय, जनुकि विज्ज भपटति घननि ॥ १० ॥

शब्दार्थः—भइय=हुई। वंघ=वाजे। चंपि चवगान=चौगान को दवाया, चौगान एकत्रित हुए। चढन कह=चढ़ाई करने को। हय पक्खरि=घोड़ों को पाखरों से सजाया। पग-पौन=कदम (गति) पवन के तुल्य, जिसकी गति चाल पवन के समान। तेज=तेजी के साथ। विफरिण=विकरना, उछल कूद करते हुए। लगत रह=रास्ते पर चलने लगे। मदगलित=मदाकुल, मद में चूर। कलित=सुन्दर। अटुव=जंजीर (शृंखला)। छुट्टिय=छूट गई। जानु=मानों। जलनिधि=पमुद्र।

फुट्ठिय=कार रोक दी । धज=ध्वजा । धेज=नेजे । चौर=चावर । वाने=प्रिद=सुशोभित । गलित-गध=सुगंध वगैरा से युक्त । मादक मननि=मस्त मन वाले । हुकार=हुकार करते हुए । हंकि=बढाये । हक्त खुरिय=घोड़ों को दौड़ाते हुए । जनुकि=मानों कि । विज्ज=विजली । भपटति=तरेरा दिया है । घनानि=बादलों में ।

अर्थः—एक दिवस दिनके चतुर्थ पहर में संभरि नरेश्वर के चौगान मे सबको एकत्रित होने के लिए वाद्य बजने लगे । पवन गति घोड़ों पर पाखरे सजाई गई । घोड़े उछल-कूद करते हुए तेजी के साथ रास्ते पर चलने लगे । जिनके पैरों मे शृङ्खला पडी हुई है ऐसे मदाकुल हाथी गर्जते हुए सुन्दर दीख पडे समुद्र-जल ने सीमा छोड़ दी हो ।

इस प्रकार सारी सेना सजकर वहाँ आ उपस्थित हुई । ध्वज और नेजे फहराने लगे विरुद्धों से सुशोभित वीरों पर चमर होने लगे । मतवाले मनवाले वीर सुगंधित पदार्थों से तर थे । हुँकार करते हुए वीरों ने घोड़ों को तीव्र गति से इस प्रकार बढाया मानों बादलों मे विजली दमक पडी हो ।

लग्नि मुसालनि दिक्खि, करि गज सुमान गज नाम ।

तोरि जंजीरणि उम्मड्यौ, चरखिदार धपि ताम ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—लग्नि=जलती हुई । मुसालनि=मशालें । दिक्खि करि=देखकर । तोरि=तोड़कर । जंजीरणि=जंजीरों, शृंखला । उम्मड्यौ=उमड़ पड़ा । चरखिदार=साट मार हाथी को फावू में करने वाले । धपि ताम=प्रयत्न कर उस समय तक गये ।

अर्थः—साम्प्र समय मशाले जोई गई । उन्हें देखकर गजसुमान नामक हाथी शृंखला तोड़कर निकल पड़ा । उस समय मस्त हाथियों के पैरों मे वेडी डालने वाले (फावू मे करने वाले) चरखिदार भी सब प्रयत्न कर हताश हो गये ।

रहे घेरि गडदार तिहिं, चरखीदार सँकाइ ।

गर्ज करै ठट्टौ करी, डक विप्रीत वलाइ ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—घेरि=घेरा । गडदार=माटमार, ताड़ना करने कात्र में करने वाले । तिहिं=उमे । चरखीदार=मात्र द्वारा हाथी को कात्र में करने वाले । सँकाइ=मशकित । गर्ज करै=गर्जना करता हुआ । ठट्टौ=हाथी सँका । विप्रीत=ये मात्र खिलाफ । वलाइ=भय सूचक शब्द ।

अर्थः—उस हाथी से चरखीदार (कावू करने वाले) सशंकित हो गये लेकिन साटमार उसे घेरे रहे । साट मारों के कावू में भी वह नहीं हो सका और वह मद मत्त हाथी गर्जता रहा ।

कवित्त

करिय हुकम राज्यद्र, मंगि स्यंगार हार गज ।

महामंत वर जोर, अपु सनमान रखै रज ॥

निमकु उघारैन आंखि, पखि सम उडतु तेज पग ।

अग्निणि मिडि करे छार, तीर त्रिन मात्र संगि खग ॥

आवत मद्धि चौगान तिहि, भरणि भीर जिरा तित पुलिय ।

जंजीर खोलि लगर ब्रजिय, अंधारी सिर पर खुलिय ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—करिय=किया । राज्यद्र=राजाने । मंगि=मंगवाया । स्यंगारहार=हार सिंगार, हाथी का नाम । महामत=महामस्त । वरजोर=जवरदस्त, सरजोर । अपु=करके । सनमान=सम्मान । रज=राजा । निमकु=निमेष मात्र । उघारैन=उघाड़ता खोलता । आंखि=आंखें । पंखि=पक्षी । सम=बराबर । उडतु=भपटता था । तेज पद=तीव्रगति । अग्निणि=अग्नि को । मिडि=मीड़ना, मीड़ कर, मसलकर, कुचल कर । छार=राख । संगी=सांग, वध्नी । खग=तलवार । आवत=आने पर । मद्धि=बीच । चौगान=मैदान । तिहि=उसको । भरणि भीर=मामतो का समूह, टोली । पुलिय=चलते घने । पलायन हो गया । अंधारी सिरी=मस्त हाथी की आंखों पर जो नकाब डाली जाती है उसे सिरी कहते हैं । खुलिय = खुला ।

अर्थः—तब राजाने आज्ञा देकर (उसे दवाने को, कावू में लाने को) शृङ्गारहार नामक हाथी मंगवाया । वह हाथी बड़ा मतवाला और पुरजोर था, राजा उसे बड़े सम्मान से रखता था । उसकी आंखें मस्ती से नहीं खुलती थी । वह पक्षी के समान तेजगति से भपटने वाला था और पैरों से कुचल कर अग्नि को छार कर देता था । तीर भाले और खड्ग को वह दृष्ट तुल्य समझता था । ऐसे मतवाले हाथी के चौगान में आते ही सामंत-समूह यत्र-तत्र हो गया, उस हाथी के पैर से शृंखला और लगर दूर किये गये और मस्तक से सिरी हटा दी गई ।

ढोकि कध माहात, पिट्टि भोइय पच्चारिय ।

गज गुमान उत उमड़ि, वज वज्जे जनु तारिय ॥

अर्थः—दोनों पीलवानों को श्रेष्ठ पोशाके मंगना कर पहनाई गई और उन्हें एक एक वढिया माला भी दी गई जो ऐसे अवसर पर दी जाती थी ।

अरध निरा जगगत गई, जाम इक्षक निरि सोइ ।

ऊख समय जग्यो बली, करि पवित्र तन तोइ ॥ २० ॥

शब्दार्थः—अरध=आधी । जगगत=जागने हुए । जाम=प्रहर । सोइ=मोये । ऊख=उषा । जग्यो=जगा । बलि=बलवान । करि=करके । तोर=तोय, पानी ।

अर्थः—उस उत्सव के कारण अर्धरात्रि जागते हुए बीती और चाद म केवल एक प्रहर तक शयन किया । उषाकाल होने पर वीर राजा ने जाग कर स्नान किया तथा शरीर शुद्धि की ।

आलस लोचन मुख कमल, हसन भरोखा आइ ।

नजरि मडि चौकि बबुरि, पत्रा विप्र सुनाइ ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—आलस लोचन=अलमलित नयन । आइ=आया । नजरि मडि=देखा, दृष्टि की । चौकी=प्रहरी । बबुरि=फिर । सुनाई=सुनाने लगा ।

अर्थः—कमल के समान मुख और अलसित नेत्र वाला राजा मुकराता हुआ भरोखे में आया । प्रहरी वीरों ने वदना की । उसने कृपा दृष्टि से उनकी ओर देखा । फिर विप्र पत्रा सुनाने लगा ।

पत्रा प्रात पवित्र दुज, तियि जोग कहि कर्न ।

नवऊग्रह फल सुनअसुभ, कहै राचा दुख हर्न ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—दुज=द्विज, ब्राह्मण । जोग=योग । कहि=कहना । नवऊग्रह=नवों पर । नाऊ=नौही । हर्न=नाशक ।

अर्थः—पवित्र द्विज प्रात काल पत्रा सुनाता हुआ उन तियि का योगादि राजा को बताने लगा और राचा के दुख नाशक नवों प्रता के शुभ प्रशुभ फलों का उल्लेख किया ।

पुनि पुच्छी नृप विप्रति, ग्रहनु कहौ कव होइ ।

मास तिथीजिहि वार ग्रह, वर्नि सुनावौ सोइ ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—पुच्छी=पूछा । प्रति=मे । ग्रहनु=ग्रहण (चन्द्र ग्रहण) । कव=कव ।

अर्थ — राजा ने ब्राह्मण से पूछा .— चन्द्र ग्रहण कब होने को है ? उस ग्रहण की तिथि, वार, और महीना हमें बताओ ।

माह मास पून्यौ स तिथि, राका निसि ससि पर्व ।

इक्क गुनो जो खरचिये, सहस गुनों फल ढर्व ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—पून्यौ स=पुण्य की । राका=पूर्णिमा । पर्व=पुण्य समय, विशेषता लिये हुए समय । ढर्व = द्रव्य ।

अर्थ — माघ मास की पुण्य तिथियों में से पूर्णिमा सर्व श्रेष्ठ है, उस रात्रि को यदि चन्द्र ग्रहण हो और दान दिया जाय तो उससे सहस्र गुने द्रव्य की प्राप्ति होती है ।

तव च्यत्यौ चहुवान चित, पोडस दान विचार ।

सत त्रेता द्वापर नृपनि, जग्य जुगति आचार ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—तव=तव । च्यत्यौ=चिंतन किया । पोडस दान=षोडश प्रकार के दान । सत=सत्ययुग । जग्य=यज्ञ । जुगति=युक्ति । आचार=व्यवहार ।

अर्थः—चहुआन नरेश ने षोडश प्रकार के दान देने का निश्चय किया क्योंकि सत्य, त्रेता और द्वापर युग के राजा यज्ञ-फल प्राप्त करते थे । वही फल इस षोडश प्रकार के दान की युक्ति से प्राप्त हो सकता है ।

कठिन काल कलि काल यह, जग्य मनुष्य न होइ ।

पोडस दान विचारनौ, जग्यह सेवहु लोइ ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—सेवहु=करना । लोइ=लोग ।

अर्थः—यह कलियुग का समय कठिन है, इसमें मनुष्य यज्ञ नहीं कर पाता । राजा ने कहा— मेरे विचार से षोडश प्रकार का दान कर यज्ञ-फल की प्राप्ति करनी चाहिए ।

कवित्त

कहैं विप्र सुनि राज, दान षोडश परि मानिय ।
 उत्तिम, मद्धिम, अधम, जुगि वैदनि महि गनिय ॥
 जथा सक्ति मन होइ, सोइ किज्जै इय धम्मह ।
 यै देवनि विवहार, क्रम्म सद्धै कटि क्रम्मह ॥
 सौमेसराइ इम उच्चरै, कनिठ धर्म षोडश करौ ।
 ग्रहन समय मथुरा णगर, इमि आतम इय उद्धरौ ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—परिमानिय=मान्य है, निश्चित है । उत्तिम=उत्तम । मद्धिम=मध्यम । वैदनि=वेदों । महि=में । गानिय=गाई गई, वर्णन थी । जथा=यथा । सक्ति=शक्ति । सोइ=वही । किज्जै=करीये । इय=यही । धम्मह=धर्म है । यै=यही । देवनि=देवताओं की । विवहार=व्यवहार, प्रचार । क्रम्म सद्धै=कर्मों का साधन करे । कटि=क्रमह=कर्म नाश के लिये । सोमेसराइ=राजा सोमेश्वर । इम=इस तरह । उच्चरै=कहै । कनिठ=कनिष्ठ, निम्न श्रेणी । ग्रहण समय=ग्रहण (चंद्र ग्रहण) समय । णगर=नगर । इमि=इस प्रकार । आतम=आत्मा । इय=इस । उद्धरौ=उद्धार करो ।

अर्थः—तब विप्र राजा से निवेदन करने लगे सुनो— षोडश प्रकार का दान ही इस समय मान्य है । दान देने का उत्तम, मध्यम, अधम तरीका वेदों में कहा है । धर्म वही है जो यथा शक्ति मन से किया जाता है । देवताओं में भी ऐसा ही होता है । कर्मों को नष्ट करने के लिए कर्म साधना करते हैं । तब राजा सोमेश्वर कहने लगे— यज्ञ से यद्यपि षोडश प्रकार का दान करना निम्न श्रेणी है फिर भी किया जाय । इस चंद्र ग्रहण के समय मथुरा नगर चलकर इसी तरह आत्मा का उद्धार करना चाहिए ।

पडित वोलि प्रवान, सचि सामग्री मच्चह ।
 सज्जि सयन सामत, चलिय राजन चडि तच्चह ॥
 मथुरा पहुँचे आडि, नगर बाहिर रचि वानक ।
 पट मडप तहँ उठिय, वरुण वदल रँग वानक ॥

धंभादि राउ सुत धम्म सम, जुगि समसु लग्गौ करण ।

वेदो उक्त दक्खिणि चिदित, संकल्य सुहित अशरण सरण ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—बोली=बोलकर । सवि=सचय की । सव्ह=सब प्रकार की । सयन=सेना । तव्ह=तब । बाहि=बाहर । थानक=ढेरे । पट मडप=पठालय, वितान । तहँ=वहाँ । उठिय=खड़े किये गये । वानक=तरह । धम्मादि राउ=धर्माधिराज । लग्गौ करण=करने लगे । वेदो उक्त=वेदेक्त दक्खिणि=दक्ष पुरुष । संकल्य=संपूर्ण रूप से संग्रह किया । हित=लिष्ट । अशरण-शरण=निराधार को आधार देने वाले ।

अर्थः—प्रधान और पंडितों को बुलाकर सब सामग्री तयार की गई । सेना और सामंतों को सुसज्जित कर राजा घोड़े पर चढ़ कर रवाना हुआ और मथुरा पहुँच कर नगर के बाहिर डेरा डाला । वहाँ रंग-विरंगे वितान ताने गये जिनसे बादलों की भांति आभास होने लगा । राजा सोमेश्वर जो युधिष्ठिर के समान धर्माधिराज था, वह उसके समान युक्ति पूर्वक पुण्य कार्य करने लगा । जो वेदोक्त हैं और दक्ष पुरुषों को विदित हैं । वैसा ही हित-कार्य अशरणों को शरण देने (ईश्वर) के निमित्त किया ।

तौवरि अंचल गंठि, संठि सामग्री सुद्ध मन ।

महा दान करि कनक, वंठि धनिय विप्र निगन-॥

कंचन वर्षिय सोम हर्स, हुलसिय वंमन हिय-।

अमर नहीं कलि कोइ, इक्क करु रहै उंच किय ॥

संसार सार गल्हां रहै, पिखलत हू नृप नहि रसत ।

भुवलोक पाप घट भरि गलत, जिमि अकास तारा खसत ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—तौवरि=रानी तैवरानी (पृथ्वीराज की माता) अंचल गंठि=आंचल का बंधन । संठि=संग्रहित । कनक=सोना । वंठि धनइ=घोट दिया, विमाजित कर दिया । विप्रनिगन=ब्राह्मण समुदाय । कंचन=मोना । वर्षिय=वर्षाया । सोम=सोमेश्वर । हुलसिय=प्रसन्न हुये । वंमन=ब्राह्मण । हिय=हृदय । कोइ=कोई भी । इक्क=एक वही । करु=हाथ । उंच=ऊँचा । सार=तत्त्व युक्त, शुद्ध । गल्हां=ख्याति । पिखलत हु=देखते हुए । रसत=प्रेम करना । भुवलोक=पृथ्वी मंडल । छट=छड़ा । गलत=नष्ट होने लगते हैं । जिमि=जैसे । अकास=आकास । खिसत=गिरते हैं ।

गोपिकाए । क्रीला=क्रीडा, खेल । मडिय=रचा । वरुन=नंदह=वरुण पुत्र । गहि=पकड़ना । अंडिय=छोड़ा । सोह=वह । गंगाहि=गंगा के । सम=समान । सोमह=सोमेश्वर । सह=सव ।

अर्थः—जिस जमुना के तट पर कृष्ण ने गोपों सहित गौएँ चराई थी, महाविप-धारी सर्प को नाथा था, गोपिकाओं के साथ जल विहार किया था, वरुण पुत्र को पकड़ कर छोड़ा था, ऐसी जो जमुना, गंगा के तुल्य ही महत्व रखती है, वहाँ सोमेश्वर ने भक्ति भाव सहित पृथ्वीराज और सामंतों के साथ रह कर सोलह प्रकार का दान किया ।

जिहिं जमुना तट कन्ह, नगिन पग धेनु चराइय ।

जिहिं जमुना तट कन्ह, दुनुज दलि कंसु डराइय ॥

जिहिं जमुना तट कन्ह, धाक ग्वालनि भोजन किय ।

जिहिं जमुना तट कन्ह, अघासुर प्रसित वाल जिय ॥

जिहँ जमुन तट सूर तन याहि तट, देव नाग गध्रव तकहि ।

तिहि जमुन सोम महादान दिखि, सिद्ध साध मुनिवर जकहि ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—नगिन=नग्न । धेनु=गायें । दनुज=राक्षस । दलि=नाश कर । कसु=कस डराइय=भय-भीत किया । धाक=छींका । अघासुर=एक दैत्य विशेष । प्रसित=निगले हुए । वाल=वालकों । जिय=जिलाए । सूर तन याहि=सूर्य पुत्री । गध्रव=गधर्व । तकहि=ताकता, भाकना । साध=साधक । जकहि=विश्राम ।

अर्थ —जिस यमुना के तट पर कृष्ण ने नग्न पैर चलकर गौएँ चराई थी, राक्षसों को मारकर कस को भयभीत किया था, छींके पर ग्वालिनियों द्वारा रक्खे हुए भोजन का आहार किया था, अघासुर प्रसित ग्वाल वालों को जिलाया था, ऐसी उस सूर्य पुत्री यमुना तट की ओर देवता, नाग और गधर्व देखते ही रह जाते हैं । उसी यमुना तट पर सोमेश्वर ने महान् दान किया जिसे देख कर सिद्ध-साधक और मुनियों ने टकठटी लगादी ।

मुनिय कह वनि सोम, देव वनि कहहि सभरिय ।

दिखि ब्रह्मादिक सकल, दान त्रेता कलि काल भभरिय ॥

सतजुग सम महा दान, दान त्रेता कृत व्यनिय ।

द्वापर देव समान, किंकराजन जम व्यनिय ॥

आनन्द मेव सुव सोम धनि, षोडश भ्रम धर उद्धरियं ।

प्रथिराज पुत्र तिहि धम्मकरि, जित्ति जगत जिहि जू धरियं ॥३४॥

शब्दार्थः—मुनिय=मुनिवर । कहहि=कहा । धनि=धन्य । सोम=सोमेश्वर । संमरिय=संमरेश्वर । दिखि=देखकर । सकल=सब । संमरिय=चौकन्ना । कृत=कर्म । क्यंनिय=किया । किक्क=कई ऐक । जम=यश । ल्यंनिय=लिया । आनन्द मेव=चहुआन अनल या अरणोदराज । सुव=पुत्र । भ्रमधर=धर्म धारण । जित्ति=जीत । जिहि जू=जिम्मे ।

अर्थः—उस समय मुनि और देवतागण संमरि नरेश सोमेश्वर को धन्य २ कहने लगे । ब्रह्मा आदि सभी इस कलिकाल में इस प्रकार दान होता देखकर चौंक पड़े । कवि कहता है जिस प्रकार सत, त्रेता और द्वापर युग में देवताओं के तुल्य महादान कर कितने ही राजाओं ने यश प्राप्त किया । उसी प्रकार अरणोद राज के पुत्र या (अनल चहुआन के वंशज) सोमेश्वर के पुत्र को धन्य है जिसने षोडश प्रकार का दान कर इस पुण्य कार्य द्वारा पृथ्वी पर उद्धार किया और उसके पुत्र पृथ्वीराज ने भी ऐसे धर्म-कार्य को कर संसार को जीत लिया ।

दोहा

प्रह्न समय नृप सोम मुनि, कालिन्दी मन आनि ।

होम जुगति सब संग लै, तहँ वेद दुज ठानि ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—कालिन्दी=यमुना । मन आनि=इरादा कर । होम जुगति=होम की सामग्री । तहँ=वहाँ । दुज=द्विज, ब्राह्मण । ठानि=रचना की ।

अर्थः—चंद्र ग्रहण के समय राजा सोमेश्वर कालिन्दी तट पर पहुँचा, उसी समय होम की सामग्री लेकर ब्राह्मणों ने वेदी की रचना की ।

साटक

मु दित मुक्ख कमोद हंसति कला, चक्कीय चक्क चितं ।

चंद कृन्ति कटति पोइनि पियं, भानं कला छीनं ॥

वानं मन्मथ भत्त रत्त जुगयं, भोग्य च भोग भवं ।

निद्रावस्य जग त्तत भक्त जनयं, वा जग्य कामी नरं ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—मुदित=मुँदे हुवे । कमोद=कुमोदनी के । हंसति कला=कला युक्त, हँसते हुए । चक्कीय=चक्रवाट दपति । चक्क=चकित । चित=मन । चंद=चन्द्रमा । कृन्ति=किरणें । कटति=निकलती ।

पोहिनि पियं=पद्मिनी का 'यारा । मान कला=सूर्य कला । श्रीन=श्रीण । वान=वाण । मम्मथ=मन्मथ, काम देव । मत्त रत्त=मस्ती में लीन । जुगंय=युगल दपत्ति । भोग्य च=मोक्षता है । भोगं मं=सांसारिक विलास । जगत्त=ससार । वा=अथवा । जग्य=जगत । कामी=विलासी । नर=पुरुष ।

अर्थ —चन्द्र-किरण के निकलने पर कुमुदनी के वन्द मुख प्रसन्न कला के समान दीख पड़े । चक्रवाक दपत्ति के चित्त चकित हो गये । कमलिनी के प्रेमी सूर्य की प्रभा क्षीण दीख पड़ी । काम देव के वाणों से मतवाले विलासी दपत्ति सांसारिक सुख का उपभोग करने लगे । उस समय ससार निद्रा ग्रस्त था, केवल भक्त जन या कामी पुरुष ही जाग रहे थे ।

दोहा

सम्भ समय ससि उगि नभ, गइ जामिनि जुग जम्म ।

ग्रहन समय जान्यो जवहि, जमुन पधारे ताम ॥ ३७ ॥

सँभ=संभ । उगि=उदय । नभ=आकाश । जामिनि=रात्रि । जुग=दो । जाम=याम, प्रहर । जवहि=जब ही । ताम=तब ।

अर्थ :—सांभ होने पर आकाश मडल में जब चन्द्रमा उदित हुआ और दो प्रहर रात्रि व्यतीत हो गई तब चंद्र ग्रहण का समय आया देखकर राजा सोमेश्वर यमुना तट पर आया ।

कवित्त

मंत्र इक्क उर राज, ताहि सद्धन एकतह ।

जहँ न जीव नर कोइ, अपु त्रिभय मेकंतह ॥

घोर भयानक सुदह, मद्धि आराधन क्यनौ ।

नाभि सम सुजल मद्धि, जाप जप्पिय वारह नौ ॥

ससि कोर राह छाया भई, खलक स्नान लगिय करण ।

विनु वरुण सोम सुमिरण विना, वरुन दूत उट्टिय लरण ॥ ३८ ॥

इक्क=एक । उर राज=राजा के हृदय में, गुप्त । ताहि=उमें । सद्धन=साधन । एकतह=एकांत में । जहँ=जहाँ । अपु=आप । त्रिभय=निर्भय । मेकंतह=एकांत । मद्धि=बीच । आराध=आराधना । क्यनौ=करते हुए । सम=वगवर । जप्पिय=जप । वारह नौ=नौ बार । कोर=कोना, थलग । खलक=सब लोग । लगिय=लगे करण=करने । विनु=विना । सोम=सोमेश्वर । उट्टिय=उठे । लरण=लड़ने ।

अर्थः—राजा सोमेश्वर ने एक गुप्त मंत्र का एकान्त में साधन करना चाहा । इसलिए जहाँ कोई मानव प्राणी नहीं था उस स्थान पर निर्भयता पूर्वक चला और वहाँ पर जल में एक भयानक दह (जलाशय) में नाभि तक खड़े होकर आराधना की और नौ बार उस मंत्र का जप किया । उस समय राहुग्रसित चंद्रमा मोक्ष को प्राप्त कर चुका था । यह देखकर सभी स्नान करने लगे । उस समय वरुण का स्मरण किये बिना ही सोमेश्वर को मंत्र साधन करता हुआ देखकर वरुण-दूत-क्रोध में आकर लड़ने को उद्यत हुआ ।

दोहा

अस्नान ज्यं क्यं नृप, जल रक्था जगि वीर ।

हहंकार सम्मुह भये, मंगन जुद्ध शरीर ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—अस्नानं=स्नान, ज्यं=जैसे, क्यं=किया, जल रक्था=जल रक्त, जगि=जागकर, हहंकार=हुक्कार करते हुए, सम्मुह=सामने, भये=हुए, मंगन=जुद्ध=युद्ध की इच्छा प्रकट करते हुए ।

अर्थः—ज्यों ही राजा ने स्नान किया, त्यों ही उत्पात करते हुए जल-रक्तक वीर जाग उठे और हुक्कार कर शारीरिक युद्ध की इच्छा प्रकट कर सामने आ गए ।

नृप विनु वस्त्र सस्त्र विनु, हस्त दरभ कुस कोस ।

तिल तदुल जव पुहुप कर, वरुण दूत उठि रोस ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—नृप=राजा, विनु=विना, वस्त्र=वस्त्र, हस्त=हाथ, दरम=दर्भ, कुस=कुश, कोष=खजाना (दान देने के लिये वित्त राशि, पुहुप=पुष्प, उठि=उठे, रोस=क्रोध ।

अर्थः—उस समय राजा वस्त्र पहना हुआ नहीं था और न शस्त्र ही उसके पास था । केवल हाथ में दर्भ, कुश, तिल, तंदुल, जौ और लुटाने के लिए खजाना था । ऐसे समय वरुण का दूत क्रोध हो उठा ।

अति प्रचड गहराइ गल, गहकि गज्जि वर वीर ।

कज्जल तन कुंकू नयन, धीरनी छुट्टे धीर ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—प्रचड=दीर्घ काय, गहराई गल=गहरे गले से, गहकि गज्जि=गहगड़ाहट से हुए गर्जना करने लगे, कज्जल तन=श्याम वर्ण या कज्जल गिरि से शरीर वाले, कुंकू नयन=कुंकुम लाल, नयन=नेत्र, धीरनि=धैर्य, छुट्टे=छुटी, धीर=धैर्य वानों की ।

वे श्यामवर्ण दीर्घकाय वीर जिनके नेत्र कुम्कुम वर्ण के थे उन्होंने गहरे गले से गड गडाहट के साथ गर्जना की । जिससे धैर्यवान पुरुषों का धैर्य छूट गया ।

तन उत्तंग कर वज्र, जोर जम अंग भीम दृग ।

अरुन अधर नख रत्त, अस्त्र न नसस्त्र कधुव दिग ॥

हसन उंच सिर केस, भेस भय भगिय पास ।

अति उनाह जम दाह, कवनु मंडै जुध तामं ॥

कल कलह वचन किल कंत सुर, सुर वज्जत जनु धुनि धवनि ।

हम करहि केलि जल संचरहि, तुम सुमुद्ध कोइ अति अवनि ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—उतग=ऊँचे अँग, उन्नत । करवज्र=कराघात, वज्र तुल्य । जोर=शक्ति । जम=यमभञ्ज । रत्त=लाल वर्ण । नन=नहीं । कधुव=कुछ भी । दिग=पास । दसन=दात । भेस=भेद । भय=डर । भगिय=भगगया । पास=नजदीक से । अनाह=उमड़ना । जम-जिम=जैसे । दाह=दावाग्नि । कवनु=कौन । मंडै=करै । जुध=युद्ध । तामं=उनमे । कलह=क्लेश । किल कत=किलकाते हुए । सुर=आवाज । सुर वज्जत=नासारध्र वजते हुए । जनु=जाना । धुनि=ध्वनि । धवनि=धौकनी । संचरहि=प्रवेश करते । विहार करने मुद्ध=मूढ़, मूर्ख । कोइ=दूसरा । अवनि=तसार ।

अर्थः—जिनका शरीर ऊँचा कराघात तुल्य, अगशक्ति यमराज तुल्य, देखने में भीम के समान और अधर तथा नख जिनके अरुण वर्ण के थे, जिनके पास न अस्त्र थे न शस्त्र । जिनके दांत ऊँचे और केश उठे थे, जिनके रूप को देखकर स्वयं भय भी भयभीत होकर भाग जाता था, वह दावाग्नि के समान भपटने वाला था उससे कौन युद्ध कर सकता है ? वह शोर गुल करता हुआ किलकारी करता था । उनकी नासारन्ध्री धौकनी के तुल्य थी, वे सोमेश्वर और उसके साथी सामंतों से कहने लगे— तुम पृथ्वी के कोई मूर्ख हो । तुम्हें ज्ञात नहीं कि इस समय हम जल में विहार कर रहे हैं ।

सुभट दिक्खि किय क्रोव उर, भये भयानक सुर ।

सस्त्र हत्य दिक्खे नहीं, प्राव गहे जल पर ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—सुभट=योद्धा । दिक्खि=दिखाई दिये । भये=हृष्ट । भयानक=डरावना । प्राव=पत्थर ।

प्रावे=पत्थर ।

अर्थ:—सामंतों ने भी उन्हें देखा और उनका क्रोध भयानक हो उठा, शस्त्र हाथों में नहीं होने के कारण जल में प्रवेश कर पत्थरों से युद्ध करने लगे ।

परहि ग्राव जल पूर, भरहि फल मनहु सघन वन ।
वजहि घात आघात, फुरहि अवसान वीर तन ॥
रावत्तनि अवसान, देव दुंदुभि अधिकारी ।
जोग ज्ञान त्रिय मान, वनिक बुधि मोह सुनारी ॥
राज्यद दान सिद्धह तपह, भक्त भक्ति बुधि कोविदह ।
इत्तनी बात अवसान मिलि, मनहु मत्र जनु गुन विदह ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ:—परहि=पड़ते । भरहि=गिरना । मनहु=मानों । सघन वन=घना वन । फुरहि=चक्कर । अवसान=मृत्यु । वीर तन=वीरों के शरीर । त्रिय=तीन । मान=योग्य । वनिक=वनिया । बुधि=बुद्धि । सुनारी=लक्ष्मी । राज्यद=राजा । सिद्धह=योगी, तपस्वी । कोविदह=चतुर । इत्तनी=इतनी । बात=वात । अवसान=श्रीसान, विवेक । मिलि=मिल कर । जनु=जैसे । गुन=गुण । विदह=परिणाम ।

अर्थ:—जल में पत्थर इस प्रकार पड़ रहे थे, मानों सघन वन में फल झड़ रहे हों, उन वीरों के घात प्रत्याघात हो रहे थे और वहादुरों के पास मृत्यु चक्कर लगा रही थी । कवि कहता है— वीर राजपूत मृत्यु के, देवता दुंदुभि के, योगी ज्ञान और वेदों के, वैश्य लक्ष्मी के, राजा दान देने के, सिद्ध तपस्या के, भक्त भक्ति के और पंडित बुद्धि के अधिकारी होते हैं । किन्तु उसकी पूर्ति में सावधानी से लगना चाहिये । सावधानी से लगने पर उनको इस प्रकार सफलता प्राप्त हो जाती है जिस प्रकार सुमंत्रणा से अंतिम परिणाम निकल जाता है ।

आवरि करवर करहि, भिरहि भारत्य प्रचारहि ।
अग २ संग्रहहि, इक्क इक्कह ठिलि डारहि ॥
अधम जुद्ध जुरि करहि, करहि वल कपट अगन्निय ।
कवहु धुमधर करहि, करहि कव भार भरनिय ॥
कवहु मेघ बुद्धि सुजल, कवहु करह ग्रावनि वरख ।
उच्चरहि वैन वहु वीरवर, विरचि कवहु वुल्लै हरख ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ:—आवरि=आहुट्टना, थड़ना । करवर=हाथों के वल । भिरहि=मिड़ना मिड़ने । प्रचारहि=प्रचारना । संग्रहहि=पकड़ लेना । इक्क इक्कह=एक दूसरे को । ठिलि=धकेल कर । अधम जुद्ध=धर्म से

विरुद्ध युद्ध । क्षुरि=शुद्धकर । बल=बल । अग्निय=अग्नि । कवहु=कभी । धु भ=धू धल, धूम्र ।
भार=ज्वाला । भरनिय=भड़ती हुई । कवहुँ=कभी । वुट्टै=वरसना । रुह=रुते थे । प्रावनि=
पत्थरों । वरख=वर्षा । उच्चरहि=कहें । बहु=बहुत । विरचि=प्रचारते हुए । वुल्लै=बोलते, गरजते ।
हरख = हर्ष से ।

अर्थ.—हाथों के बल से लड़ते भिड़ते हुए एक दूसरे को युद्ध में पछाड़ने लगे ।
एक दूसरे को पकड़ता और धकेल कर गिरा देता था । उस समय वरुण दूतों ने
जमकर अधम युद्ध करना शुरू किया । वे बल करने के साथ वनावटी आग, धुआ,
भड़की हुई ज्वाला, जल वर्षा करते हुए, मेघ और पत्थरों की वर्षा करते थे, तरह २
की आवाज गले से निकालने लगे । कभी पछाड़ने और कभी अट्टहास करने लगे ।

कवहुँ सस्त्र सर परहि, कवहुँ डक्कहि डक्कारहि ।
तीनि लोक तन हकहि, कवहुँ वक्कहि वक्कारहि ॥
अकल कलह बल करहि, समहि सग्राम सुधारहि ।
अजुत जग उद्धरहि, कलह बल धार उधारहि ॥
सामत भूमि भजहि भिरहि, गिरहि परहि उट्टहि लरहि ।
सोमेस सूर सकन गनहि, धिरचि गल्ह गन्वार करहि ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ:—सर परहि=बाण पड़ते । उक्कहि=कूदना । डक्कारहि=हुंकारना । तीनि लोक=त्रिलोक ।
तन=शरीर धारी । हकहि=हकालते, चला देना । वक्कहि=बक्कना । वक्कारहि=ललकारना ।
अकल=अज्ञात । बल=बल । समहि=पामना करते हुए । सग्राम=युद्ध । धारहि=ग्रहण करते ।
अजुत=अयुक्त असगत । उद्धरहि=कहते हैं, पूराकर बताते हैं । मजहि=खडित । भिरहि=भिड़ते ।
लरहि=चड़ते हैं । सोमेस सूर=सोमेश्वर के सामत । गल्ह=लयाति । गन्वार=गहरी ।

अर्थ:—कभी वे शस्त्र और बाण वर्षा करते, कभी उछल कूद कर हुंकार करते,
उनके इस प्रकार के उत्पात से तीनों लोक के प्राणी विचलित होने लगे । कभी २
शोर गुल के साथ वे ललकारते थे । इस प्रकार छल युद्ध के बल पर रणस्थल
को काबू कर सामना करने लगे । असगत युद्ध पूरा कर वे वताने लगे । विघ्न
की शक्ति के द्वारा वे मरुत होना चाहते थे किन्तु सोमेश्वर के बहादुर योद्धा भी
उनमे लड़कर उनको नष्ट करने में प्रयत्न थे । वे स्वयं कभी गिरते, पड़ते, उठते और

लडते थे इस प्रकार क्षत्रिय निशांक होकर उन्हें पछाड़ते हुए अनुपम ख्याति प्राप्त करने लगे ।

दोहा

इकु सामंतनि इस्ट चल, दुतिय धरम नृप सोम ।

तिहि सहाय सामंत तन, देव दुन्दभो भोम ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—इकु=एकतो, इक । दुतिय=दूसरा । सोम=सोमेश्वर (का पुन्य) । तिहि सहाय=उस सहायता से । सामंत तन=सामंतों के शरीर (सुरक्षित) रह पायें । देव=देवताओं से, (वरुण के दूतों से) दुन्द=युद्ध । सो=हुआ । भोम=भूमि, पृथ्वी पर ।

अर्थः—सामंतों के शरीर उन वरुण दूतों से इसलिये सुरक्षित रहे कि एक तो उनका इष्ट बल, दूसरा राजा सोमेश्वर का पुन्य कार्य था । इसी से उन्होंने देवताओं (वरुण दूतों) से पृथ्वी पर द्वन्द युद्ध किया, या देव तुल्य युद्ध कर सके ।

कवित्त

हम जु भयकर बल अभूत, भट सुभट हक्कारहि ।

हम प्रचंड पर्वत प्रमान, कनिठ अंगुलि उपारहि ॥

हम समुद्र सत्तौ प्रमान, दोहि जल बहुनि प्रवाहहि ।

सुनी न दिक्खी होइ, सोइ ब्रह्म मंडल प्रगावहि ॥

किहि काम धाम तजि काम सुख, आइ सपत्तौ जमुन नसि ।

चर वेर निसाचर हम फिरहि, जल पिट्ठय निसि लेहि धसि ॥ ४९ ॥

शब्दार्थः—बल=बल । अभूत=अद्भुत । हक्कारहि=विचलित कर देते हैं, दकाते हैं । कनिठ=कनिष्ठा । समुद्र=समुद्र । सत्तौ=सातों । प्रमान=प्रमान । दोहि=उलीच कर । प्रवाहहि=प्रवाहित कर देते हैं । दिक्खी=देखी । सोइ=वही । ब्रह्ममंडल=ब्रह्माण्ड । किहि=किस । धाम=घर । वाम=स्त्री । सपत्तौ=पहुंचे । जमुन=जमुना । निसि=रात्रि । चर=वरुण दूत दूत । वेर=शत्रुता । पिट्ठय=प्रवेश करते हैं । लेहि=पकड़ेंगे । धसि=प्रवेश कर ।

अर्थः—वरुण दूत कहने लगे—हम अद्भुत शक्तिशाली और भयंकर हैं बड़े बड़े योद्धाओं को विचलित कर देने वाले हैं, हम दीर्घकाय वीर पर्वतों को कनिष्ठ अँगुली पर उठा लेते हैं और सातों समुद्रों के पानी को हाथों से निकाल कर पृथ्वी पर प्रवाहित कर सकते हैं । जो वान न सुनी और देखी गई उसे करने में हम समर्थ हैं । हमारी प्रशंसा ब्रह्माण्ड करता है । हे सामन्तों ! तुम किस लिए गृह और गृहणी के सुख को छोड़ कर यहाँ जमुना किनारे रात्रि में

आये हो । हम वरुण दूत हैं और शत्रुता मे राक्षसों के समान हैं । हम यहाँ फिरते रहते हैं और रात्रि मे कोई यमुना मे प्रवेश करता है तो हम उसे पकड लेते है ।

सुनत सह सामंत, सह वहे दूतनि प्रति ।
 तुमत कोइ वल प्रवल, युद्ध जुद्धत परखे मति ॥
 हमहुँ सोम नृप सेव, हमहुँ देवनि आराधन ।
 हम छत्री छिति धरनी, हमु विद्या धारा धन ॥
 हम समन कोइ ससार महेँ, मरण जियन चित्तह डरण ।
 जीयहि जुद्ध भुव भुगवहि, मरहित सुर पुर हिरि सरण ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—सह=आवाज । वहे=उत्तर दिया । तुमत=तुम तो । प्रवल=प्रवल । जुद्धत=जुटने । परखे=परीक्षा करली । म त=शुद्धि से । सेव=सेवा करने वाले । देवि=देवताओं की । आराधन=आराधना करने वाले । छत्री=क्षत्री । छिति धरनि=पृथ्वी को धारण करने वाले, भूस्वामी । हमु=हमारी । धारा=खन धारा । धन=संपत्ति । चित्तह=चित्त में । डरण=डर नहीं । जीयहि=जियेंगे तो । जुद्ध=युद्ध में । भुव=पृथ्वी । भुगवहि=उपभोग करेंगे । मरहित=मरेंगे तो । हिरि=हरि । सरण=शरण ।

अर्थ—दूतों के वचन सुनकर सामंत कहने लगे—हे वरुण दूतो ! तुम कोई प्रचंड बलवान दीखते हो । अपनी बुद्धि से हमने युद्ध मे तुम्हारी परीक्षा करली है, किंतु हम भी सोमेश्वर के सामंत और देवताओं के आराधक हैं । हम पृथ्वी पर आधिपत्य रखने वाले क्षत्रिय हैं । हमारी विद्या और संपत्ति केवल खन की धार है । हमारे समान कोई वीर ससार मे नहीं है । हमारा मन जीने मरने से नहीं डरता । यदि हम जियेंगे तो पृथ्वी का उपभोग करेंगे और मर गये तो स्वर्ग मे हरि की शरण पावेंगे ।

दोहा

यह कहि रहि लग्ये लरण, गयन गुज उच्चार ।
 मानहु भारत अत कौ, भार उतारण हार ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—यहि=इह । यनि=वह । गयन=हाथी । गुज=गुजार । उच्चार=उच्चारिते हुए । मानहु=मानो । भारत अत=महामात के अतः । उतारण=उतारने वाला ।

अर्थः—यह कह कर सामंत हाथियों के समान गर्जने वाले वरुण दूतों से भिड़ गये और उन्हें उठा २ कर फेंकने लगे । उस समय वे ऐसे दिखने लगे मानों महा-भारत के अंत में दुर्योधन रह गया, उसे मारने का संकल्प करने वाला भीम अनेक रूप धरकर उपस्थित हुआ हो ।

काल संक आहुरहि, तार वज्रहि प्रहार सुर ।
जमुना सजल अंदोलि, वीर बुल्लंत गल्लह गुर ॥
कलह केलि सम भेलि, ठेलि कड्डेँ चावहिसि ।
एक प्राव वरखत, एक फारत नखनि कसि ॥

परि धाम मुच्छि विक्रम वलिय, जुद्ध निसाचर विषम अखि ।
वर वीर धीर धपे लरन, पोंहुँ फट्टत नृप सोम लखि ॥ ५२ ॥

शब्दार्थः—काल=यमराज । संक=पशकित होता था । आहुरहि=अबते हुए देखकर । तार वज्रहि=ताल वजाते हुए । सुर=स्वर । जमुना सजल=यमुना जल । अंदोलि=आन्दोलित । बुल्लत=बोलते हुए । गल्लह गुर=मारी आवाज से । सम=समान रूप से । भेलि=भेलते थे । ठेलि=धकेल कर । कड्डे=निकालते । चावहिसि=चौतरफ । फारत=चौरते । नखनि कसि=नाखून मार कर । परिधाम=जगह पर पड़ गये । मुच्छि=मूर्छित होकर । विक्रम=पराक्रम । वलिय=बली । निसाचर=रात्रि में फिरने वाले । विषम=असमान । अखि=कहकर, कहते हुए धपे=तृप्त होगये । लरन=लबने से । पोंहुँ=प्रमात होते २ । लखि=देखा ।

अर्थ—वरुण दूतों से भिड़ते हुए सामंतों ने यमराज तक को शक्ति कर दिया । उस समय ताल के साथ शस्त्राघात की ध्वनि होने लगी । जमुना का जल आन्दोलित होगया । गभीर ध्वनि करते हुए वे वीर समान रूप से युद्ध क्रीड़ा करने लगे और वरुण दूतों को धकेल कर दूर करने लगे, उस समय कोई पत्थर वरसा रहा था तो कोई नाखून से शरीर को क्षत विक्षत कर रहा था । अन्त में पराकूमी और धीर वीर योद्धा थककर यह कहते हुए मूर्छित होगये कि रात्रि में फिरने वाले इन वरुण दूतों का युद्ध विषम है, प्रातः काल के समय यह दृश्य राजा सोमेश्वर ने देखा ।

दोहा

ज्यों सैसव महँ जुव्वनह, तुच्छ २ सरसाहि ।

इमि निसि गत नभ रवि किरणि, उदित दिसाणि लसाहि ॥ ५३ ॥

शब्दार्थः—ज्यों=जैसे । सैसव=शैशव, शिशुकाल । जुव्वनह=यौवन । सरसाहि=शोभित होता है ।
इमि=इसी प्रकार । निसिगत=रात्रि चीतने पर । नम=आकाश । उदित दिसाणि=पूर्व दिशा ।
लसाहि=शोभा पाता है ।

अर्थः—जैसे बाल्यावस्था और युवा वस्था के संधिकाल के समय युवति के सौंदर्य
मे यौवन का उभार शोभा पाता है, उसी प्रकार रात्रि व्यतीत होने के बाद पूर्व दिशा
मे रवि-रश्मि (सूर्य-किरणें) शोभा पाने लगीं । बाला का शिशुत्व अज्ञात अवस्था
मे होने से रात्रि की ओर यौवन में जानावस्था होने से सूर्य की उपमा दी गई है ।

यौं रति रहि रवि उदिकर, ज्यों ससि कोरह राह ।

हरि डड्ढां धर रज्जई, कै हरि चंपत राह ॥ ५४ ॥

शब्दार्थः—यौ=ऐसे । रति=रात्रि । उदिकर=उदय होने पर । कोरह=किनारे । राह=राह । हरि=
ईश्वर (विराट-स्वरूप) । डड्ढां=दाढ़ों में । धर=पृथ्वी । रज्जई=शोभा पाती । कै=अथवा । हरि=सूर्य ।
चंपत=दगाता हो ।

अर्थः—सूर्योदय होने पर रात्रि इस तरह की रह गई जैसे ग्रहण (पर्व) समाप्त होने
पर चन्द्रमा की किनार पर राहु की श्याम रेखा मात्र रह गई हो अथवा जाज्वल्यमान
विराट रूप की दाढ़ों मे पृथ्वी दिखाई देती हो या सूर्य राहु को दबा रहा हो ।

परिय पच भर मुच्छि धर, रहि गज्जिव छिपि छान ।

तव लगि तहँ प्रथिराज रण, पत्तौ छत्रिनि भान ॥ ५५ ॥

शब्दार्थः—परिय=पड़ गये । पचधर=पाच योद्धा । मुच्छि=मूर्च्छित । गज्जिव=गर्जना करने वाले ।
छिपि=छिपकर । छान=गुप्त । तवलगि=तब तक । तटे=वहा । रण=युद्ध स्थल । पतौ=पहुंच गया ।
छत्रिनि भान=क्षत्रियसूर्य ।

अर्थः—सामंतों मे से ५ (पाच) योद्धा मूर्च्छित हो जमीन पर पड़ गये और गर्जना
करने वाले वरुण-इन्द्र छिपकर चुप हो गये । इतने मे वहा क्षत्रियों का सूर्य राजा
पृथ्वीराज आ पहुँचा ।

मुनत युद्ध तन विपकरिय, करिय २ जनु गाज ।

कै केहरि केहरि हक्यौ, वीर डरु मुनि वाज ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः—विष्करिय=काबू के बाहर । करिय=को । करिय=हाथी । गाज=गर्जना । कै=या । हक्यौ=बड़ा, हकाला । डंक=डंका । वाज=वज्रने लगे ।

अर्थः—युद्ध की वान सुनने से वह वेकाबू (तन फूल उठा) होगया और हाथी के समान गर्जने लगा । वह ऐसा दीख पड़ा मानों एक सिंह दूसरे सिंह पर आक्रमण करने के लिए उद्यत हुआहो । उस समय रण वाद्य भी बजने लगे ।

तहँन सत्र दिक्खे नयन, धर दिक्खे सामंत ।

तव्व विचारिय मध्य हिय, अव कह किज्जे मंत ॥ ५७ ॥

शब्दार्थः—तहँ=वहाँ । सत्र=रात्रि । धर=पृथ्वी पर पड़े हुए । तव्व=तब । मध्यहिय=हृदय में । अव=अब । कह=कहा । किज्जे=करिये । मंत=मन्त्रण, सलाह ।

अर्थः—वहाँ उसे साकार रूप में शत्रु नहीं दिखाई दिये, केवल पृथ्वी पर पड़े हुए सामंत गए ही नजर आए । तब पृथ्वीराज ने मन में विचार किया कि अब क्या किया जाय ?

साटक —

सादिख्यं नृपराज तात जलयं विमच्छ यंक्षया क्रधं ।

कालं केलिं य छंछि रुद्धित नई, रुद्रं रस् रत्तयं ॥

मत्तं तामस रस्स कस्सश्च सुरं, हालाहलं नैनयं ।

राजंजा प्रथिराज च्यतित मनै, पुच्छे गुरंसद गुरं ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—सादिख्य=उमे देखा । नृप राजा=रात्रों के राजा ने । तात=पिता । जलय=जल में । विमच्छ यक्ष्या=इच्छाओं से घृणा करने वाला । क्रुध=क्रोध युक्त । कालकेलि=कालक्रीड़ा, युद्ध । यच्छि=इच्छा । रुद्धित=रुकी हुई, बधी हुई । नई=नयेसिरे से । रत्तय=लीन । मत्त=मतवाला । तामसरस्स=तमोगुण के रस में । कस्सश्च=कैसे । सुर=देवता तुल्य । हालाहल=जहर । नैनय=नेत्रों में । राजजा=उस राजा का । च्यतित=चिंता युक्त । मनै=मनमें । पुच्छे=पूछा । गुरंसदगुरं=गुरुओं में श्रेष्ठ गुरु ।

अर्थः—जिसने इच्छाओं से घृणा करली है ऐसे अपने पिता सोमेश्वर को राजाओं के राजा प्रथीराज ने क्रुद्ध देखा । काला क्रीड़ा (युद्ध) की इच्छा जिसकी समाप्त हो गई थी वह पुन उसमें नये सिरे से दीख पड़ी और वह रौद्र रस में लीन

दिखाई दिया। उस राजा के लिए चिंतित होकर पृथ्वीराज अपने गुरु से प्रछने लगा—अहो यह देव तुल्य नरेश आज तमोगुण युक्त कैसे हैं और इनके नेत्रों में हलाहल क्यों छाया हुआ है।

दोहा

रवि तनया कर जोर करि, अस्तुति मंडी मुख ।
तू माता दुख भजनी, रंजनि सेवक सुख ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः—रवि तनया=यमुना । अस्तुति=स्तुति । मंडी=झी । रंजनि=खुश करने वाली ।

अर्थः—इसके बाद यमुना से हाथ जोड़कर स्तुति की और कहा हे माता । तू दुख दूर करने वाली और सेवकों को सुख देने वाली है ।

कवित्त

गगा मूरति विश्न, ब्रम्म मूरति सरसुत्तिय ।
जमुना मूरति ईस, दिव्य देवनि मुनि धुप्पिय ॥
मिली जाय जल गग, गग सागर अधिकारिय ।
तू सोमेसुर सूर, रोग दोषह तन टारिय ॥
अव सुभट सहित देवी सवनि, करि त्रिम्मल तन मोह मय ।
यह कहत जगि नृप मृच्छा, प्रति वुल्ल्यौ प्रथिराज तय ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—विश्न=विष्णु । ब्रम्म=ब्रह्मा । सरसुत्तिय=सरस्वती । ईस=महादेव । धुप्पिय=स्थापित की । सागर अधिकारी=ममृद में प्रवेश करने की अधिकारिणी अय=अय । सवनि=सवको । त्रिम्मल=निर्मल । जगि=दृष्ट हुई । प्रति=मे । तेय=वह ।

अर्थः—गगा विष्णु की, सरस्वती ब्रह्मा की और हे यमुना तू शकर का रूप मानी जाती है । इस दिव्य रूप की स्थापना देवताओं और मुनियों ने स्थिर की है । अतः मैं सब गगा में मिल गई हूँ और फिर गगा सागर में मिलने की अधिकारिणी हो गई हूँ । ऐसी तुम्हारी महिमा है । अतः हे यमुना । वीर राजा सोमेश्वर के सब रोग दोष तू ही टालने वाली है । अब सामनो सहित सबके शरीरों को इस मोह मायासे शुद्ध करदे । पृथ्वीराज के ऐसा कहने पर राजा सोमेश्वर मचेत हो गया और वह पृथ्वीराज से कहने लगा ।

साटक

त्वमे देह सु भाजनेव सरसा, जीव वन धानयं ।
दीहं अग्निं सु कर्म दारुण धरे, आवस्य चट्टूकरं ॥
सा रुद्धं जमं जोग द्विष्टि तने, अद्ध पल मध्ययं ।
जीवी वारि तरग चचल धिय, विस्मित्त अस्या नरं ॥ ६१ ॥

शब्दार्थः—त्व=तुम्हारी । मैं=मुझमें । भाजन=पात्र स्वरूप । सरसा=सरस । जा=जीव । धन=धन । धानय=धान्य । अग्नि=आगे के । दाह=दिनों में । सु=बहु । कर्म=काम । दारुण=कठिन । आवस्य=अवश्य । चट्टूकर=चाटूकार खुशामद खोरी । सा=वह, आत्मा रुद्ध=रुंधी जाती । जम=यमराज । जोग=योग, समय । द्विष्टि=देखा जाने पर । तने=शरीर । अद्ध=आधा । पल=वण । मध्यय=में । जावी=जीवन । वारि=जल । तरग=लहरें । धिय=बुद्धि । विस्मित=वकिंत होना । अस्या=ऐसे ।

अर्थः—तुम्हारी हमारी यह पात्र तुल्य सरस काया है । जिसमें जीव स्थित है जो अवश्य ही आगे जाकर धन धान्य के लिये कठिन कर्म और खुशामद खोरी करता है, किन्तु उस यम द्रष्टि का योग होते ही पल मात्र में उसके द्वारा रुंध (पकड़) लिया जाता है, यह जीवन जलतरंग के तुल्य अजुलान है, किन्तु जिनकी चचल-बुद्धि है ऐसे मनुष्यों पर आश्चर्य होता है ।

मा भूत आभूत वर्ष सु सत, आव र अद्भूत ।
तेम अद्वय दीह रैणि त अधं, खटवीय वृक्ष वालय ॥
पुण जौवन मधुमत रत्तय रग, व्याघ्र वृक्ष त्रि-नयी ।
कयं भूत संसार तारण गुणै, ससार निस्सारयम् ॥ ६२ ॥

शब्दार्थः—माभूत=नहीं हो पाता । आभूत=यह प्राणी । वर्ष स=वर्षों में । मत=मैं वर्ष । आ=आयु । वर=श्रेष्ठ । अद्भूत-अद्भूत है, आश्चर्यदायक है । तेम उममें से । अद्वय=अध आधा दीह=दिन । रैणि=रात्रि । त=वह । अध=आधी । खटवीय=घाघ । उस्=वर्ष । चानय=चानयान । पुणि=फिर । जौवन=यौवन । मदमत=मतवाला । रत्तय=लीन । त=मे में । व्याघ्र=घीमा । वृक्ष=वृक्षावस्था । विद्या=विश्वकारी । कय=कैसे, क्या, कौनसे मत=मैं कया है । मय र तारण=ससार में तरना । गुणै=गुणियाम । मयार निस्सारयम=ससार में कोई मय नहीं है ।

अर्थः—इस प्राणी का शतायु (सौ वर्ष) का होना प्राय असंभव है । यह श्रेष्ठ आयु आश्चर्य दायक है । उस आयु में से आधे दिन और आधी रात्रिया गुजरती है । उनमें से बारह वर्ष वाल्य काल के हैं उसके बाद प्राणी यौवन में मतवाला होकर प्रेम में लीन हो जाता है फिर वृद्धावस्था व्याधि के कारण विघ्नदायी होती है । अस्तु, कैसे ससार को पार किया जाय ? परिणाम स्वरूप ससार नि सार है ।

आसा अस्य सरोवरीय सलिल, पक्षी वर दुब्धय ।

सुख दुःख मध्य व्रच्छति तिय, साखस्य त्रिगुण वरम ॥

मोह पत्तय रक्त वर्ण च क्रमे, फूल फल धारण ।

एकस्त्रय सतोष दोषति गुना, अस्याय वा निगुनम् ॥ ६३ ॥

शब्दार्थः—आम=आशा । अस्य=यह । सरोवरीय सलिल=मजल सरोवर पक्षी=पक्षी । दुब्धय=दुविधा । व्रच्छति=वृत्त । तिय=वे । साखस्य=शाखा । त्रिगुण=त्रिगुण (सख रज तम) । मोहपत्तय=ममत्वरूपी पत्ते । रक्त=रक्त । च=के । क्रमे=कर्म । धारण=धारणा । एकस्त्रय=एक ही से । दोषतिगुना=दोष (रात्रि) के गुण युक्त (क्षिपाजेना) । अस्याय=इस आयु में । वा=गयवा । निगुनम्=निर्गुणमें, निर्युक्तोपासना ।

अर्थः—यह आशा सजल सरोवर रूपी है । जिसमें दुविधा, पक्षी, सुख दुःख वृत्त, त्रिगुण शाखा, मोह पत्ते, रक्त वर्ण कर्म, धारणा फल फूल हैं । उनकी तरफ से अज्ञात रखने को रात्रि के गुण तुल्य इस आयु में केवल सतोष या निर्गुण उपासना ही श्रेष्ठ है ।

ज्ञान ध्यान अस्तुति करी, भय सु प्रसन्नय देव ।

राज सहित सामत सब, जगि मूरछा एव ॥ ६४ ॥

शब्दार्थः—भय=हुण । प्रसन्नय=खुश । राज=राजा । सब=सब । जगि मूरछा=मूर्छा दूर हुई । एव=वह ।

अर्थः—इस प्रकार ज्ञान और ध्यान युक्त स्तुति करने पर देवता प्रसन्न हुए और सामंतों सहित राजा सोमेश्वर सचेत हुए ।

गधव मत्र सुतिष्ठि हिय, आराध्यौ प्रधिराज ।

अरण दोष तन ताप गय, उठि निद्रा जनु भाज ॥ ६५ ॥

धर्व । तिष्ठिहिय=हृदय में स्थान देकर । तन ताप=शारीरिक कष्ट । गय=गया,
दे हो । माज=दूर होने पर ।

कर राजा पृथ्वीराज ने गंधर्व मंत्र का जप किया, जिससे राजा और
जो वरुण दोष का कष्ट था वह दूर हो गया और सब इस प्रकार
नों निद्रा दूर हो गई हो ।

कवित्त

निसान दरवार, वज्जि भैरिय भुंकारणि ।

सहनाई सुर सग, वज्जि भंभिय भंकारणि ॥

नफफीरी नवरग, पंछ वज्जे दर वज्जिय ।

इला सैल नभ पूरि, वरिख वदल जनु गज्जिय ॥

गायति गान तरुणी तरुण, नृत्त होत नाटक अनत ।

वद्धाइ भई रणिवास महँ, कविन बुद्धि पसरे गनत ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—दरवार=मभा । भुंकारणि=भुनकार करती, आवाज करती, मनकती हुई । भंभिय=भभाभ ।
भंकारणि=भनकार करती हुई । नफफीरी=नफेरी । नवरग=नये तर्ज से । पंछ=पाच । दर=दरवाजा ।
इला=पृथ्वी । सैल=पहाड़ । नभ=आकाश । पूरि=पूर, भर । वरिख=वर्षा । वदल=वादल । गायति=
गाये जाने लगे । अनत=अनत । वद्धाइमई=वधाई बांटी जाने लगी, पारितोषिक दिया जाने लगा ।
रणिवास मह=अनत पुरमें । पसरे=प्रसरित हुई । गनत=गुनते हुए, वर्णन करते हुए ।

अर्थः—सभा भवन में नक्कारे, भैरी, सहनाई, भांभ, नफेरी आदि पांच प्रकार के
वाद्यों के बजने से पृथ्वी-पहाड़ और आकाश मंडल में उनकी आवाज इस प्रकार
भर गई मानों वर्षा ऋतु के वादल गर्जते हों, युवक और युवतियाँ गाने लगे, अनेक
प्रकार के नृत्य और नाटक होने लगे । अंतः पुर में वधाई बांटी जाने लगी ।
कवियों की बुद्धि उसका वर्णन करने को प्रेरित हो उठी ।

गाथा

क्यनं कृत नृप सोमं, पोडश दान विप्रयं द्यनं ।

जुध जीते दिव दूतं, अमुत वत्त प्रगटि छिति छई ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—कृत=किया । कृत=कर्म । विप्रय=विप्रों को । दान=दिया । दिवदूत=देवदूत, वरुण दूत । अभुत=अद्भुत । वत्त=वात । प्रगटि=प्रसीद्ध होकर । क्षिति आह=पृथ्वी पर फैल गई ।

अर्थः—राजा सोमेश्वर ने शुभ कर्म कर पोडश दान ब्राह्मणों को दिया और वरुण-दूतों पर विजय पाई । यह अद्भुत बात प्रसिद्धि प्राप्त कर पृथ्वी पर फैल गई ।

दनु देव सम जुद्धं, सुनिय सत्य त्रितिय दुतिआई ।

नर जुद्ध सम देवं, प्रगटी वत्त देस देसाई ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—दनु देव=देवदानव । सुनिय=सुना गया । सत्य=सतयुग । त्रितिय=त्रेतायुग । दुतिआई=द्वितीय, द्वार । देस देसाई=देश देशों में ।

अर्थः—सामंतों और वरुण-दूतों में देव-दानव युद्ध हुआ, जिससे दूसरा ही सत युग त्रेता द्वारपरादि युग दिखाई पड़े । यह वान देश देशान्तरों में फैल गई ।

मत्रिनि सरिस महीन्द्र, कमधज इन्द्र कुपियं काल ।

जम्बूदीप महीप, को मो सरिस मंडन सारह ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—मत्रिनि सरिस=मंत्रियों पर । महीन्द्र=राजा । कमधजइन्द्र=कमधजों का स्वामी (जय चंद) । कुपिय=क्रोध किया । काल=काल के समान । जम्बूदीप=जम्बूद्वीप, भारत । महीप=राजाओं में । मंडन सारह=लोहा लेने वाला ।

अर्थः—इस प्रसिद्धि को सुनकर कमधजों का स्वामी जयचंद अपने मंत्रियों के समस्त काल के समान क्रुद्ध होकर कहने लगा, जम्बूद्वीप के राजाओं में ऐसा कौन है जो मुझसे लोहा ले सके ?

दोहा

क्षिति छत्री जे छत्रपति, ते मो हुकम हजूर ।

मिट्टि सकै फुरमान को, मारि मिलाऊं धूर ॥ ७० ॥

शब्दार्थः—क्षिति=पृथ्वी । छत्री=क्षत्री । जे=जो ते=वे । हजूर=मेवामें । मिट्टि सकै=भेट मक्ता, लोप सकता । मारि=मार कर ।

अर्थः—पृथ्वी पर जितने छत्रवारी क्षत्रिय हैं वे सब मेरी सेवा में रह कर मेरी आज्ञा पालन करते हैं । मेरी आज्ञा का कौन उलघन कर सकता है ? ऐसा करने वाले को मैं ध्वंस कर धूल में मिलाने की शक्ति रखता हूँ ।

जगम्य वत्त चित्तह धरी, उट्टि महल पहु पंग ।

ग्रह पत्ते संभरि भनी, करन खलनि घटभंग ॥ ७१ ॥

शब्दार्थः—जग्य=यह । वत्त=वात-विचार । चित्तह=चित्तमें । धारी=किया । उट्टिमहल=समा से उठ बैठा । पहु पंग=पशुराज, जयचंद ग्रहपत्ते=घर को । समरी धनी=संभरेश्वर । करन=करने । खलनि=दुष्टों को । घट-भंग=नाश करना ।

अर्थः—ऐसा कहता हुआ सोमेश्वर के षोडश दान की ईर्ष्या से जलकर स्वयं ने यह करने का विचार चित्त में किया और सभा मंडप से उठ खड़ा हुआ । इधर दुष्टों को नाश करने वाले संभरेश्वर अपने घर की ओर रवाना हुए ।

वरुन दोष प्रथिराज मिटि, ग्रहे सपत्ते जाइ ।

देखि पराक्रमु पित्थ को, फुल्यौ अंग न माइ ॥ ७२ ॥

शब्दार्थः—ग्रहे=घर । सपत्ते=पहुँचे । जाइ=जाकर । पराक्रमु=पराक्रम । पित्थ=पृथ्वीराज । माइ=समाता ।

अर्थः—इस प्रकार वरुण दोष का निवारण कर राजा पृथ्वीराज घर पहुँचा । पृथ्वीराज के ऐसे पराक्रम को देखकर राजा सोमेश्वर अंग में फूला न समाया ।

सोम वध

(समय ३५)

कवित्त

गुज्जरधर चालुकक, भीम जिम भीम महाबल ।
कोइ न चंपै सीम, कित्ति वर रीति अचगल ॥
सोमेशर संभरिय, तास मन अंतर सल्लै ।
प्रथीराज दिल्लीस, रीस तस अतर वल्लै ॥
मिलि मत तत्त वुभक्कवि मरम, करिय सेन चतुरग सज ।
धर लेउ आज दुज्जन दवटि, एकछत्र मडोति रज ॥ १ ॥

शब्दार्थः—गुज्जरधर=गुजरातभूमि । चालुकक=क्षत्रियों की एक शाखा । चंपै=दवावे । सीम=सीमा ।
कित्ति=कीर्ति । वर=श्रेष्ठ । अचगल=अचल । तास=उसके । सल्लै=सालना, चुमना । दिल्लीस=
दिल्लीश्वर । रीस=क्रोध । तस=उसके । वल्लै=जलना, धड़कना । मिलि=मिलकर । मत=मन्त्रणा ।
तत्त=तत्त्वयुक्त, मार युक्त । वुभक्कवि=व्रम्हा, पूछा । गरम=गहरी, हृदय स्पर्शी । दुज्जन=दुर्जन ।
दवटि=दवाकर । मडो=मडन करो । ति=तुम । रज=राज्य ।

अर्थ —गुर्जरधरा का स्वामी चालुक्य भीम महाबली भीम के समान था । उसकी सीमा कोई दवा नहीं मकता था । उसकी कीर्ति श्रेष्ठ और रीति अचल थी । उसके मनमें सभरी नरेश सोमेश्वर चुभता था । उसके हृदय में क्रोध का कारण पृथ्वीराज का (सोमेश्वर के पुत्र का) दिल्लीपति हो जाना था । यही एकमात्र कारण था और इसीलिये उसने अपने सब मायियों के साथ मिलकर गभीरता से मन्त्रणा की । चतुरगिनी सेना सजा कर अपने सामने से उसने कहा कि दुश्मनों को दवा कर उनकी पृथ्वी तीन लो और तुम एक छत्र राज्य की स्थापना करो ।

बोलि कन्ह कट्टी नर्यद, बोलि रान्यग राजवर ।

चूडासम जेस्यय, वीरबौलगि देववर ॥

धौल हरै सुलितान, वीर सारंग मकवानं ।

जूनागढ़ तत्तार, सार लग्गौ परिमानं ॥

मत मंडि सज्जि चालुक्क भर, पुव्व वैरु साल्यौ हियैं ।

कित्तीक वात संभरि धरा, रहै रंगु चच्चरि कियैं ॥ २ ॥

शब्दार्थः—कट्ठी=काठी जाति का वृक्ष । नर्यद=राजा । चूडासम=चूडासमा जाति का वृक्ष । जेस्यव=जयसिंह । वीर धोलगि=वीर धवल (नाम विशेष , । धर=पृथ्वी । धोल हरे=धोलधरा (समव है ; धागधड़ा जो आज कल है) । सुलतान=शाह, राजा । मकवान=मकवाना वृक्ष (जो आज कल भाला वृक्ष कहलाते हैं) । तत्तार सार=तेज शस्त्र, तेज तलवार, तेज लोहा । लग्गो=चलाने वाले । परिमान=प्रामाणिक । मतमंडि=मंत्रणा करके । चालुक्क=चालुक्य वृक्ष, (आजकल सोलकी कहलाते हैं और रीवा आदि के वृक्षों वृक्षों में इसी शाखा के हैं) । मट=मट्ट, योद्धा । पुव्व=पूर्व । वैरु=वैर, वदला । साल्यो=डुमा । हियैं=हिय, हृदय । कित्तीक=कितनीसी । संभरि धरा=समरी की धरा । रहै=रहेंगे । रंग चच्चरि=रंगचर्चित, रक्त रजित । कियैं=करके ।

अर्थः— साथ ही काठीराज कन्ह, श्रेष्ठ वीर रानिंग राज, चूडासमा जयसिंह, पृथ्वी पर देवतुल्य वीर वीरधवल, धौलधरा (संभव है धागधड़ा रहा हो) का शाह, मकवाना वीर सारंग देव और जूनागढ़ के उन वीरों को जो तेज शस्त्र चलाने वाले थे, बुलाकर चालुक्य योद्धाओं ने मंत्रणा की और व्यूह की सजावट की । उनके हृदय में पहले का द्वेष भरा था । वे कहने लगे संभरी की धरा को जीतने की वात कितनी सी है, उसे तो हम रक्तरजित करके ही रहेंगे ।

गाथा

सोमक्ती रण जिता, केवा क्यन संभरी राजं ।

ते केली कलहतं, सालैं मूल खग मगगार्ह ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—सोजत्ती=सोभती (गुर्जदेशान्तर्गत) । जिता=विजय की । केवा=कहावत । ख्यात=कहानी । क्यन=की । समरीराज=पृथ्वीराज । ते=उस । केली=क्रीड़ा । कलहत=अंतर में कलह । सालैं=डुमे । मूल=मूल । खग मगगार्ह=खडग मार्ग ।

अर्थः—सोजत्री (गुर्जर देशान्तर्गत) के युद्ध में विजय कर संभरी नरेश (पृथ्वी-

राज) ने ख्याति प्राप्त करली थी और वह खड्ग-क्रीडा, शूल के समान चालुक्यों के दिल में चुभती रहती थी ।

फट्टै पहु फरमानं, धाए धरा जित्त तित्ताई ।

यं वड्डै सह सैन, ज्यौं भूमी नीर वड्डि सलित्ताई ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—फट्टै=फाड़े गये लिखे गये । पहु फरमान=राजा के आज्ञा पत्र । धाए=पहुँचाये । जित्त तित्ताई=यत्रतत्र । य=इस प्रकार । वड्डै=बड़े । वड्डि=बाढ़ पर आ गया हो । सलित्ताई=सरिता का ।

अर्थः—राजाशा का पत्र लिखकर यत्र-तत्र भू-भाग में भेजा गया । फिर समस्त सेना इस प्रकार बढ़ी, मानों पृथ्वी पर सरिता का जल बाढ़ पर आगया हो ।

दोहा

साम दाम गुन भेद करि, निरनै दंडति सार ।

चारि रूप चतुरंग मन, वर सिंघनि आकार ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—निरनै=निर्णय । दंडति=दंड ही । सार=तत्त्व युक्त । चारि=चार, श्रेष्ठ । चतुरंग=चतुर, पद । सिंघनी=सिंहों के ।

अर्थः—साम, दाम, भेद, नीति की गिणना कर जिनका श्रेष्ठ निर्णय दंड देना ही था और जिनका रूप श्रेष्ठ, मन पटु और आकार उत्तम सिंहों के समान था ।

इनहि समीप बुलाइ करि, बुल्लिय भीम नर्यद ।

ज तुम जपौ त करउ, तुम छत मो सुख न्यद ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—इनहि=ऐसा ही । बुल्लिय=रुहा । ज=जैसा । जपौ=कहौ । त=तैसा । करउ=करी । छत=ग्रस्त, रहते हुए । मो=मैं । न्यद=निद्रा ।

अर्थः—मेसे सामंतों को (वीरों को) ही पास बुला कर गुर्जरेश्वर भीम कहने लगा —जैसा तुम कहो, वैसा मैं करने को तय्यार हूँ, क्योंकि तुम्हारे कारण ही मैं सुख की नींद सोता हूँ ।

जयिय मत्रिनि मंत्र तव, मुनि भीमग सुदेव ।

धरती वर पर आपनी, ले तन किज्जै छेव ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—तव=तव । वर=वल । पर=पर ही । ले=लेकर, प्राप्त कर के । किञ्जै=करना चाहिये ।
देव=देह । खेह=नाश ।

अर्थः—तव मंत्रियों ने सलाह दी कि हे भीम देव । यह पृथ्वी शक्ति के कारण ही अपनी कहलाती है । इसलिये इसे प्राप्त करने के लिए शरीर का नाश कर देना चाहिये ।

साटक

भूमीनं धर धम्म क्रम्म निरतं, वंधो वधे पांडवं ।
भूमी काज दधीच अस्ति^१ मंगियं, वज्र करं कारणं ॥
केकइयं भूकाज रामय वनं, दसरथ्य मंगेवरं ।
साम्भूमी कित कारनेव सरसा; स्नेहानयं भू भयं ॥ ८ ॥

प्रा० पा० १ सशोधित ।

शब्दार्थः—भूमीनं=भूमिको । धम्म=धर्म । क्रम्म=कर्म । धरम=धारण करना निरतं=लौन । वंधो=माइयों को । वधे=भारे । पांडवं=पांडवों को । काज=कारण । दधोव=दधीचि ऋषि । 'अस्ति=अस्थि । मंगियं=मागा । वज्र बाणी, इन्द्र । 'कित कारनेव=किया है कावी । सरसा=श्रेष्ठ । स्नेहानयं=प्रेम पूर्वक लाना चाहिये ।

अर्थः—पृथ्वी प्राप्त करने के लिये धर्म-कर्म में निरत रहने वाले पांडवों ने भाइयों का वध किया था । पृथ्वी के लिये ही इन्द्र ने दधीचि ऋषि से (वज्र के लिये) अस्थियाँ मांगी और उसकी मृत्यु का कारण बना था एवं रानी केकई ने राजा दशरथ से राम को वनवास दिलाने का वर मांगा था, ऐसी भूमि के लिये जो पुरुष साधना करते हैं वे ही पुरुष अच्छे हैं । अतः प्रेम पूर्वक ऐसी पृथ्वी लानी चाहिये ।

कवित्त

जा जीवन जग पाइ, आइ ख नी रस रंगहि ।
जीवन बलह विनोद, करिस रक्खहि मन प गहि ॥
जा जीवन कज्जै कपूर, पूरण प्रभू कोपहि^१ ।
जा जीवन कारणह, कित्ति सा धर्म सु रोपहि ॥

जिहि जीवन काज जप-तप करहि, भवर गुप्ता साधहि अवस ।
तिहि जीवन त्यागि मडहि कलह, तौ लम्भहि भुम्मी सरस ॥ ६ ॥

ग्रा पा १ सशोधित ।

शब्दार्थः—रवनी=रमणी । बलह=शक्ति । प=पन, प्रतिज्ञा । गहि=ग्रहण की । कजे=कर्ज । कपूर=कपूर । कोपहि=कोप करता है । किंति=कीर्ति । साधर्म=अपने धर्म । रोपहि=रोपना, स्थान देना, स्थापित करना । अवस=अवश्य । मडहि कलह=कलह का मडन करता है, युद्ध करता है । लम्भहि=प्राप्त करता है । सरस=श्रेष्ठ रस, प्रेम ।

अर्थः—जिस जीवन को प्राप्त कर पृथ्वी पर आकर प्राणी रमणी के रस रग में रम जाता है और जिस शक्ति का खेल प्रदर्शित करने को मन से प्रतिज्ञा करता है किन्तु उसी जीवन का, ईश्वर के क्रोध करने पर कपूर तुल्य नाश हो जाता है (अर्थात् कपूर के समान उड़ जाता है) । ऐसे जीवन का मुख्य ध्येय एक मात्र कीर्ति और धर्म को स्थान देना ही है । जिस जीवन की रक्षा के लिये मनुष्य जप-तप करता है और आत्मा रूपी भौरे को ब्रम्हाण्ड में चढ़ाने की माधना करता है ऐसे जीवन का मोह छोड़ कर जो युद्ध करता है वही पुरुष पृथ्वी का श्रेष्ठ प्रेम प्राप्त कर सकता है ।

दोहा —

सो जीवन इम पहुनि कर, अन्धित सती समान ।
चावदिसि डारै निडर, तो लम्भै पिम पान ॥ १० ॥

शब्दार्थः—पहुनि=पाहुना, मेहमान । अन्धित=अन्तत । चावदिसि=चारों ओर । लम्भै=प्राप्त करता है । पिम=प्रेम ।

अर्थः—जीवन को अतिथि समझकर सती के हाथ के अन्तत के समान चारों ओर (प्रज्ज्वलित चिता के) निर्भयता युक्त विखेर देता है वही पृथ्वी का प्रेम प्राप्त कर सकता है ।

सुनत मन चल्लिय नृपति, सज्जि सैन चतुरग ।
जनु बहल खह उन्नण, दिष्टिन परै नभग ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—मन=मनषा । बहल=बादल । खह=आकाश । उन्नण=उमड़े । दिष्टि=दृष्टि । नभग=आकाश ।

अर्थः—इस प्रकार मंत्रणा कर भीम चला और उसकी चतुरंगिनी सेना सज कर इस प्रकार चली, मानो आकाश मंडल में बादल उमड़ कर चले हों। उसके चलने से उड़ती हुई धूल के कारण आकाश दिखाई नहीं पड़ता था।

छत्र दडि सिर मंडिनृप, त्रखित वीर रसपान ।

यों सहसेन विराजई, ज्यों ज्योग्यंद्र जुवान ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—त्रखित=वृषित । जोग्यद्र=योगेन्द्र । जुवान=युवक ।

अर्थः—वीर रस के प्यासे उस राजा ने स्वर्ण दंड युक्त छत्र को सिर पर धारण किया, वह सेना के मध्य में इस प्रकार सुशोभित था मानो युवक योगींद्र हो। (जवानी और तप का तेज धारण किया हो)।

सिली मिली कज्जल वरण, पिक्ख भयानक भंति ।

तिन अग्गे धनुधर मँडे, तिन पच्छै गज दंति ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—सिली=अग्नि, सेना । पिक्ख=दीखपड़ी । मति=मौंति । मँडे=सुशोभित हुए । पच्छै=पीछे ।

अर्थ—एकत्रित सेना कज्जल वर्ण सी भयानक दिखाई पड़ती थी, उसके अग्र-भाग में धनुषधारी और उनके पीछे हाथियों की पंक्ति थी।

कवित्त

उत्तर वै कलहंत, रोह रत्तौ प्रथिराजं ।

सोमेसुर दिल्ली सु, रक्खि, सामत समाजं ॥

खीची राउप्रसंग, जाम जहौं अधिकारी ।

देवराज वगरिय, भान भट्टी खल हारी ॥

जदिग वाह पगार भर, वली राउ वलि भद्रसम ।

इत्तने रक्खि कयमास सँग, कलह कुंवर क्यन्त्रो सुक म ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—उत्तर वै=उत्तर दिशा के । कलहत=कलहकारी । रोह=रास, क्रोध । रत्तौ=लीन, वश ।

दिल्ली=दिल्ली । खलहारी=दुष्टों का नाश कर्ता । कलह=युद्ध के लिए । क्रम=चला । --

अर्थः—इधर कलह करने वाले उत्तर दिशा के राजाओं पर चढ़ाई करने के लिये कुमार पृथ्वीराज क्रोधित होकर चला और अपने पिता सोमेश्वर को दिल्ली की रक्षा

के लिये श्रेष्ठ सामंतों के साथ रक्खा । जिनमे प्रमुख प्रसंगरावखींची, मंत्री जाम-
राय यादव, देवराज वगरी, दुष्टों का नाशकर्त्ता भानराय भट्टी, वीर उद्दिगवाह
पगार, बलवान बलिभद्र राव और कयमास आदि थे ।

दोहा —

जिन कठनि दिल्ली नगर, ते रक्खे पृथिराज ।

रसित स्वामि अभिअन्तरह, कलहनि यछत काज ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—कठनि=गले से । दिल्ली=दिल्ली । रसित=रसिक । अम्यतर=हृदय के अंदर । कलहनि=
कलह के । यछत=इच्छा करता है ।

अर्थः—जिनके कठों से दिल्ली नगर लगा हुआ था (दिल्ली राजा का भार जिन
पर निर्भर था) ऐसे सामंतों को पृथ्वीराज ने वहीं रक्खा और उस सामंतों के कलह
प्रिय स्वामी ने अपने मन को युद्ध में लगाया ।

सुनत पुकारति छोह छकि, सत्तिय सत्त समान ।

चढत सोम चढू हयनि, (ज्यौ) व्यटि नछित्रनि भान ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—ति=वह । छोह=उत्साह । छकि=छलकना । व्यटि=बीटना, घेरना, आस पास होना ।
नछित्रनि=नक्षत्र । मान=मानु, सूर्य ।

अर्थः—डगर चालुक्यों के आने की खबर सुनते ही सोमेश्वर ने इस प्रकार उत्साह
छलकने लगा जैसे सतियों में सतिव्रत भक्तकृता हो । उसके घोड़े पर चढ़ते ही अन्य
अश्वारोही भी अपने २ घोड़ों पर चढ़कर उसके आस पास इस प्रकार हो गये, मानो
सूर्य, नक्षत्रों से घिरा हुआ हो ।

घनवन मम सोमेश सजि, गज्जि सेन चतुरग ।

कोविद गुनमन ज रमत, त्यौ भर च्यतत जग ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—घनवन=वदलों । कोविद=पंडित । ज=जैमे । रमत=रमण करता है, चितन करता है ।
भट्ट=योद्धा । च्यतत=चितन करने ।

अर्थः—सोमेश्वर की सेना की सजावट, वादलों के समान हुई और वह चतुरगिनी
सेना गर्जने लगी । पंडितों का मन जिस प्रकार गुण का चितन करता है उसी तरह
योद्धागण युद्ध का चितन करने लगे ।

कवित

नाग कलमलि भार, सैन सज्जन रण रज्जन ।
 दे दुवाह चालुक्क, भीम भारत सलगन ॥
 सोभक्ती वर वैर, वहुरि हाला हलु मच्यौ ।
 ण रणि निघट्टी आउ, लेखु लंघै को रच्यौ ॥
 करि न्हान दान इष्टान जय, भर अभंग सज्जे समुद ।
 विगसंत नयन दिक्खिय वयन, मनहु प्रात फुल्ले कमुद ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—नाग=शेषनाग । कलमलि=तिल मिलाना । सैन=सेना । सज्जन=सजी । रज्जन=सुशोभित हुए । दे दुवाह=हाथ प्रसार कर मिड़ना । सलगन=लगन सहित । सोभक्ती=सौजत्री । वहुरि=पुन । हालाहलु=हलाहल, जहर । मच्यौ=फैला । णरणि=नरनि, नरोंकी । निघट्टी=खतम-हुई । आउ=आयु । लेखु=लेख, ब्रह्मा के लिखे हुए । लंघै=लोपै । को=कौन । रच्यौ=लिखे हुए । न्हान=स्नान । इस्टान=इस्ट को । समुद=मोद सहित, प्रसन्नता युक्त । विगसत=लिखे हुए । दिक्खिय=देखा, देखे । वयन=दूसरोंने । कमुद=कुमुद अरुण कमल ।

अर्थः—सोमेश्वर की चढ़ाई के भार से नाग (शेष नाग) तिलमिलाने लगा और सेना सजकर युद्ध के लिये सुशोभित हुई । हाथ बढ़ाकर चालुक्य वीरों से मिड़ने के लिये वे वीर इस प्रकार तय्यार हो गये, मानो महाभारत युद्ध के समान भीम युद्धार्थ उद्यत हुआ हो, सौजत्री में होने वाले उस वैर ने पुन हलाहल विष का रूप धारण कर लिया । उस युद्ध में मनुष्यों की आयु समाप्त होने लगी, सत्य है, विधि अक्रियत लेख को कौन बदल सकता है ।

शक्ति सपन्न वीरों ने स्नान दान कर इष्ट का जाप किया और वे प्रसन्नता पूर्वक युद्धार्थ तत्पर हो गये । उस समय उनके खुले हुए नेत्र शत्रुओं को ऐसे दिखाई पड़े, मानो प्रात होने पर अरुण कमल खिले हों ।

त्रिविधि साज बढ़िइय अवाज, वज्जि भेरिय कोकिल सुर । -
 भँवर रुज्ज सुंकार, चोर मोरह सु तुतवर ॥
 वन वसंत सम फौज, नच्चि तुक्खार त्रिभंगिय ।
 रण रत्तौ मोमेन, भीम भारत्य अभंगिय ॥

दल भरकि कंक काइर सरकि, हरखि सूर वडिदय करसि ।

कन्ह नरचद पृथिराज बिनु, सुभर समर मडिय सरसि ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—त्रिविध=तीन प्रकार के, शीतल मद सुरभित । साज=मजक । वडिदय=बढी । अवाज=आवाज । वज्जि=बजी । मेरि=वाद्यविशेष । सुर=स्वर । रुज्ज=रुंधी हुई । भुँकार=भकार, गुनगुनाहट । चौर=चँवर । मोरह=मोह, सेहरा, मजरी । नुतवर=नवीन । वन=नी । तुक्खार=घोडे । त्रिमगीय=तीन बलखाते हुए । रत्तो=लीन । मरकि=मड़का, मडकना । कक=युद्ध । काइर=कायर । सरकि=सरकना, खिसकना । वडिदय=बढ गया । करमि=कर्षण, खींचातान, सवर्ष ।

अर्थ—सोमेश्वर की सेना ने वसन्त का रूप धारण किया । उसका चलना त्रिविध पवन के समान हुआ । शीत रूप में जाकर शत्रुओं के हृदय को प्रकपित किया और मंद-मद भूमती हुई वह चलने लगी एवं सुगंधित रूप में यश सौरभ फैलाया । उसके प्रयाण से चारों ओर नाद फैल गया और भैरी के स्वर ने कोकिल के स्वर का काम किया । हिलते हुए चँवरो की ध्वनि ऐसी लगी जैसे रूँधे हुए भँवर के गुंजार-ध्वनि हो । बहादुरों के सिर पर वँधे हुए मौडों (सेहरा) ने नवीन मजरियों की शोभा पाई, उस समय त्रिमगी रूप में घोडे नाचने लगे । वीर सोमेश्वर रण में इस प्रकार लगा था, जैसे अमर वीर भीम महा-भारत युद्ध के समय देखा गया था । उसके आतक से शत्रु-सेना भयभीत हो गई । कायर युद्ध से भागने लगे । बहादुरों में हर्ष और सवर्ष बढ़ा । पृथ्वीराज के न होते हुए भी नर-नाहर पीर कन्ह ने उस समय आगे बढ़ कर श्रेष्ठ युद्ध की रचना की ।

जदिन जीव य जम, कम्म तदिन जम पन्ध्रै ।

सुक्ख दुक्ख जय अजय, लोभ माया तन तन्ध्रै ॥

काल कलह सप्रहो, मोह पजर आलुद्वौ ।

मुकति मग्गु सुभयोन, ग्यान अतह कय सुद्वौ ॥

प्रतिव्यव अथ जमह जुगति, गुगति कम्म सह उद्वरे ।

केवल मुंधर्म छत्रिय तनह, कन्ह कक जौ सुद्वरे ॥ २० ॥

शब्दार्थ—जदिन=निम्न दिन । जीव=प्राणी । य=इस तरह । जम=जम पाता है । कम्म=कर्म ।

तव ।=उपनि । नम=यत्नगान । पन्ध्रै=पीछे । तन्ध्रै=तरावना, टेना । आलुद्वौ=उलझा । मग्गु=

मार्ग । सुमन्मयौन=नहीं सूझा, नहीं देख सका । अतह=अत में । वय=कैसे । सुद्धौ=शोध सकता है ।
अव=जल । जंमह=जन्म । छगति=रचना । भुगति=भक्ति । क्रम्म=कर्म । सह उद्धरै=सब उद्धार पाते
हैं । तनह=का । कक=युद्ध । सुद्धरै=सफल हों ।

अर्थ:—युद्ध रत कन्ह कहने लगा— प्राणी जिस दिन से जन्म लेता है, उसी दिन से उसके पीछे कर्म, थम, सुख-दुःख, जय-पराजय, लोभ, माया आदि लग जाते हैं और उसे छेदते हैं । काल के कलह में पड़कर उसका तन मोह में उलझ जाता है । इसी से उसे मुक्ति मार्ग नहीं सूझता और अंत में भी वह किसी प्रकार ज्ञान की खोज नहीं कर पाता । इस जन्म की रचना जल में पड़े हुए प्रतिविम्ब के तुल्य है (अर्थात् आत्मा परमात्मा का प्रतिविम्ब है, परमात्मा वास्तविक और आत्मा छाया रूप में है) । भक्ति ही सब कार्यों का उद्धार कर पाती है, किन्तु कृत्रियों का एक मात्र धर्म युद्ध में सफलता प्राप्त करना ही है ।

सज्जि सकल सन्नाह, दाह जुनु दंग लपट्टिय ।

छुट्टिय पट्टि नयनं, द्रुवन दल दिक्खि दपट्टिय ॥

सुमरि सहाइक देवि, थड्य दंडुभी गयनं ।

तेगवेग भमभमी, मच्चि आरिद्ध भयनं ॥

फुलधार थार धर कन्ह पर, करवर छुट्टिय छह घरिय ।

पग सट्टि नट्टि भीमग दल, वल अभूत कन्ह करिय ॥ २१ ॥

शब्दार्थ:—मनाह=कवच । दाह=दावाग्नि । दंग=दगे में, युद्ध में । लपट्टिय=लिपटी पट्टिनयनं=आँखों की पट्टी । द्रुवन=शत्रु । सुमरि=स्मरण किया । दंडुमी=दु दूमी, नगाड़ा । गगन=आकाश में । तेग=तलवार । वेग=वेग के साथ । भमभमी=भनभनाई । आरिद्ध=भड़, बार । मयनं=मयानक । फुलधार=पैनीधार । धर=घड़, काया । करवर=वलवान हाथों से । घरिय=घड़ी तक । पग=कदम । सट्टि=साठ । नट्टि=मगा । भीमग=भीम का । अभूत=अद्भुत ।

अर्थ — कवच धारण किये हुए सब ऐसे दीख पड़ते थे, मानो युद्ध स्थल में दावाग्नि की लपटे धधक पड़ी हों उसी समय कन्ह के आँखों की पट्टी जोली गई और वह शत्रुदल को देखते ही झपट पड़ा । उसने अपनी साथ देने वाली देवी का स्मरण किया । जिससे आकाश मण्डल मंडुन्डुभी वजने लगी और भयानक युद्ध

मच गया। वीर कन्ह की काया पर शुत्रुओं के चलवान हाथों से तलवार की तीखी धार पड़ती रही। किन्तु वीर कन्ह के अद्भुत बल प्रदर्शित करने से चालुक्य भीम की सेना साठ कदम भाग कर पीछे हट गई।

कहर भगर सम खेल, ठेल सेलणि ठेलिज्जहि ।
 इक्क धुकत धर दुट्टि, इक्क बत्थनि मेलिज्जहि ॥
 इक्क कमंध उठन्त, इक्क अंतन आलुम्भहि ।
 इक्क हत्थ पग खिरहि ठिक्कि खग-पग विनु भुज्भहि ॥
 तरफरहि इक्क धर सीन जुनु, रनु खवन्न छत्रिनि कर्यउ ।
 घन घाइ घुंमि घट धुक्कि धर, इमि सु जुद्ध कन्हह मिर्यउ ॥२२॥

शब्दार्थः—कहर=विघ्न। भगर=एक प्रकार का खेल, जिसमें नाट्यकार प्रत्येक प्रग को कटा हुआ अलग अलग गतलाता है। ठेल=ठिलकर। सेलणि=बछों को। ठेलिज्जहि=ढकेलता, चलाता। धुकत=लुढ़कता। दुट्टि=टूट फूट कर, फट कर। बत्थनि=बाहुपाश। मेलिज्जहि=डालता, गुथता। कमंध=खण्ड। अंतन=अतड़ियों में। आलुम्भहि=उलभता। ठिक्कि=टेक कर। खग=खड़। भुम्भहि=जूभता, सिद्धता। रनु=रण। खवन्न=रमण, खेल। घन=निशेप। घाई=घात। घु मि=भूमने लगा। घट=शरीर। धुकि=लुढ़का। मिर्यउ=मिटा।

अर्थः—उस समय विघ्न स्वरुपी भगर के समान खेल कन्ह द्वारा ठन गया, वीर उठा २ कर बर्छा चलाने लगे। कोई वीर कटकर पृथ्वी पर लुढ़क जाता था और कोई बाहुपाश में गुथ जाता था, कोई बिना सिर के उठता था, कोई अतड़ियों में उलभ जाता था, किसी का एक हाथ और एक पैर फट जाता था, कोई बिना पैर ही तलवार टेक कर भिड़ जाता था और कोई मच्छी की तरह तड़फड़ाता था, ऐसा क्षत्रियों में उसने खेल रचा, अतः में विशेष धावों के कारण घायल होकर उमड़ा शरीर भूमता हुआ पृथ्वी पर लुढ़कता दिखाई दिया। इस प्रकार वह वीर कन्ह युद्ध-स्थल में मिटा।

क्रिया दनि विनु दत, सुनउ गीमनि विनु दयनि ।
 हय भयनीय विनु नरणि, सेनभयमह क्रिय भू यनिय ॥
 सुआ विनु कीगनाल बाल वर विनु नटि ठिक्किय ।
 पलनारी पत परि, उर दन्हमय भिन्धिप ॥

क्यंनी सु किति भुम्मी अचल, सचल सस्त्र सह भुम्भुरिय ।

मय मंतमंत महि यों डुरिय, मनहु वाइ ब्रच्छह गुरिय ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—क्रियव=र दिया । दति=हाथी । दत्त=दात । क्यनिय=किये । हय=बोहे । नरथि=नर, सवार । भ्यमह=भीम की । भूयनिय=भीनी, कम । खुण्या=बुधा । बाल=वालाएँ, अत्तराएँ । वर=पति । पलहारी=पलचारी । पलपूरि=पल की पूर्ति कर । मय=मयानक । मिक्खिय=मेघ । क्यंनी=की । किति=कीर्ति । सचल=चचल । भुम्भुरिय=भाइ दिये । मयमत=मतवाला । मत्त=हाथी । डुरिय=लुढ़क गये । मनहु=मानो । वाइ=वायु । ब्रच्छह=वृक्ष । गुरिय=लुढ़क गये ।

अर्थः—वीर कन्ह ने हाथियों को दंत, योद्धाओं को शीश, और घोड़ों को सवार विहीन कर भीम की सेना को कम कर दिया, काल को लुधा विहीन कर दिया । उस समय अप्सराएँ वर विहीन नहीं दिखाई पड़ी । पलचारियों के पल की पूर्ति करता हुआ वह बहादुर कन्ह भयानक आकृति का बन गया । चंचल शस्त्रों से शत्रुओं को मार कर पृथ्वी पर अपनी कीर्ति को अमर कर दिया । उस मतवाले के द्वारा हाथी इस-प्रकार पृथ्वी पर लुढ़क पड़े, जिस प्रकार हवा के कारण वृक्ष गिर पड़ते हैं ।

रिद्धि सिद्धि वित्थुरिय, लुत्थि पर लुत्थि अहुट्टिय ।

श्रोनि सलिल वढि चलिय, मरण मन किंकन जुट्टिय ॥

कमल सीस वहि चलिय, नयन अलि वास सुवासिय ।

जंघ मकर कर मीन, कच्छ खुपरि खग त्रासिय ॥

पोयंनि अंत सेवाल कच, अंगुलि-कर-पग मूरंग भरि ।

चहुवान सूर सोमस रण, भीम भयानक जुद्ध करि ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—वित्थुरिय=विस्तृत । लुत्थि=शत्रु । अहुट्टिय=अहर्गर्ह, लग गई । श्रोनि=श्रोणित । सलिल=जल । वढि चलिय=वाढ पर आगया, बढ़ चला । किंकन=कंकाल, शरीर । जुट्टिय=जुट पड़े । अलि=मवरो । वास=सौख्य, सुगंध । सुवासिय=वासना, यश सौख्य । कच्छ=कच्छप । खुपरि=खोपड़ी । वासिय=तरासी हुई, कटी हुई । पोगनि=पद्मलता, या कुम्भेदिनी, अत=अतही । सेवाल=काई । कच=केश, भूयग=भु गरी (छोटी मच्छिया) । भरि=कटी हुई । रण=रणस्थल । जुद्ध=युद्ध ।

अर्थः—कन्ह के पश्चात् स्वयं चाहुआन नरेश सोमेश्वर ने रणस्थल में भीम क साथ भयानक युद्ध किया । उस समय रणस्थल में मृतकों के ढेर इस प्रकार लग गये

मानो ऋद्धि सिद्धि का विस्तार हुआ हो । मरने का संकल्प कर कंकाल युद्ध में जुट पड़े । जिससे शोणित की सरिता बाढ़ की भाँति वह चली । उरा समय बहते हुए शीश कमल की, नेत्र भ्रमरों की, यश-सौरभ सौरभ की, जघा मकर की, हाथ मीन की खड्ग से काटी हुई खोपड़ी कच्छप की, आंतड़ियाँ पद्मलता की, केश-काई की और कटी हुई हाथ पैर की अंगुलियाँ मंगुरी (छोटी मच्छिये) के समान शोभित होने लगी ।

दोहा

हय गय जुद्ध अनुद्ध परि, वहिग सार असरार ।

मानो जालुग अत को, आनि सपत्तौ पार ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—अनुद्ध=अनउर्ध्व, नीचे, जमीन पर । वहिग=वह गया, चल पड़ा । सार=लोहा । असरार=बुरी तरह । जालुग=जाल, पाश । अत को=यमराज का । सपत्तौ=आ पहुँचा, पार=सीमा, छोर ।

अर्थः—लोहे से लोहा बुरी तरह टकराया जिससे हाथी घोड़े धराशाई हो गये । ऐसा झट होने लगा मानो यमराज की जाल-पाश का छोर समाप्त होने आगया हो ।

कवित्त

सोमेसुर अरि रूर, ढाहि दथ नै वर वानै ।

(ज्यौ) नल कृधर मनि ग्रीव, जमल भज्या तर कान्ह ॥

वे सराप नारद प्रमान, दरसन हरि लद्विय ।

उत्तमग उत्तरै, सार कट्ढै वर वडिह्य ॥

त्रिघघात घात मत्तौ कलह, असुर स-सुर मत्तौ महन ।

कट्ढै सु रत्न किन्तीय मयि, सु कवि चद किर्त्तौ कहन ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—अरि=यद्वर । रूर=शूर, शूरवीर । ढाहि दथनै=ढाहा दिये । वानै=मात्र । वर=साज-धारी । जमल=यमल, युगल, दो । भज्या=भान स्थि तोड़ दिये । तर=तरा, उत । कान्ह=कान्हा ने । वे=वे । सराप=साप । लद्विय=पास लिया । उत्तमग=भिर । उत्तरै=उतर्गने पर, उगने पर । कट्ढै=निहाला । सर=येष्ट । वडिह्य=वृद्धि दी । त्रिघघात घात=उग नग्न का यावत । मत्तौ=मत्तग्या । ग=मदित । सर=देवता । मन्=मयन । कट=निघात दिये । किन्तीय=कर्त्ति । किन्तीय=कहा न ।

अर्थ:—सोमेश्वर डट कर श्रेष्ठ साजधारी बहादुरों को इस प्रकार गिरा दिया, जिस प्रकार कृष्ण ने नल कूबर और मनीषीव नामक दो वृक्षों को तोड़ दिया था (उखेड़ दिया था)। उन वृक्षों ने नारद का श्राप मान कर हरि के दर्शन प्राप्त किये, किंतु इन वीरों के सिर कट जाने पर भी लोहा चलाने में वृद्धि की। तुरी तरह के आघात से उनकी कलह-मंत्रणा, देव-दानवों के समुद्र-मंथन की भांति तुरी तरह के आघात की मंत्रणा थी, उन्होंने रण सिंधु का मंथन कर कीर्ति रूपी रत्न को निकाल लिया। कवि (चंद्र) उसका कहाँ तक वर्णन कर सकता है ?

समर समद भीमंग, मद्धि वड़वानल राज ।
चाहुआन चालुक्क, रोस जुट्टे वल साज ॥
दल दच्छिन जदु जाम, कलप अंतीकर कुयौ ।
ता मुखे खंगार, सार अगगी धर रुयौ ॥
विरचे कि महिस बलिबंड वल, दल समूह चौदंत हुव ।
त्रिप काम जाम डक जहर भर, वहर रूप पिकखे ति दुव ॥ २७ ॥

शब्दार्थ:—समद=समुद्र । भीमंग=भीम और उसके साथी । मद्धि=वीच में । राज=राजा सोमेश्वर । रोस=क्रोध करके । जुट्टे=जुटपड़े । वल माज=वल को सजाते हुए, वलकी वृद्धि करते हुए । दल दच्छिन=सेना के दक्षिण पार्श्व से । जदु जाम=जामराज यादव । कलप=कल्प । अंतीकर=ग्रमराज । कुयौ=क्रोध किया । तामु-वखै=उसका सामना करने को । खंगार=नाम विशेष । सार अगगी=लोहाग्नी । धार=धारण करके । रुयौ=रुप गया, डट गया । विरचे=विरचना, जोश दिलाना, प्रचारना । महिख=महिष । बलिबंड=बलिबंड, वलवान । दल समूह=मेन्य समूह । चौदंत=मस्त हाथी (दात से दात मिलाते हैं उसे चौदंत कहते हैं) । हुव=हुए । जाम=जामराय । डक्क=अकेला । भर=भरदी । वहर=एक प्रकार का खेल (जिममें मारकाट का दृश्य बतलाते हैं) । पिकखैति=देखा गया । दुव=दूसरा, विपत्ती ।

अर्थ:—युध्द-सिंधुरूपी भीम और उसके साथी थे । उनके मध्य वाड़वाग्नि रूपी राजा सोमेश्वर था । उस समय चाहुआन और चालुक्कवीर शक्ति की वृद्धि करते हुए क्रुद्ध हो भूम पड़े । यह देख कर जामराय यादव ने मृत्यु समय को सिध्द करने के लिये चाहुआनी सेना के दक्षिण पार्श्व पर जा कर क्रोध किया । उसका सामना करने के लिये लोहाग्नि बरसाने वाला चालुक्की सेना का वीर खंगार डट गया । उस समय वे दोनों वीर ऐसे टिक् पड़े मानो दो वरिबंड महिष एक दूसरे पर शक्ति आजमाने के

लिये जोश दिला रहे हों। था उस दल समूह में वे (मतवाले हाथी) चौन्त हो गये हों। अपने स्वामी के काम के लिए अकेला जामराय शत्रुओं को जहर के समान दिखाई देता था। उसका सामना करने वाला विपक्षी भी वहर खैल करने वाले (एक प्रकार का खैल जिसमें मारकट का दृश्य दिखाया जाता है) की भांति साक्षात् रूप में दिखाई दिया।

गाथा

य लगै रण सूरं, मत्ते त्रिखभ रोस रंगाई ।

गज्जै धर खुर खुदै, तक्कै घाइ अप्प अग्गाई ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—य=ऐसे, इस प्रकार। लगै रण=युद्ध में लीन हो गये। सूर=बहादुर। मत्ते=मतवाले। त्रिखभ=वृषभ। रोस=सक्रोध। रंगाई=रगे हुए, सने हुए। गज्जै=गर्जना करते हुए। खुर=पैर की पुतली। खुदै=खनता। तक्कै=देखते हैं। घाइ=वार। अप्प=ग्रपने। अग्गाई=सामने वाले पर।

अर्थः—वे बहादुर इस प्रकार युद्ध में लग गये, जिस प्रकार क्रोध में सना हुआ मतवाला वृषभ (हुँकारता) टांडता हुआ पैर से पृथ्वी को खनता है और वार करने के लिये अपने सामने डटे हुए विपक्षी की तरफ देखता है।

दोहा

अमर वर पनग असुर, पिक्खि सहर्षित नैन ।

सु मन ससंभ्रम पिक्खि क्रम, सुमन स त्रष्टिय गैन ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—अमर=अमर, देवता। पनग=मर्ष। असुर=राक्षस। पिक्खि=देख। सहर्षित=प्रफुल्लित। सु=ग्रपने। क्रम=क्रम। त्रष्टिय=वरमाये। गैन=गगन में, आकाश में।

अर्थः—देवता, पृथ्वी के निवासी नर, नाग और दानवों के नैत्र उन वीरों को देखकर प्रफुल्लित हो गये और उनके शुभ कर्मों को देखकर सब मन से भ्रम में पड़ गये तथा आकाश-मंडल से पुष्प वृष्टि होने लगी।

सघन घाइ घुमत विघट, खिलेकि पणग मत्र ।

विम भोण डम विम सवल, मक्ति नटी जुग जत्र ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—सघन=गहरे। घाइ=घाव, चोट। घुमत=भ्रमने लगे। विघट=दोनों के शरीर। मिल्कि=सींटे हुए आ। पणग=पनग, मर्ष। विम भोण=विष में भंग हुए, विष पूर्ण। डम=डम आया। विम=विष। जुग=युद्ध। दोना=दोनों के लिये। जत्र=यत्र।

अर्थः—उन दोनों वीरों के शरीर गहरे घावों से लथ-पथ हो इस तरह भूमने लगे मानो मंत्रों द्वारा कीलित (कावू में किये हुए) सर्प हों। वे दोनों विप पूर्ण थे। सबल शत्रुओं को उस विप से डस लेते थे। उन दोनों के विपोपचार के लिये यंत्र-शक्ति काम नहीं कर पाती थी।

कवित

वाम अंग सजि जग, वलिय वलिभद्र विरचि रण ।
सेत समर गज सेत, सेत गज मंप करिणि गन ॥
सेत ह्यनि गजगाह, घट घुंघर घनघोर ।
वक्खर-पक्खर जीन, सार दद्धुर दल रोरं ॥
गज गाज वाज नीसान धुनि, अति उम्भर दल जोरवर ।
वजि-लाग राग स्यंधू सुधुनि, करण स उत्थल पथल धर ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—वामअंग=वाम पार्श्व । वलिय=वलिवान । विरचि=प्रचारे । सेत=श्वेत । गजभूप=हाथी को ढक्ने की भूत । करिणि=एक प्रकार का राज चिन्ह । ह्यनि=बोड़े । गजगाह=बोड़ों के जीनपर वनघेनु के केशों के बने हुए ह ते हैं । घट=गजघटा । घुंघर=घुंघर । वक्खर=वक्खर । पक्खर=पाखर । सार=लोहा, गस्त्र । दद्धुर=दादुर । दल=लेना । रोर=शोरगुल, चहल-पहल । नीसान=नक्कारे । उम्भर=उमड़ना । वजि-लाग=वजने लगे । स्यंधू=सिंधु । करण=करने के लिये । उत्थल पथल=उथल पुथल ।

अर्थः—वाम पार्श्व में युद्धार्थ सज्जित वीर वलिभद्र कछवाहा रण में शत्रुओं को ललकारने लगा। उसके चँवर, हाथी, भूल, किरणियों, (एक प्रकार का राज चिन्ह) घोड़े और गजगाह श्वेत वर्ण के थे। उसके गजघट और घुंघरु, वक्खर, पाखर, जीन और शस्त्रों आदि की विविध ध्वनि ने सेना में दादुर-स्वर की और हाथियों की गर्जना तथा नक्कारों के नाद ने गर्जना का एव सबल सेना ने उमड़े हुए मेघ का आभास कराया। पृथ्वी को उथल पुथल करने के लिये ही उस समय सिंधु-राग में वाद्य-ध्वनि होने लगी।

दोहा

पावस मावस निसि अनी, सजि सारंगी आड ।
खिभिरि-खेत घन घाड मिलि, जानिकु लग्गी लाड ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—मावस=अमावस्या । अनी=येना । आइ=आया । मिभिरि=सदेइते हुए । सेत=रणक्षेत्र । घनघाट=विशेष आघात करते हुए । मिलि=मिल गये, मिड़ गये । जानिकु=मानो । लग्गीलाइ=आग प्रज्वलित हो गई हो ।

अर्थः—उधर से वर्षा के बादल या अमावस्या की रात्रि के सामान सेना सजाये हुए चालुक्की वीर सारंगी उसके (बलिभद्र के) सामने आ उपस्थित हुआ । भयकर अघात कर वे दोनों वीर एक दूसरे को रण-क्षेत्र में खदेड़ते हुए इस प्रकार भिड़ने लगे मानों अग्नि प्रज्वलित हो गई हो ।

- दोहा -

दन्दिन्न पन्दिम वाम दल, वृत्ति अनुद्धिय सार ।

गोल गहर गज्जी अनी, सोमेश्वर अरिभार ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—वृत्ति=वृत्त पालन करने वाले, प्रतिष्ठा करने वाले । अनुद्धिय=उलभ पड़े । सार=लोहा, शस्त्र । गोल=ग्रग रक्त सेना । गज्जी=गर्जना की । सार=दबाव ।

अर्थः—इतने में दक्षिण पश्चिम और वाम पार्श्व से प्रतिज्ञा बद्ध विपक्षियों के शस्त्रों से उलभ पड़ने के कारण गोल सेना (सोमेश्वर की अग्ररक्त सेना) पर चालुक्की सेना गर्जना करने लगी और सोमेश्वर पर विपक्षियों (चालुक्कों) का दबाव पड़ा ।

गाथा —

वज्रै रण रण तूर, गजै गहर मूर खल चूर ।

मडै नजरि करूर, छडै मोह मरण सा मूर ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—वज्र=वज्रपाथे । रण=रणस्थल में । रणतूर=रणतूही, रणपाथ में खलचूर=टुटों का चूर्ण करने वाले, टुटों को पीसने वाले । मडै=झी, डागी । नजरि=नजर, नज़र । करूर=तूर । मोह=मग्न । मरण=मरण के लिये । सा=त । मूर=मारा हुआ ।

अर्थः—यह देखकर सोमेश्वर ने युद्ध स्थल में रण तूरही (रणपाथ) वज्रपाथ और टुटों का चूर्ण करने वाले उनके पण्डुर सामन भी गभीर गर्जना करने लगे और विपक्षियों पर नजर नज़र पर उन वीरों ने मृत्यु के लिये समन्वय छोड़ दिया ।

साटक

पिक्खेयं सोमेस गुज्जर धनी, मुचकुंद निद्रा तयं ।
जलधेयं गजाल कोपित वलं, हालाहलं नैनयं ॥
कोवडं करवान कर्णित दलं, अज्जेन आयातयं ।
श्री वीर चहुआन वानति वलं, चालुकक संघातयं ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः— पिक्खेय=देखता । गुज्जर(वरी)=गुर्जरेश्वर को ओर । मुचकुंद, एक राक्षस । निद्रातय=निद्रा तज कर । जलधेय=समुद्र को । गजाल=गजने वाला, गर्व खर्व करने वाला (राम) । हालाहल=हलाहल । कोवड=कोटड, धनुष । कर्णित दल=कर्ण की सेना । अज्जेन=अर्जुन । आयातय=आतताई, शत्रु । वानति=वान के । वल=बल पर । चालुकक=चालुक्यों । संघातय=सघर्ष किया, वार किया, युद्ध छेड़ा ।

अर्थः— उस समय सोमेश्वर ने गुर्जरेश्वर की ओर इस प्रकार देखा, जैसे निद्रा तजने पर मुचकन्द ने काल यवन को देखा था, या क्रोध करके बल पूर्वक समुद्र का गर्व खर्व करने वाले राम ने समुद्र की ढीठता पर हलाहल दृष्टिपात किया था । अथवा धनुष बाण धारण करने वाले अर्जुन ने आततायी कर्ण के दल पर दृष्टि डाली थी । उस वीर चाहुआन नरेश ने अपने बाण के बल पर चालुक्यों का सामना किया ।

कवित्त

हालाहल वित्तयौ, सार मत्तौ भोलाहल ।
जुगिनि जय जय जपहि, पस्सु पंखिनि कोलाहल ॥
धर परंत दुरि धरणि, उत्तमगति हक्कारहि ।
भरभरति खग्गाह, वीर डक्कनि डक्कारहि ॥
महि मचि महूरत मरण रन, सह जयज्जय सुर करिय ।
चहुआन सूर सोमेस रण, खड खड तनु भरि परिय ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः— हालाहल=हलाहल, जहर । वित्तयौ=बीता, छाया, कैला । सार=लोहा । मत्तौ=मतवाले का । भोलाहल=ज्वाञ्जल्यमान । जुगिनि=योगिनियें । धर=घड़, मण्ड । दुरि=दलकर, नमकर । उत्तमगति=उत्तमंग, सिर । हक्कारहि=चल पड़े, उड़पड़े । भरभरति=वगसने लगा । खग्गाह=खडग । वीर=

बावन ही वीर । डक्कनि=डाहनी । डक्कारहि=टूट हो गई । महि=पृथ्वी । मचि=मच गई, छा गई ।
महूरत=मुहूर्त । मरण=मृत्यु । रन=रणमें । सह=शब्द, आवाज । तनु=शरीर । भरि परिय=भर पड़ा ।

अर्थ:—मतवाले सोमेश्वर के ज्वाज्वल्यमान लोहे का जो जहर था, वह विप-
क्षियों में पूर्ण रूप से फैल गया । योगिनियों जय २ कार करने लगी । पशुपत्तियों
का कोलाहल होने लगा । वीरों के शव झुक २ कर पृथ्वी पर गिरने लगे और
उनके सिर कट २ कर उड़ने लगे । तलवार रक्त-वर्षा करने लगी । उस शोणित को
पीकर बावन ही वीर और डाकिनियों तृप्त होने लगी । इस युद्ध में एक मुहूर्त तक
मृत्यु की विभीषिका छा गई, देवतागण जय २ कार करने लगे, ऐसा युद्ध करता हुआ
वीर चाहुआन नरेश (सोमेश्वर) रणस्थल में खंड २ होकर गिर पड़ा ।

हय गय नर भर परिय, भिरिय भारत्य समानं ।

सोमेस्वर चितयौ, मरण, निश्चै रण थानं ॥

रत्त रग सह अंग, जग सारह उममारै ।

हक्कि मार धक्कि सार, झु मि झुकि झुंड सु भारै ॥

कलहत कक अनभूत हुव, उडहि हस हंसहि मिलहि ।

तन तुट्टि रुधिर पल हड्ड मनि, किक्क कर्मव उठि रण खिलहि ॥३७॥

शब्दार्थ:—हयगय=हाथी घोड़े । रत्त रग=रक्त रजित । जग=युद्ध में । सारह=लोहा, शस्त्र ।

उममारै=भाड़ा । हक्कि मार=हुंकार करता हुआ । धक्कि=बढ़ाया । सार=लोहा, शस्त्र । झु मि=
भूमता हुआ । झुकि=भूमता हुआ, टेढ़ा होता हुआ । झु ड=समूह । भारै=भाड़ा दिये । कलहत=
कलह की अंतिम सीमा तक । कक=युद्ध । अनभूत=अद्भुत । हुव=हुआ । हस=प्राण पखेरु । हसहि=
सूर्य मण्डल में । तुट्टि=टूट कर, टूट रग । हड्ड=अस्थियाँ । किक्क=कितने ही । कर्मव=क ड । उठि=
खड़े हो गये । मिलहि=मिलन देख पड़े ।

अर्थ:—अन्तिम समय में सोमेश्वर ने युद्ध-स्थल में मरना निश्चय कर महाभारत
युद्ध के वीरों की तरह भिड़ पड़ा । जिससे हाथी घोड़े और कितने ही सैनिक
धराशायी हुए । वह रक्त रजित होकर भी युद्ध में शस्त्र चलाने लगा । उसने हुंकार
करते हुए, भूमते हुए और झुकते हुए लोहे को चला कर शत्रु-समूह को गिरा (काट)
दिया । उस समय मघर्ष ही अन्तिम सीमा तक युद्ध छिड़ा । जिससे वीरों के प्राण

पखेरू उड़ उड़ कर सूर्य मंडल में मिल गये । वीर-काय खण्ड खण्ड हो रूधिर पल
और अस्थियों में सन गये । कितने ही खण्ड युद्धस्थल में खड़े प्रसन्न दिखाई पड़े ।

वाज नखिल सोमेश, सहस्र वर इक्क प्रमान ।
तिन मज्झह पचास, वीर भारथ भर जान ॥
तीनि तीस खट्टु परै, परयौ सोमेशुर खेतं ।
गिद्ध सिद्ध वयताल, इनहि पुजयो मन हेतं ॥
सद्धीस मुक्ति अद्भुत जुगति, हंसु हकि हंसहि मिल्यउ ।
सोमेश करी सोमेश गति, पचतत्त पंचह मिल्यउ ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—वाज=वाजि, घोड़ा । नखिल=वड़ाया । सहस्र=सहस्र । इक्क=एक ही । प्रमान=समान ।
तिन=उन । मज्झह=में । पचास=पच्चास । भर=भर, योद्धा । तीनि^३ तीस^{३०} खट्टु^६=गुन्नालिस^{३९} ।
परै=पड़ गये । खेत=गणक्षेत्र में । इनहि=इनको । पूजयो=पूजा की । हेत=प्रेम से । सद्धीस=साधना
की । जुगति=युक्ति से । हंसु=प्राण पखेरू । हकि=उड़ कर । हंसहि=सूर्य में । मिल्यउ=मिल गया ।
सोमेश गति=गति को प्राप्त हुआ, सोमेश्वर ने चन्द्र मण्डल में गति प्राप्त की । पचतत्त=पचतत्त्व ।
पचह=पाचों में । मिल्यउ=मिल गया ।

अर्थ—सोमेश्वर ने अपने समान ही एक सहस्र घुड़ सवार साथियों को इस युद्ध
में वड़ाया था, उनमें से पच्चास वीर महाभारत के योद्धाओं के समान थे ।
उनमें से ३६ योद्धा धारशायी हो गये और राजा सोमेश्वर युद्ध क्षेत्र में पड़ गये ।
गिद्ध-सिद्ध वैतालादिने उसकी प्रेम पूर्वक मन से पूजा की । उसने अद्भुत युक्ति से
मुक्ति का साधन किया । उसका प्राण पखेरू सूर्य में जा मिला । सोमेश्वर ने चन्द्र-
मंडल में जाकर गति प्राप्त की । उसका पंच भौतिक शरीर पचतत्त्व में मिल गया ।

— दोहा —

जुभिन्न पर्यौ सोमेशुरण, डोला चालुक राइ ।
दुवनि सेन मारि धर परे, वज्जिवत्त खग चाड ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—जुभिन्न=युद्ध करता हुआ । डोला=ढोली में ढाला गया । दुवनि सेन=दोनों मेना के ।
मारि=भड़क कर कट कर । वज्जिवत्त=वज्रतुल्य । खग=खड्ग । चाड=चाढ़ना, बाढ़ना करने वाले ।

अर्थ:—उस प्रकार युद्ध करना हुआ सोमेश्वर युद्ध स्थान में पाया गया। चालुख्य नरेश घायल होकर टोली में उठाया गया। चतुरानन ही चतुरा गाले दोनों सेनाओं के कितने ही वीर निरुद्ध कर मृत मृत हो गये।

नये भव्य नृप रक्षिते, तव क्षिति क्षिति है जुम्हा ।

चतुरानन च्युता भट्ट, नर भारता । पशुम्हा ॥ ४० ॥

शब्दार्थ:—भव्य=गामत, गौर । लम्भ=पद । । गान । । गजता । च्युता=पिता । मर्=हृई । नर=मनुष्य, वीर । भारता=पद । पशुम्भ=पशुमान, पशुमान, पशु ।

अर्थ —कवि कहता है — युद्ध में मारे गये दोनों प्रौर के वीर, रण दत्त थे । यदि राजाओं को ऐसा युद्ध फिर करना होगा तो बहुत खोज कर ऐसे नये वीर रखने होंगे । स्वयं विधाता के मन में भी चिन्ता उत्पन्न हो गई कि अब जो वीर रहे हैं वे उनके समान युद्ध-दत्त नहीं (अर्थात् ऐसे युद्ध के लिये वीरों की रचना करने का पुनः श्रम करना होगा) ।

गाथा

जा मुक्ती जोग्यद, कालकाल भ्रम भ्रमाई ।

सा मुक्ती सोमेश, इक्क दिन लम्भिय राज ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ —जा मुक्ति=जिम मुक्ति के लिये । जोग्यद=योगी पुरुष । कालकाल=कितने ही काल तक । भ्रम=भ्रमण करते हैं । भ्रमाई=भ्रमित होकर । सा=उम । इक्क=एक ही । दिन=क्षण में । लम्भिय=प्राप्त की । राज=राजा ने ।

अर्थ:—जिस मुक्ति के लिये कितने ही काल तक योगी पुरुष दुविधा में पड़कर भ्रमण करते रहते हैं । उस मुक्ति को राजा सोमेश्वर ने युद्ध में एक क्षण में ही प्राप्त कर ली ।

भु मी भरणि भिरण, कलय कर कत्यि ककेव ।

जै जै जपि जगत्त, है है नभ सदि सुरयाई ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ:—भु मी भरणि=भूमि भर्ता, पृथ्वी का पोषण कर्ता । भिरण=भिड़कर । कलय=सुदर । कर=झी । कत्यि=रयाति । ककेव=युद्ध की । है है=यहा २ (वाह २) या हर्ष नाद । नभ=आकाश । सदि=यहा । सुरयाई=देवताओं ने ।

अर्थः—उस भूमि-भर्ता (राजा सोमेश्वर) ने लड़ कर युद्ध की प्रसिद्धि को सुन्दर कर दिया । उसकी जय जय कार संसार में होगई और आकाश मंडल से देवताओं ने भी वाह वाह स्वर किया ।

दोहा

पवन गवन वत्ती उड़ी, सुनि पृथीराज नर्युंद ।

रोस ज्वाल अंतर ज्वलित, जनु मदमत कर्शुंद ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—पवन=स्वामि । गवन=गमन । वत्ती=वात । उड़ी=फैली । मदमत=मदमस्त । कर्शुद=हाथी ।

अर्थः—सोमेश्वर के श्वासागमन की (मृत्यु की) सूचना मिलते ही राजा पृथ्वीराज के हृदय में क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो गई और वह मतवाले हाथी के समान दिखाई पड़ा ।

समिटि सकल सामंत-त्रिप, राजगुरु दिग आइ ।

जुद्ध वत्त सह भ्यन करि, वर्नी पित्य सुनाइ ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—समिटि= एकत्रित होकर । सामत । त्रिप=राजा के सामत । राजगुरु=पुरोहित । दिग=समीप । आइ=आकर । जुद्ध वत्त=युद्ध के समाचार । भ्यन करि=अलग २ करके, व्यौरे वार । वर्नी=वर्णन किये । पित्य=पृथ्वीराज । सुनाइ=सुनाये ।

अर्थः—राजा के सब सामंत और राजगुरु (पुरोहित) एकत्रित होकर राजा के पास आये और व्यौरेवार युद्ध के हालात वर्णन कर पृथ्वीराज को सुनाया ।

कवित्त

सुनी वत्त प्रथीराज, भुम्मि सेना अधिकारी ।

तात काज तिन प्यड, दान खोडस विन्चारी ॥

मह मह सद्धयौ, राज गति स्रव्व प्रकारं ।

द्वादस दिन प्रथीराज, भुंमि सच्च संधारं ॥

विनु भोग भोज इक्क टक करि, सु हथ दान दिय देववर ।

दुयन्तौन कौइ देहै न को, उतौ दान जनमंत नर ॥ ४५ ॥

शोडष दान देकर यश का विस्तार किया। फिर पिता की मृत्यु का बदला शत्रुओं से लेने का विचार कर पृथ्वीराज ने घृतखाना तथा पगड़ी बांधना छोड़ दिया और उस वीर श्रेष्ठ ने विषम वृत्त को ग्रहण किया कि मैं चालुक्यक सीम के योद्धाओं को नष्ट करके उनके सूक्ष्म उदर से मेरे पिता को वापस निकाल कर ही रहूँगा।

दोहा

विधि विनान परिमान करि, निगम बोध सुभथान ।

लिय दद्या जह धर्म सुत, कै अभिषेक नृपान ॥ ४७ ॥

शब्दार्थः—विधि=ब्रह्मा । विनान=विज्ञान । परिमान=प्रमाण । थान=स्थान । दद्या=दीक्षा । धर्म सुत=युधिष्ठिर या चाहुआन वंशज धर्माधिराज । क=किया । अभिषेक=राज्याभिषेक । नृपान=राजा का ।

अर्थः—ब्रह्म विज्ञान को प्रमाण युक्त मानकर जिस निगम बोध नामक शुभ स्थान पर धर्म सुत (युधिष्ठिर या चाहुआन वंशज धर्माधिराज) ने दीक्षा ली थी । वहीं पर उस राजा (पृथ्वीराज) का पट्टाभिषेक हुआ ।

कवित्त

प्रकटि राज दर जोति, रंग रवनी रस गावहि ।

पाट विट्ठि प्रथिराज, सव्व सामंत सुभावहि ॥

दधि तंदुल अरु दूध, सुभभ रोचन कसमीरं ।

मनौ भानं मे भानं, प्रगटि कल किरणि सरीरं ॥

दिक्खियै वाल गावहि सुरस, सप्त स्वरणि छह ग्राम गति ।

संसार भेद आभेद रति, पति प्रकति साधै सुरति ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—राजदर=राजद्वार । रंग=रंगीली । रवनि=रमणियों । रस=रसीले । पाट=सिंहासन । विट्ठि=वैठकर । सव्व=सब । सुभावहि=अच्छा लगता है, शोभा पाता । दुध=दुग्धा । रोचन=गोरोचन । कसमीरं=कस्तुरी । भानं=मान् । मे=अंतर । किरणि=किरण, राज चिन्ह । दिक्खियै=देखी गई । वाल=वालाएँ । स्वरनि=स्वर । छह=छः ६ । प्रकति=प्राकृत पुरुष । साधै=साधन करती है ।

अर्थ:—राजा के तारतार रंगीली रंगिनी के कारण जानि फैल गई । ये रंगीले गीत गाने लगी । सर्व सामंतों ने सुशोभित पृथ्वीराज, भिलागनाम्न हुआ । वधि, तन्दुल, दुर्वा, गौरोचन, कस्तूरी आदि मांगलिक वस्तुओं ने मंगलाचार किया गया । उस राजा के चिर पर राज चिह्न दिगम्बि एगी सुन्दर सुशोभित हुई मानों एक सूर्य में दूसरे सूर्य का प्रतिबिम्ब हो । मानों स्वर और चलो नामों युक्त गरम गीत गाती हुई वे बालाएँ सामारिक भेद प्रभेद को जानने में आ । रान और प्रकृति पुरुष (पृथ्वीराज) से सुरति साधती हुई दिग्वाट पड़ी ।

दोहा

लोड सपत्ते तिहि महल, जह सामत नर्यद ।

इच्छनि अचल गठि जुरि, जनु इन्द्रानी इद ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ:—लोड=लोग, जनता । सपत्ते=पहुंचे । जह=जहाँ । सामत नर्यद=सामंत राज (पृथ्वीराज) ।

इच्छनि=पृथ्वीराज की रानी इच्छनी । गठि=गाठ । जुरि=जोड़ी, दी ।

अर्थ — जनता उस महल में पहुँची जहाँ सामंत राज (पृथ्वीराज) रानी इच्छनी के अचल से गठबन्धन किये हुए इस प्रकार सुशोभित था । मानों इन्द्र और इन्द्राणी सिंहासनारूढ हों ।

प्रथम तिलक सिर कन्ह करि, पुनि निड्डर रट्ठौ ।

इन अगगह सुभ सति करि, पच्छै सब भर और ॥ ५० ॥

शब्दार्थ:—सुभसतिकरि=स्वस्तिवाचन कर । पच्छै=पीछे, पश्चात् । सब=सब । भर=भौढ़ा, सामंत ।

अर्थ — राजा को सर्व प्रथम नरनाह कन्ह ने उसके पश्चात् राष्ट्रवर निड्डुराय ने तिलक किया । उस समय विप्र स्वस्तिवाचन करते रहे । तत्पश्चात् सब सामंतों ने भी राजा को तिलक किया ।

कवित्त —

कीयो तिलकु सिर कह, पाट प्रथिराज विराजहि ।

मनहु इद अर्धग, हत्य इन्दीवर राजहि ॥

चमर सेत सोभंत, दुरहि चावदिसि सीसं ।

मनहु भांन पर धरिय, किरणि ससि की प्रति दीसं ॥

अवनीय चंदु लग्गौ तपन, धुवह तेज धर उद्धरण ।

सुरतान गहन मोखन करण, बहुवीरा रस संचि धन ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—तिलकु=तिलक । पाट=सिंहासन । हत्य=हाथ । इन्दोवर=कमल । राजहि=शोभा पाता हुआ । सेत=श्वेत । दुरहि=चलना । चावदिसि=चारों ओर । प्रतिदीस=प्रत्येक दिशा से । अवनीय यदु=अवनेन्दु, अवनिपति । धुवह=ध्रुव, अटल । उद्धरण=उद्धार करने के लिये । सुरतान=सुलतान, बादशाह । गहन=ग्रहण करने को । मोखन=मोच करने को, छोड़ने को । बहु=बहुत । वीररस=वीररस । सचि=संचय किया । धन=वित्त ।

अर्थः—जिस समय पृथ्वीराज सिंहासनारूढ हुआ और कंह ने अपने हाथों से तिलक किया । उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानां पृथ्वीराज के चन्द्रमा स्वरूपी भाल के अर्द्धांग में कंह का कमल रूपी कर सुशोभित हुआ हो । श्वेत चँवर चलता हुआ राजा के सिर पर ऐसी शोभा पाने लगा मानों सूर्य पर चारों दिशाओं से शशि की किरणें फैल रही हों । वह अवनेन्दु (पृथ्वीराज) प्रखर तेज से पृथ्वी के उद्धार के लिये तपने लगा, सुलतान को पकड़ने और छोड़ने के लिये उस वीर ने बहुत सा वीररस रूपी धन का संचय किया । इसमें एक दूसरे से विरोध रखने वालों का पृथ्वीराज के प्रताप से अविरोध वर्णन किया गया है ।

कनक दंड छवि छत्र, सुम्भि चहुआन सीस पर ।

केत रत्त ससिभान, तेज मंगल मंगल गुर ॥

गृहसु सर्व संप्रहिग, पंच पंचौ अधिकारी ।

चावदिसि चहुआन, दुष्ट नवग्रह वलटारी ।

प्रज मिली आइ वड्ह्यौ अनेद, चंद छन्द चातिग रटहि ।

पृथिमीसु सुवर दुज्जन गहन, काल व्याल कारण ठटहि ॥ ५२ ॥

पञ्जून छोंगा

(समय ३६)

दोहा

कित्ति कला कूरंभ वल, कहत चंद वरदाय ।

ज्यों पट्टन संग्राम किय, जाइ सु भोराराय ॥ १ ॥

शब्दार्थ:—कित्ति=कीर्ति । पट्टन=वालुक्यों ने । जाइसु=लौटाया ।

अर्थ:—चालुक्यों से युद्ध कर भोलाराय को लौटाया । चंद वरदाई उसका और कूरंभ राज की कीर्ति कला तथा उसकी शक्ति का वर्णन करता है ।

सुनी राज प्रथिराज ने, भाला रानिंग सूय ।

विरद बुलावै महवली, छोंगा सज्यौ स धूय ॥ २ ॥

शब्दार्थ:—सूय=सुअ, पुत्र । बुलावै=कहे जाते । छोंगा=तुरा, क्लिगी । धूय=ध्रुव, अटल ।

अर्थ:—राजा पृथ्वीराज ने सुना कि वीर रानिंगराय भाला के पुत्र जिसका “महावलि” विरुद था उसने सिर पर अटल “छोंगा” (तुरा) धारण किया है ।

कवित्त

छोंगाला सिर छत्र, सीस वंध्यौ पञ्जून ।

जस जय पत्त जु आनि, करै परसन सह ऊनं ॥

अपाने^१ घर वैठि^२, रीस कीनी चालुक्का ।

हीय खटक्के साल, वात संभरि वालुक्का ॥

पुच्छैव पल्ह कूरंभ को, अप्पानौ दल टारियो ।

पञ्जूनु मलयसी वीर वर, करन कूच उच्चारियो ॥ ३ ॥

प्रा. पा. १ भी का । २ भी. पा ।

शब्दार्थ:—छोंगाला=छोंगा धारी । सिर=ऊपर । वंध्यौ=धारण किया । जय पत्त=विजय-पत्र ।

१।सन=असन्न । ऊन=उन्होंने । अप्पाने=अपने । समरि=सुनकर । वालुक्का=वालक (काठियावाड़ की भूमि को वाल भूमि कहते हैं । उसमें यह शब्द मवधित हो तो वालुकाराय वल्लमेश्वर उपाधि का

पर्याय रूप मानना चाहिए) । पुत्र-प्राप्ति । पञ्च-पञ्च । ताम्र-निशेप) । गरियो यत्न किया ।

अर्थ:—छोगाधारी भाला के ऊपर चढ़ाई करने का भार पञ्चीराज ही और से पञ्जूनराय को देकर उसे छत्र वारण कराया गया (सेनापति बनाया) । उसने कीर्ति और जय-पत्र प्राप्त कर सबको प्रसन्न कर दिया । अपने घर पर बैठे रहकर बालुक चालुक्य ने क्रोध (घैर) किया । यह बात राजा के हृदय में नटसाल की भांति चुभी । तब क्रस्मभराय और कन्दवाहे पल्लव को इस विषय में पृष्टा तो मालूम हुआ कि उन्होंने स्वयं अपनी शक्ति से युद्ध करने का निश्चय कर अपनी सेना अलग करली है, और वीर पञ्जूनराय और उसके पुत्र मलयसिंह ने शत्रुओं पर चढ़ाई करने के लिये आज्ञा प्राप्त करने हेतु राजा से निवेदन भी किया है ।

दल भोला भीमग, साल चितिउ सोनिगर ।

किण कूच पर कूच, काल घेर्यौ कि कूट गिर ॥

‘चद’ मडि ओपम्म सरह राका परिमान ।

उदधि मडि जिम अनल^१, जलधि लका गढ जान ॥

दल दूत राज पिथ्यह कहिय, हक्कार्यौ पञ्जून वल ।

तुम जाइ जुरौ उपर करौ, हनौ राज भीमग दल ॥ ४ ॥

ग्रा पा १ भीं, का । २-का भीं ।

शब्दार्थ—साल=शाला, घर, गढ । चितिउ=देखा । सोनिगर=सौनिगरे क्षत्रिय । कूट-गिरि=गिरिकूट, दुर्ग । राका=चद । दनदूत=मैनिकदूत । पिथ्यह=पृथ्वीराज हक्कार्यौ=हकाला, खानाकिया । उपर=सहायता । हयौ=नष्ट करना ।

अर्थ:—इतने में भोला भीम की सेना ने सौनिगरो के गृह की (सभवत जालौर-की) ओर देखा (आक्रमण किया) और कूच करते हुए काल के समान गिरिकूट (दुर्ग) को घेर लिया । जिसकी तुलना कवि (चद) करता है—मानो चन्द्रमा शरद ऋतु से आवृत्त हो, या वाडवाग्नि समुद्र के अन्तर्गत हो । अथवा समुद्र से घिरा हुआ लका दुर्ग हो । इसकी सूचना सेनिक दूत ने आकर पृथ्वीराज को दी । तब बलवान पञ्जून को शत्रुओं की और खाना किया और आज्ञा दी कि तुम जाकर सौनिगरों की सहायता करो और राजा भोला भीम की सेना को नष्ट कर दो ।

दोहा

सकल सूर कूरंभ वर, सथ लिन्नौ अप जित्ति^१ ।

समर धीर वीरत सवर, लज्जी परै न-भित्ति^२ ॥ ५ ॥

ग्रा. पा० १ टि. २ । २ भी. ।

शब्दार्थः—अप=अपना । जित्ति=जितने मी । लज्जी परै=लज्जा के लिए धराशाई होने वाले ।
न-भित्ति=निर्मय निडर ।

अर्थः—श्रेष्ठ कछवाहा राजा ने अपने जितने भी बहादुर साथी थे उन सबको साथ में लिया, वे सब युद्ध-समय धीरवीर और सवल थे । वे अपनी लज्जा के लिये निर्भयता युक्त धराशायी होने (मरने) को तत्पर रहते थे ।

चौकी भीमानी चढै, माला रानिग सथ ॥

छोगा वीर महावली, बरवीरा रस कथ ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—चौकी=अंग रक्षक सेना ।

अर्थः—रानिग माला के साथ भीम की अंग रक्षक सेना थी, उसमें रानिग का पुत्र महावली वीर छोगा भी था, जिसकी ख्याति श्रेष्ठ वीर-रस पूर्ण थी ।

कवित्त

चंपि काल पञ्जून, वीर भोरा भीमदे ।

कै आयौ उपरै, फुट्टि पायाल सबदे ॥

सकल सेन चम्मक्यौ, वीर भोरा उठि जग्यौ ।

मलैसीह मुख काल, हाल सम व्याल सुभग्यौ ॥

बक्कार वीर छोगा गह्यौ, सिर मंडन लिय हत्य धरि ।

आएसु सीस पञ्जून करि, समर वाल वीर सु बरि ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—चंपि=टवाया । भोरा भीमदे=मोला भीम के । पायाल=पाताल । सबदे=थावाज करत हुआ, या वाजी मारता हुआ । वीर-भोरा=मोला भीम का योद्धा । सुभग्यौ=सुशोभित हुआ । बक्कार=ललकार कर । सीस-पञ्जून-करि=पञ्जून के सिर पर धारण किया । वाल=वाला, अप्सरा । वीर-सु बरि=वीरों को वरण किए ।

अर्थः—पञ्जून राय ने भोलाराय के उस वीर-योद्धा (महावली छोगा) को काल स्वरूपी होकर टवाया, वह ऐसा मालूम हुआ मानों पाताल फोड़ कर वाजी मारने के

लिये कोई ऊपर उठ आया हो। सारी सेना अचानक चमक पड़ी, तथा वह भीम का सामत (छोगा) जाग उठा। उस समय मलयसिंह ने सागने भयकर ढाल के समान देखते ही उस महाबली भाला की स्थिति सर्प के समान शोभा पाने लगी किन्तु ललकार कर मलयसिंह ने उस (महाबली) के मिर की शोभा स्वरूपी छोगे को लेकर उसने अपने हस्तगत कर लिया। उस छोगे को पुत्र द्वारा प्राप्त कर पञ्जून राय ने अपने शिर पर धारण किया। इस युद्ध में वालाप्रो (प्रभराप्रो) ने भी वीरो का वरण कर पाया।

- दोहा -

लै छोगा वर वीर चलि, चावक भूख्यौ हथ्य।

सात कोस ते बाहुर्यौ, वर वीरा रम कथ्य ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—चावक=चाबुक। बाहुर्यौ=लौटा।

अर्थः—विजय प्राप्त कर छोगा ले, श्रेष्ठ वीर पञ्जून चला, किन्तु मलयसिंह छोगा लेते समय अपने हाथ का चाबुक भूल गया था। अतः वह वीररस पूर्ण ख्याति करने वाला वीर, सात कोस से वापस लौटा।

पट्टन-हट्टन ममक ते, ले आयौ फिरि धीर।

ता पाछै बाहर चढ्यौ, दल चालुककी वीर ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—पट्टन-हट्टन=हठी चालुक्यों के। ममकते=वीच से। ता पाछै=उसके पीछे। बाहर=मदद।

अर्थः—वह धीर वीर, हठी चालुक्यों के मध्य से पुनः चाबुक ले आया, तब उसके पीछे वीर चालुक्य की सेना महाबली छोगा की मदद पर चढ़ी।

मलैसीह पञ्जून रा, दस दिसि किति अवाज।

दै छोगा-भोरा फिर्यौ, गयौ सु पट्टन राज ॥ १० ॥

शब्दार्थः—पञ्जून रा=पञ्जून का पुत्र। छोगा भौरा=भौम से प्राप्त छोगा। राज=राज्य में।

अर्थः—कवि कहता है, हे पञ्जून पुत्र मलयसिंह! तेरा दसों दिशाओं में कीर्ति गान होता है। इस प्रकार भोरा से प्राप्त छोगा देकर वह मकवाना (भाला महाबली) फिरा और पट्टन के राज्य में पहुँचा।

गयौ सु चालुक ग्रहे तजि, रही कनैगिरि लाज ॥

छोगा कूरुभ राव लै, कर दीनो प्रथिराज ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—कनै-गिरि=स्वर्ण गिरि, सोनगरो के गिरि, दुर्ग।

अर्थ:—इस प्रकार युद्ध छोड़ कर मकवाना चालुक्य के घर पर गया और सौन-गरौ के गढ़ की लज्जा बनी रही, कछवाह-राज पञ्जून ने वह छाँगा लेकर पृथ्वीराज के हाथ में दिया ।

राज सु छाँगा फेरि दिय, वर हैवर [आरोह] ।

घटि चालुक वढि कूरमा, अयुत पराक्रम सोह ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १ पा० भी० ।

शब्दार्थ:—फेरिदिय=लौटा दिया । आरोह=चढ़ा कर । घटि=कम । वढि=बढ़ कर । कूरमा=कछवाहे । अयुत=असमान ।

अर्थ:—राजा पृथ्वीराज ने पञ्जून को श्रेष्ठ घोड़ा दे कर वह छाँगा उसी को लौटा दिया और कहा चालुक्य-वीरता मे कम है और कछवाहे बढ़कर हैं । जिनका अतुलनीय पराक्रम शोभित है ।

मलैसिह, रानिंग सुत, सुभर भोराराज ।

कूर्म अचानक यों परबौ, ज्यों तीतर पर वाज ॥ १३ ॥

शब्दार्थ:—वाज=पत्नी ।

अर्थ:—मलयसिंह और भोलाराय के श्रेष्ठ सामंत रानिंग पुत्र महावली छाँगा मे यह युद्ध हुआ, इस युद्ध मे अचानक कछवाहा मलयसिंह विपत्ती महावली छाँगा पर इस प्रकार दूट पड़ा था, जैसे तीतर पर वाज (पत्नी) पड़ता है ।

पञ्जुनराइ महावली, मलैसिह धर पारि ।

छाँगा लै पाछे फिरबौ, सुनि चालुक्क पुकारि ॥ १४ ॥

शब्दार्थ:—चालुक्क पुकारि=चालुक्य ने पुकार सुनी ।

अर्थ:—महावलवान पञ्जुराय और मलयसिंह शत्रु को धराशायी कर छाँगा लेकर लौटे । यह पुकार चालुक्य के पास पहुँची ।

बहुत जुद्ध कीनौ सुवर, सुभर तेज प्रथिराज ।

भट्ट चंद कीरति तवै, कूरभां^१ सिरताज ॥ ३५ ॥

प्रा० पा० १, पा० का० ।

शब्दार्थ:—सुवर=सबल । तेज=विशेष वीर । तवै=स्तवन की, कीर्तिगान किया । कूरभां=कछवाहों के ।

अर्थ:—पृथ्वीराज के सामन्तों मे विशेष सबल-सुभट कछवाहा शिरोमणि (पञ्जून मलयसी) थे उन्होने ने यह भारी युद्ध किया, उसी के अनुसार उसका कीर्तिगान मैंने (कविचन्द ने) भी किया ।

पञ्जून चालुक

(समय ३७)

बोहा

बालुक्का हिदू कमध, और सु गोरीमाहि ।

साम भेद जैचद क्रिय, पति-दिल्ली । सम ताहि ॥ १ ॥

ग्रा०पा०१, भी०पा०का० ।

शब्दार्थ—बालुक्का=मीम का बालक होना या बल्लभेश्वर की उपाधि होना ।

अर्थ—चालुक, कमधज्ज और गौरीशाह तीनों पृथ्वीराज के शत्रु थे किन्तु दिल्ली-पति के विरुद्ध साम और भेद नीति का उपयोग करने वाला जयचद ही था ।

कवित्त

आइ खवरि चहुआन, सु दल बालुक्कराइ सजि ।

आइस पग नरेस, साह साहाव बैर कजि ॥

लख दोइ भर दोइ, पुरह-खोखद सु आइय ।

दिखि है गै अनमित्त^१, दूत दिल्ली दिसि धाडय ॥

प्रथिराज रुधिरुकारी कडिय, समह गम प्रोहित रडिय ।

सुरतान समध बालुक कमध, कहें कौन चम्पू चडिय ॥ २ ॥

ग्रा०पा०१, भी० ।

शब्दार्थ—आइस=आदेश । अनमित्त=अमित, असरय । रुधिरुकारी=खून करने वाली, तलवार । रडिय=रटा, कहा । चम्पू=मेना ।

अर्थ—पृथ्वीराज को सूचना मिली कि चालुककराज की सेना सजी है और जयचद तथा शहाबुद्दीन ने भी बढ़ता लेने के लिए आज्ञा दी है जिससे दोनों के योद्धा दो लाख सेना सहित खोखद नगर आए हैं । उस सेना में अमख्य हाथी-घोड़े हैं, उन्हें देखकर दूत दिल्ली पहुँचे और उपर्युक्त सूचना दी । तब पृथ्वीराज ने उसी समय अपनी खुनी तलवार निकाली और गुरुराम पुरोहित से कहा कि गोरी से सवध

रखने वाले चालुक्यों और कमधजों के लिए किसको आज्ञा दी जाय कि वह अपनी सेना उन पर सजाएँ ?

चालुक्का परिराइ, वीर वज्जे नीसानं ।

सकल सूर सामंत, खग मगह^१ किय पानं ॥

सवर सेन सुरतान, राज प्रथिराज विचारिय ।

विन कूरंभ को दलै, नृपति इह तथ्य उचारिय ॥

जो त्रियन वस्य नन द्रव्य वसि, मरन सु तिन जिम तन मनै ।

सिर धरै काम चहुआन कौ, वियौ काम चित्त न गनै ॥ ३ ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० ।

शब्दार्थः—परिराइ=मन्त्रणा हुई । पान=पयानं, गमन । सवर=मवल । तथ्य=तथ्यपूर्ण, तथ्ययुक्त । वस्य=वश में । नन=नहीं ॥ तिन=त्रय । वियौ=दूसरा, अन्य ।

अर्थः—चालुक्की वीरों में युद्ध संमति ठीक हो जाने पर वीरों ने नक्कारे वजवाए । सब बहादुर सामंतों ने तलवार के मार्ग पर पैर दिया । तब राजा पृथ्वीराज ने सुलतान की सबल सेना का विचार कर यह तथ्य युक्त बात कही कि कूरंभराज पञ्जून के अतिरिक्त उसको कौन विनष्ट कर सकता है ? जो मंत्रियों के और द्रव्य के वशीभूत नहीं हैं तथा वह मृत्यु को तृणवत् मानता है । ऐसा वीर पञ्जून ही (मेरे) चहुआन के कार्य को शिरोधार्य कर सकता है । अन्य कोई इस कार्य को चित्त में धारण नहीं कर सकता ।

— दोहा —

बोलिराज प्रथिराज तव, पान हथ्य दिय साज ।

कहौ जाइ कूरंभ कौ, इह किज्जे हम काज ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—पान=ताम्बूल ।

अर्थः—तब राजा पृथ्वीराज ने अच्छा सजाया हुआ बीडा (ताम्बूल) अपने हाथों में लेकर कहा कि यह कूरंभ को जाक दो और कहो कि मेरा यह कार्य करें ।

— कवित्त —

सुनि सु वत्त कूरंभ, कोड भिल्लै न पान धर ।

वडगुज्जर दाहिम्म, चूर चालुक्क चंपि धर ॥

परमारह तमवज्ज वीर परिगारग भद्रिय ।

सकल मूर वर नट छाल नपे मनि नटि ॥

पञ्जून राट गग प्यगरो हरे नाम निरमल मुनग ।

उन सम न कोड रजुन रन डगलि छाल गिगिय नितर ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—भित्तोन=गदग नहा फता । मूर=नट र । नपे= ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ गग प्यगरो= तलवार चलाने में प्रमगण्य । निजग=नजर, रटि ।

अर्थः—जब कूरम्भराय ने सुना कि ज्य पेट्र वीडे को कोई स्त्रीछार नहीं कर रहा है । रामराय बडगुज्जर, चालुक्या को विनष्ट कर उनकी पृथ्वी को दवाने वाले दाहिमा, परमार, कमधज्ज, वीर प्रतिहार और भट्टी (भाटी) प्राप्ति मव श्रेष्ठ योद्धा वीडा उठाने से इन्कार हो गए, क्योंकि काल के दवाने से उनकी बुद्धि कम हो गई, तब वह पञ्जूनराय जो तलवार चलाने में अप्रमगण्य तथा अपने नाम और पृथ्वी को निर्मल करने वाला था, उसके समान युद्ध में जीकने वाला कोई क्षत्रिय नहीं था । स्वयं काल भी उसकी दृष्टि को देख कर डर जाता था ।

कवित्त

ए कुरभह वीर, धीर आवृत्त धनुद्वर ।

जो महनह पूजत, जोग खल खडन सव्वर ॥

इन्ह आप वल दैरि, जाड' असि असि अरि भारिय ।

एकल्ले पञ्जून, सिंघ परि पिसुन पछारिय ॥

लै पान] सीस कूरभ धरि, सकल मूर सामन नटि ।

चालुक्कराइ हिंदू, दुसह, विपम काल व्यालह सु जुटि ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—ए=अहो । धीर=धैर्यवान्, साहसी । महनह=महान समर । जोग=योग्य । सव्वर=सबल ।

असि असि=तलवार पर तलवार । परि=प्राक्रमण करके । पिसुन=पशु, शत्रु । नटि=निषेध करने पर ।

अर्थः—अहो साहमी कूरभ वीर जो धनुर्वरों से आवृत्त था, वह महान-समर की पूजा करने वाला था और सबल दुष्टों का खड्ग द्वारा नाश करने योग्य था, उस ने दौड़ कर अपने बल से दुष्टमनों के सिर पर तलवारों के प्रहार पर प्रहार किये थे और अकेले सिंह-स्वरूप पञ्जूनने ही प्राक्रमण कर पशु-तुल्य शत्रुओं को पछाड़ा था । ऐसे उस वीर कूरभ ने सब वीर सामंतों के इन्कार करने पर वीडा उठा कर शिरोधार्य किया और चालुक्यराय के अतहा वीरो से विपम काल-व्याल सा हो भिडने के लिये उद्यत हुआ ।

दोहा

काल-व्याल सुरतान दल, कमध सु पंखय कूट ।

हरि वाहन पञ्जून दल, ते सजि धाए ऊठ^१ ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १ संशोधित ।

शब्दार्थः—कमध=कमधज, राष्ट्रवर क्षत्रिय । हरिवाहन=गरुड़ । ऊठ=उठ कर ।

अर्थः—चालुक्यों के पुत्र पर आया हुआ शाही दल भी काल-व्याल के समान ही था और उसके कूटपंख स्वरूपी कमधज्ज थे । किन्तु पञ्जून की सुसज्जित सेना उनकी ओर, गरुड़ स्वरूप होकर बढ़ी ।

लरन हथ्य लिय तेग वर, वगसि राज तव वाज ।

लिय कूरंभ कुल उज्जले, सीस नवाइ समाज ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—तेग=तलवार । वगसि=वत्सीश किया, दिया । वाज=वाजी, घोड़ा ।

अर्थः—जब लड़ने के लिये पञ्जूनराय ने श्रेष्ठ तलवार हाथ में पकड़ी तब राजा पृथ्वीराज ने उसे एक घोड़ा उपहार स्वरूप दिया जिसे लेकर उस उज्जल कुल वाले कूरंभ ने वीर समाज को सिर नमाया ।

कवित्त

खग वंधि कूरंभ, आइ पञ्जून आपन भर ।

सुवर वीर वलिभद्र, तात पञ्जून सथ्य वर ॥

कन्ह वीर वर वीर, सिंघ पाल्हन्न सुधारं ।

मलय सिंह सब हथ्य, सङ्ग लीने भर सारं ॥

चित स्वामि ध्रंम सो अरि भिरन, लरन मरन तक सीर नन ।

सुनि राग वीर काडर धरकि, वजिग वीर नीसान घन ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—सुधार=अच्छी घारा वाले, श्रेष्ठ खड्ग वाले । भर=सुसट । सार=श्रेष्ठ, अच्छे ।

सीर=साथ, साथी ।

अर्थः—तलवार गृहण कर कूरंभराय पञ्जून अपने थोढ़ाओं के पास आया-श्रेष्ठ वीर वलिभद्र जो पञ्जून का भाई था, वह साथ हुआ । वीर-कन्ह, श्रेष्ठ वीर, सिंहराय, पल्लनराय आदि अच्छी खड्ग वाले तथा पञ्जून-पुत्र मलयसिंह जो सब

का बाहु स्वरूपी था वह पौर पन्थ गोरा था । ये । उनका गित्त स्वामि भर्म मे पौर शत्रु से भिडने मे था, वे लड़ने मरने के ही गा ॥ नहीं थे. मरु प्रगंत भी स्वर्गतक साथ देने वाले थे । उनके वीर रस पूर्ण विशेष नक्कारे बजने पौर वीर रामो के सुनने से कायरों के हृदय धड़कने लगे ।

गैहा

वज्रिग वीर नीमान घन पात्रम सन समीर ।

चढिग जोंव पञ्जून भर, मज्जि हयगय वीर ॥ १० ॥

शब्दार्थ:—सक=शक, १३ ।

अर्थ:—वीर रस पूर्ण नक्कारे बादलों की तरह गर्जने लगे, पञ्जून उमके योद्धा और उसके अश्वारोही तथा गजारोही वीर क्रमशः समेध डन्ड और पवन तुल्य हो कर बढे ।

तिथि पचमि रविवार वर, छडि पच भर आस ।

चढे जोध हैं गै परिय, मुगति सु लूटन रास ॥ ११ ॥

शब्दार्थ:—रास=राशि, देर ।

अर्थ:—श्रेष्ठ पचमी रविवार को वे पाचो योद्धा सासारिक आशा त्याग, हाथी घोड़ों पर सवार होकर मुक्ति की राशि को लूटने के लिये चल पडे ।

साटक

धीरज धर धीर क्रूरम बली, पञ्जून राय वर ।

जित्ते त सुरतान मान सरस, आवृत्त वान चिख ॥

भूयो बाल मुआल भारथ कत, कृष्णोधरा धद्विय ।

त काज वर धीर धीर वरयं, ससार मुक्त वर ॥ १२ ॥

शब्दार्थ:—धीरजधर=जिसका धैर्य पृथ्वी के समान निश्चल है । जित्ते=जिता । त=उसने । मान इज्जत । बाल=बालक, या बलभेश्वर । भारथ कत=युद्ध करके । कृष्णोधरा=कृष्ण की पृथ्वी, द्वारिका वद्विष=दद्विष, दबाली, टटा दी । मुक्तवर=श्रेष्ठ कल्याण प्रद ।

अर्थ —जिसका धैर्य पृथ्वी के समान अटल है, ऐसा वीर वीर और बलवान श्रेष्ठ कछवाह पञ्जूनराय था । उसने भयंकर विपाक वाणों से घेरकर सुलतान की सा

श्रेष्ठ कीर्ति का हरण कर लिया । वालक राजा चालुक्य की कृष्ण वाली (द्वारिका) भूमि को युद्ध कर दवा दिया । इस प्रकार ऐसे कार्यों के लिये वह श्रेष्ठ वीर धैर्य धारण कर ने वाला संसार के लिये कल्याण प्रद था ।

दोहा

सकल सूर कूरंभ वर, भान भयग मुख वीर ।

तवै राइ चालुक्य वर, आइ सँपत्तौ तीर ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—मान=सूर्य । भयग=हो गये । सँपत्तौ=पहुँचा । वर=वल, सेना । तीर=नजदीक, निकट ।

अर्थ—श्रेष्ठ कछवाह-राज और उसके वीरों के मुख उस समय सूर्य के समान देदियमान होगये । जिस समय की श्रेष्ठ चालुक्यीराय की सेना समीप आ पहुँची थी ।

आइ सँपत्तौ सूर भर, सुरताना कम धज्ज ।

कूरंभह पञ्जून सम, चढे जोध गुर गज्ज ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—गुर गज्ज=महान गर्जना करते हुए ।

अर्थ—उसी समय कमधज और सुलतान के सामंत और योद्धा आ पहुँचे । तब पञ्जून और उसके समान ही कछवाहे योद्धा महान गर्जना कर के आगे बढ़े ।

करिग^२ सेन संमुख सुवर, गरुड़ व्यूह क्रिय वीर ।

लरन मरन भारथ्य क्त, जज्जर करन सरीर ॥ १५ ॥

ग्रा० पा० १ भौ० का० ।

शब्दार्थ—जज्जर=जर्जरित ।

अर्थ—श्रेष्ठ सेना को सामने कर उस वीर (पञ्जून) ने युद्ध हेतु लड़ मरने और शरीर को जर्जरित करने के लिये गरुड़-व्यूह की रचना की ।

गरुड^१ व्यूह कूरभ करि, नाग व्यूह सुरतान ।

खौततार खुरसान पति, मंडि फौज मैदान ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थ—मंडि=मंडन किया, खड़ी हुई । मदान=रण क्षेत्र, स्थल ।

अर्थ:—गरुड=व्यूह कूरभराय (पञ्जून) ने रणपोर नाग=पूँछ की राना गुल-
तान के खुरासानी से निगे के सेनापति तत्ताग्ना ने ही पोर सेना को रण गेन में
खड़ा किया ।

गीता

पग जगज परिहार, पुच्छ पामार गुभारिय ।
भट्टी सेन प्रियम्भ, पिण्ड पाप अभिहारिय ॥
जानु होट पुण्डीर नाग उरमम पग करि ।
चञ्च अंग मुभ जीह, पीर उरम पयद्वरि ।
प्रीवा सु जोति गज गाह गहि, लहि लोहानो ठौर वर ॥
छत्रह मुजीक पञ्जून मजि, दौरि पर्यौ बलिभद्र वर ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—पयद्वरि=पग दिया, रुदम दिया । उरमम=हृदय के स्थान । गजगाह=हाथी से कुचलने
वाला । मुजीक=भाभा, जर्जन ।

अर्थ:—कूरभ के गरुड व्यूह में, पैरों के स्थल पर यादव और प्रतिहार रहे । प्रमारो
ने पूँछ का रूप धारण किया । भट्टी(भाटी)राजा की वीर सेना ने पिण्ड और पांव के
स्थान पर अधिकार जमाया, पुंडीरराय जघा की जगह हुआ । हृदय, नख, चौच,
आँखे और जिह्वा की जगह श्रेष्ठ कूरभो-सेना ने कदम दिया । हाथियों को कुचलने
वाले लौहाने ने प्रीवा और चञ्च-ज्योति का स्थान ग्रहण कर लिया । इस प्रकार
व्यूह-रचना करके पञ्जून ने नवोन छत्र धारण किया । और उसका भाई बलिभद्र
आगे बढ़ कर शत्रुओं पर झपट पड़ा ।

घरिय सत्त दिन रह्यौ, वार नौमीति सुक वर ।
पच बीस आवट्टि, थट्टि लोथ सु वधि यर ॥
कूरम्मह खग भारि, सार भारथ्य सु किन्नौ ।
सार वज्ज घरियार, टोप टकार सु भिन्नौ ॥
आचार चारु राजन वरे, मरे वीर रजपूत वर ।
सग्राम सूर कूरभ सम, नर न नाग दानव्व सुर ॥ १८ ॥

शब्दार्थ:—आवट्टि=उबल पड़े, जोश में आ गये । थट्टि=समूह । यर=यल, पृथ्वी ।

अर्थः—श्रेष्ठ नवमी शुक्रवार को सात घड़ी दिन शेष रहने पर पच्चीसों योद्धाओं ने जोश में आकर शवसमूह से पृथ्वी को पाट दिया। कूरंभराय ने भी तलवार चला कर तत्त्वयुक्त महाभारत उत्पन्न कर दिया। लोहा शिरस्त्राण पर भीनी टंकार करता हुआ घड़ी के समान बजने लगा। श्रेष्ठ राजवंशज क्षत्रिय जो मारे गये थे वे सब श्रेष्ठ मंगलाचार के साथ अस्त्रराशियों के द्वारा वरण किये गये। इस युद्ध में वीर कूरंभराय (पञ्जून) की समानतापर नर, नाग, दानव और देवता कोई भी नहीं कहे जा सकते।

श्लोक

मानवं दानवं नैवं, देवानां कुरु पांडवा ।

कूरम्मराइ समो वीरं, न भूतो न भविष्यति ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—समो=समान ।

अर्थः—मनुष्य, दानव, देवता, कौरव और पांडवों में भी कूरंभराय के समान योद्धा न तो उत्पन्न हुआ और न भविष्य में ही होगा ।

कवित्त

हाइ हाइ कहि धृष्ट, इष्ट वलिभद्र समरिय^१ ।

वलिय तप कूरंम, सार साहित्त घुम्मरिय ॥

यों पञ्जून दल मल्यौ, सोइ ओपम कवि भाइय ।

कमल पंति गजराज, सरित ममम्ह मुकि ग्राहिय ॥

घन घाइ अघाइ सुघाइ घट, करिय एम कूरभ घट ।

सुधघट आइ कुधघट किय, सुभट घाइ भारथ्य थट ॥ २० ॥

प्रा० पा० १ सं० ।

शब्दार्थः—धृष्ट=दुष्ट, शत्रु । सम्मरिय=स्मरण करना । सार=लोहा । साहित=साज । घुम्मरिय=घुमड़पड़ा । ममम्ह=बीच में । घन घाइ=विशेष मार । अघाइ=वृत्त हुआ । घट=शरीर । एम=इस प्रकार । घट=घाट, दृश्य । सुघाट=सुझौल । कुघाट=कुझौल । घाइ=काटकर । भारथ्य=युद्ध । घट=समूह ।

अर्थः—वलिभद्र ने अपने इष्ट का स्मरण किया, जिससे दुष्ट हाथ २ करने लगे । तेजवारी कूरंभ भी अपने लोहे के साज वाज से सजा हुआ उत्साहित हो उठा ।

चन्द द्वारिका

(समग ३८)

तेजा

चलन चित चदह कर्यौ, चलि द्वारिका सु चित ।

मगि सीख पृथिराज पहु, मजिव" सकल अप मथ्य ॥ १ ॥

ग्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—चित्त=चित्तन किया । सीख=विदा पहु=से ।

अर्थः—चंद का चित्त द्वारिका मे जा लगा । इसलिये वहां जाने की सोची और पृथ्वीराज से विदा मांग कर अपने सारे साथियों को तैयार किया ।

कवित्त

दोड सहस हैवर विसाल, सत्त वारुन मत सज्जह ।

सत गयद रथरूढ, साज आसन प्रथि रज्जह ॥

पलक वेद जोजन प्रमान, थेट संघल क्त पाइय ।

साज लकख तन लकख, सकल बल कोरि सजाइय ॥

धानुक्क धार सत अट्ट चलि, करन तिथ्य जात्रह चलिय ।

सत सुभट दान दिय तुरिय गज, मनहु जमन सागर मिलिय ॥ २ ॥

ग्रा० पा० १, च० । २ सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—हैवर=घोड़े । वारुन=हाथी । सत गयद रथ=स्वेत हाथी जुते हुए रथ, या सात हाथी जुते हुए रथ । रूढ=आरूढ । पृथि=पृथ्वीचद, पृथ्वीभट्ट, कविचद । रज्जह=शोभित हुआ । वेद जोजन=चार कोस । थेट=प्राप्त । संघल=सिंघत जाति के, हाथियों की एक जाति । क्त=किये हुए, पैदा हुए । क्त=काम । लकख=लक । लकख=देये गये । कोरि=एकत्रित करके । सजाइय=बनाये ।

अर्थः—उमने दो सहस्र दीर्घकाय घोड़े और सात (या-सौ) मतवाले हाथी साथ मे लेने के लिये सजाये । जिसमे स्वेत (या-सात) हाथी जुते हुए थे, ऐसे इन्द्र विमान नामक रथ मे बिछे हुए आसन पर पृथ्वीचद (पृथ्वीभट्ट, कविचद) आरूढ होकर

सुशोभित हुआ। वे हाथी एक पल में चार ओजस पार करने वाले थे और खास सिंघली जानि के थे, वैसे ही काम देने वाले थे। प्रत्येक के शरीर पर एक लाख के मूल्य का साज सजा हुआ दीख पड़ता था। वे हाथी ऐसे थे मानों सृजनकर्ता ने विश्वभर के बल को एकत्रित कर उन्हें बनाया हो। कवि के साथ में श्रेष्ठ आठ सौ धनुर्धारी थे। इस प्रकार वह तीर्थ यात्रा के लिये चला। पृथ्वीराज के सौ सामंतों ने भी कवि को हाथी घोड़े दान में दिये। वे ऐसे मालूम होते थे मानो यमुना समुद्र में मिली हो (यहा उछलते हुए अश्व तरंगित-समुद्र रूपी और गज समूह यमुना रूपी कहे गये)।

गज घटन त्रवाल, भेरी सहनाय सु वज्जिय ।

चलत आइ चित्रकोट, पुरन त्रिय लोक सुरज्जिय ॥

कन्ह मान लेयन कविंद, 'ओजन दुअ विस्विय ।

शृ गारिय गढ हट्ट, मनो इन्द्रथान विसिस्विय ।

वजि त्रव वंव वज्जन वहुल, नन उछाह भिपदा नदिय ।

गढ मडि धाम मनु राम पुर, कवि सु तथ्य डेरा करिय ॥ ३ ॥

श्रा० पा० १ २ का० पा० ।

शब्दार्थः—मान=सम्मान पूर्वक। लेयन=लाने के लिये। विसिस्विय=विशेष रूप में, विस्तृत। भिपदा=वेदच, वेड़च नदी (चित्तौड़ के पास नदी है उसका अपभ्रंश नाम वेड़च और शुद्ध रूप वेदच और पर्याय रूप कवि ने भिपदा लिखा है)। राम पुर=अयोध्या।

अर्थ—प्रस्थान करने पर हाथियों के घंटे, त्रवाल, भेरी और सहनाइयों वजी। वह चित्तौड़ पहुँचा। कवि को देखने के लिये उस श्रेष्ठ नगर के स्त्री पुरुष आये। सम्मान सहित उसकी अगवानी के लिये रावल का भतीजा कन्ह आठ कोस सामने आया, चित्तौड़-दुर्ग और हाठों को इस प्रकार सजाया गया कि वह विस्तृत इन्द्रपुटी के समान प्रतीत होने लगा। कई प्रकार के वाजे त्रवाल आदि बजाये गये। वेदच (वेड़च) नदी को देखने से मन उत्साहित हुआ। गढ के अन्दर का नगर मानों रामपुर (अयोध्या) के समान था। वहा कवि श्रेष्ठ ने अपना डेरा डाला।

कवि सु सथ्य मतिप्रवल, बोलि सहचरी मत्ति वर ।

नव नव रस भोडन, मनो इन्द्रानि इन्द्र घर ॥

अर्थ:—उनके साथ पृथा कुमारी ने कवि के लिये शरीर की शोभा बढ़ाने वाले कितने ही उपहार स्वरूप सुवस्त्र, जिन पर मुक्तामाल, मणिमालाये तथा सहस्रों सीता रामियां थी। सब स्वर्ण की थालों में सजे हुए थे। और सहस्रों पंखे तथा ६८ कर्पूर-पूरित बीडे थे। एक चांदी की पालकी तथा एक स्वर्ण पुत्तलिका जो हाथों से पवन करती और मुंह से गाती थी (या—एक चार-नारी जो पवन करती हुई मुंह से गाती थी) इतना साज सामान पृथा कुंवरी ने कवि के लिये पहुँचाया और अपार द्रव्य देकर संतुष्ट किया। कवि ने भी प्रत्येक सखि को दान सम्मान देकर, स्वागत किया।

दोहा

दिय बहोरि नृप नगर को, प्रिया असीस पठाइ^१ ।

प्रति सुनंत मति दति प्रबल, करि सकूर कलनाइ^२ ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० १ पा० । २ सं० ।

शब्दार्थ:—दिय बहोरि=बहुरादी, लोटादी। असीस=आशीर्वाद। पठाइ=कहला कर। प्रति=प्रत्येक। मति दति=बुद्धि देने वाला, ज्ञान देने वाला। करि=करलिया। सकूर=सकोर, एकत्रित। कलनाइ=कलावाली, सुन्दरियाँ।

अर्थ:—कवि ने उन सखियों के साथ पृथाकुमारी को आशीर्वाद कहलाकर राजद्वार को लौटा दिया। उन सखियों ने विशेष ज्ञानदाता कवि की वार्ते सुन २ कर शुभ ज्ञान का संग्रह कर लिया।

नील कंठ सिव दरस करि, मात भवानी भेटि ।

फुनि नरिंद चित्रंग मिलि, चंद दंद तन भेटि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ:—चित्रंग=चित्तौड़ेश्वर। दद=दिन। भेटि=समाप्त किया।

अर्थ—कविचंद फिर नीलकंठ महादेव और माता भवानी के दर्शन कर चित्तौड़पति से मिला और उसने उस पवित्र राजा के दर्शन कर अपने शरीर के सब विघ्न समाप्त किये।

चलिय चंद पट्टन पुरह, अहि सिर पर धरि पीर ।

पथ एक पक्खह चलिय, द्विग सागर दिखि नीर ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—पति=पतिवत् पावन । कवि=विपत्ता । पति—पति ।

प्रर्थः—कवि-भट्ट वलों से पट्टनपुर की ओर खाना गया । उन्-समय के रास्ते में वेग नाग को सिर पर पीडा सहन करनी पड़ी । कवि को एक पत्त तक रास्ते चलने के बाद समुद्र दिखाई दिया ।

कवित्त

उत्तरि हविष्य वाजि, पाइ प्रति चले । सुमगल ।
 दिव्य देवल ध्वज, पाप परहरि अंग अगल ॥
 गजन पिठ्ठ गोमतिय, भान तप तेज विराजिय ।
 सागर जल उच्छलै, पाप भजन पाराजिय ॥
 रिनछोर राइ दरसन करिय, परिय मोह मानुस भर ।
 सुरथान मान इतनी सुचित, देव लोक कैलास दर ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ टि० । २ पा० ।

शब्दार्थः—प्रति=प्रत्येक । सुमगल=प्रसन्नता युक्त । देवल=देवालय । अगल=पूर्वगत, पहले के । गजन=आवाज करती हुई । पाराजिय=पराजित । मानुख=मानस, मन । मर=मदृग्नि । सुरथान=देवस्थान । मान=सम्मान ।

अर्थः—तब हाथी घोड़ों से उतर कर कवि और उसके साथी प्रसन्नता पूर्वक पैदल चलने लगे । जब द्वारिकेश के देवालय की ध्वजा दिखाई दी तो पूर्वकृत शारीरिक पाप दूर हो गये । उस स्थल के पीछे ही सरिता गौमती कल २ कर रही थी । जिसमें तपते हुए सूर्य की किरणें चमचमाती हुई शोभा पाती थी । प्रभूपद-स्पर्शी समुद्र का जल उछलता हुआ पाप का नाश कर उसे पराजित करता था । फिर रणछोडराय के दर्शन करने पर वह भट्टकवि मन से मोहित हो गया । उस देवस्थान का सम्मान सब के मन में स्वर्ग स्थित कैलास के समान पैदा हुआ ।

दोहा

हाटक मडप छत्र लहि, मुत्तिय पंतिन माल ।
 मनो चढ बहु भान मरु, कलमख कट्ट काल ॥ १० ॥

शब्दार्थः—मान=सूर्य । हाटक=सुवर्ण । मरु=मय में । कलमख=कलिमा । कल=समय ।

अर्थः—वे रणछोड़राय छत्र युक्त स्वर्ण-मंडप तथा मुक्तापंक्ति की मालाओं से आवृत्त थे। वह दृश्य ऐसा मालूम पड़ता था मानों चन्द्रमा बहुत से सूर्यों के बीच होकर समय की कालिमा को विनष्ट कर रहा हो।

फिरि परदछ दरसन करिय, हुअ परतक्खि प्रमान ।

तव अस्तुति सू प्रनाम करि, प्रभा विराजिय भान ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—परदछ=प्रदक्षिणा। परतक्खि=प्रत्यक्ष।

अर्थः—कवि ने प्रदक्षिणा कर दर्शन किये। ध्यान करने पर ऐसा आभास हुआ मानों सूर्य-प्रभा धारण कर वे प्रभू साक्षात् उतर आये हों (सामने हुए हों)। कवि ने तब स्तुति कर प्रणाम किया।

करि अस्तुति सस्तुति सुवर, होम हवन हरि नाम ।

सोवन तुला सु साज वर, करि सु भट्ट सुचि काम ॥ १२ ॥

ग्रा० पा० १ भी० पा० का० ।

शब्दार्थः—सस्तुति=स्वस्तिवाचन। सोवन तुला=स्वर्ण तुला दान। सुचि=शुचि, पवित्र। काम=कर्म।

अर्थः—स्तुति करने के पश्चात्, श्रेष्ठ ढंग से स्वस्तिवाचन के साथ हवन कर ईश्वरोच्चारण किया और वाद में भट्ट-कवि ने स्वर्ण तुलाका दान कर पवित्र कार्य किया।

हय हथी सत दान दिय, रथ रथिय द्रव दिद्ध ।

हाटक चीर वसुन्धरा, कवि घर दीन सु निद्ध ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—रथ रथिय=बहुत से रथ। चीर=चम्र। निद्ध=नव निधि।

अर्थः—सौ या सात हाथी-घोड़े, बहुत से द्रव्य से लदे हुए रथ, स्वर्ण, पट, पृथ्वी, गृह आदि नव निधि तुल्य कवि ने दान किया।

दिय डेरा कुन्दन सु ढिग, जे लीने सुरतान ।

तर तेवर तम्बू तनिय, मनहु कलस के भान ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—कुन्दन=कुन्दनपुर। तर=तरु, वृक्ष। तेवर=तीन २ गीर्द वाले।

शब्दार्थः—उच्चैः थह=ऊँची भूमि, ऊँचास्थल । गोख=भरोखे । पट्टिका=वस्त्र के । गरुड=भडे ।
वारद=वादल । रास=समूह ।

अर्थः—कवि चंद के वितान जो ऊँची भूमि पर तने हुए थे और जिनमें कपड़े के ही वड़े २ भरोखे थे । वे वितान वादल-समूह के समान शोभा पा रहे थे । उन्हें भीम ने देखा ।

आदर करि आसीस दिय, भुअ भोरा भीमग ।

सिद्ध दिद्ध जैसिघ तुह, तिन पहु पुजिज पवंग ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—भुअ=पृथ्वी पर । सिद्ध दिद्ध=मिद्धता दे दी । तुह=तूने । तिन=उस । पहु=राजा ।
पवंग=पवित्र अंग वाले को ।

अर्थः—कवि चंद ने भीमदेव का आदर किया और आशीर्वाद दिया तथा कहा कि हे राजा । तूने पृथ्वीपर जयसिंह (सिद्धराज) को सिद्धी दे दी है (तूने अपनी कीर्ति और कर्तव्यों से जयसिंह का वंशज होना सिद्ध कर दिया है) । तब उस राजा ने पवित्र अंग वाले उस कवि की पूजा की (दान-मान में तुष्ट किया) ।

आरोहिय असु उप्परह, उडी रेन खुर खेह ।

भोरा चढि सोरा भयौ, गयौ अपने ग्रह ॥ २० ॥

शब्दार्थः—आरोहिय=चढ़ा । असु=अश्व, घोड़ा । रेन=रजकण । खेह=धूलि । सोरा=प्रसन्न ।

अर्थः—तत् पश्चात् कवि चंद घोड़े पर चढ़ कर विदा हुआ । उसके चलने से आकाश मंडल रजकण और धूल से आच्छादित हो गया । इधर भोला भीम कवि से मिलकर प्रसन्न होता हुआ घोड़े पर चढ़कर अपने निवास स्थान को गया ।

प्रथु कागद चंदह पढिय, आयौ खरि गजनेस ।

कूच कूच मग चन्द खरि, पहुँच्यौ घर दानेस ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—प्रथु=पृथ्वीराज । खरि=चल कर, चढ़ाई करके । दानेस=दानियों में प्रसन्न (दिल्लीश्वर) ।

अर्थः—इतने ही में कविचन्द के पास पृथ्वीराज का पत्र आया । उसमें गजनी-पति के चढ़ आने का हाल था जिसे पढ़ कर कविचन्द शीघ्रतापूर्वक स्थान २ पर डेरा डालता हुआ दिल्लीश्वर के पास आ पहुँचा ।

भूमि बंध

(समय ३६)

दोहा

उर अड़ौ भीमंग नृप, नित खरुक्के आड ।

वैर दाह दिल प्रज्जरै, खल पल रुधिर बुझाड ॥ १ ॥

शब्दार्थः—उर अड़ौ=हृदय मे । खरुक्के=खटकता । आड=याकर । दाह=जलन । प्रज्जरै=जलती थी । खल=शत्रु । पल=मांस । बुझा=उभ्र पाती, शांत हो पाती ।

अर्थः—पृथ्वीराज के हृदय मे चालुक्य राजा भीम, हमेशा खटकता था । शत्रुता की जलन उसके (पृथ्वीराज के) दिल को जलाती रहती थी । केवल शत्रु के आमिष (मांस) द्वारा निकले हुए रक्त ही से उसकी जलन का शान्त होना संभव था ।

कवित्त

उर अन्तर सोमेस, पिथ्य तिसरै न निमख छिन ।

हरि हरि हरि उच्चार करइ, सहसुभट मद्धि गन ॥

करत दुक्ख चहुआन, वरजि प्रम्मार स्यघ तह ।

आदि धर्म छत्रीनि, करै ए सताप समर-गह ॥

खग धार खडि तनु मडि जसु, तदि सुरलोक सु सचरै ।

अज्जानवाह अयनीस वड, अट्ठवै इम उच्चरै ॥ २ ॥

शब्दार्थः—सोमेस=सोमेश्वर । पिथ्य=पृथ्वीराज । तिसरै=नहीं भूलता था । निमख=निमेष । छिन=क्षण । मद्धि=मध्य में । गन=समूह, समुदाय । वरजि=निषेध किया । प्रम्मार=प्रमार क्षत्रिय । स्यघ=सिंह । छत्रीनि=क्षत्रियों का । करै=ए=नहीं करते । समर-गह=युद्ध में मरे हुए का । खडि=खट २ । तनु=शरीर । मडि=मटन कर । जसु=यश । तदि=तब । सचरै=संचार करना, चला जाना । अज्जानवाह=लम्बी मुंजा वाला । अयनीस=पृथ्वी पति । वड=उच्च । अट्ठवै=आठ राजवंशी ।

अर्थः—पृथ्वीराज अपने पिता सोमेश्वर को निमेषमात्र के लिये भी नहीं भूलता था । वीर-समूह के मध्य सत्र सामत उसकी (सोमेश्वर की) मृत्यु पर दुःख प्रगट करते हुए, हे हरि । हे हरि ॥ कह रहे थे । इस प्रकार चहुआन नरेश्वर को पिता के

लिये दुःख प्रगट करते हुए देख आवूराजवशी; सिंहप्रमार ने उसे निषेध किया और कहा कि क्षत्रियों का सदा से यह धर्म रहा है कि युद्ध में मरे हुए वीर का संताप नहीं किया जाता। वही लम्बी भुजा वाला क्षत्रिय नरेश सब में उच्च है जो खड्ग धारा द्वारा अपने शरीर को खंड २ कराकर यश फैलाता हुआ स्वर्ग लोक, चला जाता है।

कहै स्यंघ पामार, वत्त चहुआन चित्त धरि ।

गुज्जर धर उज्जारि, पारि प्रज्जारि छार करि ॥

सोमेशुर सुरलोक, तोहि संमरिय लज्ज भुव ।

कितिक वत्त चालुक्क, किमि सु अगवइ समर तुव ॥

सुरतान भूमि कंकरु जहाँ, तहँ थानौ मडौ भलौ ।

तुछ सुभट संग करि विकट भट, पुन आपन ग्रहौ चलौ ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—गुज्जर=गुर्जर भूमि, गुजरात। धर=स्थान। उज्जारि=जन शूल्य करे। पारि=दहाकर। प्रज्जारि=प्रज्वलित कर। छार=छाग, मस्म। तोहि=तुम्ह को। लज्ज=लज्जा। भुव=पृथ्वी। कितिक=भित्तनीक (क्या?)। वत्त=वात। किमि=कैसे। अगवइ=स्वीकृत कर सकते हैं, ले सकते हैं। समर=युद्ध, (लोहा)। तुव=तेरे से। कंकरु=युद्ध। थानौ=थाना (रक्षकों की चौकी)। तुछ=तुच्छ, थोड़े। सगकरि=साथ में देकर। विकट=मयानक। भट=योद्धा, सामंत। पुन=पुनः। आपन=अपने। ग्रहौ=ग्रसने के लिये। चलौ=चलना चाहिये।

अर्थः—सिंह प्रमार फिर कहने लगा—हे चाहुआन नरेश। मेरी इस बात को दिल में उतार लीजिये और गुर्जर भूमि स्थित स्थानों को जन-शून्य कर उन्हें दहा और जला कर भस्मीभूत कर दीजिये, क्योंकि राजा सोमेश्वर तो स्वर्ग प्राप्त कर चुके हैं और अब इस पृथ्वी की लज्जा का भार आप पर ही है। चालुक्य-क्षत्रिय आपके सामने क्या चीज है? वे आपसे लोहा कैसे ले सकते हैं? इसलिये बादशाह के भूभाग की ओर से जहाँ अपने देश में युद्ध की संभावना हो वहाँ अच्छा थाना स्थापित कर वहाँ का भार किसी विकट सामंत को सौंप और कुछ सामंत (योद्धा) उसके साथ देकर हम सब को शत्रुओं को ग्रसने के लिये चलना चाहिये।

दोहा

श्वान सलित अंजुलि करि, प्यड दान दै तात ।

सहस्र घेन संकल्प करि, ग्रन्था कथ व्रतात ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—सलित=गरिता । ग्रन्था=ग्रन्थ म । ऋथ=कहा । वृत्तांत=वृत्तान्त ।

अर्थः—तब पृथ्वीराज सरिता में स्नान कर पिता का पिंडदान कर के जलाञ्जलि दी और सहस्र गाय का सकल्प किया । यह वृत्तान्त इसी ग्रन्थ में पहले दे दिया गया है ।

कवित्त

कहहि वत्त प्रभिराज, सुनहु सामत सूर सम ।

जो न्यु म्मान भवस्य, मोड सपजड कंम क्रम ॥

जदिन भीम सग्रहौ, सोम उग्रहौ तदिण रिण ।

जुगिनि वीर विनाल, करउ संतुष्ट त्रिपिति तिन ॥

घृत मुक्कि पाग वधनु तज्यौ, सज्यो आपु संभरि दिसह ।

अवतार भूत दानव प्रवल, अग अग्नि प्रज्वल रिसह ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—सम=समान । अंमान=निर्माण । भवस्य=भविष्य । सपजड=होता है । कंमक्रम=क्रमशः । सग्रहौ=पकड़ों । उग्रहौ=मुक्त होऊँ । तदिण=उस दिन । जुगिनि=योगिनियों । विनाल=वैताल । विपिति=वृत्त । पाग=पगड़ी । वधन=वाधना । आपु=स्वयं । दिसह=दिशा । भूत=प्राणियों । प्रज्वल=प्रज्वलित, । रिसह=क्रोधाग्नि ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज कहने लगा—मेरे समान ही बहादुर सामंतों सुनो, जो भविष्य का निर्माण होगया है । वही क्रमश होता है, मैं जिस दिन भीम को बंधन में ले पाऊँगा उसी दिन पिता के ऋण से मुक्त होऊँगा । मैं उन योगिनियों वीर वैतालादि को संतुष्ट और वृत्त कर दूंगा । यह कह उसने घृत खाना और पगड़ी वाधना छोड़ दिया । वह वीर संभरि स्वयं शत्रु की ओर चढ़ाई करने की तैयारी में लग गया । प्राणियों में प्रज्वल, वह दानव का अवतार था । उसके अग-अग में क्रोधाग्नि ज्वलित होगई ।

गाथा

जाइ सपत्ते सूर, ग्रहं ग्रहे आप आपाई ।

पिक्खिय नैर विरूप, भूपं विना विहल सहय ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—सपत्ते=पहुंचे । अप्प आपाई=अपने २ । पिक्खिय=देखा । नैर=नगर, शहर । विरूप=भयानक । सहय=मव मोई ।

अर्थ—तत् पश्चात् सामंतगण अपने २ घर को चले गये । राजा सोमेश्वर के बिना सब ने शहर को भयावना और नगर निवासियों को विहल देखा ।

दोहा

भूमि सयन प्रथिराज करि, निसा विहानी निट्टि ।

अरुण समय उदोत ही, मंडि सभा सब विट्ठ ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—विहानी=व्यतीत की । निट्ठि=दुश्किल से । उदोत=उदय होते ही । मंडि=कौ । विट्ठि=बैठे ।

अर्थः—राजा ने उस रात्रि में पृथ्वी पर ही शयन किया । उसकी वह रात्रि कठिनाई से व्यतीत हुई । अरुणोदय होने पर राजा उठ कर सब सामंतों के साथ सभा-स्थान में आकर बैठा ।

करि प्रणाम सामंत सह, बुल्लिय जोतिग जोइ ।

सद्धि महरत चडिदयै, जिहि अगगे जय होइ ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—बुल्लिय=कहा, निवेदन किया । जोतिग=ज्योतिषी । जोइ=खोजकर । सद्धि=साध कर । चडिदये=चढ़ाई की जाय । जिहि=जिससे । अगगे=आगे जाकर ।

अर्थः—सब सामंतों ने राजा को प्रणाम किया और निवेदन किया कि अच्छे ज्योतिषी को बुलाया जाय ताकि मुहूर्त साध कर चढ़ाई की जाय, जिससे आगे जाकर निश्चय ही विजय हो ।

व्यास आनि दिक्खी लगन, घरी अंस पल जोइ ।

इहि समअँ जौ सज्जियै, सही जित्ति तौ होइ ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—आनि=आकर । दिक्खी=देखा । घरी अस=घटिकांश, इष्टघटी । जोइ=देख कर । इहि=इस । समअँ=समय । सही=निश्चय । जित्ति=जीत, विजय ।

अर्थः—तब व्यास (ज्योतिषि) ने आकर घटिकांश और पल देखते हुए लगन देखा और कहा, इस समय चढ़ाई की जाय तो निश्चय ही विजय होगी ।

कवित्त

केन्द्रीय ससि सोम्य, भौम पंचम अधिकारी ।

राह वीर अष्टमौ, वक्र सत्तम सुद्धारी ॥

जंगम थावर धरिय, हलिय तिहि-नाम-सेन वर ।

गनिक ग्रन्थ बहु मक्खि, राज पंचम पंचम-गुर ॥

मन काम होइ सो किज्जिये, परि जित्ते पदर दिवम् ।

पिष्टी पवन सम्हौ अरी, तौन वसाउय काल वस ॥ १० ॥

शब्दार्थः—केंद्रीय=केन्द्र मे । गोम्य=बुध । पचम=पाचौ स्थान मे । राह=राह । गीर=उग गीर के । वक=केतू । सत्तम=सातवे । जगम=स्थिर । शानर=शनि । गलिय=गडाई जाय । मेन=मेना । गनिक=गणित । बहु=बहुत । सक्खि=साक्षी गज=गजा को । पचम २=१० म स्थान मे । गुर=गुरु । अरि=शत्रु को । जिते=जीत ता । पदर=पदरे । पीष्टि=पीष्टे । सम्हो=सम्भुग्य । अरी=शत्रु । वसाइय=वसाया ।

अर्थः—व्यास कहने लगा, इस वीर के ग्रह, केन्द्र मे चन्द्रमा और पाचवें स्थान मे बुध, अष्टम स्थान मे मंगल, सातवें स्थान मे राहु, केतू और शनि स्थिर हैं । यह अपनी सेना बढावे तो सफल होगा । बहुत से गणित ग्रन्थ साक्षी देते हैं कि दसवें स्थान मे गुरु हो तो इच्छित कार्य करने पर शत्रु पर विजयी होता है । अतः अच्छे दिन हैं कि सर्व श्रेष्ठ गृह इसके नाम पर है, किन्तु ऐसा होते हुए भी पीछे से ढकेलने वाला (हमला करने वाला) पवन रूपी हो और आगे शत्रु हो तो उस समय वैर नहीं वसाना चाहिये । (व्यास के अंतिम कथन का आशय यह है कि यदि ऐसे ग्रह होने पर भी पीछे से पवन रूपी शत्रु-गोरी के द्वारा आक्रमण की सभावना हो तो आगे स्थित चालुककी शत्रुओं पर इस समय आक्रमण नहीं करना चाहिये) ।

देहा

रेन परै सम्हौ अरी, चक्र जोगिनी अगग ।

दई होइ दुज्जन-दिसा, तौ तन भग्गे खग्ग ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—रेन=रण, युद्ध । परै=आजाय । सम्हो=सामने । अगग=आगे । दई=ब्रह्मा । दुज्जन-दिमा=दुर्जन की ओर, शत्रु के पक्ष मे । तौ=तौ भी । तन=शरीर । भग्गे=नष्ट हो । खग्ग=खड्ग द्वारा ।

अर्थः—युद्ध मे जब शत्रु सामने हो उस समय यदि योगिनि पक्ष मे होकर आगे चक्र चलाने के लिये तत्पर हो, उस समय शत्रु के पक्ष पर यदि ब्रह्मा भी हों तब भी खड्ग द्वारा शत्रु ककालों का नाश निश्चय ही होगा ।

कवित्त

कहै व्यास जगजोति, राज चहुआन प्रमानिय ।

गुज्जर गुज्जर सयन, वैर सोमेसर ठानिय ॥

इक्क लक्ख आहुरहि, लक्खि लक्खनि खग रुंधिह ।

होइ जैति चहुवान, पान भीमगह वंधहि ॥

गुजरात होइ तुअ ग्रेहनिय, यह वानी संमुख मँडौ ।

जो मिटै वत्त इह जोग कोइ, तौ हत्थह पत्रौ छँडौ ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—जगजोति=नाम विशेष, ससर में प्रतिभावान । प्रमानिय=प्रमाण युक्त, सत्य । गुज्जर=गुर्जर देशीय वीर, चालुक्य वीर । सयन=सेना । इक्क=अकेला । लक्ख=लक्ष । आहुरहि=अपदने जैसे । लक्खि=लक्ष । लक्खनि=लाखों से । खग=खड्ग । रुंधिह=रोंध देगे । जैति=जय । पान=पाणी, कर । भीमगह=भीम । वधहि=बँधेगा, जेड़ेगा । ग्रेहनिय=गृहणी (वश में) । वानी=वात । मँडौ=कहता हूँ । मिटै=मिट जाय, असत्य हो जाय । जोग=योग । हत्थ=हाथ से । पत्रो=पतड़ा, पचांग । छँडौ=छोड़ दू ।

अर्थः—पुन जग जोति (जगजोति नाम या जग में ज्योति स्वरूप, प्रतिभावान) व्यास कहने लगा यह सत्य है कि गुर्जर सेना के गुर्जर (चालुक्य) वीरों ने सोमेश्वर से वैर किया, किन्तु आपका एक एक योद्धा एक लक्ष वीरों से भिड़ने जैसा है । आपके लक्षवीर लाखों की संख्या में शत्रुओं का मुकाबला करेंगे तो भी ये खड्ग द्वारा उन्हें रोंध देंगे और आपकी विजय होगी । भीम आपके सामने करबद्ध होगा । गुजरात भूमि आपके वश मे हो जायगी । यदि यह वात असत्य निकल जाय तो मैं हाथ मे पंचांग (पत्रा) रखना छोड़ दूंगा ।

दोहा

वचन व्यास सज्यौ सयन, वुल्लि सुभट भट राज ।

तत्र महरत सद्धि कै, वडिड निसाननि गाज ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—सयन=सेना । वुल्लि=बुला कर । तत्र=तत्क्षण । सद्धि=माघकै । वडिड=कैली । निसाननि=नक्कारों की । गाज=ऊर्ध्व ध्वनि ।

अर्थः—व्यास के वचन सुन, राजा ने श्रेष्ठ योद्धाओं को बुलाकर उसी समय सेना सजाई और तत्काल मुहूर्त साधा । जिससे नक्कारों की ऊर्ध्व ध्वनि चारों ओर फैल गई ।

दोहा

विक्रम अरु चहुआन नृप, पर धरती सक वंध ।

असम समै साहस करन, हिन्दु राज दुअ कथ ॥

शब्दार्थः—विक्रम=रावल विक्रम=केशरी (चित्तौडेश्वर) । सप्तभि-गपना शिक्का जमाने गाने, चलाने वाले । असमसमे=उभे समय में, (जब कि मल्लिकार्जुन के गतात्ता देश गौरी चालुक्य और राष्ट्रवर के विरोधी होने पर) । हिन्दुगज=हिन्दुस्तान का शासन भार । दय=दोनों ।

अर्थः—विक्रम केशरी (चित्तौडेश्वर) और चहुआन राजा (पृथ्वीराज) पराई भूमि में अपना शिक्का जमाने वाले हैं और (जब कि मुसलमानों के हमले के अलावा भी देश द्रोही चालुक्य और राष्ट्रवरो के हमले होते हैं) इस आपत्ति के समय यही साहस रखने वाले हैं और इन्हीं दोनों के कर्णों पर हिन्दुस्तान का शासन भार है ।

निड्डुर मन सजुरि सयन, हुअ इक्कत पृथिराज ।

जनु टिड्डी धर उल्लटिय, वडिद निशाननि गाज ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—मन=सजुरि=मन के मृताविक पक्ति वद्ध की गई । मयन=पेना । हुअ इक्कत=सहमत हुआ । वडिद=वृद्धि हुई ।

अर्थः—निड्डुराय ने अपनी बुद्धि के अनुसार सेना को पक्तिवद्ध किया जिससे राजा पृथ्वीराज भी सहमत हुआ और वह सेना ऐसी दीख पड़ी मानों टिड्डीदल उमड़ आया हो । उसी समय नक्कारों की ध्वनि हुई ।

पच सवद वज्जे गहिर, घन घुमर वरजोर ।

जग जुभाऊ वज्जिया, वडिद श्रवन्न सोर ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—पच सवद=पचम स्वर या पच स्वर । घनघुमर=आकाश में प्रतिध्वनित । वरजोर=जोर शोर से । जगजुभाऊ=रणवाद्य । वज्जिया=वजे । सोर=शोर गुल ।

अर्थः—पचम स्वर में अथवा पांचों स्वरों में रणवाद्यों के गभीर घोष से आकाश-गडल प्रतिध्वनित हो उठा, जिससे श्रोतागणों के कान केवल शोरगुल ही सुनने लगे ।

चढै दिक्खि चालुकक दल, वहुरे सभरि दूत ।

भेष दिगवर दुति तनह, जे अवधूत नि धूत ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—चढै=सजने पर । वहुरे=फिरो, लांटे, आये । सभरि=समगेश्वर । दिगवर=दिशाओं के आलों पर पड़दा टालने वाले, दिशाओं से लुप्त । दुति=द्वितिय । अवधूत=साधुओं में । धूत=धूर्त ।

अर्थः—चालुक्की सेना द्वारा की गई चढ़ाई को देख कर सोमेश्वर (पृथ्वीराज) के दूत लौट गये । वे इतने दक्ष और धूर्त थे कि अवधूत वेश बना कर दिशाओं से भी छिपे हुये थे ।

गनिका गनिक कव्यद की, ठग विद्यापरवीन ।

दूत धूत अनभूत तम, नवनि राज तिन कीन ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—गनिका=वेश्या । गनिक=ज्योतिषी । कव्यद=कवि की । परवीन=प्रवीण-। अनभूत=अदभूत । तम=तिम, तैसे । नवनि=नमस्कार । राज=राजा से । कीन=किया ।

अर्थः—वैश्या, ज्योतिषी और कवि उनके सामने क्या वे ठग (कपट) विद्या में प्रवीण थे । ऐसे अदभूत दूतों ने आकर राजा को नमस्कार किया ।

गाथा

संमुख पित्रिखय राज, चुल्ले वयन सु हित्त सभाज ।

चढि चालुक्की गाजं, नर भर समुद उलटि जनुपाजं ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—संमुख=सामने । पित्रिख=देखा । राजें=राजा ने । चुल्ले=कहे । वयन=वचन । सुहित=हित प्रद । समाज=समा में । गाज=गर्जना की । नरभर=वीर योद्धा, सैनिक । समुद=समुद्र । उलटि जनुपाज=तूफान पर आ गया हो, कार लोप हो गया हो ।

अर्थ —आये हुए दूतों की ओर राजा ने देखा और दूतों ने सभा में उसके हित के वचन कहे—चालुक्की वीर गर्जना कर सैनिकों सहित इस प्रकार बढ़ चले जैसे समुद्र में तूफान उठ आया हो ।

दोहा

इक्क लक्ख संन्या सकल, अक्कल कही नहि जाइ ।

इक्क सहस मद गज्ज की, दिखिये जानु बलाइ ॥ २० ॥

शब्दार्थ —संन्या=सेना । अक्कल=निश्चित । मद=मतवाले-। गज्ज=हाथी । दिखिये=देखे जाते हैं । जानु=जैसे ।

अर्थ. —उनकी सेना अनुमानत. एक लाख है जिसको भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । इस सेना में एक हजार मदमस्त हाथी बला की भांति दिखाई देते हैं ।

कवित्त

इम भंजौ भीमग, जुद्ध जौ मोहि जुरै रण ।
 ग्रीष्म पवन सहाइ दग जरि जात सघन वन ॥
 यौ भजौ भीमग भीम कुरनद पञ्चरिय ।
 यौ भजौ भीमग, सक्ति महिचागुर वारिय ॥
 इमि जुरौ जुद्ध भीमंग सौ, 'अग्नि' तेज चाइहि हिता ।
 पृथ्वीराज नाम तहिन धरौ, उदर फारि कटहौ पिता ॥ २१ ॥

प्रा० पा० १ भौ० प० ।

शब्दार्थः—भजौ=नष्ट कर दौं । भीमग=चालुक्य भीम या भीम, के अग स्वरूपी वीर । जुरै=हुटे, सामने होवे । दग=चिनगारी । कुरनद=कौरव । सक्ति=देवी । वारिय=वम । अग्नि=अन्न, रोती । वाइ=वायु । हिता=हता, नष्ट करे ।

अर्थः—यह सुन कर पृथ्वीराज ने कहा कि यदि युद्ध मे मेरा और भीम का तथा उसके अग स्वरूपी वीरों का सामना हो गया, तो उन्हे इस प्रकार नष्ट कर दूंगा जैसे ग्रीष्म काल की हवा चिनगारी की सहायता से सघन वन को, भीम-कौरवों को, देवी-महिपासुर को और तेज पवन-कृपि को नष्ट कर देता है । मैं अपना पृथ्वीराज नाम तब ही सार्थक समझूंगा जब चालुक्यों के उदरों को विदीर्ण कर मेरे पिता का बदला लेलूंगा ।

दोहा

आखेटक खिल्लन चलिय, सुभट पंति सजि साज ।
 चावहिसि वनु विट्टिकै, मद्धि सपत्तिय राज ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—खिल्लन=खेलने । पति=पक्ति । चावदिभि=चारों ओर । विट्टिकै=घेरकर । मद्धि=अदर । सपत्तिय=पहुँचा । राज=राजा ।

अर्थः—इतना कह शिकार खेलने के बहाने सामंत पक्ति सुसज्जित कर चारों ओर घेरा डालता हुआ राजा अनन्तर मे प्रविष्ट हुआ ।

वन वेहड वग्वे विपम, हकत पत्तिय सज ।
 जो जह विट्टौ गो तहौ, हुब डेरा वन मझ ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—वेहड़=वीहड़ । वंखे=टेढ़े । हकत=फिरते हुए । पत्तिय सज=रात्रि आ पहुँची । विट्टौ=वैठा । डेरा=मुकाम ।

अर्थः—उस वीहड़ वन में शक्ति शाली वीरों को फिरते हुए सायंकाल होगया इस लिये जो जहाँ था वहीं उन्होंने डेरा डाला ।

सूर उदै चढ़ूहते, उतरे संध्या सूर ।

अन्न पान पहुँच्यौ सकल, कह नीरै कहदूर ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—सूर=सूर्य । चढ़ूहते=चढ़ाई की थी । उतरे=विश्राम किया, मुकाम किया । सूर=शूर-वीर । कह=क्या । नीरै=नजदीक ।

अर्थः—सूर्योदय होने पर उन वीरों ने चढ़ाई की । सायंकाल होने पर वहीं आस-पास विश्राम किया और सबके लिये अन्नजल पहुँचाया गया ।

हुकम नकीवति कहि फिरै, डेरा डेरा गाहि ।

जो जीउ जा दिग निक्करै, राजन खिज्मै ताहि ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—हुकम=आज्ञा । नकीवती=नकीब, दूत । डेरा २=मुकाम मुकाम । गाहि=ग्रहण करते हुए । जा=जाकर । जीउ=जीव, जानवर । दिग=पास । निक्करै=निकले । खिज्मै=नाराज होवे । ताहि=उसपर ।

अर्थः—प्रत्येक सामंत के डेरे पर दूत द्वारा आज्ञा भेजी गई कि जिसके निकट जो जानवर निकले वह उसी का शिकार है (वह उसे मार सकता है) । राजा उससे नाराज नहीं होंगे ।

उत्तरि सेन सुराजं, निद्रा छुमित सव्व सुभटाई ।

मोहं वस ज ग्यान सहसुत्तैव खग वंधाई ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—उत्तरि=मुकाम किया । निद्रा छुमित=निद्रा से व्याकुल, निद्रा प्रसित । ज=जैसे । ग्यान=ज्ञान शक्ति । सुत्तैव=सो गये । खग बंधाई=खड्ग कमे हुए ही, या खड्गधारी ।

अर्थः—राजा ने ससैन्य पड़ाव किया और तलवारें कसी हुई होने पर भी सब सामंत निद्रा के वश में इस प्रकार चेतना शून्य हो गये जैसे ममत्व के कारण ज्ञान लुप्त हो जाता है ।

सुत्तेय सहसेन. निद्रा विवस चपिग वीर ।
जम वस ज जीव. निज्ज '—ग्यान चपिज काल ॥ २७ ॥

प्रा० पा० १ टि० ।

शब्दार्थः—जम=यमराज । ज=जैसे । निज्ज=ज्ञान=स्वज्ञान, ज्ञान मराना तात=काल हो, समय हो ।

अर्थः—समूची सेना को निद्रा ने इस प्रकार दबा दिया जिस प्रकार यम प्राणी को और आत्म-ज्ञान का को दबा देता है ।

कवित्त

राज पास कयमास, कन्ह कनकू सव्वूरा ।

सवर सूर पामार, जैत साहिव अव्वूरा ॥

सलख चन्दपु डीर दई, दाहिम चामड ।

सारग गुर सिरमौर, राज हमीर ति सड ॥

पञ्जून सूर कूरम्भ बलि, वर पहार तौवर सुभर ।

लगरीराउ लौहान भर, रहिग सेन जुरि सूर वर ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—कनकू=कनकराय । सव्वूरा=सबल बलवान एक प्रकार का सबल शस्त्र भी होता है जिसका रूप लोहे के बरतों के रूप में होता है उसे धारण करने वाला । सवर=सबल । साहिव=सजाधजा । अव्वूरा=आमू का । दई=नद्या । गुर=गुरु । ति=वह । सड=माड, वषभ । तौवर=तोमर हथिय । रहिग=रही । जुरि=छुटा कर ।

अर्थः—राजा के पास कैमास के अनिरिक्त सबल वीर (या उत्तम साबल बर्द्धाशस्त्र रखने वाले) नरनाह कन्ह, कनकराय रघुवशी वीर, सजाधजा आमू राजवशी जैत्र प्रमार और सलख, चन्द पुण्डीर विधि स्वरूप दाहिमा चामुण्डराय, राजगुरुओं का सिरमोर सारगराय, वृषभ तुल्य हम्मीरराय, बलवान वीर कूरम्भराय, श्रेष्ठ योद्धा पहारराय तोमर, वीर लघरीराय और लोहाना आदि थे । इन श्रेष्ठ बहादुरों ने सेना एकत्रित की (चालुक्यों पर चढ़ाई करने की तैयारी करली) ।

जाम एक निसि पन्छ, उठन आखेट विचारिय ।

सुनौ सव्य सामत मत, यह न्यत सुधारिय ॥

जंत जीव जगौ न, तत क्रम्म, सिद्धि न होई ।
 पुव्व श्रवन संभर्यौ, निगम जंपै वर लोई ॥
 चित्तयौ चित्त चिन्ता सु मन, मा सुत्ती तिय सद सुनि ।
 त्रिस्मान राज प्रथिराज गुन, सुवर सगुन वज्जै सु धुनि ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—जाम=याम, प्रहर । निसि=रात्रि । पच्छ=पिछली । उठन=उठे । सव्व=सब । च्यत=चिंतन करके । धारिय=धार लिया, निश्चय कर लिया । जत=जहाँ तक । जीव=प्राणी । जगौन=जागृत नहीं होता, पुरुषार्थ को काम में नहीं लेता । तत=तब तक । क्रम्म=कर्म, कार्य । पुव्व=पहले से । समर्यौ=सुना । निगम=वेद, शास्त्र । जपै=कहा है । लोई=श्रेष्ठ लोगों ने । मा=माता, देवी (श्याम-चिड़िया) । सुत्ती=श्रुति, कान । तिय=तीन । सदद=शब्द । त्रिस्मान=निश्चय विचार किया हुआ (युद्ध करना सोचा) । गुन=गणना की (ऐसा ही होना निश्चय पाया) । सुवर=श्रेष्ठ । सगुन=वज्जे=शकुन के वाद्य की ध्वनि हुई ।

अर्थः—जब एक प्रहर रात्रि शेष रही तब उठ कर आखेट करने का निश्चय किया और राजा कहने लगा, हे सामंतो । मैंने यह चिंतन कर निश्चय किया है कि जहां तक मनुष्य जागृत नहीं होता (पुरुषार्थ को काम में नहीं लेता) वहाँ तक कार्य की सिद्धि नहीं हो पाती यह बात पूर्व परम्परा से चली आरही है । शास्त्रकारों ने भी यही कहा है । राजा की इस बात को सामंत अच्छी तरह सोच रहे थे कि इतने में श्यामा देवी (काली चिड़िया जिसे देवी कहते हैं) की तीन आवाज कानों में सुनाई दी । इस उत्तम शकुन से राजा पृथ्वीराज ने जो निश्चय किया था और कहा था उसी की पुष्टि हुई सोच कर (युद्ध के भविष्य का विचार करते हुए) मंगलिक वाजे बजवाये ।

दोहा

वन हंकम नृप हुकम किय, जह तह गज्जै सूर ।

तवल तूर त्रंवक त्रहिय, कह नीरे कह दूर ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—हकम=बढने की, घेरने की । गज्जै=गर्जना करने लगे । तूर=तुर ही । त्रहिय=बजने लगे ।

अर्थः—वन को घेरने की राजाने आज्ञा दी और जहाँ तहाँ वीर गर्जने लगे । नजदीक और दूर सर्वत्र तवल, तुरही और त्रम्बक आदि विविध वाद्य बजने लगे ।

घुघर गज घटानि धुनि, हय गय हममह लन्धि ।
मयन सब मोवत जगिय, कानन हकिय पन्धि ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—घुघर=घुघरू । हममह=मेना । लन्धि=दिखाने । पन्धि=पथ । मयन=मयन । जगिय=जगे ।
हकिय=विहार करने लगे । पन्धि=पथी ।

अर्थः—उसी समय घुघरू की ध्वनि होने लगी और सेना के हाथी तथा घोड़े दिग्वार्ड पड़े जिससे सब सुशुप्त पक्षी जाग गये और वन में विचरने लगे ।

सिंघ छुधित निद्रा ग्रसित, स्यघिनि सिंसु दुव पास ।
काल व्याल नागिनि जग्यौ, वहि वीरा रस त्रास ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—छुधित=छुधित । स्यघिनि=सिंहनी । सिंसु=सिंशु । दुव=दो । त्रास=भय, भयानकता ।
अर्थः—भूखसिंह निद्रा ग्रस्त था तथा सिंहनी के दोनों बच्चे पास थे । सिंह सिंहनी इस शोर गुल से यमराज के व्याल दम्पति (सर्प सर्पिणी) के समान जाग गये ।

कवित्त

भपटि लपट जनु अगि, कुनि दिसि-कन्ह लटकिय ।
अतुलि पाइ चल अतुल, अगि जनु जगि भटकिय ॥
जाजुलित गभीर, गरुव सहह उच्चारिय ।
हाइ हाइ आरिष्ट, राज हकत वक्कारिय ॥

असवार चुकि चण्यो ति हय, कर कुडलि कमानरजि ।
नरनाह वाह अवसान फवि, परिसु वत्य नर अस्व तजि ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—भपटि=भपटना । लपट=ज्वाला । अगि=अग्नि । कुनि=खूनी । दिसि=ओर । लटकिय=लूमा, लूटपड़ा । अतुलि=अतुल्य । पाइ=पाकर । जनु=मानों । अगि=जाग्रत हो कर । भटकिय=चल पड़ा । जाजुलित=जाज्वलमान । गभीर=गहरी । गरुव=भारी । सहह=शब्द, आवाज । हाइ हाइ=हा हा । आरिष्ट=अरिष्ट । राज=राजा (पृथ्वीराज) । हकत=गठता हुआ देखकर । वक्कारिय=आवाज दी । चुकि=चूक कर । चण्यो=दवा दिया । ति=उमके । हय=घोड़े को । कुडलि=कुण्डलाकृति, गोल । कमान=कमान, चाप । गजि=सुशोभित हुई । नरनाह=नरनाह कह । अवसान=मौका । वत्य=शुभम

अर्थ:—वह खूनी शेर नरनाह कन्ह की ओर इस तरह झपटा मानों आग की ज्वाला धधक उठी हो। उस बलवान सिंह को देखकर शक्तिशाली नरनाह कन्ह भी अग्नि के समान झपट कर चल-ड़ा। उस जाज्वल्यमान वीर ने शेर को गंभीर ध्वनि से ललकारा। काका कन्ह को सिंह की तरफ आगे बढ़ते हुए देखकर राजा पृथ्वीराज ने हा अरिष्ट २ आवाज दी। उधर सिंह ने झपट कर अश्वारोही, कन्ह को छोड़ उसके घोड़े को दबा दिया। उस समय कन्ह की आकृति कुन्डलाकृति-कमान के समान शोभा पाने लगी। नरनाह कन्ह को धन्य है जो मौका पाकर घोड़े को छोड़ सिंह से गुत्थम-गुत्था होगया।

इतिह स्यध उत कन्ह, जन्ह जुग जानि प्रबल वर ।

दुव दतिनि दल दलनि, दूवो जम जोध अडर डर ॥

कध कंख तिहि चपि, कन्ह कढडिय कटारिय ।

पिट्ट फारि धर डारि, फेरि पग भुमि पछारिय ॥

सिर फट्टि छट्टि भिज्जिय उडिय, हड्ड मस नस भूर हुव ।

जय जया सह खह भुमि भय, बलि बलि कन्ह नरयंद भुव ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ:—जन्ह=जहाँ । जुग=युगल, दोनों को । दुव=दोनों । दतिनि=हाथियों के । दल=समूह ।

दलनि=दल देने वाले, नाश का देने वाले । दूवो=दोनों । जम=यम । जोध=योद्धा । अडर=निडर ।

डर=मयस्वरूप । कध=कथा । कंख=कुच । चपि=दबा कर । पिट्ट=पेट, उदर । फारि=फाड़कर ।

छट्टि=छाँटे । भिज्जिय=मेजी, खोपड़ी का मज्जा । हड्ड=हड्डियाँ । मस=मांस । नस=नसे । भूर हुव=

चूर्ण हो गई । खह=आफ़ाश । भय=हुआ । बलि=बलिहारी (या बलि बलि=बलवानों का शिरोमणि) ।

भुव=पृथ्वी ।

अर्थ:—उधर सिंह और उधर नरनाह कन्ह दोनों जहान में श्रेष्ठ बलशाली माने गये । दोनों ही हाथियों के समूह को नष्ट करने वाले थे । दोनों यमराज के तुल्य निर्भय और वीरों के लिये भय स्वरूप थे । कन्ह ने सिंह को बगल में दबाकर अपनी कटार निकाल ली और उसका उदर फाड़ डाला और पृथ्वी पर पटक दिया । फिर उसके पैर पकड़ कर उसे घुमाया और जमीन पर दे मारा । कन्ह द्वारा बवाने से शेर की खोपड़ी फूट गई और मज्जा के छींटे उड़े । सिंह के तन-पंजर की हड्डियाँ, मांस, और नसे, चूर २ हो गई । यह देखकर आकाश-मण्डल और भूमण्डल से

जय २ कार की आवाज हुई कि पृथ्वी पर चलान वीर कन्ह ही नलिहारी है ।
(या पृथ्वी पर राजा कन्ह नरनाह ही चलानो का गिरोमणि) है ।

भज्यौ स्यम् स मर कन्ह गज्यौ चाहुवान ।
उभय मर मुग नर, सगुन लट्ठो परिमान ॥
गठि सगुन हिय मठि गुल्म वृष्भी न मगरति ।
कृच कृच उपरे, धंस पट्टन नर चरति ॥
आकास मग तारक तुटे यो, तुट्टे अरि सेन परि ।
कल मलहि शेष कायर कॅपहि, किञ्जलि उज्जर जारि वरि ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—भज्या=नष्ट किया, मार दिया । स्यम्=मिट । म=तह । मर=मर वीर, बहादुर । गज्यो=गर्जना सी । उभय=दोनों (पृथ्वीराज और मारा कन्ह) । नर=कृति । लट्ठो=पाया । परिमान=प्रमाण युक्त । सगुन गठि=गुप्त शकुन मान कर । हिय=हृदय । मठि=जाड कर । गुल्म=आगज, कहार । वृष्भी=पृथ्वी । मसृनि=ममावरा, सम्मति । कृच कृच=मुकाम पर मुकाम । उपरै=ऊपर । पट्टन=पाटण (गुजरात) । धर=पृथ्वी, भूभाग । चरति=चूरे, पहुँचे । मग=मार्ग । तारक=तारे । तुटे=टूट पड़े । परि=पर, उपर । कलमलहे=तिनमिलाने लगा । किञ्जलि=किया गया । उज्जर=उजड़ । जारि=जला कर । वरि=भूभाग

अर्थः—बहादुर कन्ह चाहुवान ने सिंह को मार कर गर्जना की जिससे पृथ्वीराज के मुख पर कान्ति व्याप्त होगई और सिंह पर विजय पाना शुभ शकुन मान कर छाती से छाती छुआ कर कन्ह से मिला, वाद में कोई परामर्श नहीं किया गया और बराबर पड़ाव करने हुए पट्टन प्रदेश (गुजरात) की ओर चले । आगे वे शत्रु सेना पर इस प्रकार टूट पड़े जिस प्रकार आकाश मार्ग से नक्षत्र टूट पड़ते हैं । उनके आक्रमण से शेषनाग तिलमिलाने लगा । कायर पुरुष क्षिप्त हो गये और शत्रु के भूभाग को जला कर उजाड़ दिया ।

गाथा

मूर किरनि प्रकार, मार मूर जुद्ध सत्तार् ।

कै मयमत पिछुडा, कै तुट्टाड कालग किरणी ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—मूर=मूर्ख । मार=लोहा । जुद्ध=युद्ध के । सत्तार्=मतवाले । कै=कितने ही । मयमत=भयानक आयी । पिछुडा=दूट गये । तुट्टाड=टूट पड़े । कालग किणी=काल क्रय के लिये ।

अर्थः—युद्ध-मतवाले वहादुरों के लोहे उस समय सूर्य-किरण के समान चमकने लगे और कितने ही वहादुर मतवाले हाथी के समान छूट पड़े तथा कितने ही काल कृत्य करने के लिये दूट पड़े ।

राजन हिय हुव सुखं, लद्ध सगुन सत्ति परमानं ।

अचल गंठि सदीयं, अगं चले ठट्ठि ठट्ठाई ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—लद्ध=प्राप्त किया, पाया । सगुन=शकुन । परमान=प्रमाण युक्त । अचल=आचल, दुपट्टे का छोर । गंठि=गांठ, ग्रंथि । ठट्ठि ठट्ठाई=ठाट सजा कर, ठाट बाट से ।

अर्थः—सामंतों को इस प्रकार बढ़ते देख राजा के हृदय में प्रसन्नता हुई और पूर्व शकुनों को सप्रमाण सत्य पाकर अपने दुपट्टे के छोर पर गांठ दी (शुभ शकुन होते हैं तो अपने वस्त्र के गांठ देने की रस्म है) तथा ठाट बाट के साथ आगे बढ़े ।

कवित्त

सिलह सज्जि सामत, मंत मंते जनु चल्लिय ।

सा चौसट्ठि, हजार, भार भारथवै हल्लिय ॥

वानै वैरख चमर, छत्र सज्यौ सिर कन्ह ।

छुट्ठी पट्टि नयन, विरद नरनाह जिनन ॥

सेनाधिपति काका कियौ, अगग फौज प्रथिराज वर ।

पच्छिली फौज निड्डर वली, ता पच्छै पामार भर ॥ ३८ ॥

शब्दार्थः—सिलह=कवच । मतमते=मतवाले हाथी के समान । सा=वो । चौसट्ठि=चौसठ । भारथवै=युद्ध कर्ता । हल्लिय=चले । वानै=वाना शोभा । वैरख=पताका । छुट्ठी=छोड़ी गई, खोनी गई । पट्टि=आँख की पट्टी । जिनन=जिमके । पच्छे=पीछे ।

अर्थः—योध्यागण कवच धारण कर इस प्रकार आगे बढ़े, जैसे मतवाले हाथी चलते हैं । चौसठ योद्धा ही हजार योद्धाओं के समान थे वे युद्ध का भार वहन करने के लिये बढ़े । उनकी शोभा का स्वरूप कन्ह था, जो सेनापति था । और उसने पताका, चमर, छत्र आदि सेनापति के सब चिन्ह धारण किये । उन पीर कन्ह की उमावि नरनाह थी, उनकी आँखों से पट्टी खोली गई । इस प्रकार आगे की

फौज का सेनापति पृथ्वीराज ने काफ़ा कन्ह को बनाया और पीछे ही फौज का संचालक वीर निड्डुरराय हुआ । उससे पीछे की सेना का संचालक प्रगार योध्दा हुआ ।

दोहा

कूच कूच जिम जिम चलिय, तिम तिम छडिय मोह ।

जिम वच्यौ दुजराज नै, तिय पत्रा नहि मोह ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—कूच कूच=पुकाम पर घुसाम करते हुए । छडिय=चोर दिया । वच्यौ=पढाहुया ।

दुजराज=द्विजराज, ब्राह्मण । पत्रा=पचाग । नहि मोह-शोभा नहीं पाता, अच्छा नहीं लगता ।

अर्थः—जिस प्रकार सामन्त आगे २ बढ़ते गये उसी प्रकार उनका मोह बराबर घटता गया, जिस प्रकार बीते वर्ष का पञ्चांग ज्योतिषी छोड़ देता है ।

कवित्त

दिग बुलाइ प्रथिराज, हथ निडुर कर धारिय ।

सकल सूर सामन्त, जुद्ध मत्तह अधिकारिय ॥

(तुम) आदि राज पहु आदि, आदि सम जुद्धहि मडौ ।

देव काल सप्रहौ, बलह भारथ जिम पडौ ॥

चित्तह अनन्य ससार सह, छिति छत्रिनि महि छजति रज ।

एकंग अग जगह अचल, रण रत्ते माया निरुज ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—दिग=नजदीक हथ=हाथ । निडुर कर=निड्डुर राय के हाथ पर । धारिय=दिया ।

मत्तह=मतवाले, (या मन्त्रणा के) । पहु=राजा । सप्रहौ=मान कर । बलह=बल । भारथ=महा-

भारत । पडौ=पाडव । चित्तह=चित्तने लग जाय, समझने लगजाय । छिति=पृथ्वी के । छत्रिनि=

छत्रियों में । छजति=सुशोभित हों । रज=रजोगुण । एकंग=एक ही अंग, एक्यंग (एक होकर) ।

अचल=अटल । निरुज=निरर्थक ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने निड्डुरराय को पास बुलाया और उसके हाथ पर हाथ दिया तथा सब वीरों को सम्बोधित कर कहा कि हे वीरो । तुम सब बहादुर युद्ध के मतवाले तथा युद्ध के अधिकारी योद्धा हो, पूर्वकाल के शिष्ट राजाओं के समान युद्ध की रचना करनी चाहिये । समय को देवाधीन मान कर महाभारत-युद्ध कालीनपाडवों के समान शक्ति का उपयोग करो जिससे मारा मसार तुम्हें सर्वश्रेष्ठवीर समझने लगजाय ।

इस प्रकार सब एक काय हो युद्ध में अडिग बन जाओ और माया को निरर्थक करदो ।

कह निडुर रट्टौर, जूह जगिनि बल मडन ।

समर समय रत स्वामि, तनहि तिनुका जिमि खंडन ॥

इक्कउ भत उध जुद्ध, इक्क गज दत उखारै ।

इक्क कमध उठि चलहि, इक्क रुपि वीर वकारै ॥

सभरि नर्यद सामन्त असि, उदर लवन तुम हमहि बल ।

वड़ वंस अंस दानव बली, करहु मोह हम भाग भल ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—जूह=समूह । जगिनि=युद्ध कर्ताओं के । इक्कउ=एक ही । भत=मांति, तरह, प्रकार । उध=ऊर्ध्व, उन्नत । कमध=रुण्ड, धड़ । रुपि=डटकर । वकारै=सलकारना । असि=ऐसे । लवन=निमक । बल=बल । वड़=बड़ा । भाग=भाग्य । भल=मला, अच्छा ।

अर्थः—योद्धा समूह के बल में वृद्धि करने वाला निडुरराय राष्ट्रवर कहने लगा—हम क्षत्रियों का धर्म है कि युद्ध के समय स्वामी धर्म मे रत होकर शरीर को तिनके के समान खण्ड २ कर दें । हम सब एक ही प्रकार से धर्म युद्ध करें जिसमे कोई हाथियों के दांत उखाड़ता हुआ, किसी का रुण्ड खड़ा होकर चलता हुआ, कोई वीर शत्रु को ललकारता हुआ दिखाई पड़ेगा । हे सभरेश्वर । आपके सब सामन्तों के उदर मे आपके नमक का बल है । आप वड़े वंश के हैं और आप मे बलवान् वृंदा दानव (तृतीय वीशल) का अंश है । हम से आप स्नेह करते हैं यह हमारा सौभाग्य है ।

दोहा

बालपन जोवन विरध, रन रत्तौ जौधार ।

कन्हु दल नि अरि मडइय,तिन तिरुका करि डार ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—बालपन=शिशुत्व । जोवन=यौवन । विरध=वृद्ध । रन=युद्ध । रत्तौ=रत्त, लीन । जौधार=योद्धा । दल=सेना । नि=नहीं । अरि=शत्रु । मडइय=नडन करना, सामना करना, राजना, सजाना । तिन=तन, शरीर । तिरुका=तिनका । करि डार=कर डालेगा ।

अर्थः—बाल्यावस्था से लेकर युवा और वृद्धावस्था तक जो योद्धा युद्ध मे अनुरक्त रहने वाला है, ऐसे वीर कन्ह से, हे शत्रुओं । सेना के मध्य में सामना मत करो

नहीं तो यह तुम्हारे शरीर को तृण तुल्य कर देगा (अर्थात् तिनके के समान तोड़ मरोड़ डालेगा) ।

जिन अखिनि पट्टी रहे, सो छुट्टै द्वै ठाम ।

कै सज्या रमनी रमन, कै छुटत सप्राय ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—अखिनि=नैनो भी । छुट्टै=खुलती हैं । द्वै ठाम=दो स्थानों पर । हे=या । सज्या=जैया ।

अर्थः—वीर कन्ह की आँखों पर पट्टी रहती थी । वह दो स्थान पर हटाई जाती थी । या तो रमणी से रमण करने के समय शैया पर अथवा युद्ध-मय शत्रुओं पर आक्रमण करते समय ।

जो वके विरदनि वहै नरणिनाह जिन जपि ।

कै भारत भीषम सुभट, कै रामायन कपि ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—वहै=चलै (प्रचलित) । नरणिनाह=नरनाह । जिन=जिने । जपि=कहते हैं । कपि=कपीश्वर, हनुमान ।

अर्थः—जिसके विरुद्ध प्रचलित थे और जिसे नरनाह कहा जाता था, ऐसा श्रेष्ठ योद्धा या तो महाभारत के समय भीष्म अथवा रामायण में वर्णित हनुमान ही कहा जा सकता है ।

अमुल माल मुत्तिय सजल, मोल लख गुन मानि ।

अपु उर ते उत्तारि कै, दीनी निहुर दानि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—अमुल=अमूल्य । माल=माला । मुत्तिय=मोतियों की । सजल=पानी वाली (कान्ति युक्त) । मोल=मूल्य । लख=लक्ष, लाख । गुन=गिनने, आकने पर । मानि=माना गया । अपु=अपने । उर तें=हृदय से । उत्तारि=उतार कर । दानि=उदार ।

अर्थः—अमूल्य मोतियों की कान्ति युक्त माला को, जिसका मूल्य लाखों रुपयों का माना जाता था, उदार राजा (पृथ्वीराज) ने अपने गले से उतार कर निड्डुराय को दे दी ।

कवित्त

हालाहल उर भाल, माल मुत्ती दुति राजै ।

रवि कठह जनु गग, ईस जनु सीस विराजै ॥

जैसे वज्रत डक, वीर वद्धत बल ताजै ॥

सुभ निहुर रटोर, वज्जि नीसान विराजै ॥

मंडइय मरन मन अरि कलन, चलन चित्त मन अचल हुव ।

सह सेन मद्धि यौं राजई, खह मग्गह ज्यौं जानि धुव ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—हालाहल=जहर । उर=हृदय । भाल=ज्वाला । माल=माला । पुती=मोती । दुति=द्युति, चमक । राजै=शोभित हो । रवि=सूर्य । जनु=जानो, मानो । ईस=महादेव । डक=डका । वद्धत=वढता है । बल=शक्ति । ताजै=अच्छे । वज्जि=वज्र कर । मंडइय=रचना, सजाना । अरि=शत्रु । कलन=फँसाने को । हुव=हुआ । सह=सब । मद्धि=मध्य, बीच । खह=आकाश । मग्गह=रास्ते । धुव=ध्रुव ।

अर्थः—वह मोतियों की माला निहुर के गले में ऐसी मालूम दे रही थी, मानों हालाहल की ज्वाला पर कांति या सूर्य के समीप आकाश गंगा अथवा शिव के सिर पर भागीरथी हो । उस समय जैसे ही नक्कारे पर डका पडा, वैसे ही शक्तिशाली वीर वढने लगे । उसी समय श्रेष्ठ वीर निहुर राय राष्ट्रवर ने भी नक्कारे वजवाये और सेना में सुशोभित हुआ । शत्रुओं को फांसने के लिये उसने मन से मृत्यु का मंडन किया, वह विचलित न होकर अचल बना रहा । सारी सेना के मध्य में वह ऐसा शोभित हुआ, जैसे आकाश मार्ग में ध्रुव शोभायमान हो ।

दोहा

पुनि कन्हह प्रथिराज नृप, पाट पवंग परट्टि ।

लई नहीं मन ममम् मल, निट्टि चढ़ायौ हट्टि ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—पुनि=फिर । पाट=प्रमुख । पवंग=घोड़ा । परट्टि=दया । लई=लिया । मन ममम् मल=मन को अन्दर ही अन्दर मल (कुचल) दिया । निट्टि=नीठ, कठिनाई से । हट्टि=हठ, आग्रह पूर्वक ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने नरनाह कन्ह को अपना खास घोडा दिया, लेकिन कन्ह को अपने मन की वेदना (सोमेश्वर की मृत्यु की उदासी) को अन्दर ही अन्दर कुचलने लगी । तब राजा ने हठ पूर्वक कठिनाई से उसे घोडे पर चढ़ाया ।

कन्ह कहै नृप जंगलह, मोहि सु जीवनु भिट्ट ।

सोसु अर्यनिनि सट्टयो, (तजि) पंजरु हंसुन नट्ट ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—ज गतार=जगतोत्तर । मित्र=भ्राता । गोम=गोमे । र । परममिनि विपणित
ने । सद्यो=साधा, निगाना किया । पञ्च-पिञ्च । हस्त=पाण्योन्त । न=भगा, दो । ।
अर्थः—कन्ह कात्ने लगा-मेरा जीवन गुना है । गोमेश्वर के साथ विपणितों ने
युद्ध किया (उसे मार डाला) । फिर भी मेरे प्राण-पर्यन्त उस शरीर रूपी पिञ्जे
से नहीं निकल ।

रचित

एक समें सुग्रीव, त्रीय रग्वी न अप्पु वल ।
इक्क समय दुज्जोध, करनु रग्यो न जित्ति खल ॥
एक समय श्रीराम, सीथ वनवास अरिण ग्रहि ।
इक्क समय पडौनि, चीरु रग्यौ न द्रपत्ति ॥
तुम कन्ह कक अकलक महि, इष्ट रूप हम सब जपहि ।
तुम तेज अखि दिक्खत नयन, मयूर अप्प जिमि भर कपहि ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—त्रीय=स्त्री । अप्पु वल=अपने बलपर । दुज्जोध=दुर्योधन । करनु=कर्ण । जित्ति=
जीत कर । खल=शत्रुओं को । अरिण=शत्रुओं । ग्रहि=ग्रहण किया, अपहरण किया । पडौनि=पाँडवों ने ।
द्रपत्ति=द्रौपदी का । कक=शरीर । अकलक=निकलक । महि=पृथ्वीपर । अखि=आँखों से । नयन=
नम जाते हैं । अप्प=सर्प । भर=भट, वीर । कपहि=कपित हो जाते हैं ।

अर्थः—निड्डुरराय ने कन्ह से कहा-एक बार सुग्रीव भी अपनी शक्ति के बल पर
अपनी स्त्री की रक्षा न कर सका, शत्रुओं पर विजय पाकर दुर्योधन भी कर्ण की
रक्षा न कर सका, राम चन्द्र के होते हुए भी सीता वन से शत्रुओं द्वारा अपहरण
करली गई और पाँडवों के होते हुए भी द्रौपदी के चोर को रक्षा न हो सकी । अतः
हे कन्ह ! तुम्हारा शरीर तो पृथ्वीपर निष्कलक है । हम सब तुम्हे इष्ट-स्वरूपी
समझकर तुम्हारा बखान करते हैं । शत्रु के योद्धा तुम्हारे तेज को देखते ही भुक्क
इस प्रकार कपित होने लगते हैं जैसे मयूर को देख कर सर्प कापने लगता है ।

दोहा

निड्डुर कन्ह प्रमोधि इम, सोलकी सीमग ।
सुनि आण धाण दुसह, दल दारुन भीमग ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—प्रबोधि=प्रबोध किया, समझाया । सोलकी=चालुक्य । सीमग=सीमापर रहने वाले । दुसह=असह्य । सीमग=भीम के अंग स्वरूपी वीर, या भीम ।

अर्थ—निड्डुरराय कन्ह को इस तरह समझा ही रहा था कि इतने मे पृथ्वीराज के आने की सूचना सीमापर रहने वाले भीम के अंग स्वरूपी दुसह वीर चालुक्यों को मिली और उनका दारुण दल आ पहुँचा ।

दिखा दिक्खि दुव सेन हुव, नारि गोर गहराण ।

कुहक वान आघात उठि उडी अग्गि असमान ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—दिखा दिक्खि=देखादेखी, । दुव=दोनों । नारि गोर=आग्नेय अस्त्र के गोले । गहराण=गहराये, गहरी आवाज की । कुहक=त आवाज । आघात=वार होने पर । उठि=हुई । अग्गि=आग ।

अर्थ—आग्नेय सामने होने पर एक सेना दूसरी सेना को देख सकी । उस समय आग्नेय अस्त्रों के चलने की गहरी ध्वनि होने लगी और वार होने लगे । साथ ही तीरों की आवाज होने लगी एवं अग्नि प्रज्वलित होकर आसमान को छूने लगी ।

अग्ग पच्छ वाजू वियनि, दल मंडे दुव राइ ।

तत्त तुरिणि जे तत्त भर, असि कड्डे घनघाइ ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—अग्ग=आगे । पच्छ=पीछे । वाजू वियनि=दोनों पार्श्व को । दल मंडे=सेना पकित बढ़ हुई । दुवर इ=दोनों राजाओं की । तत्त=तेज । तुरिणि=घोड़े वाले । जे=जे, जो । सर=भट । असि=तलवार । कड्डे=निकाली । घनघाइ=विशेष अघात ।

अर्थ—दोनों राजाओं की सेना आगे पीछे और दोनों पार्श्व मे व्यूह बढ़ हुई । युद्ध मे तेज घोड़े रखने वाले तेज सामन थे । उन्होंने भयंकर आघात करने के लिये तलवारें निकाल लीं ।

पट्टे छुट्टे कन्ह चख, खल धारा हर वज्जि ।

मानहु मेघनि मडली, वीर विज्जुली रज्जि ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—पट्टे=पट्टी । छुट्टे=हटाई गई । चख=चबु, आँखों से । खल=शत्रुओं पर । धाराहर=तलवार । वज्जि=वज्री, चली । विज्जुली=विजली । रज्जि=सुशोभित हुई ।

अर्थ — कन्ह की आँखों से पट्टी खुलते ही उसकी तलवार शत्रु-समूह पर उस प्रकार चलने लगी मानो मेघ मडली में विजली शोभा देती हो ।

कवित्त

इतहि कन्ह चहुआन, उतहि सारंग मकवान ।

वल वड्डे वलिवड, जानि कठीर लुहान ॥

कर कड्डे करिवार, भार ठिल्लै भर भारी ।

स्वामि धर्म सुद्धरै, वार वर्ती सु करारी ॥

लिखे जि अंक जिन कक विहि, आणि सपत्ती सो घरिय ।

अद्भुत रऊद्र रस विस्तरयउ, सुकविचंद छदह धरिय ॥ ५४ ॥

शब्दार्थः—उतहि=उधर से । मकवान=मकवाना (भाला) कविय । वलवड्डे=वल वृद्धि । वलिवड=वरिवद्ध, वलशाली । जानि=मानो । कठीर=सिंह । लुहान=लहृआ, खूनी । करिवार=तलवार । ठिल्लै=वहन किया । भरभारी=बड़े बड़े योद्धाओं का । वारवर्ती=समय उपस्थित किया । करारी=करारा । जि=जो । अक=अक्षर । कक=शरीर । विहि=विधि, ब्रह्मा । आणि सपत्ति=आ पहुँची । सो=वह । घरिय=घड़ी । अद्भुत=अद्भुत । रऊद्र रस=रौद्ररस । विस्तरयउ=विरतृत वर दिया । छदह धरिय=छदवद्ध किया ।

अर्थः—इधर कन्ह चाहुआन और उधर सारगदेव मकवाना जो प्रचण्ड वलशाली थे उन्होंने अपने वल की वृद्धि इस प्रकार की मानो खूनी शेर हों । वे हाथों में तलवारें लेकर बड़े २ योद्धाओं को ठेलने लगे । स्वामी-धर्म के धारक वीरों ने उस समय करारा वातावरण उपस्थित कर दिया । विधि ने उनके विषय में जो अंक लिख दिये थे उसकी घड़ी आगई । उन वीरों ने अद्भुत और रौद्र रस का विस्तार किया, उसी को (मैंने) कवि चन्द ने इस प्रकार छन्द बद्ध किया ।

दोहा

खत फट्टै सारग ने, जस कन्हा आवत ।

जुझि पर्यौ मकवान रण, गल गज्जै सावत ॥ ५५ ॥

शब्दार्थः—खत=पत्र । फट्टे=खाना किये, पहुँचाये । मकवान=मकवाना (भाला) कविय ।

अर्थः—नरनाह कन्ह से सामना होने पर सारगदेव मकवाने ने अपने यश की सूचना यत्रतत्र पहुँचाई (अर्थात् उसका यश फैलाया) और आप स्वयं युद्ध में जुमल कर (युद्ध करता हुआ) मारा गया, यह देख सामन्तगण गर्जने लगे ।

रंडरि धर चालुक्य की, परत धरणि मकवान ।

सूर सु गड्जे जंगलह, भै भगौ अरियान ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ — डरि=विधवा । भै=भय । भगौ=भग गया, दूर हो गया । अरियान=शत्रुओं का ।

अर्थ—वीर मकवाने के धरा शायी होते ही चालुक्य-राज की पृथ्वी विधवा हो गई, उस मृत वीर के शत्रु जंगलेश्वर के सामंतों का भय नष्ट हो गया और वे गर्जने लगे ।

सिद्ध न लभैं सिद्धि जो, सो लभ्मी सामत ।

छाया माया मोह बिन, विमल सु मन धावत ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ—लभैं=प्राप्त कर पाते । लभ्मी=प्राप्त की । धावत=बढ़ने लगे ।

अर्थ—जिस सिद्धि को सिद्ध प्राप्त नहीं कर पाये उसे सामंतों ने प्राप्त किया और उन निर्मल मन वालों ने माया और मोह की छाया तक को शरीर का स्पर्श नहीं होने दिया तथा युद्ध में बढ़ने लगे ।

कवित्त

द्रुमति तजत वर अंत, रत्त चच्चरि सी भारण ।

आपु अप्प सग्रहै, आपु पर पार उतारण ॥

सार मुकति सग्रहै, जीयनु सपत्तौ करि जानै ।

रत्ति पिक्खि जजाल, प्रात पिच्छै न पिछानै ॥

इम जानि सूर सद्धै रणह, वनह अगि जुनु वाइ वस ।

स्वामित्त तेज तिन तन तवहि, दोखु न लगगइ जारि जस ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ—द्रुमति=द्रुमति, कुबुद्धि । वर अंत=जिनका अंत समय श्रेष्ठ । रत्त=लीन । चच्चरि=मुड़ । सी=वह । भारण=जाड़ने में, काटने में । आपु=अपने । अप्प=स्वयं । जीयनु=जीवन, जिन्दगी । रत्ति=गति को । पिक्खि=देखने हैं । जजाल=ध्वज । पिच्छै=ग़ने पर । न पित्रानै=नहीं देखाने, नहीं समझ पाते । सद्धै=माधन करते हैं । रणह=रण का । वनह=वनान्तर, वन में । अगि=आग । वाइ=पवन । स्वामित्त=स्वामि का । तवहि=तपहि, तपता है । दोखु=दूषण नहीं । लगगइ=लगता । जारि=जलाने का । जस=यश ।

अर्थ—मुण्डों को काटने में लीन होकर वे शत्रु-वीरों की दुर्वृद्धि को मिटा उनका अन्त समय श्रेष्ठ कर देते थे । वे अपने वीरों का मंगल और विपत्तियों को पार

जगाना जानते थे। लोहे द्वारा मुक्ति का समग्रह करते और जिन्दगी को स्वप्न तुल्य मानते थे। वे यह बात भली प्रकार जानते थे कि रात्रि का स्वप्न प्राप्त नहीं दिखार्ह देता (अर्थात् ससार असार और अनृत्य है)। यही जानते हुए वे उस प्रकार युद्ध की योजना करते थे। जैसे वन में लगी हुई अग्नि, वायु के सहयोग से बढ़ती है। वे स्वामी के प्रताप में वृद्धि करते थे। लेकिन स्वामी के यश को जलाने के दूषण से रहित थे।

गाथा

उड्डिड अवनिय धार, सार पहार पति सुभटार्ह ।

घहरि घोरि घन भट, य वरखत वीर विशमार्ह ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः—उड्डिड=उड़ती है। अवनिय=पृथ्वी पर। धार=वाग अनी। सार=मार, लोहा, शस्त्र। पहार=प्रहार। पति=पति। सुभटार्ह=योद्धाओं की। घहरि=गहरी। घोरि=गर्जना। घन=वादल। भट=भाद्रपद के। य=ऐसे। वरखत=बरसते, बरसाने। विशमार्ह=विषम।

अर्थः—वीर-पति द्वारा शस्त्र प्रहार हुआ जिससे उनकी धारे टूट कर पृथ्वी पर गिरने लगी और वे प्रचण्ड वीर भाद्रपद के वादलों के समान गहरी गर्जना करते हुए शस्त्र बरसाने लगे।

दोहा

बहुरि ण हसा पजरह, जे तुट्टे खगधार ।

हस उडा जब पजरह, पजर सार असार ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—बहुरि ण=फिर नहीं। हसा=प्राणपखेरू। पजरह=पिंजरे में, शरीर में।

अर्थः—जो खड्ग की धार द्वारा कट गया है। वह प्राण पखेरू फिर पिंजरे में आता हुआ नहीं देखा गया (मोक्ष को प्राप्त करजाता) और जब प्राण पखेरू उड़ गये तो वह शरीर रूपी पिजडा तत्त्व युक्त होते हुए भी नि सार है। (पचतत्त्व से बना हुआ शरीर तत्त्व बिना हो जाता है, बूया सा हो जाता है)।

कवित्त

पहर इक्क भर भरह, टोप असिवर वर वज्जिय ।

वखर पखर जिनसाल, मूर सामतनि भज्जिय ॥

हय हय हय उच्चार, घाइ घाइनि घट गज्जिय ।
 ब्रह्म ब्रह्म ब्रवक ब्रहिय, टुट्टि पाइनि विनु तज्जिय ॥
 रोस रुद्ध रसय रसिय, अभुत जुद्ध उद्धह गतिय ।
 सामंत सूर सुर दिखि लरत, कहै धनि राजन रत्तिय ॥ ६१ ॥

शब्दार्थः—पहर=प्रहर । इक्क=एक । मरमर=एक योद्धा दूसरे योद्धा के । टोप=शिर स्त्राण ।
 असिबर=श्रेष्ठ तलवार । वज्जिय=वजाई । बखर=बख्तर । पखर=पाखर । जिन=जैनियों के तीर्थंकर ।
 साल=स्थान, आश्रम । सामतनि=सामंतों ने । मज्जिय=मजिय, नष्ट कर दिया । हय ३=मार ३ ।
 घाइ=वार किया । घाइनि=घायलों के । ब्रवक=बाध । ब्रह्म=तडातड़, स्वर विशेष । ब्रहिय=बजे ।
 रसय रसीय=रसके रसीक । अभूत=अद्भुत । उद्धहगतिय=ऊँचे प्रकार का । लरत=लड़ते हुए ।
 रत्तिय=क्रीड़ा ।

अर्थः—एक प्रहर तक एक वीर दूसरे वीर के शिरस्त्राण पर श्रेष्ठता से तलवारें
 वजाता रहा । बहादुर सामंतों ने, कवच पाखर जैन धर्मावलम्बियों के तीर्थंकरों के
 स्थानों को नष्ट कर दिया । घायल वीर मार मार उच्चारण के साथ
 वार करते हुए गर्जने लगे । रण बाध वंजने लगे; पैर कट जाने पर ही युद्ध बन्द करते
 थे, क्रोध में आये हुए उन रौद्ररस के रसिकों का अद्भुत युद्ध ऊँचे प्रकार का था ।
 इस प्रकार बहादुर सामंतों को लड़ते हुए देख कर देवतागण कहने लगे कि इन राज-
 वंशों की क्रीड़ा । (रणक्रीड़ा) धन्य है ।

गाथा

साभरमती सरित्तं, गुज्जर खडेव धार-धारायं ।
 दुअ तद् रुधिर उपट्टं, वहै प्रवाह हथियं वाजं ॥ ६२ ॥

शब्दार्थः—साभरमती=सावरमती । सरित्त=नदी । गुज्जर खडेव=गुर्जर खण्ड स्थित । धार=खड्ग-
 धारा । धाराय=धारण की । दुअ=दोनों । तद्=तब, तहाँ । उपट्ट=उमड़ पड़ा । वहै=ब्रह्म गये । हथियं=
 हाथी । वाज=वाजि, घोड़े ।

अर्थः—गुर्जर खण्ड स्थित सावरमती नदी के किनारे खड्ग धारण कर दोनों सेना-
 ओं ने युद्ध किया । जिससे श्रोणित (रक्त) वह निकला और उस प्रवाह में हाथी
 घोड़े बहने लगे ।

गोदा

रिखि राजि नर भर परहि, म्गिनी मर गर्जत ।

उवरघरी अरुमुत रगह, रुद्र भगौ विगमत ॥ ६३ ॥

शब्दार्थः—रिखि=हाथी । राजि=घोड़े । भर=भट, योद्धा । परहि=भरागाथी होने लगे । म्गिनी=प्रत्यक्षा । सर=राण । गर्जत=गर्जना, टकार करने लगे । रगह=रगम । रुद्र=शक्र । विगमत=विस्मित हो गया ।

अर्थः—हाथी घोड़े और योद्धा बरागाथी होने लगे । प्रत्यक्षाओं से लगे हुए बाण टंकार ने लगे । स्वयं रुद्रभी एक घड़ी तक अरुमुत रस से प्रभावित होकर विस्मय करने लगे ।

कवित्त

खिभि खीची परसग, समुद्र रिखि प्रसन कि वरिसय ।

वडवानल वलिवड, खग खोहिनि दल खस्सिय ॥

वढहि सेन तेइ जरहि, परहि जिमि भस्म कुड्ड हुड ।

जह तह जगल सूर, कडिह मुह सक न आन कुड ॥

कर पत्र मत्र जुगिणि जपहि, रजि पलहारी रक्त चर ।

चमरैत चैत जनु क्यमुवनु, इम रण रज्जिय सोभ भर ॥ ६४ ॥

शब्दार्थः—खिभि=कोव में आकर । खीची=खीची जाति का क्षत्रिय । समुद्र=समुद्र । रिखि=रिखि (अगस्त्य) । प्रसन=पीने का । वरिसय=बड़ा । खोहिनि=अर्चोहिणी । खस्सिय=खिसका । तेइ=वे । भस्म कुड्ड=भस्म कुट । मुह=सामने । आन=अन्य । कुड=कोई भी । पत्र=पात्र, खप्पर । जुगिणि=योगिनियों । पलहारी=मासाहारी । रक्तचर=रक्तभोजता । चमरैत=चवरधारी । चैत=चैत्र । म्गमुवनु=क्यमुक । सोभ=शोभा । भर=भट, योद्धा ।

अर्थः—उसी समय प्रसगराय खींची क्रोध में आकर इस प्रकार बड़ा मानो समुद्र की तीन अजुलि करने के लिये अगस्त ऋषि बड़े हों । उस वलिवड प्रसगराय की वडवानल तुल्य खड्ग से एक अर्चोहिणी सेना खिसकती हुई दिख पड़ी । जो सेना उससे पास बढ़ती थी । वह इसप्रकार जलजाती थी जैसे भस्मकुड में पड़ने वाले की दशा होती है, उस समय यत्र तत्र जगलेश्वर के योद्धा ही दिखाई पड़ते थे । उनके सामने से कोई योद्धा बचकर नहीं निकल पाता था । हाथ में खप्पर लिये हुए

योगिनियों मंत्र जप रही थी। मासाहारी और रक्तशोषक प्राणी वहां दीख पड़ते थे। चंवर धारी योद्धा वहाँ चैत्रमास के किशुक बने हुए थे। जिससे युद्ध स्थल की शोभा बढ़ी हुई थी।

कवित्त

खिन्नि नर्यद हय नंखि, वज्जि खुरतार कपि भुव ।
अष्ट सु चलि दह विचलि, कपि संपात पात हुव ॥
उट्टि मुक्ख मुख वंकि, सीस लग्गौ असमान ।
पंखि जान पावै न, करहि कुंडलि कंमानं ॥
घरि इक्क घाइ विभ्रम भयौ, हाइ हाइ मच्च्यौ हलक ।
तिहि सह स्यंभ स्यंभासनह, उघरि अपु दिक्खिय पलक ॥ ६५ ॥

शब्दार्थः—हय नखि=घांटे को बढ़ाया। अष्ट=आठों दिगपाल। दह=दसों दिशाएँ। सपात=सपा, विजली। मुख=मूँछ। जान=ज्ञाने। पावै न=नहीं पाता। घाइ=आघात। हलक=गले से। सह=शोर-गुल। स्यंभ=शिव, सुकृति-पुरुष, या शम (इन्द्र)। स्यंभासनह=शिव की समाधि। उघरि=खोल कर, स्वय।

अर्थः—राजा ने क्रुद्ध हो घोड़ा बढ़ाया, जिससे खुरताल वजी और पृथ्वी कांप उठी। आठों दिग्गज चल पड़े, दसों दिशाएँ विचलित हो प्रकंपित हो गईं, जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानों विजली दूट पड़ी हो। राजा की वक्र मूर्खें ऊपर को उठ चली। उसका सिर आसमान को छूने लगा। कुंडलाकृति कमान करने पर शरापन्जर में होकर पत्नी नहीं जा पाते थे, एक घड़ी के आघात से युद्ध स्थल में विभ्रमता छा गई। गले से हाय २ शब्द उच्चारण होने लगा। उस शोर गुल को सुन सुकृत पुरुष शिवजी की समाधि भूट गई और वे पलकें खोलकर देखने लगे।

दोहा

काल-ज्याल सम अरि डसन, भिरत परहि अरि तथ्य ।
देवासुर सम जुद्ध भय, धनि सामन्तनि हत्य ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—तथ्य=तहाँ। मय=हुया। धनि=धन्य। हत्य=हाय।

अर्थः—शत्रुओं को वे घोर, काल-ज्याल के समान डस लेते थे। उनके भिड़ते ही शत्रु वहाँ गिर पड़ते थे, उस समय देवासुर संग्राम के समान युद्ध छिड़ा, ऐसे युद्ध-कर्ता सामन्तों के हाथों को धन्य है।

घट घूँटे लुट्टे मुकति, द्विति तुट्टे रति पाउ ।

यौ मन मर्त्त सूर रण, ज्यौ बलि वाचन पाउ ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—घट=गले । घूँटे=रुद्ध हो गये । पाउ=पाय ।

अर्थः—उनके द्वारा शत्रुओं का श्वास रुद्ध हो गया और वे मुक्ति को प्राप्त हुए पृथ्वी की उनकी अभिलाषा छूट गई । मन के मतवाले सामन्त युद्ध में ऐसे दिखाई पड़े जैसे बलि का नर्चनाश करने के लिये वामन ने चरण बढ़ाया हो ।

गाथा

वाचन लिद्ध जु पाय, इस चक्खि मुर्वियं सहय ।

इक्क पाइ स सूर, सा जित्तेव त्थनय लोक ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—लिद्ध=लेली, छिम ली । ईस=चक्खि=शिव के नेत्र, । मुर्वियं=पृथ्वी । सहय=सारी । पाइ=पाँव । त्थनय=, तीनों लोक ।

अर्थ—वामन ने तीन कदम कर बलि से पृथ्वी छीन ली किन्तु इन बहादुरों ने एक ही चरण रख कर त्रिलोक विजय कर लिया ।

दोहा

वजहि घाड घरियार जन, टरहि न उभय ति सेन ।

चालुक्का चहुवान रण, भयौ भयानक गैन ॥ ६९ ॥

शब्दार्थः—घरियार=घड़ियाल । जन=जनु, मानों । गैन=आकाश ।

अर्थः—घड़ियाल की चोटों के समान आघात होने लगे, किन्तु दोनों सेनाओं के वीर युद्ध-स्थल से नहीं हटे । चालुक्यों और चौहानों के युद्ध से आकाश में भी भय छा गया ।

कवित्त

सिलह मद्धि खग धार, बीय उग्ययौ ससि सोभै ।

कै नव वधु नखदित्त, काम कामिनि रस लोभै ॥

मर्म वीर कत्तरी, दिसा दुति तिलक पुव्व वर ।

कै कृची स्यगार, सुभग भाभिनि म्यध्या कर ॥

सोमंति चंद्र की कला नभ, कल कलंक सुभ्रमै न तत ।

दृ द्यौ खेत सामंत नृप, बुम्भि राज - तामंस मन ॥ ७० ॥

शब्दार्थः—सिलह=कवच । वीर=वीर । उग्यौ=उदय हुआ । नखक्षित=नखचत । लौमै=मुग्ध । मर्म=चोट । वीर=वीर रस । कत्तरी=कत्ती (एक प्रकार की पतली तलवार) । द्रुति=युतिवान । पुव्व=पूर्व । कू ची=कपाट के अर्गला को खोलने की एक प्रकार की वक चाबी । शृ गार=शृ गार । कर=किरण । सोमति=सुशोभित, शोभायमान । कल=पुन्दर । सुभ्रमै न=सुशोभित नहीं होता । दृ द्यौ=खोजपाया, दृ दा, हस्तगत कर लिया, वधन में कर लिया । बुम्भि=बुम्भ गया, शांत हुआ । तामंस=तामस. क्रोध ।

अर्थः—कवच युक्त चालुक्यराज के अंग में लगी हुई खड्ग धारा ऐसी शोभा पा रही थी मानों द्वितीया का चाद उदय हुआ हो या काम रस मुग्ध नव कामिनी को नखचत लगा हो अथवा वीर रस की कत्ती (एक प्रकार की तलवार) की चोट हो या चम चमाता हुआ पूर्व दिशा का तिलक हो अथवा शृ गार रस की अर्गला की ताली हो या सध्या रूपी श्रेष्ठ भामिनी की किरण हो अथवा नभस्थित चन्द्र-कला हो । इतना होने पर भी युद्धस्थल में उसके जो चोट लगी वह कलक तुल्य थी और श्रेष्ठ शोभा का कारण नहीं हो सकी । ऐसे शत्रु (चालुक्य) को सामंत और राजा ने खोज निकाला (हस्तगत कर लिया) तब राजा के मन का क्रोध शांत हुआ ।

दोहा

त्यंन वयर सामंत नृप, वजि नृधोप सु घाड ।

चावहिसि सेना फिरी, वर वीरारस चाड ॥ ७१ ॥

शब्दार्थः—त्यन=लिया । वयर=वैर, बदला । वजि=व्रजाते हुए । नृधोप=निधोप, ऊँची आवाज । घाड=चोट (डकेकी चोट) । वीरारस=वीररस । चाड=इच्छा ।

अर्थः—इस प्रकार राजा और सामंतों ने नक्कारे पर डंका देकर शत्रु से बदला लिया और श्रेष्ठ वीर रस की उत्सुक सेना ने शत्रु को चरों और से घेर लिया ।

गाथा

लज्जी कज्ज मरिज्जै, उदरं वृत्ति घाड घन घटयं ।

कठिन कृप्पि कलहंतं, मरणं पच्छि निप्पजे साई ॥ ७२ ॥

शब्दार्थः—लज्जि=लाज । कञ्ज=के लिये । मणिजे=मग्ना पत्ता है । उ राति अरण्यगण । घाइ=घाव । घन=विशेष । घटा=शरीर पर । कपि=कपि, गेती । मरणपति मरने पर । निपजे=उत्पन्न होती है, पकती है, प्राप्त होती है । साइ=बढ़, ग्नामी, पम् ।

अर्थः—लज्जा के कारण शरीर पर विशेष घाव सहन कर वीर को मारना पड़ता है । युद्ध कपि घड़ी कठिन है । मरने पर ही वह खेती पकती है, (या अकुरित होती है)।

गर्जित बल वयताल, रण रगेव रन्चिय काली ।

पलहारी पल पूर, हूर सूर वरण वरनाई ॥ ७३ ॥

शब्दार्थः—बल=बलवान । वयताल=वैताल वीर । रगेव=रग, दृश्य । काली=कालिका देवी । पल-हारी=मांसाहारी । पूर=पूर्ति । हूर=अपसराए । वरनाई=चर्चा हुई, वर्णन हुआ ।

अर्थः—युद्धस्थल में बलवान वैताल गर्जना करने लगे । काली ने रणरग की रचना की । मांसाहारियों को भरपेट मांस मिला और अप्सराओं ने बहादुरा को वरण कर लिया, जिसकी चर्चा होने लगी ।

कवित्त

भिरिग सूर सामन्त, लुत्थि पर लुत्थि अहुट्टिय ।

सघन घाइ पामार, वीर वीरा रस जुट्टिय ॥

उलटि सेन भीमग, क्य न डेरा बहुवानह ।

उतरि भुमि भर भार वत्त वट्टी पहु वामह ॥

वहु दान मान सम स्वामि दिय, कीन अटल कीत्ती कलह ।

सामन्त सूर सह स्वामि सम, सुकवि चन्द्र जपिय बलह ॥ ७४ ॥

शब्दार्थः—भिरिग=भिड़गये । लुत्थि=शव । अहुट्टिय=अड़गई, लगगई । सघन=गहरे । घाइ=घाव । पामार=प्रमार वीर, प्रमार क्षत्रिय । उलटि=लोट गई, मुड़ गई । क्यन=किया । डेरा=बितान, मुकाम । वट्टी=बढ़गई, फैलगई । वत्त=वात । पहु वामह=बाके राजा की, (पृथ्वीराज की) । सम=सामने, समक्ष । कीत्ति=कीर्ति । कलह=युद्ध । जपिय=वर्णन किया । बलह=बल, शक्ति ।

अर्थः—बहादुर सामन्तों के भिड़ने से शवों पर शव लगा गये । घने घावों से पूरित प्रमार-वीर, वीर रस से छाका हुआ टूट पड़ा । जिससे भीम की सेना मुड़ गई और

चाहुआन नरेश्वर ने विजय प्राप्त कर वहीं अपना डेरा डाला । इस प्रकार वहादुरों द्वारा पृथ्वी का भार हलका हुआ और उस बांके नरेश पृथ्वीराज की युद्ध-चर्चा फैल गई । सब के समक्ष पृथ्वीराज ने बहुत दान सम्मान किया और युद्ध-कीर्ति को अमर कर दिया । (मैंने) कवि चन्द ने वहादुर सामन्त और स्वामी जो समान ही योद्धा थे उनकी शक्ति का वर्णन किया ।

कवित्त

डेढ़ हजार तुरग, परे रण वीर वीर भट ।
 एक सत्ता हथ्यी प्रमान, मद आरुहिय मेघ घट ॥
 पंच सहस परि लुत्थि, दंत सौ अंत अलुम्भिय ।
 दर्ईकाल संग्रहे, लिखे विनु कोइन जुम्भिय ॥
 दुइ घरी श्रोन वरखंत धर, पतिपहार भर डुल्लयौ ।
 सामंत सूर स्वामित्त मत, जीह चंद जसु वुल्यौ ॥ ७५ ।

शब्दार्थः—वीर वीर=वीराग्रणी, वीर शिरोमणि । सत्त=शत, सौ । मद आरुहिय=मद चढ़ा हुआ, मतवाले । घट=घटा । अलुम्भिय=उलभ गई । दर्ईकाल=विधाता का निश्चय किया हुआ, अंतिम समय । संग्रहे=प्रसित हुए । जुम्भिय=जुम्हे । पतिपहार=पर्वतीय भू भाग का स्वामी, गुर्जर घरा का स्वामी । डुल्लयो=डुल्लगया, विचलित होगया । जीह=जिह्वा । जसु=यश । वुल्लयो=बढ़ा, वर्णन किया ।

अर्थः—युद्ध स्थल में डेढ़ हजार घोड़े, कितने ही वीराग्रणी योद्धा, मेघ-घटा तुल्य एक सो मदमाते हाथी और पांचसहस्र सैनिकों के शव गिरे । जिनकी अंतर्द्वियों मांसाहारी जानवरों के दातों में उलभ गई । ब्रह्मा द्वारा जिनका अंतिम दिन आ-चुका था, वे ही इस युद्ध में काम आये । ललाट पर जिनके जाने का दिन नहीं लिखा गया था, वे नहीं लड़ सके । दो घड़ीतक पृथ्वी पर रक्त वर्षा हुई जिससे पर्वतीय भूभाग (गुर्जर प्रदेश) के स्वामी के योद्धा विचलित हुए । मैंने (कवि चन्द ने) अपनी जिह्वा से स्वामी के मन्त्रणा तुल्य (स्वामी के विचारों के अनुयायी) वहादुर सामंतों के यश का वर्णन किया ।

यह ससार प्रमान, सुपनोसोई सु वस्त सह ।

दिष्टि मान विनसि हैं, मोह वन्ध्यौ सुकाल ग्रह ॥

दया देह उद्धरे, वध वीर यह देही ।
 कर्म काल खट्टी, अजा वधू नरु मेही ॥
 सामतनाथ सामत धनि, सज्जिय भज्जिय जानीये ।
 ससार असति तिन सत्ति मति, यहै तत्तु करि मानीये ॥ ७६ ॥

शब्दार्थः—प्रमान=प्रमाण, देखा गया, माना गया । प्रस्त=प्रस्तु । दिग्प्रमान=दृश्यमान । निनिगि =
 नाशवान है । ग्रह=प्रसित । उद्धरै=वचा पाये । देही=प्राणी । वधी=वधा है । वधी=वधार्थ ।
 (एक प्रकार की हिन्दू कथाई जाति, मास प्रिकेता) अजा=अज्ञेय । ग्रेही=घर पर । धनि=धन्य ।
 सज्जिय=सज कर । भज्जिय=नाश कर देते हैं, उपासक बन जाते हैं । मति=विचार, भाषणा । तत्तु=तत्त्व ।
अर्थः—ससार में देखा गया कि सब वस्तुएं स्वप्न तुल्य हैं और जो दृष्टिगत
 हैं वह नाशवान है । कालप्रसित सब मोह बंधन में बंधे हुए हैं, किन्तु जो पराई दया
 का पात्र हो शरीर को बचाता है वही प्राणी सच्चे बंधन में बंधा हुआ है । कर्म और
 काल कसाई तुल्य है । उसके घर पर मानव शरीर बकरे के समान बंधा हुआ है,
 किन्तु सामतों का स्वामी पृथ्वीराज और उसके सामत धन्य हैं, जो युद्धार्थ तैयारी कर
 शत्रुओं का नाश कर देते हैं (या तैयारी कर युद्ध के उपासक बन जाते हैं) । उनके
 सामने संसार असत्य है केवल उनके विचार ही सत्य हैं । यही एक तत्व मानने योग्य
 है (इसमें पराई दया का पात्र होकर शरीर को बचा पाता है वही सच्चे बन्धन
 में बंधा हुआ कहा गया, यह ताना गुर्जरेश्वर भीम को पृथ्वी राज ने बन्धन में लिया
 और उस पर पुन दया की, यह बात स्पष्ट करती है) ।

गाथा

सभ मपत्ती सूर, मेख भयान भतिग करू ।

करुण वीर रस पूर, नूर दुव सेन दिखवाई ॥ ७७ ॥

शब्दार्थः—सभ=साम्भ सध्या । सपती=हो पाई । सूर=सूरवीर । मेख=मेख । भयान=भयानक ।
 भतिग=तरह । नूर=काति ।

अर्थ —भयानक आकृति और करू स्वरूप वहादुरों ने सध्या काल होने तक करुण
 एवं वीर रस की पूर्ति करदी अतः दोनों सेनाएं कांति युक्त दिखाई दी । (इस पद्य के
 अंत में दोनों सेनाएं कांति युक्त दिखाई दी ऐसा लिख कर कवि संकेत करता है कि
 विजय प्राप्ति के कारण पृथ्वीराज की सेना और भीम को बंधन मुक्त देख कर चालु-
 क्य सेना कांति युक्त दीख पड़ी) ।

कैमास युद्ध

(समय ४०)

गाथा

इक दिन साहिं-सहाब, अक्खियं समह खान तत्तारं ।

अरु खुरसान विचारं, संमर समुख राज प्रथिराजं ॥ १ ॥

शब्दार्थः—साहि-सहाब=शहाबुद्दीन । अक्खिय=कहा । समह=सामने । विचार=विचार करो ।

अर्थः—एक दिन शहाबुद्दीन ने तत्तारखों और खुरसानखों से कहा-कि राजा पृथ्वीराज से युद्ध करने लिये विचार करो ।

उच्चरि ताम ततार, अरि अति जोर सूर सम-रार ।

सम कैमास विचारं, खट्ट दिसि मंत साहोबं ॥ २ ॥

शब्दार्थः—ताम=तव । सम-रार=समानता रखने वाला । विचार=विचार ने पर । खट्ट=खट्टू ।

अर्थः—तत्तारखों ने कहा:- पृथ्वीराज अति बलवान और बहादुर शत्रु है तथा युद्ध में बराबरी करने वाला (समानता रखने वाला) है उसके समान ही विचारवान् उसका मंत्री कयमास भी है । इसके पश्चात् खट्टू की ओर शहाबुद्दीन ने प्रस्थान करने का निश्चय किया ।

दोहा

पारसपुर तहां सरित तट, उत्तरि आय साहाब ।

रवि उगगत दल कूंच किय, उलटि कि साइर आव ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—साहर=समुद्र । आव=जल ।

अर्थः—शहाबुद्दीन ने चढाई की और पारसपुर के पास नदी के किनारे आकर विश्राम किया । सूर्यदोय होते ही पुनः उसकी सेनाने इस प्रकार प्रस्थान किया मानो समुद्र का जल उमड़ रहा हो ।

उतरि साह^१ वर सिंधु नदि, किय गुलाम सब स^१ ।

निसा महल सुरतान किय, बोलिवे गान सम^१ ॥ ४ ॥

ग्रा० पा० १ का० २ गी ।

शब्दार्थः—महल=ममा ।

अर्थः—शाह ने सिंधु नदी पार कर सब साथियो सहित पड़ाव किया और रात्रि होने पर सभा की आयोजना की जिसमे सब सामर्थ्यवान खानो को बुलाया गया ।

आइ भट्ट केदार वर, दै दुवाहु तिन वार ।

कहै साहि केदार सम, कहौ अर्थ गुन चार ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—दुवाहु=हाथ पसार कर मिलना । चार=चलाने वाला, फैलाने वाला ।

अर्थः—इतने मे श्रेष्ठ केदार भट्ट(वदी)भी आ गया जिसे बादशाह ने बांह प्रसाव दिया (मिला) । शाह ने केदार से कहा-हे अर्थ गुण के विस्तार कर्ता--कुछ कहो ।

मडि भट्ट गुन जगरिन, साहि पिथ^१ सम सोड ।

तन विभूति सिंगी गरै, आइ दूत तव दोइ ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० १ का० पा० भी० ।

शब्दार्थः—जगरिन=युद्ध कर्ता ।

अर्थः—कैदार भट्ट ने युद्ध कर्ता शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के युद्ध की तुलना की । थोड़ी देर में शरीर पर भस्म लगाये और गले में सिंगी धारण किए हुए दो दूत आए ।

धृम्माइन काइथ सु कर, इह लिक्खी अरदास ।

आखेटक खिल्लन^१ नृपति, मन किय खट्ठू पास ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—अरदास=प्रार्थना पत्र । खिल्लन=खेलने के लिए ।

अर्थः—उन दूतों के साथ धर्मायन कायस्थ ने यह प्रार्थना-सूचक-पत्र भेजा था कि राजा पृथ्वीराज ने आखेट खेलने के लिए खट्ठू की ओर जाने का विचार किया है ।

परी हक्क दिसिदस नृपति, चडि चल्लौ चहुआन ।

घर गुज्जर अरु मालवै, सब दिसि परत भगान ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—मगान=माग—दौड़ ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज का शिकारार्थ चलने का हल्ला दसों दिशाओं में फैल गया । जिससे मालव और गुर्जरधरा तथा सब ओर भागदौड़ मच गई ।

सुनिय बत्त ए^१ दूत मुख, भय चलचित्त सुरतान ।

गुज्ज महल सब बोलिकै, बैठे करन मतान ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ टि०, भी० ।

शब्दार्थः—ए=यह । गुज्ज महल=गुप्त खेमा, एकान्त समा । मतान=मंत्रणा ।

अर्थः—दूत के मुंह से यह बात सुन शाह का चित्त अस्थिर हो गया और सब योद्धाओं को एकान्त (गुप्त) खेमे में बुला कर मंत्रणा करने बैठा ।

सुनिय मंत्र सब खान मुख, बंध्या जोर सहाव ।

रह खट्टू दिसि चल्लिये, उलट कि साइर आव ॥ १० ॥

शब्दार्थः—बध्या=बँधा । जोर=बल । रह=राह ।

अर्थः—सब खानों की मंत्रणा सुन शाह को बल मिला और कहाः— समुद्र के जल की भांति उमड़ कर खट्टू के मार्ग की ओर चलना चाहिए ।

कवित्त

ग्यारह सत^१ च्यालीस, चैत विदि सस्सिय दूजौ ।

चढ्यौ साहि साहाव, आनि पजावह पूज्यौ ॥

लक्ख तीन असवार, तीन सहसंमय मत्तह ।

चल्यौ साहि दरकूच, फटिय जुगिनि धर^२ वत्तह ॥

सामंतसूर विकसे, उअर, काइर कपे कलह सुनि ।

कैमास^३ मंत्रि मंत्रह दियौ, ढिग बैठे चासुं ड फुनि ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १ दे० । २ टि० । ३ सं० ।

शब्दार्थः—ग्यारह=ग्यारह सौ । सत=च्यालीस=सैंतालिस । सें=सौ । सस्सि=चन्द्रमा । आनि=आकर । पूज्यौ=पहुँचा । दरकूच=कूच पर कूच करता, मुकाम पर मुकाम करता हुआ । फटिय=फट गई, फैल गई । जुगिनि धर=दिल्ली के भूभाग । उअर=उर, हृदय । फुनि=पुनः ।

अर्थ:—अ० म० ११४७ (वि० म० १०३८ के पारग मे) के नैनमाग के कृ० पक्ष की द्वितीया सोमवार को गहावुहीन को जन्म से दूसरा चद्रमा था तब वह युद्धार्थ चढा और पजात्र तरु था पहुँचा। उसके साथ तीन लक्ष अश्वारोही और तीन सहस्र मस्त हाथी थे। वह निरन्तर चला था रहा था। यह वान दिल्ली के भूभाग में फैली। उसे सुन वीर सामंतों के हृदय प्रगल्भता से भर गये और कायर काँपने लगे। मंत्री कयमास ने चावडराय की उपस्थिति में राजा को मन्त्रणा दी।

दोहा

कहो मंत कैमास तँह, सजि अयो सुरतान ।
अव विलंब किजै नही, दल सज्जौ चहुआन ॥ १२ ॥

शब्दार्थ:—मंत=मन्त्रणा ।

अर्थ:—मंत्री कयमास ने कहा—सुलतान चढ कर आया है, अतएव हे चाहुआन नरेश ! अव विलंब न कर अपने दल को तय्यार करना चाहिए।

बेर बेर आवत इह, मानै मेख न सधि ।
उरह लोन प्रथिराज को, आनौ साहि सुबधि ॥ १३ ॥

शब्दार्थ:—बेर बेर=बार बार। मेख=मुसलमान। साहि=शाह।

अर्थ:—कैमास ने फिर कहा—शाह बार २ चढकर आता है और यह म्लेच्छ पूर्व की सधि नहीं मानता। अस्तु इस बार मैं पृथ्वीराज का नमक सार्यक करूँगा और शाह को बाध कर ले आऊँगा।

सुनत वचन कैमास के, कही राव-चावड ।
आन राज चहुआन पिथ, हौं भजौ गज झुड ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—आन=दुहाई, शपथ। पिथ=पृथ्वीराज। हौं=मैं। भजौ=नष्ट कर दूँगा।

अर्थ:—कैमास के ये वचन सुन चामंडराय ने कहा—चाहुआन नरेश की शपथ खा कर कहता हूँ कि मैं हाथियों के झुण्ड को नष्ट कर दूँगा।

सुनि संभरि नृ^१ मौज दिय, हैवर सहस मॅगाइ ।

मनि मोती सोवन^१ रजक ,हसती सपत सजाइ^२ ॥ १५ ॥

ग्रा० पा० १-२ भी० ।

शब्दार्थः—मौज दिय=प्रसन्नता का उपहार दिया । सोवन=स्वर्ण । रजक=रजत । चादी । हसती=हाथी । सपत=सात ।

अर्थः—इस प्रतिज्ञा को सुन कर सांभरपति (पृथ्वीराज) ने अन्यसामंतों को प्रसन्नता पूर्वक उपहार दिया, जिसमें एक सौ श्रेष्ठ घोड़े, मणि, मोति, स्वर्ण-रौप्यादि द्रव्य और सात सुसज्जित हाथी थे ।

गैवर^१ दस हय सात सै, दिय कैमासह राइ ।

तुरी तीन सै बीज गति, दै चावँड चित चाइ ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—गैवर=श्रेष्ठ हाथी । राइ=राजा । तुरी=घोड़े । बीजगति=विद्युत गति । चित-चाइ=चित्त से चाह कर, चित्त में स्थान देकर ।

अर्थः—बाद में कैमास को श्रेष्ठ दस हाथी, सात सौ घोड़े, और चामुंडराय को विद्युत-गति वाले तीन सौ घोड़े देकर हृदय से लगाया ।

चारि कोस चौगिरद रिन^१, दोऊ समद समान ।

उत साहिव खुरसान कौ, इत सभरि चहुआन ॥ १७ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—गिरद=घेरा । रिन=युद्ध भूमि ।

अर्थः—चार कोस के घेरे वाली युद्ध-भूमि में दोनों दल समुद्र के समान थे । एक तरफ मुसलमानों का मुखिया शहाबुद्दीन तथा दूसरी तरफ सांभरपति चहुआन (पृथ्वीराज) था ।

कवित्त

खवरि आइ पृथीराज, निकट सुरतान सु आइय^१ ।

सज्जि सूर गज वाजि, धागु दुरजन दल पाइय ॥

किय मुकाम दिन च्यारि^२, रहे गोइन्दपुरा मह^३ ।

सुनी अवाज ससार, लख लख मीर सु मग्रह ॥

सत लक्ष्य पश्य भर आह गिलि, कहे नर वरगाउ नर ।

चहु आन कलह सुरतान सम, धम धमकि भुजिजग सु भर ॥ १८ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० पा० । २, ३, का० । ४ पा० ।

शब्दार्थः—खबरि=सूचना । धार=पातक । दिन-चारि=चार दिन, गिनारत, गणित । मणि=मे । समग्रह=ग्रहण । पश्य=पढ़ ।

अर्थः—पृथ्वीराज को सूचना मिली कि बादशाह निकट आ गया है । तब बहादुरों ने अपने हाथी, घोड़ों को सजाया । जिससे शत्रु दल आतंकित होगया । चार दिन उन्होंने गोविंदपुरा में (या सूर्यास्त होने तक) रहकर विश्राम किया । समार में यह फैल गया कि तीन लक्ष मोर (मुसलमान) नष्ट होने वाले हैं । क्योंकि पृथ्वीराज के पक्ष में सात लक्ष योद्धा आ मिले हैं । कवि चन्द बरदाई कहता है कि चाहुआन नरेश और सुलतान का युद्ध बराबरी का ही है । जिसकी धमधमाहट से पृथ्वी कम्पित होती है ।

दूहा

चल्यौ साहि खट्खू दिसा, दिय मेलान मिलान ।

लाल हसन आकूव सम, च्यारि भए अगिवान ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—मेलान मिलान=मुकाम दर मुकाम । अगिवान=अग्रगण्य ।

अर्थ—सुलतान खट्खू की ओर पड़ाव करता हुआ आ रहा था और लालखा, हसन-खा, आकूबखा और स्वयम् शाह के सहित मुस्लिम सेना के चार अग्रगण्य थे ।

कवित्त

च्यारि खान अगवान, साहि सारुड सु आइय ।

सुनिय खवरि चहुआन, मन्नि कैभास बुलाइय ॥

कहे राज प्रथिराज, साहि आयौ तुम उपर ।

दल मज्जौ आपान, जुरे जिम आइ^१ अड्ड भर ॥

इह कहै राव चामण्ड तव, राज रहै खट्खू धरह ।

हम जाइ जुरे सामत सब, बधि साह आने घरह ॥ २० ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० ।

शब्दार्थः—साहि=शाह । सारुण्ड=स्थान विशेष । अप्पान=अपना । छुर=छुटे । अड्ड=आड़ देते, रोकते हुए । राज= पृथ्वीराज । खट्टू धरह=खट्टू भूमि ।

अर्थः—मुस्लिम अगुए और बादशाह सारुण्ड आये । जब यह सूचना पृथ्वीराज को मिली तो उसने कैमास को बुलाया और कहा कि सुलतान चढ़ आया है, अतएव अपना दल तैयार करो और ऐसा करो कि अपने योद्धा शत्रुओं को रोक कर जूझपड़ें । यह सुन चामण्डराय बोला हे राजन् ! आप यहां इस खट्टू-भूमि पर ही ठहरिये । हम सब सामंत जाकर शत्रुओं से लड़ पड़ते हैं और शाह को बांध कर ले आते हैं ।

कहै राज पृथिराज, राह चामंड महाभर ।

तुम कुलीन वर लज्ज, लज्ज मो तुमह कंध पर ॥

रहत घटे मुहि लज्ज, बंधि आनै लज बहू ।

कहै ताम कैमास, राज दिन सुध लै चहू ॥

इह कहिरु घाव नीसान किय, भर-सामंत सु बोलि लिय ।

पृथिराज चह्यौ रवि उगतह, पंचकोस मेलान दिय ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—रहत=रहने पर (युद्ध में सम्मिलित न होने पर) । घटै=घट जाती है, तुच्छ हो जाती है । बंधिआने=बांध कर (शाह को) पकड़ लाने पर । सुध लै=जांच करके (मुहूर्त निकलवा कर) । चहू=चढ़ाई करें । घाव=डके की चोट । मेलान दिय=मुकाम किया ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज कहने लगा—हे चामण्डराय ! तुम महान योद्धा, श्रेष्ठ हेलज्जा युक्त और कुलीन हो । हमारी लज्जा भी तुम्हारे ही हाथ है । किन्तु मेरे यहां रहने से मेरी कुलीनता में कमी आती है शत्रु को पकड़ कर लाने में ही लज्जा की वृद्धि है । तब कैमास ने कहा—हे राजन् । शुभ दिवस की जांच कराकर (मुहूर्त निकलवा कर) चढ़ाई करना चाहिये । यह कह कर नक्कारों पर डका दिलवाया तथा श्रेष्ठ सामंतों और योद्धाओं को बुलाया । प्रातः काल होते ही पृथ्वीराज ने चढ़ाई की और पांच कोस पर जाकर पड़ाव डाला ।

दोहा

किय मुकाम चहुआन दल, पुर पांचौसर नाम ।

सुनी खबरि सुरतान की, लखि लाइन मुकाम ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—सरतान=सततान ।

अर्थः—पाचो घर नासक ताम मे ता चौतानी सेनाने पाचव किया तव गुलतान के समाचार मिले नि उतने लाटन मे डेरा चाला हे ।

दूत पाह पहरेक निमि. कही खबर कैमान ।

पहर पछ पतिसाह को मो पच्छे दिमि पास ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—पतिसाह=साठसाह । मो पच्छे=मेरे पीछे ही ।

अर्थः—एक प्रहर रात्रि रहने पर दूतने आकर कैमान को सूचना दी कि मेरे पीछे एक प्रहर बाद आप शाह को अपने पास लेगयेगे । (अर्थात् शाह यहाँ पहुँचने ही वाला है) ।

कवित्त

राज पास कैमास, खबरि सुरतान कही अप ।

सजौ सेन आपान, जाइ सनमुख मडै वप ॥

पच फौज साहाव, करिय भर पच सु अग्रर ।

सजौ फौज आपान, नाम लिखि २ तहाँ सुभर ॥

मन्ती सु वत्त सामतमिलि, पच फौज रात्रन करिय ।

अनभग जग नरनाह नृप, कन्ह कक अगों धरिय ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—वप=शरीर । पच फौज=पाच भाग मे विभानित (सेना) । अग्रर=अग्रगण्य । नाम-लिखि २=नामजद । मन्ती=माननी । कक=युद्ध ।

अर्थ—स्वय कैमास ने गुलतान के आने की सूचना राजा पृथ्वीराज को दी । तव राजा ने कहा—कि अपनी सेना सजाओ और सम्मुख जाकर स्वय सामना करो । शाह ने पांच योद्धाओं को अग्रगण्य (सेनापति) बना कर अपनी सेना को पाच भागों मे विभक्त किया है । अत नामजद सैनिक नियुक्त कर उसी के अनुसार अपनी सेना को भी तैयार कर विभाजित कर दो । यह बात सब साजनों ने मानी और राजा ने सेना के पाच विभाग किये । बाद मे निर्भयता से युद्ध करने वाले नरनाह कन्ह को सर्व प्रथम युद्ध करने के लिये आगे किया ।

दोहा

सुनो वत्त साहाव तव, सजि आगौ चहुआन ।

फौज पच सज्जौ सुभर, मीर मलिक सव्वान ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—मलिक=उपाधि, (मुसलमानों में राजा या नवाब की उपाधि वाले) । सन्धान=सब ।

अर्थः—जब शाह ने यह बात सुनी कि पृथ्वीराज चाहुआन सज कर आगया है, तब उसने अपने साथियों से कहा:- हे मीर मलिक ! सब योद्धाओं और सेना को ५ भागों में विभाजित कर तैयार हो जाओ ।

दोहा

दूँ दल बीच स कोस दूँ, प्रथीराज कहि वात ।

चौकी चढ़ि चक्रह कटक, दल अरियन करि घात ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—चौकी=अंग रक्षक । चक्रह=चक्रमेन चाहुआन । कटक=सेना । घात=वार

अर्थः—दोनों सेनाओं के बीच जब दो कोस का अन्तर रहा, तब पृथ्वीराज ने कहा -अंग रक्षक सेना चक्रसेन चाहुआन के सेनापतित्व में रह कर शत्रु दल पर वार करें ।

कवित्त

ग्यारह सै च्यालीस, सोम ग्यारसि वदि चेतह ।

भए साह चहुआन, लरन ठाढ़े वनि खेतह ॥

पंच फौज सुरतान, पंच चहुआन वनाइय ।

दानव देव समान, ज्वान लरन रिन धाइय ॥

कहि चद दंद दुनिया सुनौ, वीर कहर चच्चर जहर ।

जोधान जोध जगह जुरत, उभय मध्य वित्यौ पहर ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—ज्वान=युवा । धाइय=वढे । दद=युद्ध । कहर=विज्ज । चच्चर=सिर, मस्तक । वित्यौ=बीता, व्यतीत हुआ ।

अर्थः—अनंद संवत् ११४० (वि० स० १२३१ अर्थात् ३२ का प्रारम्भ) चैत्र कृष्ण ११ सोमवार (कानौड़, भोंडर प्रति में भौम लिखा है) को चाहुआन और सुलतान रण क्षेत्र में युद्धार्थ सन्नद्ध हुए । सुलतान ने अपनी फौज के ५ भाग किए, उसी प्रकार चाहुआन राजा ने भी अपनी फौज को पाँच भागों में विभक्त किया । वे युवक वीर दानवों और देवों के समान लड़ने के लिए रण क्षेत्र की ओर बढ़े । कवि कहता है कि मैं इस युद्ध विषयक वर्णन करता हूँ । उसे संसार पढ़े-सुनें । उन

योद्धाओं के मस्तिष्क विघ्न रूपी विष से परिपूर्ण हो गए। दोनों ओर के योद्धा एक दूसरे से भिड़ गये। इस प्रकार लड़ते लड़ते एक पहर समय व्यतीत हो गया।

दोहा

इस चित्ती एकादशी, होत द्वादशी प्रातः।

रवि उगत सम द्वै लर हिन्दू तुरक नयात ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—त्रघात=उरें पसार में गार करने हुए।

अर्थः—इस प्रकार एकादशी व्यतीत हुई और प्रातः काल होने पर द्वादशी का युद्धा-
रम्भ हुआ। सूर्योदय होते ही यवन और हिन्दू सैनिक समान रूप से घुरी तरह वार
करते हुए लड़ने लगे।

कविता

घेरयो नृप चहुआन, सग सव सथिय छुट्टौ।

जग करै चामड, खरिग गज भुएडन जुट्टौ ॥

वाग लेइ वग मेलि, सेल मैगल विर जुट्टौ।

करन कहिहु कस्निग दत सम भमुएड सु तुट्टौ ॥

तुट्टौ सु दत सम सुएड मुख, रुख किन्निय सुरतान तन।

दल दद करत दाहर सुतन, मद वारुन दारुन दलन ॥ २९ ॥

प्रा० पा० १ का०, पा०, भी०।

शब्दार्थः—खरिग=चल पड़ा। वाग=ताम। वग=टोली, समूह। मैगल=हाथी। जुट्टौ=फोड़ दिया,
वेध दिया। करिवार=करवाल, तलवार। सम=सहित। भमुएड=भ्रमुएड, सूँड का अग्र भाग।
मद वारुन=मतवाले हाथी।

अर्थः—सब साथियों का साथ छूट गया, तब राजा पृथ्वीराज का दुश्मनो ने घेर
लिया। उस समय चामु डराय गज समूह से जूझ रहा था। घोड़े की रास खींच कर
गज-समूह को निशाना बनाने लगा और भाला चला कर शाह के मुख्य हाथी
का सिर वेध दिया। इसके पश्चात् दोनों हाथों से तलवार निकाल कर हाथी के सिर
को दातों सहित काट दिया। इस प्रकार हाथी के दात तथा भ्रमु ड के अग्रभाग को
तोड़ कर उस वीर ने शाह की ओर अपना रुख किया और उस दाहिर पुत्र ने सेना
तथा भयानक मतवाले हाथियों को नष्ट करना प्रारम्भ किया।

दोहा

कलह राइ चामंड करि, इह मारथौ गजराज ।

साह गइन कों मन करथौ, चढथौ हांसले वाज ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—कलह=युद्ध । इह=इस प्रकार ।

अर्थः—चामुण्डराय ने इस प्रकार युद्ध कर गज को मार दिया । वाद मे शाह को पकड़ने की उसके मन मे इच्छा हुई । इसलिये वह हांसले नामक घोड़े पर सवार हुआ ।

कवित्त

गुरि गथंड गोरी नरिंद, चतुरंग दल सज्जिग ।

अरु निसान धु मरिग, आइ उपर सिर गज्जिग ॥

जहौ हक्यौ तहँ भिरथो, तिनह—घर नदी पलटिटय ।

खग ताल वाजंत, सीस^२ तरवर वन तुटिटय ॥

कत्तरिय पुरख गय घर मुरिग, चंद वरदिय इम भन्यौ ।

भाजत भीर तुख्खार चढि, चौडराव चावक हन्यौ ॥ ३१ ॥

प्रा० पा० १ भीं । २ का० भीं पा० ।

शब्दार्थः—गुरि=गड़का, लुढ़का कर । सज्जिग=सजा, वढा । अरु=और । धु मरिग=धुमड़ना, गड़ गड़ाहट । हक्यौ=गया । तिनह घर=तृण गृह । पलटिय=उमड़ पड़ी । लग्गताल=खड्ग ध्वनि । तुटिय=टूट पडे । कत्तरिय=कातर, कायर । भीर=समूह । तुख्खार=घोड़ा । चावक=चाबुक ।

अर्थः—इस प्रकार गौरी शाह के हाथी को मार कर चामुण्डराय चतुरंगिनी सेना की ओर चला, जिससे नक्कारों की गड़गड़ाहट हुई । वह वीर शत्रुओं के सिर पर गर्जने लगा । जिस ओर वह गया उसी ओर तीव्र गति से इस प्रकार भिड़ पड़ा, मानो तृण-गृह पर सरिता वह चली हो, खड्ग-ध्वनि के साथ ही शत्रुओं के सिर वन वृत् के समान कट कट कर गिरने लगे । जिससे कायर आदमी खिसक कर घर की ओर मुड़ गये । चंद वरदाई कहता है कि शत्रु समूह को भागता हुआ देख अश्वारोही चामुण्ड राय ने अपने घोड़े को चाबुक मारा (अर्थात् वेग के साथ बढ़ाया) ।

बोहा

लाल खान मारुफ खा, हसन खान पाकूव ।

न्यार लरे चामड सौ, खग्ग गहो तुम नव ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—खूब=अच्छी तरह ।

अर्थः—भागते हुए मुस्लिम सैनिकों में लाल खान, मारुफ खान, हसन खान और याकूब खान ये डटे रहे और लड़ते हुए चामुण्डराय से बोले कि अब तुम अच्छी तरह तलवार पकड़ो ।

कवित्त

खूब खान तहें लाल, वान बरखत वीर पर ।

हइ मरद मारुफ नेज^१ फेरत कहर कर ॥

हसन खान सेहत्य, खग्ग बाहंत सीस पर ।

कहि कटारिय जग, अग आकूब डक्क भर ॥

भर भार सहचौ भुज दुअन परि, दाहिम्मे कीनो समर ।

कवि चद कहै बरदाइ वर, कलह केलि भूले अमर ॥ ३३ ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ पा० ।

शब्दार्थः—खूब=धन्य । हइ मरद=मर्दानगी की सीमा । नेज=नेजा । फेरत=घुमाने लगा । सेहत्य=पौष्टता, ताफ करता हुआ । परि=पर ।

अर्थः—धन्य है लाला खान को जो ऐसे वीर पर बाण वर्षा करने लगा । मर्दानगी की सीमा के तुल्य मारुफ खान भी अपने विघ्नकारी नेजे को हाथ से घुमाने लगा, हसन खान भी तलवार साफ करता हुआ सिर पर चलाने लगा और उस अकेले सामंत पर याकूब ने भी कटारी निकाली, किंतु उस दाहिमे वीर (चामुण्डराय) ने अपनी दोनों भुजाओं पर उस रण आपत्ति का भार उठाकर युद्ध किया । कवि कहता है कि उसके द्वारा की हुई श्रेष्ठ युद्ध क्रीडा देखकर देवता भी अपने को भूल गए (स्तब्ध रह गये) ।

लाल खान दुअ वान, तानि सुरतान आन किय ।

एक लगि हय अग, एक चामड वेधि^१ हिय ॥

सकति छँडि मारुफ, जंघ हय उर महि मिहिय ।
हसन खान तरवारि, मारि द्वै घा मुख किहिय ॥
आकूव कटारी कट्टि कर, घल्लिय चामंडह करें ।
सुम्भिय सुभट्ट संग्राम इम, भगल खेल नट्टह करे ॥ ३४ ॥
प्रा० पा० १ भौ० ।

शब्दार्थः—आन किय=दुहाई की शपथ खाई । सकती=शक्ति, एक प्रकार का वाण । मिहिय=मेदा, वेधा दिय । घा=घाव । भगलखेल=एक प्रकार का खेल, जिसमें मार काट बताई जाती है ।

अर्थः—लालखान ने सुलतान की दुहाई देकर (शपथ खाकर) दो वाण ताने, उनमें से एक वाण चामुंड के घोड़े के अग में लगा और दूसरे वाण ने चामुंड का हृदय वेध दिया । मारुफखान ने शक्ति (एक प्रकार के वाण को) चलाई जो घोड़े की जंघा और हृदय को पार कर गई । हसनखान ने तलवार से मुँह पर दो घाव कर दिए, याकूबखान ने कटारी निकाल कर चामुंड के गले में भोंक दी । उस युद्ध-स्थल से वह श्रेष्ठ योद्धा चामुंड इस प्रकार सुशोभित हुआ मानों नट, भगल खेल कर रहा हो ।

दोहा

ज्यारि खान चामंड इक; एकाकी जुरि जोध ।
अंग श्रम्म दाहिम्म को, भिरथो भीम सम क्रोध ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—को=कौन ।

अर्थः—उधर चार खान थे और इधर अकेला चामंडराय था । फिर भी वह अकेला डटा रहा । उस समय दाहिमे वीर का शरीर घावों से छलनी हो गया था फिर भी वह तो भीम काय होकर क्रोध करता हुआ लड़ रहा था ।

कवित्त

क्रोध जोध जुरि जंग, अंग चावँड राइ जुरि ।
खग जगि करि रीस, सीस सिपपर समेत दुरि ॥
एक घाव आकूव, खूव जस लियौ लोह लरि ।
हसन मारि कटारि, पारि मारुफ मुरथौ धर ॥

गाम्ग म् गुर्यो उर्ग्यो त्मन, थाऊक गिर पर परगो ।

दुअ आन साह चहुआन किय, लालखान रन गिरगुर्यो ॥ ३६ ॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—जोध=योद्धा । खरि जग-गुर का मउन किया । गम्ग जगि=ग म गत । गिरग=सिर ढाल वचाव का शस्त्र (ढाल) । लोह तरि=शस्त्र कीड़ा रफ लोहे द्वारा त, क । गिरगुर्या=उत्पात मचाने लगा ।

अर्थः—उस योद्धा चामुंडराय ने क्रुद्ध हो युद्ध को जमा कर शत्रुओं के अंग से अपने अंग को भिडा दिया । क्रोधवश हो उसने खंग रूपी यज्ञ (स्थापित) किय जिससे शत्रु का सिर ढाल सहित लुढ़क पडा (वचाव के लिये सिर को ढाल की आड़ में लिया था लेकिन सिर और ढाल दोनों साथ ही कट गये) । एक घाव उसने याकूब के किया और शस्त्र क्रीडा कर अति कीर्ति प्राप्त की । हसन खा पर कटारी का वार किया, मारूफ खा को पछाड कर उसके धड को मरोड दिया । यह देख कर हसन खां उछल कर हट गया । याकूब खां का सिर पृथ्वी पर पड गया, तब शाह की शपथ लाल खां ने की और चामुड ने चाहुआन नरेश की दुहाई दी । उस समय लालखान उस वीर से सामना कर उत्पात मचाने लगा ।

दोहा

लाल ढाल दिंचाल दिग, लाल वरन हय अग ।

लाल सीस-सिंधुर धजा, लाल खान किय जग ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—दिंचाल=भग्न, दीर्घकाय । वरन=वर्ण । सीस=ऊपर । सिंधुर=हाथी ।

अर्थः—लाल वर्ण की ही जिसके पास ढाल है, लाल वर्ण (सुरग या कुमैत) ही जिसका घोडा है और लाल वर्ण की ही जिसके हाथी पर ध्वजा है । ऐसे दीर्घकाय लालखा ने युद्धारंभ किया ।

कवित्त

लाल वरन वानैत, खग कदि आन जुद्ध कय^१ ।

खान खान किय घाव, कध कटि गिर्यो तास हय ॥

निरखि राइ चामड, विरचि फिरि वीर पचार्यो ।

गहिय तेग खा लाल, अग नृप धरनि पझार्यो ॥

धर डारि रिदय^२ परि पाँव दिय, केस गहै वंक्रुरि-करहि-।

ए कथ्य सुनौ हिन्दू तुरक, जै जै सुर नरद ररहि^३ ॥ ३८ ॥

प्रा० पा० १ भो० । २ पा० ३ भो० ।

शब्दार्थः—वानैत=धनुर्धारी-। कय=किया । खान खान=खानों का भी खान, शिरोमणि (श्रेष्ठ-खान) । विरचि=ललकारा । पचार्यौ=सामने आने को कहा । रिदय=हृदय । परि=पर । वंक्रुरि=मरोड़ दिये । ए कथ्य=यह ख्याति । ररहि=कहने लगे, रटने लगे करने लगे ।

अर्थः—उस लाल चर्चा वाले धनुर्धारी (लालखां) ने तलवार निकाल सामने आकर युद्ध किया । उस खान के आघात से चामुण्डराय के घोड़े का स्कंध कट गया और वह घोड़ा ज़मीन पर गिर गया । यह देख चामुण्डराय ने उस वीर को ललकारा और सामने आने को कहा । उसकी तलवार पकड़ कर उसे राजा पृथ्वीराज के देखते २ पृथ्वी पर पछाड़ दिया तथा उसके हृदय पर पाँव रख कर उसके सिर के बाल हाथों से पकड़ मरोड़ दिये । कवि कहता है—हे हिन्दू और मुसलमान वीरो । उस वीर की ख्याति सुनों । उस समय देवता और नारद भी यह देखकर जय २ कार करने लगे ।

दोहा

लाल खान के केस गहि, सिर धरि करि दुआ खंड-।

दूसासन ज्यों भीम बल, रन ठढौ चामड ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—धरि=धड़ । बल=बलि, बलवान । ठढौ=खड़ा हुआ ।

अर्थः—लालखां के बालों को पकड़ कर सिर और धड़ अलग कर दिया और जिस प्रकार बलवान भीम दुःशासन को मारकर खड़ा हुआ था उसी प्रकार चामुण्डराय युद्ध क्षेत्र में शत्रु को मार कर खड़ा हो गया ।

कवित्त

रन ठढौ चामड, मंत्रि कैमास पहुँचौ ।

हयह चढ़ायौ आइ, बहुरि मुख बचन कहतौ ॥

तू मेरौ लघु बध, इतौ दुख कौन सहतौ ।

तो विन जग सब धध, अंध हुअ अवनि रहतौ ॥

चहि वाज आज मयाम मे, राज लाज मो गुजनि पर ।

हठि हसन खान प्राकृत मे, खल पडे ते अग वर ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—पहुँचो=पहुँचा । हयह=घोड़े पर । कहतो=कहा । वध=पशु । मध=सांसारिक भोगे, कार्य ।

अर्थः—जहाँ रण क्षेत्र में लाल खा को मार कर चामु डराय खडा था, वहाँ मंत्री कैमास पहुँचा और चामुड को घोड़े पर चढ़ाकर बोला कि तू मेरा छोटा भाई है अन्यथा इतनी युद्ध आगति कौन सहन कर पाता ? तेरे अतिरिक्त सारा संसार सात्कारिक कार्यों में अया है तू ही एक पिरक वीर है । अतः आज युद्धस्थल में पुनः घोड़े पर चढ़ जा, क्योंकि राजा की लज्जा का भार आज मैंने अपनी मुजाओ पर लिया है । अन्य हे तुम्हें । तू ने हठाले हसनवा और याकूबवा जैसे दुष्टों के श्रेष्ठ अगों को काट दिया ।

दोहा

खल खड तुम अग वर, रगत वरन किय अग ।

रहि ठठ्ठौ डक खिनक रन, करौ निरिखि हों जंग ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—रगत वरन=रक्त रजित, रक्त वर्ण । खिनक=क्षणमात्र ।

अर्थः—तू ने श्रेष्ठ अगों वाले शत्रुओं का खंडन कर अपने शरीर को भी क्लृप्त रजित (वर्ण) कर दिया । अतः अब क्षण भर के लिये रण क्षेत्र में खडा रह कर मेरे द्वारा किये जाने वाले युद्ध को देख ।

दोहा

ताज वाज सहवाज खा, जाज खान महवूब ।

मान मदन कैमास कौ, लगी खुरसानह खूब ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—मदन=मर्दन ।

अर्थः—इन्ने में ताजखा, वाजखा, जाजखा और महवूबखा आदि खुरासानी योद्धा कैमास का मान मर्दन करने के लिये आ गये ।

कवित्त

सुनत साहि की वक्त, सत्त सब मित्त सम्हारै ।

करत कलह अम्मान, वान कम्मान प्रहारै ॥

सस्त्र सार की मार, हक्क मंत्री तहें टेर्यौ ।

जवर जंग नीसान, मनहुं वहल घन घेर्यौ ॥

जिम पथ्य वान कर वेग गहि, च्यार्यौ कैमासह लगे ।

दिक्खेव सबल सप्रास भर, ब्रह्म जोग निदह जगे ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—वत्त=वात, आवाज, ललकार । अस्मान=अमानी, नहीं मानने वाले । को=करी, करके । हक्क=हुंकार, गर्जना । घन=विशेष । पथ्य=पार्थ, अर्जुन । च्यार्यौ=चल पड़ा । लगे=लगने पर, मिड़ने पर ।

अर्थः—शाह के ललकार ने पर उसके मित्रों ने अपने वीरोचित सत्य को सभाला । उन शक्ति वाले वीरों ने युद्ध समय वाण को कमान पर चढ़ा कर प्रहार करना शुरू किया । तब लोहास्त्र की मार (वार) करता हुआ, ललकारता हुआ मन्त्री कयमास इस प्रकार गर्जने लगा मानों भारी युद्ध के नक्कारे बज रहे हों या आकाश में घिरकर वादल गरजते हों । शत्रुओं के आ जाने से (मिड़ने पर) अर्जुन के समान वाण ग्रहण कर वह वीर शत्रुओं पर दूट पड़ा । उस समय वह योद्धा युद्ध-स्थल में सबल दीख पड़ा । उसके द्वारा शत्रुओं के आक्रमण करने से ब्रह्मा की योग-निद्रा दूट गई ।

तीर^१ मीर सब^२ सस्त्र, मन्त्री कयमास तमकि तिम^३ ।

कर गहि कठिन कमान, वान चाहंत पथ्य जिम ॥

जाज खान दुअवान, तानि मार्यौति पर्यौ धम ।

तपि वाज सहवाज, मरद महिमूव^४ मुरहि किम ॥

अहंकार धरवि मन महि अधिक, जाइ जुर्यौ चामंड सम ।

दुअ करत जुद्ध मन्त्री सरिस, लरत घाव दुअ धरिय जम ॥ ४४ ॥

आ० पा० १ पा०, भी० का० । २ टि० पा० । ३ पा० । ४ टि० पा० । ५ भी० ।

शब्दार्थः—तीर=किनारा । धम=घड़के के साथ । तपि=सतप्त । सम=से । सरिस=श्रेष्ठ या सक्रोध ।

अर्थः—जैसे ही मन्त्री कैमास आवेश में आया, वैसे ही सब शस्त्रधारी मीर युद्ध से किनारा करने लगे । वह वीर कठिन कमान हाथ में ग्रहण कर उनपर अर्जुन के समान वाण वर्षा करने लगा । उसने जाज खान के दो वाण खींच कर मारे जिससे वह धड़ाम से गिरपड़ा । वाज खां तथा सहवाज खां उसके द्वारा संतप्त हो गये ।

परन्तु पुरुषार्थी महव्यूव खां किम प्रकार मुड सकन था ? वह विशेष ग्रहकार धारण कर चामु डराय से जा भिडा । उपमे दोनो श्रेष्ठ मत्री (चामु ड और कैमास) युद्ध करने लगे और उनकी लडाई के कारण घावों से युद्ध भूमि में दो घडीतक श्रम छा गया (अर्थात् उनके घावो से शत्रु थक गये) ।

घरिय शोड वर जुद्ध क्रुद्ध जोधा रन जुट्टे ।
मत्रि मिथा महव्यूव जग से अग निहट्टे ॥
परिय मीर सिर मार, भार दुअ भुज बल^१ पिल्ले ।
घायत्तन घन घुमि, चाय खित्री खग खिल्ले ॥
खग खेल मेल महव्यूव सिर, कैमासह कर टारियौ ।
तकि बाज खान बल खण्ड^२ करि, गहि गिरदान पछारियौ ॥ ४५ ॥

प्रा० पा० १ का० । २ टि०, भी ।

शब्दार्थः—मत्रि=कयमास । निहट्टे=नहीं हटे । पिल्ले=पेले । घायत्तन=घायल शरीर, घायल होते हुए । घु मि=भूमते हुए । चाय=इच्छा पूर्वक, इच्छा करते हुए । खिल्ले=खेलने लगे । मेल=मेल दी, रख दी, प्रहार किया । टारियौ=राक दिया । तकि=देखकर । खण्ड=नष्ट । गिरदान=चारों ओर घुमा कर ।

अर्थ—इस युद्ध में कुद्ध यौद्धा (कयमास और चामुड) दो घडी तक लड़ते रहे (युद्ध से नहीं टले) । उन दोनो वीरों ने (कयमास और चामुण्ड ने) युद्ध-भार अपनी मुजाओं के बल पर वहन किया जिससे मीर महव्यूव के सिर पर मार पड़ने लगी । घायल होकर वे वीर क्षत्रिय विशेष भूमते हुए इच्छापूर्वक तलवार का खेल खेलने लगे । उस रण-क्रीडा में कयमास ने महव्यूव के सिर पर खड्ग प्रहार कर अपने हाथ को रोक लिया । पश्चात् बाजवा की ओर देखकर उसने उसका बल नष्ट कर उसे पकड़ कर चारों ओर घुमाकर पछाड़ दिया ।

चित्ति राड चामड, टैं उत निरखि उभयतन ।
खग करह खनकत, मत्रि सहबाज घाव घन ॥
पहुँच जाज परि-हार, वार मीरन सिर वट्टिय ।
रन जित्यौ दाहिम्म, कित्ति पहुमि पर चट्टिय ॥

दल दल्यौ सवल दाहर सुतन, कहै धन्य हिन्दू तुरक ।

सुनि वत्त साह संमुह अरिय, जनु असिवर उग्यौ अरक ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—उभयतन=दोनों के शरीर (मंत्री कैमास और शहवाज के शरीर) । खनकत=खन खनाते हुए । मन्त्रि=कैमास मन्त्री । परि-हार=पड़ा, पराजित हो गया । धार=खड्गधारा । दाहिम=दाहिमा क्षत्रिय कैमास । चढिय=चढ़ाई, फैल गई । दाहर सुतन=दाहर पुत्र (कैमास) । समुह=सामने । अरिय=अड़गया । असिवर=श्रेष्ठ खड्गधारी । उग्यौ=उदय हुआ । अरक=अरक, सूर्य ।

अर्थः—फिर कयमास मंत्री और शहवाज खां मे युद्ध ठना । उस समय चामुंडराय चिंतन करता हुआ दोनों के शरीर को देखने लगा । वे दोनों (कयमास और शहवाज) हाथों से तलवारें खनखनाते हुए एक दूसरे पर अधिकाधिक घाव कर रहे थे । इतने मे जाज खां भी आपहुँचा, किन्तु वह कयमास से पराजित हो गया । इस प्रकार वह दाहिमा वोर विजयी हुआ और उसकी कीर्ति पृथ्वीपर फैल गई । बलवान दाहर-पुत्र ने शत्रुदल का नाश कर दिया । जिससे उसे हिन्दू और मुसलमानों ने धन्य २ कहा । यह बात सुन स्वय सुलतान सामने आगया । वह खड्गधारी शाह उस समय ऐसा दिखाई दिया मानों सूर्योदय हुआ हो ।

करिय साहि ठेलत, मीर हक्कत प्रवल दल ।

खां ततार रुस्तम्म, मीर मगोल सवल वल ॥

चक्रसेन चहुआन, लोह वाहत आय खल ।

नर हय गय गुंजार, लोह लगगत हयदल ॥

असिमार धार आकास उड़ि, उठि जुरत कमंध रिन ।

चहुआन चक्र सुरतान लागि, तन तिखंड खडे करिन^१ ॥ ४७ ॥

प्रा० पा० १ का०, टि० ।

शब्दार्थ—ठेलत=वढाने पर । हक्कत=वढा, वढे । वाहत=चलाने लगा । आय खल=दुष्टों के, शत्रुओं के) आने पर । गुंजार=शोर, आवाज । हयदल=अश्वारोही । धार=शेपित धारा या शस्त्र धारा । कमंध=मुंड रहित घड़ । करिन=हाथी ।

अर्थः—शाह के द्वारा हाथी वढाये जाने पर मीरों का प्रवल दल वढा । उसमें तत्तार खा, रुस्तम खां और मीर मगोल आदि सशक्त वीर थे । शत्रुओं के सामने

उम समय चक्रसेन चाहुआन उन पर लोहघात करता हुआ बढ़ा । मनुष्या, घोड़े और हाथियों का शोर मचने लगा, तथा मुड सवारों (अश्वारोहियों) के दल पर लोहघात होने लगा । तलवार के आघातों से गगन-मंडल तक रक्तवारा उठलने लगी और कमध उठ २ कर युद्धस्थल में भिड़ने लगे । इस प्रकार चाहुआन चक्रसेन सुलतान से जा भिड़ा और हाथिया के शरीरों के तीन २ टुक कर देने लगा ।

तव सहाय सुरतान, वान कमान कोपि धरि ।

अलखान आलम, सार वहि कटी सु खुपरि ॥

चक्रसेन सिर खडि, कियौ दह भरे लोह लरि ।

खा ततार रुस्तम, खान गुरसान रहै डरि ॥

उर डरपि धरकि हिंदू तुरक, मूर नूर सामत मुख ।

कवि चढ देखि कीरति करत, लरत आप आपनी सु रुख ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—खुपरि=खोपड़ी । दह=गड्ढे, नदी में हसमय जलमरे रहने वाले, गड्ढे । रुख=पत्त ।

अर्थः—यह देखकर शाह ने क्रोध कर बाण कमान पर चढ़ाया । अलखा और आलमखा ने शस्त्र चला चाहुआनी दल के वीरों की खोपड़ी की मज्जा निकाली तब चक्रसेन चाहुआन ने विपक्षियों के सिर तोड़ कर श्रोणित के दह (नदियों में हर समय भरे रहने वाले गड्ढे) भर दिये । यह देख कर तत्तार खा, रुस्तम खा, भयातुर हो गये । उस वीर चक्रसेन का नूर युक्त मुख देखकर हिन्दू और तुरक योद्धाओं के हृदय भयभीत हो धडकने लगे । कविचद कीर्ति वर्णन करता हुआ कहता है कि प्रत्येक योद्धा उस समय अपने २ पत्त पर रह कर लड़ने लगा ।

दोहा

अप आपानी रुख लरत, करत अग अँग मार ।

चक्रसेन चाहुआन कौ, भरनि सहौ मुजभार ॥ ४९ ॥

शब्दार्थः—अग अँग=प्रत्येक अँगों पर । भरनि=सामतों ने ।

अर्थः—वे योद्धा अपने अपने पत्त पर लड़ते हुए दूसरे के अँगों पर आघात करने लगे । उस समय चक्रसेन चाहुआन को आपत्ति-प्रस्त देखकर वीर सामतो ने उसकी आपत्ति के निवारण का भार अपनी मुजाय्यों पर लिया ।

कवित्त

भरनि सखौ भुजभार, साह सक वान प्रहारिय ॥
 एक वान चामंड, लगि भुज दंड मुहारिय ॥
 दुतिय वान सिर वहिग, चक्रसेनह सिर संघे ।
 सु कर कट्टि अप वान, खचि वसतर सम वंधे ॥
 वर वधि घाय कर^२खग गहि, विजल खान वगसी बहौ ।
 कैमास राइ चामड मिलि, धन्य दुअन जै जै कहौ ॥ ५० ॥

आ० पा० १ भी० । २ भी०, पा० ।

शब्दार्थः—सक=मुसलमान । मुहारिय=मुछाले । सिर=ऊपर । संघे=लट्ठ करके । सु=उस चक्रसेन ने । वसतर=वस्त्र । सम=से । घाय=घाव । वगसी=वहती । बहौ=नाश किया, चलता किया ।

अर्थ —सामंतों ने उस युद्ध का भार भुजाओं पर लिया । तब मुस्लिम बादशाह ने बाणों का प्रहार करना शुरु किया । उनमें से एक बाण मूँछवाले चामुंडराय के भुजदण्ड पर लगा । शाहने दूसरा बाण चक्रसेन के सिर को लट्ठ कर चलाया वह चक्रसेन के सिर पर लगा । उस बाण को हाथ से निकाल कर अपने विहीरु सिर को वस्त्र से खींच कर बांधा । घाव को बांध लेने के पश्चात् उसने हाथ में तलवार पकड़ विज्जूलखां वली का नाश किया । यह देख कयमास और चामुंडराय ने मिलकर उस वीर को धन्य २ कहकर उसकी जय २ कार की ।

कैमास रु चामड, साहि-गजतेग प्रहारिय ।
 अलूखान आलम, सीस दुअ घाइन पारिय ॥
 चक्रसेन खग वहिग, चमरकट सिर सम तुट्टिय ।
 वहि क्रपान कासिम्म, लरत धरपर धर लुट्टिय ॥
 लुट्टैति मीर तिहि साहरिन, छत्रधार छत्रिय खगन ।
 दाहिम्म जुद्ध दिखि ब्रह्मसुर,भय तु मर नारद मगन ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—साहि=बादशाह के हाथी पर । लुट्टै=लुटके । तु मर=तु मर नाद हुआ । तु मर=नाद किया मगन=प्रसन्न ।

अर्थः—कयमास और चामुंड ने शाह के हाथी पर तलवार का प्रहार किया और अलूखां तथा आलमखां, दोनों के सिर पर आघात कर उन्हें पटक दिया ।

उत्तने से चक्रसेन को तलवार चली जिससे पाद के चमर करने वाले का गिरा तथा हाथ चमरमहित कटपड़ा । फिर कानींग पर तलवार चलाई, जिगमे उममा लडता हुआ धड धराशायी हुआ । उन चक्र-धारण करने वाले नानियों की तलवारों ने उस युद्ध में शाह के कई वीरों को लुटका दिया । उन प्रकार ब्राह्मिन्म गीरो (कगमाम और चामड) का युद्ध ब्रह्मा और देवगण देवते रहगये और देवर्षि ने प्रमन्न होकर तुम्हर नाद किया ।

अलूखान वर उठिग, पानि वरि खग खनक्यौ ।
चक्रसेन कटि कध, सिलह फुटि तनह न नक्यौ ॥
उमडि उट्टि अधकाड, घुमडि घनघाड घन क्यौ ।
तीन भरन किय घाउ, ठाम तिन तनह ठनक्यौ ॥
जुध करत खग तिय जोध सम, चक्रसेन सिर धर पर्यौ ।
बोहिथ्य वीर तर वारि सर, उभय हथ्य धर रन तिर्यौ ॥ ५२ ॥

शब्दार्थः—धर=धड़, ढड । नक्यौ=पकड़ा । घन=बहुतों के । क्यो=किये । ठनक्यौ=बजा, प्रति ध्वनित हुआ । बोहिथ्य=नौका, नाव । वीर=वीरस ।

अर्थः—धराशाई अलूखान का धड उठा उसने हाथ में तलवार लेकर खन खनाई जिसके वार से चक्रसेन का स्कंध कट गया, कवच टूट गया, किन्तु फिर भी उस वीर का शरीर जमीन पर नहीं पड़ा । उसकी अर्ध काया उट खड़ी हुई और सुडकर उसने बहुतों के घाव कर दिये । उसने तीन विपक्षी योद्धाओं पर वार किया । जिससे उनके अग स्थल पर उसका शस्त्र प्रतिध्वनित हो गया । इस प्रकार तीन योद्धाओं से समान खड्ग युद्ध करता हुआ चक्रसेन का सिर पृथ्वी पर जा पड़ा । वह वीर, वीरस रूपी तालाव में तलवार रूपी नौका को दोनों हाथों से खेता हुआ युद्ध क्षेत्र को पार कर गया ।

वर करगहि तरवार, हेत हिंगोल सँभारिय ।
चढत साहि दिग मज्जि, वाज सिरताज विहारिय ॥
सत्रह वरस सपन्न, राग बाहर कौ जायौ ।
कलिजुग जम पिस्तरिय, बहुरि वैकुंठ मु आयौ ॥

बिन सिर कमव करिवार गहि, खगन मरिखल खड किय ।

मारयौ मीर जद्धव मलिक, गीर परे पारंत विय ॥ ५३ ॥

शब्दार्थः—हेत=हित । हिंगल=स्थान विशेष । सँमारिय=समाला, रत्ना की । विहारिय=चलाया, पहुँचाया । मपन्न=पहुँचा हुआ । जद्धव=युद्ध में, या युद्ध करता हुआ ।

अर्थः—चकसेन के धड ने हाथ में तलवार ग्रहण कर हिंगोल के हित की रक्षा करली (अपने स्थान हिंगोल की अपकीर्ति नहीं होने दी) । युद्ध के प्रारंभ में सुसज्जित होकर उसने अपने सिरताज नामक अश्व को शाह के निकट पहुँचा दिया । वह दाहरराय का पुत्र उस समय १७ वर्षों में पहुँचा था । वह कलियुग में यश विस्तार कर वैकुण्ठ पहुँचा । उसके रुंड ने बिना मुंड के ही तलवार ग्रहण कर खड्ग प्रहारों द्वारा शत्रुओं को खण्ड २ कर दिया । लड़ने वाले मीर मलिक को युद्ध में मारझाला और दो ओर विपक्षियों को धराशाई कर वह वीर वराशाई हुआ ।

दोहा

जित्ति मत्रि सुरतान धर^१, वधव चोंड हजूर ।

उमै लक्ख असुरान के, मेटि प्रवल दल पूर ॥ ५४ ॥

ग्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—धर=पकड़ा । हजूर=उपस्थित, साथ में ।

अर्थः—मंत्री कयमास ने विजय प्राप्त की, सुलतान को पकड़ा और कैमास का साथ उसके भाई चामुड ने दिया । दोनों वन्धुओं ने शाह के दो लाख मुसलमानों के सम्पूर्ण दल को किस प्रकार नष्ट किया उसका वर्णन कवि करता है ।

कवित्त

मेटि प्रवल दल पूर, साह समुह गज पिल्ल्यौ ।

वाज राज चामड, मंति वंधव मिलि ठिल्ल्यौ ॥

संगि बाहि कैमास, पीत बाने विच ठट्टिय ।

गहिय समर चामण्ड, तु डपर करिय निहट्टिय ॥

जिह्वा म म न ज न ग म गिरत ग ज गा ग न ग ।

दाहिम गंगो गज न समर जय २ मुर मने समर ॥ ५५ ॥

शब्दार्थः पि-स गंगा ग । गज-गज । गि-गिरा ॥ गी । गी । गीतान-
पात-पात २२२ मरग २२२ । ठि-ठि=ठि, पाश कर्मठि मरगित तु । मरिग मर-
युद्धभार ग्रहण किया । गि-गि=गिरा । मर=मरित । मर पश्या । गज नपत्तु गजगंगा
मरगमान गी । मर=गिरा, ग । मर=मरित ।

अर्थः—उस सम्पूर्ण गुमलमानी प्रचल सेना को नष्ट हुई देखकर शाह ने अपने हाथी को बढ़ाया—तब चामु डराय और उसके भाई मंत्री कयमास ने अपने २ घोड़े शाह की ओर बढ़ाये । कयमास ने साग (सम्पूर्ण लोहे के बर्छे) का वार किया । वह बादशाह के स्वरिण कवच में प्रवेश करगई और चामु डराय ने भी युद्ध भार ग्रहण कर गज तु ड पर आघात किया, जिससे हाथी की सु ड दोनों दाँत सहित कट पड़ी और हाथी लुढ़क पड़ा, उसी समय कयमास ने गजनेश्वर शहाबुद्दीन को पकड़ लिया । यह देख देवताओं ने जय २ शब्दोच्चारण किया ।

अमर सह जयकार, डारि साहाव कथ हय ।

लै मंत्री सुरतान, वध विय राज पास गय ॥

दिकलि नृपति साहाव, ताम अपन हिय डर्यौ ।

किय हुकूम चहुआन, आनि सुख्यासन वर्यौ ॥

नृप जीति चलयौ दिल्ली पुरह, उपायौ चामड वर ।

हु डर्यौ खेत दाहिम तह, उपायि केइक सुभर ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः लै=लेकर, । मिय=दोनों भाई । डर्यौ=विठलाया । केइक=कितने ही ।

अर्थः—देवताओं के जय जय कार करने पर मंत्री कयमास ने शहाबुद्दीन को पकड़ कर अपने घोड़े के कन्धे पर डाल दिया और दोनों भाई (कयमास और चामण्डराय) शाह को लेकर राजा के पास गये । राजा को (पृथ्वीराज को) देख कर शहाबुद्दीन भयभीत हो गया, किन्तु चाहुआन नरेश ने आज्ञा दी और उसे लाकर सुखामन पर बिठाया । इस प्रकार पृथ्वीराज विजय प्राप्त कर दिल्ली-रवाना हुआ । घायल हो जाने से श्रेष्ठ वीर चामण्डराय को उठाकर साथ में लिया और मंत्री कयमास ने रणक्षेत्र की खोज करवा कर घायल सामनों को भी उठाया ।

उपारिग चहुआन, राज बंधव सु चक्रधर ।

राम किष्ण गहिलोत, बंध रावर सु समर वर ॥

उपारिग नर सिंघ, वीर कैमास अनुज्जिय ।

सामल सेखा टाक, नेह जं जरिय बंध विय ॥

उपारि^१ खेत सामंत खट, खट्टपुर भारथ परिग ।

दल हिंदु सहस असुरह अयुत, रहे खेत कंदल करिग ॥ ५७ ॥

प्रा० पा० १ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—ज=जो । जरिय=जकड़े हुए थे । खट=छ । भारथ=युद्ध । अयुत=दो सहस । कंदल=क दल, नाश ।

अर्थः—राजा के भाइयों में से चक्रसेन चाहुआन था उसका मृत शरीर उठवाया गया तथा रावल समर केशरी के भाइयों में से गुहिलोत राम और कृष्ण, कयमास के भाइयों में से वीर नरसिंह और प्रेम बन्धन से जकड़े हुए ऐसे दोनों भाई टांक क्षत्रिय सामल और शेषा भी उठवाये गये । इस प्रकार छः सामंत खट्टपुर के युद्ध में धराशायी हुए । उस युद्ध में एक सहस्र हिन्दू वीर और दो सहस्र मुसलमान रणक्षेत्र में विपत्तियों का नाश करते हुए (युद्ध करते हुए) काम आये ।

दोहा

जे भग्ने तेऊ मरे, तिन कुल लाइय खेह ।

भिरेसु नर गय जोति मिलि, बसे अमरपुर तेह ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—लाइय खेह=धूल में मिला दिया । तेह=वे ।

अर्थः—कवि कहता है—युद्धस्थल से भाग गये थे, वे भी एक दिन मरे, किन्तु वे अपने कुल को कलकित कर मरे (अर्थात् पीठ बतलाकर अपने वश-गौरव को उन्हीं धूल में मिला दिया) । परन्तु जो वीर युद्धस्थल में युद्ध कर मारे गये थे, वे परम ज्योति में मिल गये और स्वर्ग में जा बसे ।

कवित्त

गय दिल्ली पृथिराज, दड सुरतान मीस क्रिय ।

गज द्वादस दल सोभ, वाज हज्जार अट्ठ दिय ॥

परध दड पृथ्वीराज, द्वियौ रेमाम चौड तिन^१ ।

दड परध द्विय राज, सु भर उणारि मभरिन ॥

पतिसाह गयौ गज्जन पुरह, बद्राडय सामत घर^२ ।

जै जै सु मवद सब लोक किय, चद अक्खि कीरति अमर ॥ ५६ ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ का० भी० पा० ।

शब्दार्थः—तिन=उनसे, या उमने । मभरिन=युद्ध स्थल में ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने दिल्ली जाकर शाह को दंडित किया और उस दंड स्वरूप सेना की शोभा बढ़ाने वाले बारह हाथी और आठसहस्र घोड़े लिये । उस प्राप्त दण्ड में से आधा कयमास और आधा चामुण्डराय को दिया गया तथा शेष आधा दण्ड उन सामन्तों को दिया गया जो युद्धस्थल से उठाये गये थे । इस प्रकार दण्ड देकर बादशाह गजनी पहुँचा । वीर सामन्तों के घर पर युद्ध की बधाई बाटी गई । सब लोगों ने इस विजय की जय २ कार की और मैंने (कविचन्द ने) भी इस विजय के उपलक्ष्य में अमर कीर्ति का गान किया ।

हंसावती विवाह

(समय ४१)

दोहा

इक तप पंग नरिंद कौ, सुनि अवाज सुरतान ।

आखेटक पृथिराज गय, खट्टू पुर चहुआन ॥ १ ॥

शब्दार्थः—तप=प्रताप । अवाज=आवाज, शोरगुल । गय=गये ।

अर्थः—जयचन्द का प्रताप फैला हुआ था, उधर शहाबुद्दीन का शोर गुल सुनाई देता था फिर भी पृथ्वीराज शिकार के लिये खट्टू पुर की ओर गया ।

कवित्त

रा जइव रिन थंभ, भान पंचाइल भारी ।

हंसावति तिन नाम, हंसवती गति सारी ॥

अवनि रूप सुंदरी, काम करतार सुकीनी ।

मन मन्नवै विचार, रूप सिंगारस लीनी ॥

लक्म्वन वत्तीस लच्छी सहस, अति सुंदरि सो भासु-कवि ।

अस्तम्भ उदै वर चक्र विच, दिक्खिन न कहु चक्रंत रवि ॥ २ ॥

शब्दार्थः—राजइव=राज । रिनथम=रण थम्भौर । हंसवती=हंस के समान । सारी=श्रेष्ठ । मन्नवै=मानने योग्य । सो=वह । भासु-कवि=कवि की वाणी । अस्तम्भ=अस्त । उदै=उदय । चक्र=एरिया, क्षेत्र । दिक्खिन=देख नहीं पाया । चक्रत=चक्कर लगाता हुआ ।

अर्थः—इधर यादव राज रणथम्भौर में था । वह (भानुराय) और उसका विपत्ती पचायन दोनों भारी शोद्धा थे । यह युद्ध जिस कुमारी के लिये हुआ उस कुमारी का नाम हंसावती था । जिसकी श्रेष्ठ गति हंस तुल्य थी । कामदेव और ब्रह्मा (सृजता, ब्रह्मा) ने उस सुंदरी की रचना संसार के समस्त सौन्दर्य द्वारा की थी, उसके विचार मानने योग्य थे, और उसका सौन्दर्य शृंगार रस से ओत प्रोत (परिपूर्ण) था । वह लक्ष्मी के समस्त लक्षणों से

युक्त थी। वह कृपि की वाणी के तुल्य विनोद सुन्दर थी (या जिसका कवि वर्णन करता है वैसी अति सुन्दर थी)। अन्य अंग होते हुए मूर्ध्नी की सीमा में मूर्ध्नी ने भी ऐसी सुन्दर नहीं देखी थी।

नाग वेनि सह^१ पीन, कति दसनह सोभत सम ।

अखि पदम पत^२ मानु^३, भाल अष्टम रतिपति कम ॥

सिखा-नामि^४ गज गत्ति, नाभि दछनावृत सौभै ।

सिंघ सार कटि चारु, जघ रंभा जुखि^५ लौभै ॥

सुदरी सीत सम वरि चरित, चतुर चित्त हरनी विदुख ।

सतपत्र गव मुख ससिय सम, नैन रभ आरभ रुख ॥ ३ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २, ३ भी० पा० । ४, ५ पा० ।

शब्दार्थः—सह=वह, जिसकी, उसकी सुहावनी, शोभित । पीन=पेनी, (पतली)। कति=कति । दसनह=रद पक्ति । सम=एक सी, समरूप में । अखि=अखिलें । पदम पत=पद्म पखुड़ी । अष्टम=अष्टमी का चन्द्रमा सा । रतिपति=कामदेव । कम=विहार । सिखा-नामि=शिक्षितों में जिसका नाम । दछनावृत=दक्षिणावर्त, दक्षिण की चक्कर खाती हुई । सार=तत्त्व (पतली, सूक्ष्मरूप) । रभा=कदली स्तन । जुखि=यक्षिणी । सीत=सीता । वरि=श्रेष्ठ । चरित=चरित्र । विदुख=विदुषा, पंडिता । सत पत्र=शतपत्र, कमल । जघ=सौरभ । रभ=रभा । आरभ=प्रारंभ । रुख=चितवन ।

अर्थ—नाग के समान पेनी (पतली, तीखी) आकृतिवाली उसकी वेणी, पद्म पखुड़ी के समान उसके नैत्र, कति युक्त और पक्ति बद्ध उसकी रदपक्ति, अष्टमी के चद्रमा (अर्ध चद्र) के समान या कामदेव के विहार स्थल के समान उसका भाल, शिक्षित हाथियों में जिसे गिना जा सकता है, ऐसे हाथी के समान उसके गति, दक्षिण की ओर चक्कर खाती हुई उसकी नाभि, तत्त्वरूप में (पतली) श्रेष्ठ सिंह सी उसकी कटि । जिसे देख यक्षिणी भी मोहित (लोभित) हो जाती थी, ऐसी कदली सी जिसकी जघा थी, वह श्रेष्ठ सुन्दरी चरित्र में सीता के समान थी । वह चतुर, चित्त को हरने वाली और विदुषी थी । कमल के समान उसकी सौरभ, चन्द्रमा के समान उसका मुख और रभा के समान उसके चितवन (नैत्रों की रुख का आरंभ) थी ।

गाथा

वर वंसी सिसुपालं^१, चित्तं^२ जस संमलं वालं ॥

मन मयनं^३ तन वट्टु^४, रिनथम मुक्कवै दूतं ॥ ४ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० ३ सं० ।

शब्दार्थः—जस=यश । 'मुक्कवै=मेजे' ।

अर्थः—शिशुपाल के वंशज का चित्त जैसे ही उस बालाके यश श्रवण में लगा वैसे ही उसके मन और शरीर में कामदेव ने विशेष रूप से स्थान पाया और उसने यादव भान जो उस समय रण थमौर में ठहरा हुआ था उसके पास दूत भेजा ।

कवित्त

रा जहव रिन भान, तमकि कर चंपि लुहट्टी ।

वर रन धँम उत्तरी, वीर वस्सी आहुट्टी^१ ॥

वर कग्गद कर फेरि, सुमित^२ करियो^३ वर राजन ।

मतै वैठि मडली^४, धम्म छत्री जिन भाजन ॥

बुल्लइन एन दुज्जन भिरन, तरन-तार साधन मरन ।

वर वीर जुद्ध चालू-करन^५, हक्कार्यो^६ दुज्जन भिरन ॥ ५ ॥

ग्रा० पा० १, २, ५ सं० । ३, ६ पा० । ४ का० ।

शब्दार्थः—रिन=रणथमौर स्थित, ठहरा हुआ । चंपि=हृदता के साथ ग्रहण की । लुहट्टी=तलवार । उत्तरी=उतर पड़ी । वस्सी=जस ही (साथ में आये हुए लोग) । फेरि=लौटा दिया । सुमित=थच्छा । मतै=मंत्रणा के लिये । मडली=मामन्त मडली । तरन-तार=तरन-तारन । चालू-करन=शुरू करने को । हक्कार्यो=ललकारा, बुलवाया ।

अर्थः—शिशुपाल-वशी दूत के आने पर रणथंभोर में ठहरे हुए यादव राजा भान ने क्रोध में आकर तलवार हृदता से पकड़ी और उस वीर के अडिग साथी (उसके साथ में देवास से आये हुए लोग) रणथंभोर से नीचे उतरे । शिशुपाल वशी का आया हुआ पत्र लौटा दिया गया । राजा ने यह कार्य अच्छा किया । फिर वह सामन्त-मंडली सहित मंत्रणा के लिये बैठा और निश्चय किया कि भाग जाना शत्रु को युद्धार्थ घर पर निमंत्रण देना चाहिये, क्योंकि मृत्यु

ही तरन-तारन की मायना है । यह निश्चय कर उग गेग गीर गगन ने युद्ध प्रारम्भ करने के लिये शत्रु को ललचाया ।

मुनि ब्रमी समिपाल, वीर पचाउन लोट्यो ।
मह मह गज जेमि, तमसि वीरज गम लोट्यो ॥
रिन प्रमह दिमि प्रम, दिगौ वर वीर मिलान ।
हय गय दल चतुरग, मजे तिन बेर प्रमान ॥
वर वीर प्रग वस्सीठ चलि, राजदौ समुह दिसा ।
परनाइ कुंअरि ह्सावती, सु वर कोपि आयौ निसा ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—सदद=शब्द, आवाज । मदद=मतवाले । जेमि=जैसे । तमसि=तेज में आकर, तमक कर । सम=से । थम=थमकर, सम्हल कर । दियौ=किया । मिलान=कूच । तिन बेर=उसी समय । निसा=निशा, रात्रि के तुल्य ।

अर्थः—युद्धार्थ यादव भान का सन्देश सुन शिशुपाल वशी वीर पचायन क्रुद्ध हो उठा और मस्त गजराज के समान गर्जता हुआ जोश में वैर्य भूल गया । रणथभौर की ओर सावधानी से उस वीर श्रेष्ठ ने कूच किया । उसने उसी समय हाथी घोड़े और चतुरगिनी सेना सजाई और उस वीर श्रेष्ठ ने यादव राजा की तरफ आगे दूत भेजकर कहलाया कि कुमारी ह्मावती का ब्याह करदे । अन्यथा वह सबल वीर क्रुद्ध होकर रात्रि के तुल्य बढा आरहा है (अधिकार के समान भयानक हो गया है) ।

दोहा

जस वेली रिन थम नृप, फल पच्छे नृप आइ ।
रा जहव, सुरतान सौ, कहि चर' जाइ सुधाइ ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—रिन थम नृप=रण थमोर का स्थाई राजा पृथ्वीराज । पच्छे=जाद म, पश्चात् । आइ=आया हुआ ।

अर्थः—रणथभौर का स्थायी राजा पृथ्वीराज की यश वेली के तुल्य था । पीछे से आया हुआ यादवराज (भानु) फल स्वरूप दिखाई पडा । इस श्रेष्ठ संयोग की बात दूतों ने जाकर शाह से भी कही (यह दूत शिशुपाल-वशज का भेजा हुआ शाह के पास पहुँचा) ।

कवित्त

सोय रक्खि रावनह, लंक तोरन कुल खोयो ।

कपट रक्खि दुरजोध, खग खोहनि दल वोयौ । ॥

संत हीन वरचंद, कियौ गुरवारसु हिल्लौ ।

क्रम रक्खि रघुराइ, अजै जान्यौ न पहिल्लौ ॥

रनथभ मडि छंडी सरन, भिरन कहौ वरवीर सव ।

ससिपाल वीर वसी विलस, हमदेखै आयौसु अव ॥ ८ ॥

आ० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—तोरन=टूटी, नष्ट हुई। खोयो=नष्ट कराया। दुरजोध=दुर्योधन। खोहनि=अक्षौहिणी। वोयौ=डूबो दिया, नष्ट किया। संत हीन=कुमत्रणा युक्त। गुरवारसु=गुरु की वाणा (पत्नि से)। हिल्लौ=वदनाम, फजीता। क्रम रक्खि=कर्तव्य का पालन करता हुआ। रघुराइ=रघुवशी राजा दशरथ। अजै=विजयी। पहिल्लौ=प्रथमता। रनथभ=रणथभोर पर। मडि=ग्रहण की हुई। छंडी सरन=शरण को छोड़ दिया।

अर्थः—रावण ने सीता का अपहरण किया जिससे लंका और उसके वश का नाश हुआ। दुर्योधन ने द्रौपदी पर बुरी दृष्टि डाल पांडवों से कपट किया। इसीलिये अक्षौहिणी सेना का खड्ग द्वारा क्षय हुआ। श्रेष्ठ चन्द्रमा ने गुरु पत्नि से संयोग कर अपनी अप्रतिष्ठा करवाई। राजा दशरथ ने कर्तव्य का पालन करते हुए भी अपने विजयी पुत्र (राम) को स्त्री के (कैई के) कारण प्राथमिकता नहीं दी (अर्थात् स्त्रीके कारण विद्रोह होता रहता है)। यही सोचकर यादव राजा भान ने भी रणथभोर में शरण ग्रहण की थी। उसे छोड़कर अपने श्रेष्ठ वीरों को युद्ध की आज्ञा दी और कहा- वीर श्रेष्ठ शिशुपाल का वशज अकड़ कर आया है उसे अव हम देखना चाहते हैं।

जीवन बलह विनोद, अलह नव्वी घन मंगहि ।

जीवन बलह विनोद, आस आसन असु रगगहि ॥

जा जीवन सुंदर सुगध, वर बंधव लोकैं ।

जा जीवन काजे कपूर, पूरन प्रभू कौकैं ॥

जा जियन देव दानव मिलन, किल मन कलि आवन गवन ।

तिन भवन छद छंडित गुहर^२. तजित तुंग तन सौं भवन ॥ ९ ॥

आ० पा० १ पा० । २ सं० ।

शब्दार्थः—पक्ष=पक्षी । वृत्ता=पक्षी । पक्षमात्रो ही गीत । गाय=गाथा गी । गायन गान
 वृत्त । पक्ष=प्राण । रत्नहि=मलिन ह, गेने है । लोके गीत, गगा । एग्न=पर्याता शिगे, गगा
 रखने के लिये । प्रमोद=प्रमोद में पक्ष की जाती है । गितन=गितने है, गगर् साभते है, गेता
 रगते है । क्लि=निश्चय । मन=मानने है, गीतार रगते है । गिन भान गिगा । पक्ष=पक्ष,
 तगिगा । गृह=रहने ह रगित । तु ग=उत्तम ।

अर्थः—जीवन-बल और आनन्द के लिये अल्ला और नवी से विशेष याचना की जाती हैं और उम्मी आशा से प्राण भी त्यागना पड़ता है । उम सुन्दर जीवन वागना के लिये ही भाई और ससार आदि श्रेष्ठ दीख पड़ते हैं । उस कर्पूर-रूपी जीवन की परिपूर्णता और अखडता के लिये ही ईश्वर से पुकार की जाती है । उसी जीवन के लिये देवता और दानवों से सर्पई करना पड़ता (सेवा की जाती) है । उसी के लिये कलियुग में भी आवागमन के बन्धन को निश्चित मान स्वीकार करता है, किन्तु त्रिभुवन-कथित यह तरिका है कि उत्तम शरीर-रूपी भुवन को वह जीवन एक दिन अवश्य तज देता है ।

दोहा

रा जहव वर मानने, बहु मग्यौ वर हट्ट ।

वाजी वार पयानरे, तु गी तेरह थट्ट ॥ १० ॥

शब्दार्थः—बहु=लौटा दिया । मग्यौ=मगौती । (कुमारी की मगनी) । वर=दुलहा, शिशुपाल वशी । वाजी=अश्वारोही । वार पयानरे=प्रयाण, समय । तु गी=तु ग, दोली, विभाग । थट्ट=किया ।

अर्थः—यादव राजा भान ने शिशुपाल वशी दुलहे की सगाई के प्रस्ताव को लौट दिया (निपेव कर दिया) और उसने प्रयाण के समय अपनी अश्वारोही सेना को तेरह विभागों में विभाजित किया ।

इह सुनि वीर वसीठ उठि, भानह हल्यौन हल्ल ।

तीस कोस सम्मौ मिल्यौ, वर पचाइन ढल्ल ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—हल्यौन हल्ल=डिगा नहीं, उस से मस नहीं हुआ । सम्मौ=सामने जाकर ।

अर्थः—इस प्रकार भानराय को अपनी बात से टस-से-मस नहीं होता हुआ देव कर वीर वसीठ (जो पचायन के लिये ढाल स्वरूप था) उठा और तीस कोस सामने जाकर पचायन से मिला ।

अग्निवान अज वक्क, धाह, भाई परवानिय ।
 ता पच्छे साहाव, खान बंधै तुरकानिय ॥
 ता पच्छे नूरी हुजाव, सेनी^१ संचारिय ।
 केलीखान कुलाह, सव्व सेनी कुटवारिय ॥
 वानिक्क वीर दुल्लह सुजर, भाइ खान रन अंभ वर ।
 ससिपाल वीर वंसी विलस, वर आयौ रनथंभ पर ॥ १२ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—अग्निवान=अग्रगण्य । धाह भाई=धातु सुत । परवानिय=प्रमाण, समान । बंधै=सजाये ।
 कुटवारिय=कुतुबुदीन की, या नगर रक्षक । सुजर=अच्छे सजे हुए । अंभ=अन्न, वादल ।
अर्थः—पंचायन के दूतों द्वारा सूचना मिलने पर शाह ने भी उसकी सहायता के लिये अपनी सेना भेजी । जिसमें प्रमुख वीर धातुसुत के समान अग्रगण्य उजवक, खान कहलाने वाले तुरुक्क, नूरीखा, हुजावखा, केलिखान और कुलाहखान तथा वादः में कुतुबुदीन की सारी सेना (या नगर रक्षक सेना) व अन्य सारी फौज क्रमशः सजाई गई । इस प्रकार वे तुरुक्क वीर दूल्हे के वेश में सजे । जिनमें से कितने ही शहाबुदीन के सगोत्री योद्धा युद्ध में वादल-स्वरूप थे । सहायतार्थ आये हुए मुस्लिम वीरों को साथ में लेकर शिशुपाल वंशी वह वीर उत्साह युक्त रणथंभोर की ओर चला ।

पचाइन बल पक्खरै, थह रन थंभह काज ।

कक वंक वर कट्ट नह, चढ़ि चल्ल्यौ रनकाज ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—बल पक्खरै=अश्वारोही ताकत । थह=स्थल, स्थान । कक वक=आके ककाल, उत्तम-शरीर । कट्टनह=काटने के लिये ।

अर्थः—रणथंभोर के भूभाग के लिये वीर पंचायन ने अपनी अश्वारोही ताकत फैलाई । इधर उन वीर कंकालों (शरीर) को काटने के लिये यादव राज ने भी चढ़ाई की ।

घन घैरयौ रिनथंभ परि^१, लिखि दिल्ली परवान ।

तव जहव रा भानने, दिय कग्गद चहुआन ॥ १४ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—घनधेर गो=गान्धर्वो नन्ध गेरे हुन । परि-पर ।

अर्थः—यादव राजा भान ने एक परवाना दिल्ली में उपस्थित सामन्तो को दिया कि रणथभोर को बादलो की भाँति गन्तु गो ने घेर लिया है । पश्चान एक पत्र प. वीराज को भी (खट्टपुर की ओर) डूमी विषय मे लिखा ।

रा जहव वीराधि, वीर गुज्जह अनुसरयो ।

॥ हयदल पयदल गज-प्ररोहि रिन यमह ॥ अरयो ॥

धधे रा धधेल, चद ससिपालह वसिय ।

। ति. १-१ । अध लख डेलहि हिलोर, जोर गरुवत गसिय ॥

हम्मीर राव हाडा हठी, खीचीराव प्रसग दुह ।

ति. १८५ प्रारभ करै सभरि । धनी, जोरै वध खुमान सह ॥ १५ ॥

। ति. १८५ पा० ११, पा० १२ ।

शब्दार्थः—वीराधि=वीरों में श्रेष्ठ वीर । गुज्जह=गर्जना करता हुआ । अनुसरयो=पीछा किया । गज-अरोहि=हाथी पर चढ़ कर । अरयो=डटा । धधे=कार्य । रा=राजा । धधेल=धांधली करने वाला । जोर=शक्ति । गरुवत=मारी । गसिय=गाँठ ली, संगठित करली । दुह=दोनों । जोरै=जोड़े, एकत्रित करियेगा । वध=बधु । खुमान=खुमाण वशज, आहड़े ।

अर्थः—पत्र मे लिखा था कि श्रेष्ठ वीर यादव नरेश भान ने वीर गर्जना कर दुश्मनों का पीछा किया है और वह पैदल तथा अश्वारोही सेना साथ लिये हाथी पर सवार हो रणथभोर पर डट गया है । उधर शिशुपाल वरी राजा ने धांधली मचा कर अपनी अर्ध लक्ष सैन्य-सक्ति को संगठित कर जोर पकड़ा है । अतः हे सभरेश्वर । हम्मीरराव हठी हाडा, प्रसगराय खीची और सब खुमान वशज आहड़ों को एकत्रित करने का कार्य आप ही आरभ कर दीजिये (अर्थात् सामन्तों सहित आकर हमारी सहायता करिये) ।

दोहा

सुनि कभाद चर चितकै, तिथि साते चहुआन ।

समर सिंघ रावर दिसा, गुर जन मुक्यौ कान्ह ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—चर=दूत । चितकै=चितन करके । मुक्यौ=छोडा, खाना किया ।

अर्थ:—चाहुआन पृथ्वीराज दत्त द्वारा उस पत्र को सुनकर चिंतन करने लगा तथा सप्तमी के दिन से अपने गुरुजन कन्ह को रावल समर केशरी की ओर खाना किया।

वर पचाइन सवर सवर वंसी, सिसुपाल^१।
घर्यौ तिन रन थभ, सुवर जपे वर कालं ॥
भान^२ वीर पुक्कार, घाड़ आई दिल्लीवै।
अद्ध^३ अद्ध पहुंगे, सथ्य अद्धो^४ वर हवै ॥
जोगिन्दराव^५ जगह^६ थ्य^७ वर, महन रंभ^८ उपर^९ करन^{१०}।
कालंक राइ कपन विरद, तुम आओ सेना वरन^{११} ॥१७॥

शब्दार्थ:—सवर=सवल । दिल्लीवै=दिल्लीश्वर के पास । अद्ध अद्ध=ठीक आधी । हवै=अश्वारोही । उपर करन=सहायता करने को । कालंक=कलंक ।

अर्थ:—कन्ह ने समर केशरी से जाकर कहा कि वीर शिशुपाल के वंश में उत्पन्न सवल वीर पंचायन ने रणथंभोर घेर लिया है और वहां वीर कालं स्वरूप कहा जाता है । इसीलिये यादव राजा भान की पुकार सहायतार्थ दिल्लीपति के पास पहुँची है । पंगुराज की सैन्य-शक्ति से उसकी अश्वारोही सेना की शक्ति ठीक आधी है । अतः हे जोगिन्दराज उपाधिधारी रावल आप सेंसर के श्रेष्ठ बाहु स्वरूप हैं । आपका विरद-कलंक निवारक (कलक-नाशक) है । आप इस महान युद्ध में सहायता करने और शत्रु सेना को वश में (काबू में) करने के लिये अवश्य पधारें।

दोहा

चित्राणी चतुरंग सजि, वर रनथभ सु काज ।

महेद^१ सहेद^२ रावर^३ समर^४, आवन^५ वदि^६ प्रथिराज ॥१८॥

शब्दार्थ:—महेद=महेत । वदि=कहा ।

अर्थ:—हे चित्तौड़ेश्वर रावल समर ! रणथंभोर के लिये आप अपनी चतुरंगिणी सेना सजाइये । पृथ्वीराज ने भी स्वयं चढ़कर आने का संकेत किया है ।

चलत कन्ह चहुआन वर, कहि चतुरगी राज ।

तुम अगौ हम आड है, पावन मुनि पृथिराज ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—सधि=स्मृति ।

अर्थः—कन्ह चहुआन के प्रत्यावर्तन के समय चित्तौड पति ने कहा—हम तुम से पहले आयेगे, किन्तु पृथ्वीराज को भी आने की स्मृति दिला देना ।

पच कोस वर सट्टि अग, चीत्तौरह रनथभ ।

तुम अगौ हम आड है, महनरभ आरभ ॥ २० ॥

शब्दार्थः—अगौ=आगे, पहले ।

अर्थः—चित्तौड से रणथंभोर सीधे रास्ते से ६५ कोस पर ही है । अतः हम इस महान् युद्धारंभ के अवसर पर तुम्हारे से पहले ही आ जायेंगे ।

कवित्त

महन रभ आरभ, कन्ह चालत मत^१ मडिय ।

अट्ट दीह हम अग, राज तेरसि गृह-छडिय ॥

वर वसी सिसुपाल^२, गज्जी^३ लगिय नृप भान ।

धरती ववर नहताम^४, सेतमिसि देही दान ॥

अगृहन गृहन रिन यम मति, इह सु मित्र अगौ^५ पढन ।

कालक राइ कपन विरद, महन रभ बढ्यौ बढन ॥ २१ ॥

ग्रा० पा० १ पा० का० । २ सं० । ३ पा० । ४ भी० का० । ५ भी० ।

शब्दार्थः—मत=मत्रणा । मडिय=दी । धवर=धवल । ताम=उसकी । सेतमिसि=सहज मे । दान=कन्यादान । अगृहन=नहीं घेरा जाने लायक । अगौ=आ गया, आया । पढन=कहने की । बढन=बढ़ना ।

अर्थः—चलते समय रणथंभोर पर छिड़े हुए महान् युद्ध के लिये मत्रणा देता हुआ कन्ह रावलजी से कहने लगा—हे नरेश, मैं यहाँ के लिये रवाना हुआ, उससे आठ दिन पहले राजा पृथ्वीराज त्रयोदशी के दिन दिल्ली छोड़ शिकार के लिये खट्पुर चले गये थे, पीछे से श्रेष्ठ शिशुपाल वशी ने राजा भान को दवाना शुरू किया । यह यादव बलवान धवल (वृषभ) कहलाने योग्य है, किन्तु इस समय उसकी पृथ्वी

उससे छुटी हुई है। संभव है, आपत्ति भस्त होने से वह विपत्ती को सहज ही में कन्या दान कर दे। विपत्ती ने नहीं घेरे जाने योग्य दुर्ग रणथभोर को ले लेने का विचार कर लिया है। हे मित्र ! मैं आपसे यही कहने आया हूँ कि आप के विरुद्ध कलंक निवारक हैं और वहां महान युद्ध छिड़ गया है, इसलिये आपका आना आवश्यक है (अर्थात् निष्कलंक यादव को कलंक लगाकर, बलात् पुत्रीदान करने के कलंक से बचायें)।

सुनि कन्हा चहुआन, रीति आहुट्ट भेह कुल ।

सरन रक्खि कट्टइ न, मिले जो कोरि देव^१ बल ॥

संग्रामं हरखै न, सुवर खत्री वर धायौ ।

रन रक्खै रजपूत, छत्र छल छांह नवायौ ॥

द्विग रत्त बहुल^२ वंछै^३ सुवर, वेद धम्म वंध्यौ चवै^४ ।

कालंक राइ कप्पन विरद, किन्ति काज नव निधि^५ द्रवै ॥ २२ ॥

ग्रा० पा० १, ३ पा० का० । २ भी० पा० का० । ४, ५ पा० ।

शब्दार्थः—कट्टइ न=नहीं निकालते, नहीं त्यागते। कोरि=करोड़ों। संग्राम=युद्ध से। हरखै न=हतोत्साह। सुवर=सबल। खत्री=क्षत्रिय। वर=बल। धायौ=माग गया। छल छाह=छलकती हुई गहरी धाया। नवायौ=नमाकर, डाल कर। बहुल=विशेष। वंछै=चाहते हैं। वंध्यौ=बन्धन। चवै=चाहते हैं, मानते हैं। द्रवै=बहा देते हैं।

अर्थः—तब राजल ने कहा—हे कन्हा चहुआन ! हम आहड़ों के घर और कुल की रीति है कि शरण में आये हुए को करोड़ों देवताओं के द्वारा ताकत लगाने पर भी नहीं त्यागते। रणस्थल से जो सबल क्षत्रिय के बल से भाग कर हतोत्साह हो जाता है, ऐसे राजपुत्र को हम छत्र की गहरी छाया में शरण देकर युद्ध से बचा लेते हैं। जिसके नेत्र विशेष अरुण हों, ऐसे श्रेष्ठ वीर के हम इच्छुक हैं। वेद और धर्म के बन्धन को हम मानते हैं। हमारा यश कलंक-नाशक है। अतः हम कीर्ति के लिये नव निधियों को बहा देते हैं।

बोहा

तिय हजार तेरह तुरग, हत्थि मत्त वर तीन ।

मनि गन मुत्तिय माल दस, रक्खै कन्हा सुन्वीन ॥ २३ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

चक्कर खाते हुए कुम्भ रूपी नगर को हाथों के बलपर उन्होंने पकड़ लिया हो। उसी समय चाहुवान और चित्तौड़ पति की सेना ने चारों गिणाओं से शत्रुओं को घेर लिया। यह देख चदेरी पति (चदेले) ने उस दुर्ग को छोड़ कर दिल्लीश्वर का सामना किया।

दोहा

उत चपे चहुआन ने, इत चपे चित्रग।

मूदि साम अरि सम दरी, जनु चयौ सु मृदग ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—मूदि=रोक कर। साम=श्याम। सम=समान ही। दरी=दलते हुए, या दलित करके।

अर्थः—उधर से चाहुआन नरेश्वर ने और इधरसे चित्तौड़ पति ने दुश्मन का श्वास लेना मुश्किल कर इस प्रकार दबाया, जैसे मृदगी मृदग को दबाता है।

कवित्त

प्राची दिसि चहुआन, चह्यौ पन्धिम चतुरगी।

दुहू बीच रिनयभ, बीच अरि फौज सुरगी ॥

दहू सेन सम कत, नग मत्ता गज अगगी।

मनु राका रवि उदै, अस्न होते रथ भगी ॥

ससिपाल वीर बसी विमल, दुहुन बीच मन मेर दुअ।

खह मिलै खह खगह हर्यौ, चवै चन्द रवि दद दुअ ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—प्राची=पूर्व। चतुरगी=चित्तौड़ेश्वर। सम=समान। कत=स्वामी। नग=नग, पहाड़। मत्ता=मतवाला। अगगी=अग्रगण्य, अग्रगण्य। राका=चन्द्रमा। रथ भगी=रथ भाग। मेर=सुमेरु। खह=आकाश। खह=धूल। दद=दद, युद्ध।

अर्थः—प्राची दिशा से चौहान नरेश और पश्चिम दिशा से चित्तौड़ेश्वर बढ़े। इन दोनों के बीच रणयभौर और शत्रु की सुरगी सेना थी। दोनों की सेनाओं के (चौहानी और गुहलोती सेना के) समान ही स्वामी थे। इनमें एक पहाड़ स्वरूप व दूसरा मस्त हाथी के समान था। वे अपनी अपनी सेनाओं के अग्रगण्य थे। उसमें एक चन्द्रमा और दूसरा सूर्य के समान तेजस्वी था, किन्तु उन दोनों के बीच उज्जयल मन के सुमेरु तुल्य वीर शिशुपाल वशी के होने से वे उदय (उपस्थित)

होते हुए भी उनके रथ भाग अस्त हों गये हो ऐसे (अनुपस्थित से) दिखाई दिये। किन्तु कवि कहता है कि उस नभ-चुम्बित सुमेरु को (शिशुपाल वंशी) खड्ग द्वारा धूलि में मिलाते हुए शशि-सूर्य तुल्य दोनों राजा (पृथ्वीराज और समर) युद्ध में एक दूसरे को दिखाई देने लगे (चंदेले को कुचल कर वे एक दूसरे से आ मिले)।

अनल पंख अकुर्यौ, जुद्ध पंचाइन मंहुयौ।
इक सपंख खग वीय, पेट रन थंभ सु छड्यौ॥
पीठि पिंढ^१ पावार, सु वर हूऔ नख पंखं।
एक मुख वनवीर, धीर उभौ विय मुख॥
त्रिन्मान वंभ वर पुंछ करि^२, पुंछ^३ पाइ साधन समर।
दुह लोह कटि परिया रतें, समर मोह भूलै^४ अमर॥ ३०॥

प्रा० पा० १ का० । २ पा० का० । ३ का० मी ।

शब्दार्थः—अनल पख=एक प्रकार का पत्नी । अकुर्यौ=पैदा हुआ । खग वीय=खड्ग धारी । रनयम सुखड्यौ=रणयमोर को छोड़ने वाला भानुराय । पीठि=पीठ, पृष्ठ भाग । पावार=जैत्र प्रसार । पख=पक्ष, स्थान । मुख=अर्थ चोंच । त्रिन्मान=निर्वाण क्षत्रिय । वम=ब्रह्म क्षत्रिय (समर हैं कोई चालुक्य हो) । पु छ=पूछ । पुंछ पाइ=पहुँच पाये । परिया=उमड़ पडे । रतें=लीन होकर । अमर=देवता ।

अर्थः—पंचायन से युद्ध छिड़ा, उसमें व्यूह-रचना अनल पंख-पत्नी के रूप में की गई। एक खड्गधारी राजा (समर) पंख, रणथंभौर को छोड़ने वाला भानुराय पेट, प्रसार जैत्र पीठ और अग, श्रेष्ठ दुल्हा पृथ्वीराज नख, वनवीर और धीर अर्द्ध २ चंचु, निर्वाण और ब्रह्म क्षत्रिय पूंछ के स्थान पर हुए। इस तरह वे समर-साधन के मार्ग पर पहुँच पाये और दोनों ओर के योद्धा शस्त्र निकाल कर युद्ध में जूझ पडे। उस समय रावल समर पर देवतागण भी ऐसे मोहित हुए कि वे अपने आपको भूल गये।

उत वसी ससिपाल, इतै रुस्तम्म दुंद वल ।

वीच^१ समर रावर नरिंद, वीर^२ वीरन गाहरमल॥

उतै तेग उभमारि, इतै सिंगनि धरि वान ।

छडि निधक अरियान, उररि पारी परितान॥

रत्नगुंग अवर चिते रिपुन, हवि मुख रुख मुक्के नहीं ।

भर-सुभर-द्वार रक्खन सुवर, समर समर उम्भौ^३ पहीँ ॥ ३१ ॥

पा० पा० १, २ पा० का० भी० । ३, भी० ।

शब्दार्थः—दु द=दृढ़ । गाहरमल=गाढमल, मल्ल के समान दृढ़ । उम्भारि=उठाई । सिंगनि=कमान । धरि=धरा, चढाया । छडि=छोड़ा । निधरु=निर्मयता से । उररि=उमड़कर । परितान=परित्राण, बचाव, रक्षक, कवच । तु ग=उत्त ग । अवर=अवल । हवि=होमाग्नि । मुक्के=छोड़े, छोड़ा । सुभर-द्वार=अच्छे योद्धा वाला । पहीँ=निकट ।

अर्थः—समर विक्रम द्वारा युद्ध किये जाने पर एक तरफ से शिशुपाल वशी, दूसरी तरफ से द्वन्द्व बलधारी रूतमखा ने बढकर, धैर्यवान वीरों के बीच मल्ल तुल्य दृढ़ रहने वाले रावल समर नरेन्द्र को बीच में लेकर तलवारें उठाई । इधर से कमान पर वान चढाये गये और बढ बढकर निर्भीकता के साथ शत्रुओं पर छोड़े, जिससे धड़के की आवाज के साथ शत्रुओं के कवच टूट गये । उस समय रण में प्रमत्त उस वीर समर की ओर निर्वल शत्रुओं ने देखा, किन्तु उस वीर के मुख की आकृति ने हवि के समान अपने तेज को नहीं छोड़ा । वह श्रेष्ठ सामंत और बलशाली समर विक्रम युद्ध में शत्रुओं के निकट ही डटा रहा ।

समर^१ रत्त वर-समर^२, दिक्खि चहुआन कीय^३ बल ।

वाम मुखव आरोहि, नीर असि भल्ल मुखह भल ॥

सौ सामत छै मूर, सथ्य प्रियुराज^४ सु धायौ ।

सार कोट अरि जोट, खग खल खभ हलायौ ॥

जै जैत देत^५ जै जै करहि, देव वीर आनन्द बढायौ ।

तारुन्न तु ग तन तेज वर, असि पहार धरभर चढायौ ॥ ३२ ॥

पा० पा० १, २ का० पा० । ३ भी० । ४ का० । ५ भी० ।

शब्दार्थः—वर-समर=बल-समर, समर विक्रम । भल्ल=पकड़ी । भल=तेज । सार=लोहा । जोट=समान । देत=दानव । तारुन्न=तरुण या सूर्य ।

अर्थः—इस प्रकार समर विक्रम को युद्ध में जूझता देखकर चाहवान नरेश ने भी शक्ति दिवाई और चाये मुहाने की ओर बढा । तेजस्वी सुह वाले (पृथ्वीराज) ने पानीदार

तलवार पकड़ी । अपने एक सौ छः सामन्तों सहित बढ़कर लोहे की दीवार के समान वन स्तम्भ स्वरूप शत्रुओं को तलवार से हिला दिया । यह देख दानव जय जय कार करने लगे और देवताओं व वीरों (योद्धा या वाचन ही वीर) में आनन्द-वृद्धि हुई । उस (पृथ्वीराज) के ऊँचे शरीर से रण पहाड़, (रणथमोर) उसके भूभाग, तथा उसके सामन्तों में तेज और बल एक ही साथ छागया ।

दोहा

रा जहव रिनथंभ तजि, मिलिय राव प्रति मान ।

समर सिंह रावर सु प्रति, चरन चंपि चहुआन ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—मान=सम्मान पूर्वक ।

अर्थः—(इस प्रकार समरसिंह और पृथ्वीराज के हमले से जब शिशुपाल वंशी का व्यूह टूट गया तब) रण थमौर को छोड़ कर डटा हुआ यादव राजाभान, राजा पृथ्वीराज से सम्मान पूर्वक आकर मिला और चाहुआन नरेश पृथ्वीराज ने भी समर केसरी के चरण छूकर भेंट की (पृथ्वीराज का समर विक्रम के चरण छूने में शका होती है लेकिन एक तो वह उनके जामाता थे और दूसरे वह उम्र में भी बड़े थे । तीसरा कारण वे परम योगी और उच्च राजवंश के थे । इसलिये कोई शका नहीं रहती) ।

दिन धवलो धवली दिसा, धवल कध भारथ्य ।

समर सिंघ रावर मिल्यौ, चाहुआन समरथ्य ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—धवलो=उज्ज्वल । धवल=बलवान वृषभ ।

अर्थः—कवि कहता है—यह समय अति उत्तम था, जब उज्ज्वल दिवस और उज्ज्वल दिशाये थीं, उस समय जिन वृषभ समान वीरों के कन्धों पर युद्ध-भार था । ऐसे उन समर केसरी और बलवान चाहुआन नरेश का उत्तम ढग से मिलना हुआ ।

सद्धि फौज प्रथिराज बल, राज हव दिसि वाम ।

समर सिंध दच्छिन दिसा, चढि संग्राम सु काम ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—काम=लिये ।

अर्थः—(मिलने के पश्चात् व्यूह रचना की गई) सेना के मध्य भाग में अपने दल बल सहित राजा पृथ्वीराज, वाम पार्श्व में यादव राजा भान और दाहिने पार्श्व में रावल समर केसरी हुए और युद्ध के लिये बढे ।

कवित्त

दस क्रम्मन अरि ठेल, मुरिय पचाइन सेन ।

बीर छक्क उत्तरी, मुत्ति भिरि रन रत नैन ॥

सुरस पियौ प्रथिराज, प्रगटि अंखिन जल भलकिय ।

पी अधरा रस पीन, प्रात सौकी मुख जक्किय ॥

चहुआन सुवर सोरह परिग, समर सिंघ तेरह त्रिघट ।

ससिपाल बीर बंसी सुवर, सहस पंच लुथ्यय सुभट ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—दस=दसों दिशाएँ । क्रम्मन=चल पड़ी, विचलित हुई । ठेल=धकेल दिए । मुरिय=मुड़ गई, मोड़ दी । बीर=वीर रस । छक्क=झलकता हुआ । उत्तरी=उतर पड़ा । मुत्ति=मुक्ता रूप में । पी=पति । पीन=पिया । सौकी=सवति । जक्किय=चकित होकर देखा । तेरह त्रिघट=तीन कम तेरह (दस) । लुथ्यय=लोथें, शत्रु ।

अर्थः—दिशाओं को विचलित कर पृथ्वीराज ने शत्रु को धकेल दिया । जिससे पचायन की सेना भाग गई । भिड़ते समय विपत्ती पचायन के रक्त वर्ण नैत्रों द्वारा झलकता हुआ वीर हस उस समय अश्रु बिन्दु की तरह मुक्ता रूप में टपक पड़ा । उसी से पृथ्वीराज सन्तुष्ट हुआ । उस समय एक सेना दूसरी सेना की ओर इस तरह आश्चर्य युक्त होकर देखने लगी जैसे पति ने एक स्त्री का रात्रिको अधर रस-पान किया हो, उसे जान कर प्रात दूसरी सवति (स्त्री) उसके मुख को चकित दृष्टि से देखती है । उस युद्ध में चाहुआन के १६, समर केसरी के १० और वीर शिशुपाल वशी के ५ सहस्र उत्तम योद्धा धराशायी हुए ।

दोहा

निग्रह नर बद्धत त्रपति, अहि गवन्न सुख वान ।

पच अनी करि खेत चडि, खेत अरक चहुआन ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—निग्रह=पकड़ना । नर=शत्रु । बद्धत=सोच कर, इच्छा कर के । अहि-गवन्न=सर्प रूप में बटना । सुखवान=सुख प्रद, अच्छा । पचअनी=सेना का पाच भागों में विभाजित । खेत चडि=रण क्षेत्र में बढ़ा । अरक=अर्क, सूर्य ।

अर्थः—रण क्षेत्र के सूर्य स्वरूप राजा पृथ्वीराज ने शत्रु को पकड़ने के लिये सर्प व्यूह को ठीक मान कर अपनी सेना को उसी रूप में बढ़ाने का विचार कर उसे पाच भागों में विभक्त किया और रणक्षेत्र में आगे बढ़ा ।

कवित्त

जिहि^१ गुन प्रगटत पिंड, सोई सिंघार सूर भय^२ ।

अत्त कुसल^३ तन जान लम्भ किन्तीति सुभट लय^४ ॥

जिहि मरन्न मन सूर, मरन जेही जसु^५ उत्तरि ।

पच पंच पथ गोअ, फिर न एकठ्ठे नर नरि ॥

घरियार रूप कुट्टार^६ घट, तंत मुक्कि लग्गी नदिय ।

सिंचिय किन्ती तर अमिय मे, धूँअ^७ वाव^८ नन^९ लगन दिय ॥३८॥

प्रा० पा० १ से ५, ७ से ९ भों० । ६ का० ।

शब्दार्थ—गुन=फल, कार्य । पिंड=तन । सिंघार=सहार । भय=हुए, हुआ । अत्त=मृत्यु । लम्भ=प्राप्त । लय=की । मरन्न मन=निर्जीव चित्त । जसु=यश । उत्तरि=उतर गया, नष्ट हो गया । पच=पांचों (तत्व) । गोअ=गया, लुप्त । एकठ्ठे=एकत्रित । घरियार=घडियाल, । कुट्टार घट=शरीर का शत्रु, यमराज । तंत=तंतु । मुक्कि लग्गी=फैलाए हुए, छोड़े हुए । नदिय=संसार रूपी नदी । तर=तर, वृत्त । धूँअ=धूप । वाव=पवन ।

अर्थ—जिसके लिए (युद्ध के साधन के लिए) उन वीरों का शरीर उत्पन्न हुआ था, उसी कार्य में उन वहादुरों का शरीर काम आया । ऐसी मृत्यु को उन्होंने कुशल समझी, क्योंकि ऐसा करके ही उन वीरों ने कीर्ति प्राप्त की थी । उनकी मृत्यु, मृत्यु नहीं थी अपितु अमर कीर्ति थी । मरे हुए तो उन्हें मानना चाहिए जिनका मन युद्ध समय में निर्जीव हो गया हो या जिनका यश नष्ट हो गया हो । पांचों तत्व एक दिन पांचों मार्ग में से निकल कर लुप्त होने के लिये हैं और यह साथी समूह फिर एकत्रित होने का नहीं है । संसार रूपी नदी में यमराज रूपी मगर (घडियाल) ने (प्राणियों को फँसाने के लिए) अपना जाल फैला रखा है । अतः मनुष्य को चाहिए कि कीर्ति रूपी वृत्त को अमृत रस से सींचते रहें और उसे धूप और पवन से वचाए रखे ।

दोहा

वाल कुँवर घरियारि घरि, विय तरवर वरछीह ।

जिम जिम लग्गे तिम अरिय, ढाहन ढाहें ढीह ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—वाल कुँवर=कुमारी वाला, हसावती । घरियारि घरि=यम रूपी मगर की घड़ी, अंतिम घटिका । विय=दोनों के लिए । ढाहन=खत्म करने को । ढाहें=ग्रस्त हो गया । ढीह=दिन ।

अर्थ:—वह बालिका (हंसावती) वीरो के लिये अन्तिम घड़ी के समान थी, किन्तु पृथ्वीराज के लिये वृत्त के समान (हरी भरी) और विपत्ती (पचायन) के लिये बरछी की भांति चुभने वाली थी। किसी प्रकार दोनों विपत्ती एक दूसरे को समाप्त करने में लगे थे। इतने में वह दिन भी समाप्त हो गया।

निसी वीर^१ कट्टिय समर-काल पद अरि कट्ट^२ ।

होत प्रात चित्र ग पहु, चक्रव्यूह रचि ठट्ट^३ ॥ ४० ॥

प्रा० पा० १ सं० । २, ३ का० पा० ।

शब्दार्थ:—वीर=विपत्ती पचायन । समर-काल=समर केसरी रूपी काल । चित्रग पहु=चित्तौड़े-श्वर । चक्रव्यूह=चक्रव्यूह । ठट्ट=अड़ गये, डट गये ।

अर्थ:—वह रात्रि पचायन और उसके साथियों ने समर केसरी रूपी काल के फन्दे से बच कर बितादी, परन्तु प्रात काल होते ही वह चित्तौड़ेश्वर पुन चक्रव्यूह रच कर आ डटा ।

कवित्त

समर सिंघ रावर नरिंद, सैन^१ कुण्डल अरि घेरिय ।

एक २ असवार, बीच बिच पाइक फेरिय ॥

मद सरक्क तिन अगग, बीच सिल्लार सु भीरह ।

गोरधार विहार, सोर छुट्टे कर तीरह ॥

रन उदै उदै वर अरुन हुआ, दूह लोह कड्डी विभर ।

जल उकति लोह हिल्लोर ही, कमल हस नचै जु^२ सर ॥ ४१ ॥

प्रा० पा० १ भी० का० पा० । २ का० ।

शब्दार्थ:—पाइक=पैदल । मद सरक्क=मद में धके हुए (हाथी) । सिल्लार=सिपहसालार, सेना । गोरधार=कुण्डलाकृति व्यूह रचना या गोलदाज । सोर=(तीरों की सनसनाती) आवाज । रन उदै=युद्ध क्षेत्र का सूर्य (रावल समर केसरी) । अरुन=सूर्य । लोह=लोहित, खड्ग और अश्विभां । कड्डी=फैलाई, प्रकट की, । जल=जलांतर (नरधारी सेना और समुद्र) । उकति=युक्ति । हिल्लोर ही=लहराने लगे । हम=प्राणियों के, सूर्य । सर=मुण्ड, सोवर ।

अर्थ:—रावल पद धारियों के राजा समर केसरी ने अपनी सेना को कुण्डलाकार व्यूह बद्ध कर शत्रु को घेरा । जिसमें एक २ सवार और एक २ पैदल का बीच २ में

रखा । मदनमत्त हाथी उनके आगे थे और बीच में सैनिक समूह था । इस प्रकार सेना के पंक्ति बद्ध होने पर गोलदाज या आग्नेयास्त्रधारी (गोलंदाज) आगे बढ़े । तीरंदाजों ने सनसनाते हुए तीर चलाये । उस समय युद्ध-क्षेत्र का सूर्य, समर विक्रम और साक्षात् सूर्य दोनों एक साथ ही उदय हुए । उन दोनों ने क्रमशः तलवार और लालिमा प्रगट की और ऊपर उठे । समर की लोहित (खड्ग) जल पूर्ण सिन्धु (नूरधारी सेना) में और सूर्य की अरुणिमां सरोवर में लहराने लगी, जिससे प्राणियों के मुख-कमल वहाँ (युद्ध सिन्धु और समुद्र में) नृत्य कर तैरने लगे ।

दोहा

समरसिंघ दिखवत सुवर, उपारे रन भान ।

दइ समान दुज्जन दवन, तिरछौ परि चहुआन ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—दिखवत=देखा गया । सुवर=श्रेष्ठ । उपारे=उठाए गए । दइ=दी । दुज्जन दवन=शत्रुओं का दमन करने में । परि=होकर ।

अर्थः—इस युद्ध में समर केसरी की श्रेष्ठता और रण चातुर्य का प्रदर्शन हुआ और घायल अवस्था में यादव राजा भान उठाया गया । चाहुआन नरेश ने भी तिरछे हो कर शत्रु का समान रूप से दमन किया ।

कवित्त

वर वसी ससिपाल, समर रावर रन जुद्धे ।

अमर वध चित्रग, वीर पंचाइन वद्धे ॥

सवै सत्य सामन्त, खेत दोहयौ विरुभाइय ।

गुरिन गयौ अरि ग्रह न, लख नन लुथिय न पाइय ॥

प्रथिराज वीर जोर्गिद न्रप, दिष्ट देव अंकुरि रहिय ।

बंधनह-वत्त वद्धन दिवन, दिष्ट कूट हसि हसि कहिय ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—वध=वन्द्य, मार । वद्धे=वध किया, नाश किया । दोहयौ=खोजा । विरुभाइय=उलभ कर । गुरिन=लुटक कर । अरि ग्रह न=शत्रु द्वारा पकड़ा नहीं गया । लख=मिला, प्राप्त । लुथिय=लोथ, शव । अंकुरि रहिय=देखती ही (उठी हुई ही) रह गई । बंधनह-वत्त=पकड़ लेने वाले वद्धन दिवन=मार देने वाले । दिष्टकूट=कूट काव्य ।

अर्थः—जिस समय शिशुपाल वंशज और समर रावल का युद्ध में सामना हुआ उस समय चित्तौड़ेश्वर समर के भ्राता अमर ने विपत्ती घेर पंचायन को रणक्षेत्र में नष्ट कर दिया। सब साथियों और सामंतों ने उलझ कर रण क्षेत्र में उम मृत शत्रु (पंचायन) को खोजा, किन्तु वह न तो गिरा हुआ दिखाई दिया और न वह शत्रु द्वारा पकड़ा ही गया एवं उसका शव भी प्राप्त नहीं हुआ। उसको देखने के लिये वीर पृथ्वीराज, योगेन्द्र उपाधिवारी समर और देवताओं की दृष्टि टकटकी लगाये रही। उसको (पंचायन को) मारने की इच्छा रखने वाले और मार देने वाले उसके लुप्त होजाने पर (सशरीर स्वर्ग में जाने पर) हँस २ कर यही कहने लगे कि इस वीर की मृत्यु तो दृष्टि कूट काव्य की तरह हो गई है (दृष्टि कूट काव्य का ज्ञान दुसह है)। इसीलिये लुप्त हो जाने पर पंचायन की मृत्यु को दृष्टि कूट कहा गया।

लुटि लच्छि चित्रग, राज रिन थभ उवारे ।

खेत दु डि चहुआन, कन्ह चहुआन उपारे ॥

उभै घाइ वर अस्सु, घाइ आहुट्ट अठोमिय ।

पच घाइ हुसैन, खान चौडोल घालि लिय ॥

प्रथिराज वीर वीरग बलि, निसि सपनतर अद्ध पहि ।

या गति जागि दिखलै^१ त्रपति, तबह कन्ह जल पान^२ लहि ॥ ४४ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ भी० ।

शब्दार्थः—लच्छि=लक्ष्मी । राज=पृथ्वीराज के । अस्सु=अश्व, घोड़े । आहुट्ट=आहड़े, रावल समर केसरी । अठोमिय=आठ हुए, आठ लगे । घालि लिय=उठा लिया । वीर वीरग=वीरों का शिरोमणि । अद्ध पहि=अर्ध रात्रि होने पर । या गति=इस विषय को । तबह=तब तक । लहि=लिया, किया ।

अर्थः—युद्ध के बाद चित्तौड़पति ने शत्रु की लक्ष्मी का अपहरण किया और पृथ्वीराज के दुर्ग रणथंभौर को बचाया। रण क्षेत्र में खोज कर पृथ्वीराज ने काका कन्ह को उठाया। आहड़े नरेश रावल समर के आठ और उसके घोड़ों के दो घाव लगे। हुसैन के (मीर हुसैन या गाजी हुसैन के) पांच घाव लगे और वह डोले में उठाया गया। अर्ध रात्रि में विश्राम के समय पृथ्वीराज को स्वप्न आया। जिसके विषय में प्रातःकाल जाग कर राजा पृथ्वीराज विचार करने लगा। इतने में कन्ह भी सचेत हुआ, और जल पान करने लग।

कवित्त

हस सुगति माननी, चंद जामिनि प्रति घट्टी ।
 इक तरंग सुंदरि सुचंग, सुभति^१ हँस^२-नयन प्रगट्टी ॥
 हंस कला अवतरी, कुमुद वर फुल्लिस-मथ्यै ।
 एक चित सोइ वाल, मीत संकर अस रथ्यै ॥
 तेहि वाल संगमे पुहुप^३ लिय, वरन वीर सं गति जु वह ।
 जाप्रत्त देवि बोली न कछु, नवह देव नन मानवह ॥ ४५ ॥

ग्रा० पा० १ भी० का० । २ पा० । ३ भी० का० पा० ।

शब्दार्थः—जामिनि प्रति=उस रात्रि को । घट्टी=घटित हुई, दीख पड़ी । इक तरंग=एक ही विचार तरंग । सुचंग=सुन्दर, श्रेष्ठ । सुभति=सुशोभित, मनी प्रकाश । हस-नयन=पुलकित नयन । हस=सूर्य, भानुराय । कुमुद=कुमोदिनी । मथ्यै=ऊपर से, प्रगट में । चित्त=चित्तन किया । मीत संकर=शकर की मैत्री, (शिव प्रिया) गौरी । अस=उस । रथ्यै=अर्थ के लिये । स=सम, समक्ष । गति=चली आई ।

अर्थः—स्वप्न मे राजा को एक बाला दिखाई दी, उसकी गति श्रेष्ठ हस के समान थी । वह मान प्रिय थी, रात्रि के समय वह चंद्रमा के समान पृथ्वीराज के सामने आई । वह सुन्दर विचार वाली एक सुन्दरी थी । देखने के समय उसके नैत्र पुलकित थे । वह हस की (भानुराय या सूर्य की) कला लेकर उत्पन्न हुई और कुमोदिनी के समान ऊपर से (प्रत्यक्ष में) प्रफुल्ल थी । उस बाला ने विचार कर शिव प्रिया (गौरी) से एक ही बात (पृथ्वीराज की प्राप्ति) की याचना की थी । वह अन्य बालाओं सहित पुष्प लिये हुए वीर (पृथ्वीराज) को वरण करने के लिए समक्ष आई ; किंतु राजा के जाग कर देखने पर वह कुछ न बोली (लुप्त हो गई) । वह न तो देवागना थी और न मानवी ही थी, (अर्थात् वह हंसावती) । वह तो एक अमूर्त बाला थी ।

कहि सुपनंतर नृपति, सुवह श्रोतान बढ़ाड्य ।
 तव लगि भान नरिंद वीर दुजराज पठाड्य ॥
 वर दुजराज पठाय, रतन उर कीनी आपी^४ ।
 तिथ पचम रवि भोम, लगन प्रथिराज सु थपी ॥

कमल हु सरोज किन्नौ कमल^२, किति लम्भी दुज्जन बहिय ।

तप तेज भान मध्यान ज्यौ, तिन चौहान चढह कहिय ॥ ४६ ॥

प्रा० पा० १ पा० भी० । २ पा० ।

शब्दार्थः—बढाइय=उत्साहित किए । वर=दुलहा (पृथ्वीराज) । रतन=रत्न (हसावती) । उर कीनी=हृदय में स्थान दिया । अर्प्यी=अर्पित । भोम-लगन=मांगलिक लग्न । थप्पी=निश्चय किया । कमलहु=कमला रूप हसावती । सरोज=कमल (पृथ्वीराज रूपी कमल पुष्प) । किन्नौ कमल=मिर पर धारण किया । किति=कीति । लम्भी=प्राप्त की । दुज्जन=दुर्जन । बहिय=विचलित किये, चला दिए । भान=मानु, सूर्य ।

अर्थः—प्रातः काल होने पर राजा ने स्वर्ण की वात श्रोताओं को कह कर उत्साहित किया । इतने में वीर यादव राजा भान ने पुरोहित को कुमारी के सम्बन्ध के लिए श्रीफल लेकर भेजा । पृथ्वीराज ने भी अपने पुरोहित को भानुराय के पास भेजा और यह मांगलिक लग्न पंचमी रविवार को करने का निश्चय कर भानुराय द्वारा अर्पित रत्न (हंसावती) को हृदय में स्थान दिया । कमला तुल्य हसावती ने पृथ्वीराज को जिसने कि शत्रु को पराजित कर यश प्राप्त किया था, अपने सिर का सरोज (कमल पुष्प) बनाया । यह देख कवि चद ने उस प्रतापी चाहुआन नरेश को मध्याह्न के सूर्य की उपमा दी ।

वर पचाइन समर, दंड मुक्किय वर मुक्किय ।

मत्थि सेन सागर^१ समूह, रत्त^२ कित्ती फल रुक्किय ॥

लच्छि भाग चहुआन, हथ्य हसावति लद्धिय ।

अमृत भाग चित्रग, सेन हालाहल सद्धिय ॥

बारुनी वीर अस्मिय सु भर, अरिन पाइ जस रतन लिय ।

मह महन रग हथ्यह कपट, सिंभ सीस वर आप लिय ॥ ४७ ॥

प्रा० पा० १ का० पा० भी० । २ पा० का० ।

शब्दार्थः—दड=मथन दड । मुक्किय=छोड़ा । वर=वल । मुक्किय=प्रदर्शित किया । रुक्किय=रुका, रूक गया । लच्छि=लक्ष्मी रूपी । भाग=विस्वा । हालाहल=जहर । अस्मिय=तलवार । भर=भड़ी । अरिन

पाइ=शत्रुओं को छका कर । जस=जैसे । मह महने=महान से महान । रंभ=रभा, अप्सरा । हथह कमट=बार करने में छत्र कुशल, हस्तकुशल । सिम=शंभू, शिव । अप्प=स्वय, आप ।

अर्थ:—रावल समर केसरी ने बल प्रदर्शित कर समुद्र के समान विशाल विपद्दी सेना और पचायन का मथन कर (नष्ट कर) दिया और उस कीर्ति रत्न ने फल की हृच्छा कर सेना का संहार किया, जिससे चाहुआन नरेश के हाथों में लक्ष्मी रूपी हंसावती, चित्तौडेश्वर को अनुकरण ख्याति रूपी अमृत, सेना को युद्ध साधन रूपी हलाहल और महान से महान हस्त कौशल योद्धाओं को रभा (अप्सराएँ) प्राप्त हुई, शत्रुओं को खड्ग रूपी वारुणी पिलाकर (छकाकर) ही उन्होंने ये रत्न प्राप्त किए और युद्ध स्थल में आकर शत्रु ने श्रेष्ठ वीरों के मुख प्राप्त किये ।

दूसासन अग में, राज-विहंगम गति कीनी ।

मध्य देश मालव नरिंद, हंस^१ हंसध्वज भीनी ॥

नीलध्वज कर धरिग, विप्र वंदन संपन्नौ ।

नालि केल तरु फूल, अनंत^२ सौनह सुभ किन्नौ ॥

सत पत्र लगन लम्भह भरिय, धरिय अट्ट तेरह तिनह ।

रन थंभ सेन सचरि नपति, करिय अवधि ता करि रनह ॥ ४८ ॥

प्रा० पा० १ मी० का० । २ का० पा० ।

शब्दार्थ:—दूसासन=दो शासन शक्तियाँ (चढेले और गाही योद्धा) । अग में=अपनाई, युद्ध ठाना । राज-विहंगम=विहगराज, हसरज, मानुगय (यों तो विहगराज गरुड को कहते हैं पर पक्षियों में हंस भी मुख्य है) । हस=हसिनी, हंसावती । हसध्वज=जिसकी पताका में सूर्य का चिन्ह है । भीनी=प्रेम में सन गई । नीलध्वज=हरित पताका (प्रसन्नता की पताका या मांगलिक हरी दुर्वादि) । सौनह=शकुन । सुभ किन्नौ=मांगलिक किये । सत=सच्चा । लम्भह=लाम के चोगडिये । ता=वह ।

अर्थ:—दो शासन शक्तियाँ चढेले और शाही योद्धाओं से युद्ध ठान कर पृथ्वीराज ने यादव हंसराय (भानुराय) को मुक्त किया (बचाया) । उस मध्य देशीय मालवेश यादवमान की कुमारी हंस (हंसावती) भी जिसकी पताका में सूर्य का चिन्ह है के प्रेम में सन गई । तब हरित दुर्वा की पताका (लग्न पत्रिका) हाथ में लेकर यादव राज का पुरोहित वर की वन्दना करने के लिये आया और श्रीफल, तरु-पुष्प भेंट कर मांगलिक शकुन निकाले । सच्ची लगन का लग्न पत्र आठ घड़ी तेरह पल जाने

पर लाभ का चोगडिया देख कर भेट किया। तब युद्ध के बाद रणथम्भौर दुर्ग में पृथ्वीराज ने ससैन्य प्रवेश कर लग्न की विधि पूरी की (अर्थात् शादी की)।

दोहा

आगम वीर वसत कौ, रन जित्ते जुधवान ।

बर हसावति सुदरी, चलि व्याहे चहुआन ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—जुधवान=युद्ध करने वाले योद्धा ।

अर्थः—वसतागम होने पर वीर योद्धाओं ने विजय प्राप्त की और बाद में हंसावती सुदरी से राजा ने पाणि ग्रहण किया ।

गाथा

रग सुरग सुदीह, ज्यों कुजनि मेलथ सब्ब ।

बयरुख मुख अकुरिय, सा मिलथ बकुरी मुन्छ ॥ ५० ॥

शब्दार्थः—कुजनि=कुंज, लता भवन । मेलथ=मेल । सब्ब=सब । बयरुख=बयरुख पताका ।

अर्थः—जैसे वसत के आगमन से ही लता भवन में अनेक प्रकार के पुष्पों का मेल हो गया, वैसे ही वह मांगलिक दिन विविध वस्त्राभूषणों से शोभित हो गया । उस समय पृथ्वीराज के मुख पर भ्रुवों से मिली हुई मूँछें पताका के समान दीख पड़ी ।

दोहा

मुन्छ रवन्निय राज सुख, बर वधिग सुरतान ।

तिय दिननि आवन लगन, आय सगध पुरान ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—रवन्निय=रमन करने वाली । तिय=तान । आवन लगन=लगन की अवधि । आय=आगई पहुँच गई । सगध=सुगंध । पुरान=पूर्व ख्याति ।

अर्थः—राजा के मुख पर रमण करने वाली मूँछों से ज्ञात होता था कि इस श्रेष्ठ वीर ने सुलतान को बंधा है यह पूर्व-ख्याति लग्न के तीन दिनों में ही हंसावती के पास जा पहुँची ।

श्रवन रवन अरु सिख भवन, पवन त्रिविध तन लग्न ।

वापी कृप तडाग^१ वृख, विधि व्रतन कवि लग्न ॥ ५२ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—रवन=रमणी । वृख=वृक्ष ।

अर्थः—उस रमणी के शिञ्जागृह तुल्य कानों द्वारा पृथ्वीराज की प्रशंसा (श्रोतानुराग) के त्रिविध (शीतल, मंद और सुगन्धित) पवन ने उसके शरीर को स्पर्श किया । कवि ने इसका वर्णन क्रमशः इस प्रकार किया है—उसकी शीतलता वापी-रूप के जल के समान, मदता तालाव की मंद मंद चलने वाली लहरों के समान और सुगन्धि वृक्षों की सुरभि के समान थी ।

सा सुन्दरि हंसावती, सुनि श्रोतान सुरुक्ख ।

वर दिघानन मानियै, वेला लगि गवक्ख ॥ ५३ ॥

शब्दार्थः—सा=वह । श्रोतान=श्रोतानुराग । रुक्ख=इच्छा । वर=दूल्हा । दिघानन=दृष्ट्यानुराग, देखते समय । वेला=लतिका ।

अर्थः—पृथ्वीराज का यशगान सुन कर सुन्दरी हंसावती में श्रोतानुराग उत्पन्न हो गया था । इसके पश्चात् उसके (पृथ्वीराज के) वर रूप में आने पर प्रत्यक्ष-दर्शन (दृष्ट्यानुराग) के लिए वह झरोखे के पास आकर (स्वर्णिम) लतिका के समान उससे (झरोखे से) लग गई ।

सुनि आयौ चहुआन, अप गुरुजन बंध्यौ जानि ।

तव मति सुन्दरि चितवै, भेदक गोख वखानि^१ ॥ ५४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—अप=आपको, अपने को । बंध्यौ=अधीन । मति=बुद्धि से । चितवै=ध्यान पूर्वक देखा । भेदक=भेद से, वहाने से । गोख=गवाक्ष झरोखा । वखानि=प्रशंसा करती हुई ।

अर्थः—चाहुआन नरेश का आगमन सुन कर, अपने को गुरुजनों के अधीन समझ कर, उस सुन्दरि ने बुद्धि द्वारा गवाक्ष रचना की प्रशंसा के वहाने से पृथ्वीराज को झरोखे से देखा ।

कवित्त

पथ वाल पिय मखि^१, सुभ्रित विंटिय^२ सु राजै ।

मनौ चद उडगन विचाल, चन्द^३ मेरह चढ़ि भाजै ॥

सुनिय श्रवन दै सैन, अलिन अलि मैन सरोजं ।

रति मच्छर मति काम, जानि अच्छरि^४ सुर साजं ॥

धावत वेस अकुरित वपु, वसि मैसव तिन वेस धुरि ।

श्रोतान सुख दिष्टान धनि, यह कहि चलि सैमव बहुरि ॥ ५५ ॥

प्रा० पा० १, २ का० । ३ भी० पा० का० । ४ का० ।

शब्दार्थः—भरि=देखा । मुभित=थेठ दाभियां । निंदीय=घिरी हुई । राजे=गुशोभित । प्रिवाल=बीच में । 'चन्द'=रुचिचन्द । मेरह=समेरु । भाजे=भाजे, सुशोभित । दै गैन=मकेत करके । अलिन=सखियों द्वारा । रति=प्रेम । मच्छर=मस्ती । अन्धरि=अपरा तुल्य (हसावती) । सो=समान । ज=जिसे । धावत=जाती हुई । वैस=थेठता । वेस=अवस्था । धुरि=निश्चय । धनि=धन्य । बहुरि=पुष्कर ।

अर्थः—कवि कहता है—प्रीतम की राह को झरोखे से देखती हुई वह वाला दासियों से घिरी हुई ऐसी शोभित थी, मानों चन्द्रमा नक्षत्र माला के बीच सुमेरु पर्वत पर चढ़ा हुआ सुशोभित हो । राजकुमारी ने सखियों के साकेतिक वचनों से दुलहे के बारे में (पृथ्वीराज के), सुना था कि वह भ्रमर, कामदेव और कमल के समान है, तथा प्रेम की मस्ती से भरा हुआ है एव काम में जिसकी मति है, किन्तु आसरा-तुल्य कुमारी ने उसे देखकर देवतुल्य माना । उस वाला के शरीर में बसी हुई शैशवावस्था यौवन के अकुरित होने से विदा होने लगी, तब वह मुड़कर यह कहती हुई चलती बनी कि इस वाला के श्रोतानुराग के सुख और दृष्ट्यानुराग का धन्य है ।

दोहा

प्रथम वत्त श्रोतान सुनि, सुख पै दिखहिस लोइ ।

सच्च वात भूठी चवै, तव जिय सुख न होइ ॥ ५६ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—दिखहिस=देखे जाते हैं । चवै=रुहने पर ।

अर्थः—कवि कहता है—कानों से सुनी हुई बात से ही मनुष्य पहले प्रसन्न दीख पड़ता है किन्तु यह भी सत्य है कि असत्य बात कह देने से श्रोता के प्राण उससे विशेष दुःख पाते हैं (अर्थात् हम्मावती ने जैसे गुण सुने, वैसाही पृथ्वीराज को पाया)।

सुनि श्रोतान सु मन्निचै, दिखि दिष्टान सचीय ।

बीज चन्द प्रन्न जिम, बधै कला मनि जीय ॥ ५७ ॥

शब्दार्थः—सचीय=सत्य । मनि जीय=मन में मानकर, मन को सतोष होने पर ।

अर्थः—किन्तु श्रोतानुराग प्राप्त कर जो बात ठीक समझी थी, वह देखने के द्वारा हसावती ने वास्तव-में सत्य पायी । अतएव उसके द्वितीया के चन्द्रमा के समान मुख पर मन की सन्तुष्टि के कारण कला-वृद्धि हुई और वह पूर्ण चन्द्रमा के समान विकसित हो गया ।

वर वेहरि दिक्खि नृपति, गौ नृप त्रिप वर थान ।

बालु सुअंवर काज कौ, वर वज्जै नीसान ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—वेहरि=वैर, स्त्री, हसावती । सुअंवर=स्वयंवर ।

अर्थः—राजा ने भी सुन्दरी को देखा और वह अपने विश्राम-स्थल (जनवासे) पर पहुँचा । बाला के स्वयंवर के लिये श्रेष्ठ नक्कारे वजने लगे ।

आभूषण भूषण नृपति, वैसंधि कहिन कविंद ।

कवि व्रनन इह लगि त्रिय, ज्यौं वूढत लघु चन्द ॥ ५९ ॥

शब्दार्थः—आभूषण=भूषण । भूषण=भूषित । कहिन=कहो । वूढत=बढता है ।

अर्थः—राजा ने कवि से कहा—हे कवि । आभूषणों से विभूषित बाला की वय-संधि का वर्णन कर के कहो । तब कवि ने कहा कि वह तो ऐसी है, जैसे बाल चन्द्रमा वृद्धि प्राप्त करता है ।

कवित्त

वर भूषण तजि बाल, सुवर मज्जन आरभिय ।

सोइ छवि वर दिक्खनह, कोटि ओपम पारंभिय ॥

वर सैसव वर चंपि, कपि चिहु कोद भूपायौ ।

सो ओपम कवि चन्द, जौन्ह वूढत न लधायौ ॥

बालपन वीरवर मित्र पन, रवि ससि करि अंजुरि भरिय ।

वय बाल उव्रीचन प्रीति जल, सैसव तें हरई करिय ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—मज्जन=मंजन । दिक्खनह=देखने वाली, अतरंग सखियों । ओपम=उपमा । आरभिय=प्रारम्भ, शुरु को । चिहु कोद=चारों ओर । भूपायौ=भेषने लगा । जौन्ह=जिसने, जिसका । लधायौ=

सोज सजा । वीरवर=श्रेष्ठ वीर पृथ्वीराज । भिरगन=प्रेम । पञ्चरि गरिय=अञ्जलि देनी । उनीनन=उलीच नन, सींच कर । हर्गई=हरीमरी । करिय=सी ।

अर्थः—अच्छे भूपणों को उतार कर वाला ने उत्तम ढंग से मंजन करना शुरू किया । उस समय उसकी अतरंग सवियों ने उसके अंगों को देव कर करोड़ों उपमायें देनी शुरू की । यौवन के सामने उस वाला का शिशुत्व दब कर लज्जा अनुभव कर रहा था । उसकी उपमा की खोज में कविचन्द्र ने विचारों में गहरे गोते लगाये, फिर भी उपयुक्त उपमा नहीं खोज पाया । वाला ने वीर श्रेष्ठ पृथ्वीराज को सूर्य और उसके प्रति प्रेम को चन्द्र की भांति (वृद्धि पाने वाला) बना कर बाल्यावस्था को अञ्जलि दे दी । प्रीति-रूपी जल से सींचकर उस वाला ने शिशुत्व को हरा भरा कर दिया अर्थात् शिशुत्व से यौवनत्व को प्राप्ति कर लिया ।

वर सैसव अच्छर नहीं, जोवन जल वरमै न ।

वाल घरी घरियार ज्यौ, नेह नीर बुडिनैन ॥ ६१ ॥

शब्दार्थः—अच्छर=अक्षरशः । वरमै=अभिहित होना, बूबना । बुडि=बूब गया ।

अर्थ — उसमें शिशुत्व वास्तव में नहीं था, न वह यौवन रूपी जल में ही डूबी हुई थी । उस वाला के नैत्र तो जल-घटिका तुल्य थे, जो स्नेह रूपी जल में डूब कर अपने प्रेम का परिचय देते थे ।

दोहा

वदन वर आयौ नृपति, तोरण संभरि वार^१ ।

प्रीति पुरातन जानिके, कामिनि^२ पृजति^३ मार ॥ ६२ ॥

प्रा० पा० १ भी० का० । २ पा० । ३ का० ।

शब्दार्थः—वार=द्वार पर । मार=कामदेव ।

अर्थः—तोरण-वदन करने के लिए सभरी नरेश पृथ्वीराज द्वार पर पहुँचा । उस समय सुन्दरियों द्वारा उसका स्वागत किया गया, माना पुरातन प्रीति के कारण ही वे कामिनियाँ काम को प्रज रही हों (काम के साथ ससर्ग रखने ही रे कामिनियाँ नामकरण हुआ) ।

कवित्त

वेदि सुवर चहुआन, मंम ग्रह राज^१ सुलिनौ ।
 बाल रूप अवलोकि, महुर महुरं रस पिन्नौ ॥
 द्विग सू^२ द्विग संमुहे, पीय^३ उमगे द्विग ओरन ।
 सो ओपम प्रथिराज, चन्द ज्यौ चन्द चकोरन ॥
 नव भवर पिट्ट वर कमल मे, कै मकरंद मुलावहीं ।
 आनंद उगति मगल अभिष, सो कवि वरनन गावहीं ॥ ६३ ॥
 ग्रा० पा० १ पा० भी० का० । २, ३ का० ।

शब्दार्थः—राज=यादव राजा । मंम=मैं, मंडप गृह में । महुर महुरं=मधुर २ । समुहे=सामने, मिले । पीय=पीकर । उमगे=उमड़ पड़े । ओरन=और भी, ओर, तरफ । पिट्ट=प्रवेश कर, प्रविष्ट कर । मकरंद=रस । आनन्द=हर्ष । उगति=उक्ति । वरनन=वर्णन । गावहीं=कह सकता है ।

अर्थः—दुल्हे राजा चाहुआन नरेश को स्वागत पूर्वक मंडप-गृह में यादव राजा ले गया । वहा बालिका (वधू) का रूप देखा और एक दूसरे के सामने होते ही मधुर रस उत्पन्न हो गया । नैत्र परस्पर मिलते ही उक्त रस का पान करने के लिये एक दूसरे के हग और भी अधिक आतुर होगय । उस समय पृथ्वीराज चंद्र और चंद्रमुखी-हसावती चकवी के समान दीख पड़ी । परस्पर नेत्रों का समागम ऐसा प्रतीत हुआ, मानों पृथ्वीराज नव भ्रमर तुल्य नैत्र कुमारी के श्रेष्ठ कमल तुल्य नैत्रों में प्रवेश कर एकाकार हो गये हों या उन एकाकार भ्रमर और कमलवत नैत्रों को मधु रस झुता रहा हो । उक्त समय के मंगलाभिषेक के अंतर का वर्णन सूक्ति द्वारा श्रेष्ठ कवि भी नहीं कर सकता ।

दोहा

वर, अचल सोमेश चित, बधि वीर वर नारि ।
 देव क्रम दुज क्रम कहौ, सो वर वीर कुआरि ॥ ६४ ॥

शब्दार्थः—सोमेश=द्वितीय सोमेश्वर (पृथ्वीराज) । अचल=गठवधन । दुज क्रम कहौ=द्विजों ने अपने धर्म का कथन किया, अर्थात् मन्त्रोच्चारण किया ।

अर्थः—उस समय द्वितीय वीर सोमेश्वर (पृथ्वीराज) और सुन्दरी हंसावती के चित और अचल का गठवधन एकसाथ ही हुआ । फिर देव-प्रतिष्ठा और

द्विजों द्वारा मन्त्रोच्चारण के साथ वीर श्रेष्ठ पृथ्वीराज ने कुमारी हंसावती का वरण किया ।

कवित्त

वैनि नाग लुट्यौ, वदन मसि राका लुट्यौ ।
 नैन पदम पखुरिय, कुभ कुच नारिंग छुट्यौ ॥
 मद्धि भाग पृथ्वीराज, हस गति शारद मत्ती ।
 जघ रभ विपरीत, कठ कोकिल रस मत्ती ॥
 ग्रहि लियौ साज चपक वरन, दसन बीज दुज नास वर ।
 सेना समग्र एकत करिय, काम राज जिप्पन सुधर ॥ ६५ ॥

शब्दार्थः—वैनि=चोटी । लुट्यौ=लूट लिया । वदन=वदन, मुख । राका=पूर्णिमा । मद्धिभाग=कटि-भाग । शारद=शारदा । बीज=विजली । दुज=द्विज, पत्नी शुरु । एकत=एकत्रित । जिप्पन=जीतने के लिये ।

अर्थः—हंसावती की चेनी ने सर्प को, मुख ने शशि को, नेत्रों ने पद्म पखुड़ी को, कुच ने कलश और नारंगियों को, कमर ने अजेय पृथ्वीराज को (कटि प्रदेश ने पृथ्वीराज को वश में किया), हस-गति ने शारदा की मति को (शारदा भी वर्णन नहीं कर पायी), जघा ने कदली को, कठ ने रत्नोन्मत्त कोकिलाओं को, साज शृंगार ने चंपा के रंग को और हृदय पवित ने विद्युत् प्रभा को फीका कर दिया । यह समग्र सौन्दर्य सृजता ने मानों काम-साम्राज्य पर विजय प्राप्त करने के लिये ही एकत्रित किया हो ।

दोहा

कवि लघु लघु वत्ती कही, उक्ति चन्द नन छेव ।
 मनो जनक वन्दन कवन, जानु किवदै देव ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—लघु २=योद्धे २ में, सत्प्रेष में । उक्ति=उक्ति । नन=नहीं । छेव=पार । वदन=सामारिक मोह के वधन में । वन्दन=महान वाली । जानुकि=जानकी ।

अर्थः—यद्यपि श्रेष्ठ उक्तियों का पार नहीं है, फिर भी मैंने (कवि ने) इस कुमारी का वर्णन सूक्ष्म रूप से ही किया है । वह हंसावती ऐसी थी, मानों जनक को सामारिक समस्य में बाँधने वाली एवं देवताओं द्वारा वदित साक्षात् जानकी हो ।

कवित्त

चट्टिग सब सामन्त, चूक सब सेन सु दिक्खिय ।

खट दस वर सामन्त, मरन केवल मन सिक्खिय ॥

खां^२ निसुरत्ति समूह, जूह दैवान सु धाइय ।

मार मार उचरंत, मारकहि समर सुसाइय ।

इत उतह सव्व सामन्त रजि, तिन अरि तन तिन वर करिय ॥

मानव न नाग दिन आइ जुध, सुवर जुद्ध रत्ती करिय ॥ ६७ ॥

ग्रा० पा० १ का० । २ का० पा० भी० ।

शब्दार्थः—चूक=धोखा । खट दस=साठ । जूह=जुष्ट, समूह । दैवान=देवता तुल्य । मारकहि=मार करने वाले । सुसाइय=शोषण करना शुरू किया, शोषण किया । तिन=तृण । दिन आइ जुध=हमेशा युद्ध करने वाले । रत्ती=रात्रि ।

अर्थः—इतने में विपक्षियों ने (शिशुपाल वंशज पचायन की मदद पर आये हुए शाही योद्धाओं ने) पुन धोखे के साथ हमला किया । यह देखकर सब सामन्तों ने भी चढ़ाई की । वे साठ श्रेष्ठ सामन्त केवल मरना ही सीखे थे । निसुरत्तिखों के साथी-समूह की ओर वह देवता तुल्य सामन्त समूह बढ़ा और मार २ उच्चारण किया । रावल समर ने भी विपक्षी वीरों का शोषण करना शुरू किया । उसके आस पास सुशोभित हो, सामन्तों ने भी शत्रु जनों का तृण-तुल्य कर दिया । हमेशा युद्ध करने वाले ऐसे श्रेष्ठ वीरों के समान न तो मानव और न नाग ही हुए । उनका वह युद्ध रात्रि में हुआ ।

दोहा

कन्ह वध मभमें रझौ, रई सुजैत कुआर ।

है मुक्किव सामंत गौ, उपर मेर पहार ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—वध=वधु । मभमें=बीच में । रई=इय, बोड़े । मुक्किव=छोड़ कर, बढ़ाकर । सामंत=पामतसिंह । गौ=गया । उपर=महायतार्थ ।

अर्थः—गुहिलोती सेना मे-से कन्ह का साई और जैत्र कुमार तथा चाहुआन की सेना का मेरु तुल्य पहाडराय तोमर शत्रु सेना से घिर गये । यह जानकर इनकी सहायता के लिये घोड़ा बढ़ाकर सामंतसिंह आहड़ा आया ।

जित्ति

प्रात खान सुरतान, सेन बंधी ग्रह सारी ।
 वर सौभे “कविचंद्र”, चंद्र अष्टमी आकारी ॥
 अर्द्ध चंद्र महमूँदि, अर्द्ध खुरसान खान करि ।
 मध्यभाग रुस्तमा^१, सेन खुरसान जित्ति वरि ॥
 दल धरकि भरकि सिप्पर लई, अरुनदीय उद्दिम सुभर ।
 चित्र ग राइ रावर समर, चढि मग्यौ बधव अमर ॥ ६८ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थः—अह=सर्प । सारी=श्रेष्ठ । सेन खुरसान=खुरासानी सेना । जित्ति=विजेता ।
 सिप्पर=शीघ्र । अरुनदीय=अरुणोदय । उद्दिम=उद्यम, प्रयत्न । मग्यौ=प्रस्तुत करने को कहा, बुलाया ।

अर्थः—प्रातः काल के समय शाह के खान योद्धाओं ने अपनी सेना श्रेष्ठ ढंग से
 सर्पव्यूहाकार जमाई । कवि कहता है कि वह अष्टमी की रात्रि के अर्ध चंद्र के समान
 शोभा पाने लगी । उसमें अर्ध चंद्र के आधे टुकड़े के स्थान पर महमूद और अर्ध
 टुकड़े के स्थान पर खुरासान खा तथा मध्यभाग में रुस्तम और विजयी खुरासानी
 सेना थी, किन्तु अरुणोदय होते ही सामंतों ने शत्रुओं को दवाने का प्रयत्न किया,
 जिससे शत्रु सेना में शीघ्र ही गलबली मच गई । उसी समय चित्तौड़ेश्वर रावल
 समर घोड़े पर चढ़ा और भ्राता अमर को सामने उपस्थित करने के लिये
 कहा (बुलावाया) ।

दोहा

उट्टि ढाल चहुआन वर, बढि अवाज पर वान^१ ।
 सुनि बरनी सू^२ रत्त तिन, सत छुट्टे वर थान ॥ ६९ ॥

प्रा० पा० १ का० । २ पा० ।

शब्दार्थः—उट्टि=उमड़ पड़ी । ढाल=टलेती सेना, अग रत्तक मेना । बढि अवाज पर=आवाज के
 साथ बढ़े, चल पड़े । बरनी=नव विवाहिता । सू=मे । तिन=उसने । सत=निश्चय ।

अर्थः—इतने में चहुआन नरेश की अग-रत्तक सेना भी आगई और सनसनाहट
 के साथ बाण चलने लगे । नव विवाहिता में अनुरक्त राजा पृथ्वीराज ने भी यह
 सुना कि संभव है, यह स्थान रण-धमोर के अधिकार से जाता रहेगा ।

कवित्त

धुअ मुख रावर, समर, खान निसुरत्ति खेत तजि ।
घरी अद्ध वजि लोह, सवै चतुरंग सेन भजि ॥
जुद्ध कंध कुल नास, खान निसुरत्ति अहुट्टे ।
चामर छत्र रखत्त, तखत है-वै वर लुट्टे ॥
प्रथिराज वीर रावर समर, मिलि नखित्रपति ग्रहण^१ वरि ।
धर लज्जि लज्जि आहुट्टपति, तीन वार अट्टंग गिरि ॥ ७१ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—धुअ=धुव, अटल । मुख=मुहाने पर । जुद्ध कंध=युद्ध का मार जिसके कंधों पर ।
अहुट्टे=मिड़कर । रखत्त=रसद (खाद्यान्न) । है-वै=अश्वारोही । मिलि=संपर्क किया । नखित्रपति=
नखत्रपति, चन्द्रमा, चन्द्रमा तुल्य हसावती । ग्रहन=घेरा । अट्ट गगिरि=अष्टाचल पहाड़ ।

अर्थः—रावल शत्रु-मुहाने पर अटल रहा । यह देख निसुरत्ति खान ने रणक्षेत्र छोड़ दिया और अर्ध घड़ी तक लोहा वजता रहा, जिससे शत्रु की सब चतुरंगिनी सेना भाग गयी । जिसके कंधों पर युद्ध का भार था ऐसे निसुरत्तिखान ने अड़कर कुछ का नाश कराया और उसके सेनापतित्व के चिन्ह, चमर, छत्र, तखत, रसद (खाद्यान्न) और घुड़सवार लूट लिये गये । पृथ्वीराज और रावल समर दोनों वीर थे । उनमें से पृथ्वीराज तो चन्द्रमा तुल्य हसावती के संपर्क में था, किन्तु रावल समर शत्रुओं के घेरे (ग्रहण) में दिखाई दिया । उस समय वह पृथ्वी और आहड़ों का स्वामी कहलाने की लज्जा रखने के लिये अष्टाचल पहाड़ के तुल्य हो गया ।

जीत लियौ चतुरंग, चारु चतुरंग सु मोरी ।
एक लक्ख पक्खर^१ प्रमान, ढाल गौरी ढ ढोरी ॥
खा पिरोज परि खेत, खेत कोका उपाारी ।
समर सिंघ रावर-नरिंद^२, वीर मोरी करि डारी ॥

वज्जे निसान जयपत्त के, विन सुरताने लुट्टि दल ।

नीसान नह उनमह के, चामर छत्र रखत्त बल^३ ॥ ७२ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० । २ ३ पा० ।

कवित्त

प्रात खान सुरतान, सेन बंधी ग्रह सारी ।
 वर सौभे “कविचंद्र”, चंद्र अप्पट्टमी आकारी ॥
 अर्द्ध चद्र महमूदि, अर्द्ध खुरसान खान करि ।
 मध्यभाग रुस्तमां^१, सेन खुरसान जित्ति वरि ॥
 दल धरकि भरकि सिप्पर लई, अरुनदीय उहिम सुभर ।
 चित्रंग राड रावर समर, चडि मग्यौ बधव अमर ॥ ६८ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थः—ग्रह=सर्प । सारी=श्रेष्ठ । सेन खुरसान=खुरासानी सेना । जित्ति=विजेता ।
 सिप्पर=शीघ्र । अरुनदीय=अरुणोदय । उहिम=उद्यम, प्रयत्न । मग्यौ=प्रस्तुत करने को कहा, बुलाया ।

अर्थः—प्रात काल के समय शाह के खान योद्धाओं ने अपनी सेना श्रेष्ठ ढंग से सर्पव्यूहाकार जमाई । कवि कहता है कि वह अप्पट्टमी की रात्रि के अर्ध चद्र के समान शोभा पाने लगी । उसमें अर्ध चद्र के आधे टुकड़े के स्थान पर महमूद और अर्ध टुकड़े के स्थान पर खुरासान खा तथा मध्यभाग में रुस्तम और विजयी खुरासानी सेना थी, किन्तु अरुणोदय होते ही सामंतों ने शत्रुओं को दवाने का प्रयत्न किया, जिससे शत्रु सेना में शीघ्र ही खलबली मच गई । उसी समय चित्तौड़ेश्वर रायल समर घोड़े पर चढ़ा और भ्राता अमर को सामने उपस्थित करने के लिये कहा (बुलावाया) ।

दोहा

उट्टि ढाल चहुआन वर, बडि अवाज पर वान^१ ।
 सुनि वरनी सू^२ रत्त तिन, सत छुट्टे वर थान ॥ ६९ ॥

प्रा० पा० १ का० । २ पा० ।

शब्दार्थः—उट्टि=उमड़ पड़ी । ढाल=ढलेती सेना, अग रत्तक मेना । बडि अवाज पर=आवाज के साथ बढ़े, चल पड़े । वानी=नव विवाहिता । सू=मे । तिन=उसने । सत=निश्चय ।

अर्थः—इतने में चाहुआन नरेश की अग-रत्तक सेना भी आगई और मनसनाहट के साथ वाण चलने लगे । नव विवाहिता में अनुरक्त राजा पृथ्वीराज ने भी यह सुना कि सभव है, यह स्थान रण-भोर के अधिकार से जाता रहेगा ।

रत्ना की है। अब आपके कंधों पर ही दिल्ली नगर का भार है। हे चित्तौड़ेश्वर ! यह अक्षुण्ण पगड़ी आपके ही सिर पर शोभा देती है (पुरुषार्थ के चिन्ह आपमें ही दिखाई पड़ते हैं ।

दोहा

तेजसिंह सुत समरसी, तिह सुत कुम्भ-नरेस ।

संभरि संभरि वारि दै, दोहितौ सोमेस ॥ ७४ ॥

शब्दार्थः—तेजसिंह=पर्याय रूप चौडसिंह, चडसिंह । कुम्भ-नरेस=कुम्भराज (नेपाल राज वंश के पूर्वज कुम्भकर्ण) समरि=समरि नरेश पृथ्वीराज । समरि वारि=सांभर के सकल्प का जल । दोहितौ=दोहित्र ।

अर्थः—तेजसिंह (पर्याय रूप चौडसिंह का पुत्र समर केशरी (विक्रम केशरी) था । उसका पुत्र कुम्भराज (नेपाल राज वंश का पूर्वज कुम्भकर्ण) था जो सोमेश्वर का दोहित्र था । अस्तु, इस विजय के उपलक्ष में संभरी नरेश पृथ्वीराज सांभर का सकल्प करने लगा ('जल देने लगा, दान देने लगा) ।

कवित्त

तव चित्रंग नरेस, खिम्नि नख्यौ वर पट्टौ ।

तुम दृढा कुल दृढ सु मनि ऐसी-मति ठट्टौ ॥

हथ्य नीच करतार, हथ्य उपर जगत्तु^१ गुर ।

हम आहुट्ट ममम्भामि, स्वामि कहिजै सु उंच वर ॥

कालंक राइ कपन विरुद, कुलह कलंक न लगायौ ।

दग्यौन हाथ चित्तौरपति, हम जगत्त सव दग्यौ ॥ ७५ ॥

आ० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थः—खिम्नि=क्रोध करके । नख्यौ=फैंक दिया । पट्टौ=मनद । दृढा=उन्मत्त तृतीय वीरल के समान । कुल दृढ=उन्मत्त तृतीय वीरल के वंश में । मनि=मन में । ठट्टौ=स्थान देते । नीच=नीचे, तले । करतार=ईश्वर । जगत्तुगुर=जगत के गुरु (मेवादेश्वर सबको रास्ते पर चलाने वाले होने से जगत गुरु कहा गया) । कुलह=कुल को । दग्यौन=दागित नहीं किया, मकल्प का जल नहीं भेला । दग्यौ=दागित किया, ऋणी किया, मकल्प किया ।

शब्दार्थः—जीत लियो=विजय प्राप्त की । चतुरंग=चित्तौडेश्वर । पासार=पनरेत, अश्वारोही । प्रमान=समान, बराबरी । जयपत्त=जयपा । उनमत्त=उन्मत्त । वल=बल ।

अर्थः—चित्तौडेश्वर ने श्रेष्ठ चतुरगिनी सेना को भगा कर विजय प्राप्त की । इस युद्ध में एक लक्ष अश्वारोही वीरों की बराबरी करने वाले गौरीशाह के अग्ररक्षक सैनिकों को उसने परख लिया (उनकी शक्ति की परीक्षा करली) । फिरोजखा युद्ध में धराशायी हुआ और कोका भी रणस्थल से (घायल अवस्था में) उठाया गया । रावल उपाधिधारी वीरों के राजा ममर केसरी ने कितने ही विपक्षी वीरों को भोली से डलवा दिया । तब उसने विजय के उपलक्ष्य में नक्कारे बजवाये और सुलतान के दल को लूट लिया । नक्कारों के नाद से उन्मत्त होकर उसने शत्रु के चमर छत्र भी छीन लिये ।

मिले आइ चहुआन, सव्व सामतन मन्ने ।

उच्च भाव आदर सु दीन, राज^१ उरि^२ चपि सु लिन्ने ॥

नैन-चैन-तन^३ बैन, हीन सुखन्न कदि दोऊ ।

बर समान तुम राज, तेग-राज न विधि कोऊ ॥

रक्खयौ ग्राम रतिवाह दै, तुम कधें दिल्ली नयर ।

चित्रंग राव रावर समर, पाघ सीस बधी अमर ॥ ७३ ॥

प्रा० पा० १, ३ का० । २ का० भी० ।

शब्दार्थः—सामतन मन्ने=सामन्तों से सम्मानित । चपि=लगा लिये । नैन-चैन-तन=नैत्र और शरीर पुलकित था । बैन=वचन । हीन=नीच (शत्रु) । सुखन्न=सुख पूर्वक, सहज ही । तेग-राज=खड्ग धारी राजा । ग्राम=रणथमौर । रतिवाह=छापा । अमर=अचतुण ।

अर्थः—इतने में सब सामन्तों से सम्मानित चाहुआन नरेश्वर रावल समर से आकर मिला और उसने उच्च भाव के साथ (हृदय से) रावलजी का सम्मान करके उन्हें हृदय से लगा लिया । जब उसके नैत्र और शरीर पुलकित हो गये तब उसने कहा—हे रावल ममर ! आपने इन दोनों दुष्ट-समूहों (चढ़ेले और मुस्लिम योद्धाओं) को सहज ही में हटा दिया है । आपके समान खड्गधारी और कोई राजा नहीं कहा जा सकता । आपने छापा मार कर मेरे दुर्ग (रणथमौर) की

रक्षा की है। अब आपके कंधों पर ही दिल्ली नगर का भार है। हे चित्तौड़ेश्वर ! यह अक्षुण्ण पगड़ी आपके ही सिर पर शोभा देती है (पुरुषार्थ के चिन्ह आपमें ही दिखाई पड़ते हैं)।

दोहा

तेजसिंह-सुत समरसी, तिह सुत कुम्भ-नरेस ।

संभरि सभरि वारि दै, दोहितौ सोमेस ॥ ७४ ॥

शब्दार्थः—तेजसिंह=पर्याय रूप चौड़सिंह, चडसिंह । कुम्भ-नरेस=कुम्भराज (नेपाल राज वंश के पूर्वज कुम्भकर्ण) समरि=समरि नरेश पृथ्वीराज । समरि वारि=सामर के सकल्प का जल । दोहितौ=दोहित्र ।

अर्थः—तेजसिंह (पर्याय रूप चौड़सिंह का पुत्र समर केशरी (विक्रम केसरी) था । उसका पुत्र कुम्भराज (नेपाल राज वंश का पूर्वज कुम्भकर्ण) था जो सोमेश्वर का दोहित्र था । अस्तु, इस विजय के उपलक्ष्य में संमरी नरेश पृथ्वीराज सांभर का संकल्प करने लगा (जल देने लगा, दान देने लगा) ।

कवित्त

तव चित्रंग नरेस, खिम्नि नख्यौ वर पट्टौ ।

तुम दू दा कुल दू द. सु मनि ऐसी मति ठट्टौ ॥

हथ्य नीच करतार, हथ्य उप्पर जगत्तु^१ गुर ।

हम आहुट्ट मम्मामि, स्वामि कहिजै सु उ च वर ॥

कालंक राड कापन विरुद, कुलह कलक न लगायौ ।

दग्यौन हाथ चित्तौरपति, हम जगत्त सव दग्यौ ॥ ७५ ॥

आ० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थः—खिम्नि=क्रोध करके । नख्यौ=फैक दिया । पट्टौ=मनद । दू दा=उन्मत्त तृतीय वीरल के समान । कुल दू द=उन्मत्त तृतीय वीरल के वंश में । मनि=मन में । ठट्टौ=स्थान देते । नीच=नीचे, तले । करतार=ईश्वर । जगत्तुगुर=जगत के गुरु (मेवाड़ेश्वर सक्को रास्ते पर चलाने वाले होने से जगत गुरु कहा गया) । कुलह=कुल को । दग्यौन=दागित नहीं किया, संकल्प का जल नहीं भेला । गग्यौ=दागित किया, ऋणी किया, सकल्प किया ।

अर्थः—यह देख कर चित्तौड़ेश्वर ने सागर के समाना में लिप्त हो गये। अक्रोध में आकार फेर दी और पृथ्वीराज से कहा तुम ठूट गये (उन्मत्त वलीय वीसल) के वश में उत्पन्न हुए हो और उसी के समान उन्मत्त भी हो, इसीलिये तुममें ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई (उन्मत्त राजवशज को सकल्प द्वारा पृथ्वीराज के की सोचते हो) हमारा हाथ सदैव केवल ईश्वर के नीचे एवं हम जगत-गुरुओं का हाथ सदैव औरों के ऊपर ही रहा है। हम आहडों के मुखिया और उन्नत तथा श्रेष्ठ वीरों के स्वामी कहे जाते हैं। हमारा यश कलक निवारक है। हमारे कुल को कभी कलक नहीं लगा है। हमने अपने हाथ में कभी दाग नहीं लगाया है। (सकल्प रूप में किसी से पृथ्वी प्राप्त नहीं की है)। हमने तो समार को दान दिया है। ससार हमारे कर्तव्यों का ऋणी है और हमसे सकल्प का जल ग्रहण करता है।

दोहा

ग्रेह गयौ चित्रग पति, गौ ढिल्लिय नृप-बेह ।

मास बीय-वित्ते-नृपति, मतौ मडि नृप एह ॥७६॥

शब्दार्थः—ग्रेह=घर (चित्तौड़), नृप-बेह=राजाओं की सीमा, राजस्व की सीमा। मास=एक माह। बीय-वित्ते-नृपति=दूसरा राजा यादव भान, वहीं पर (रणथभौर पर) एक मास व्यतीत करे। मतौ मडि=मन्त्रणा दी। एह=यह।

अर्थः—तदुपरान्त इधर चित्तौड़ेश्वर रावल समर अपने घर चित्तौड़ चला गया, उधर राजाओं का सीमा स्वरूपी (राजस्व की सीमा) पृथ्वीराज की शरण में आये हुए राजा भान को एक मास तक रणथभौर में ही रहने की मन्त्रणा देकर दिल्ली पहुँचा (यादव राजा को एक मास तक रणथभौर में इसलिये ठहराया कि शत्रुओं का वहा तक, यादव के भूभाग पर आक्रमण का डर था)।

बिमल विलोकन कोकरस, सोक हरन सुख सत्त ।

समुख हस प्रभू नीलग्रभ, विभ्रम वर द्रिग मत्त ॥ ७७ ॥

शब्दार्थः—विलोकन=देखा गया। कोकरस=कोक शास्त्र से सम्बन्धित रस, शृंगार रस। सत्त=सत्त्व, तत्त्व। समुख=शत्रुकूल। हस=हसस्वरूपी, हमावती। प्रभू=स्वामी, पति। नीलग्रभ=अंतर से नील वर्ण मरीचर। विभ्रम=चित्रित।

प्रर्थः—जो शोक का हरण करके आनन्द दायक शुद्ध कोकरस (कोकशास्त्र से सम्बन्धित शृ गार रस रूपी जल) से भरा हुआ है और जिसको देखकर श्रेष्ठ और मतवाले नैत्र (युवा सुन्दरियों के) भी चकित हो जाते हैं, ऐसा सरोवर रूपी पृथ्वीराज हंसरूपी हंसावती के लिए (केलि क्रीड़ा करने हेतु) अनुकूल होगया।

मन हिय वृत्त-न मुगधनिय, रमि राजन निय नेह।

नमिय निसाकर अग-रथिय, निसि त्रिम्मल दिय छेह ॥ ७७ ॥

शब्दार्थः—वृत्त-न=वेरी नहीं गई। रमि=विनोद, प्रमोद की रचना की। निय=निकट। छेह=किनारा दिया।

अर्थः—यद्यपि राजा पृथ्वीराज स्नेह मुक्त होकर आमोद प्रमोद की रचना (सुरति सुख) करने को उत्सुक था, किन्तु वह मुग्धा रानी (स्वाभाविक लज्जा-संकोचके कारण चन्द्रोदय और निर्मल रात्रि का वहाना लेकर) उसके हृदय और मन की भावनाओं के वशीभूत (घेरे मे) नहीं हुई। इतना होने पर भी (कुछ समय बीतने पर) मृग-रथवाही निशाकर (चन्द्रमा) और निर्मल रात्रि ने उसको धोका ही दिया अर्थात् उनके विनोद मे बाधा देना ठीक नहीं समझा। दोनों ने ही किनारा कर लिया (शुक्ल पद् से कृष्ण पद् आगया)।

काव्य (श्लोक)

गगन सरसि हंसं श्याम लोक प्रदीपं।

सर-सरसिज वधू चक्रवाकोपि कीरा ॥

तिमिर गज मृगेन्द्र चन्द्रकातः प्रमाथी।

चिकसि अरुण प्राची भास्करं तं नमामी ॥ ७८ ॥

शब्दार्थः—गगन सरसि=आकाश स्थित, आकाश तुल्य सीमा रहित। हंसं=हंस, (सूर्य), हंसावती। श्याम=ईश्वरीय, स्वामी। सर-सरसिज=तालाव स्थित कमल, फर कमलों में जिनके वाण हैं। वधू=प्रेमी। चक्रवाकोपि=चक्रवाक दपति की भी, शासन चक्र, और चक्रवर्तिन की भी। कीरा=कीड़ा। तिमिर=अधेर, अन्याय। चन्द्रकात=चन्द्र प्रसा, चन्द्रमा तुल्य प्रमा वाली। प्रमाथी=नाशकर्ता, मथन कर्ता। अरुण=अरुणिमा, भोजित्विता। प्राची=पूर्व दिशा, पूर्व प्रांत, पूर्व देश। भास्कर=भास्कर, सूर्य स्वरूपी पृथ्वीगज।

अर्थः—यह देख कर चित्तौड़ेश्वर ने सांभर के सम्बन्ध में लिखी हुई सनद को क्रोध में आकार फेंक दी और पृथ्वीराज से कहा तुम दृढ़ दानव (उन्मत्त तृतीय वीसल) के वंश में उत्पन्न हुए हो और उसी के समान उन्मत्त भी हो, इसीलिये तुममें ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई (उच्च राजवशज को संकल्प द्वारा पृथ्वी दान देने की सोचते हो) हमारा हाथ सदैव केवल ईश्वर के नीचे एवं हम जगत-गुरुओं का हाथ सदैव औरों के ऊपर ही रहा है । हम आहडों के मुखिया और उन्नत तथा श्रेष्ठ वीरों के स्वामी कहे जाते हैं । हमारा यश कलक निवारक है । हमारे कुल को कभी कलंक नहीं लगा है । हमने अपने हाथ में कभी दाग नहीं लगवाया है । (सकल्प रूप में किसी से पृथ्वी प्राप्त नहीं की है) । हमने तो ससार को दान दिया है । संसार हमारे कर्तव्यों का ऋणी है और हमसे सकल्प का जल ग्रहण करता है ।

दोहा

ग्रेह गयौ चित्रग पति, गौ दिल्ली नृप-बेह ।

मास वीय-वित्ते-नृपति, मतौ मडि नृप एह ॥७६॥

शब्दार्थः—ग्रेह=घर (चित्तौड़), नृप-बेह=राजाओं की सीमा, राजस्व की सीमा । मास=एक माह । वीय-वित्ते नृपति=दूसरा राजा यादव भान, वहीं पर (रणथंभौर पर) एक मास व्यतीत करे । मतौ मडि=मन्त्रणा दी । एह=यह ।

अर्थः—तदुपरान्त उधर चित्तौड़ेश्वर रावल समर अपने घर चित्तौड़ चला गया, उधर राजाओं का सीमा स्वरूपी (राजस्व की सीमा) पृथ्वीराज की शरण में आये हुए राजा भान को एक मास तक रणथंभौर में ही रहने की मन्त्रणा देकर दिल्ली पहुँचा (यादव राजा को एक मास तक रणथंभौर में इसलिये ठहराया कि शत्रुओं का वहा तक, यादव के भूभाग पर आक्रमण का डर था) ।

विमल विलोकन कोकरम, मोक हरन सुख सत्त ।

समुख हस प्रभू नीलग्रभ, विभ्रम वर द्रिग मत्त ॥ ७७ ॥

शब्दार्थः—विलोकन=देखा गया । कोकरस=कोक शास्त्र से सम्बन्धित रस, शृंगार रस । सत्त=सत्त्व, तत्त्व । समुख=यत्तुल । हस=हसिरूपी, हसावती । प्रभू=स्वामी, पति । नीलग्रभ=अंतर से नील वर्ण सरोवर । विभ्रम=चरित ।

अर्थः—जो शोक का हरण करके आनन्द दायक शुद्ध कोकरस (कोकशास्त्र से सम्बन्धित शृ गार रस रूपी जल) से भरा हुआ है और जिसको देखकर श्रेष्ठ और मतवाले नैत्र (युवा सुन्दरियों के) भी चकित हो जाते हैं, ऐसा सरोवर रूपी पृथ्वीराज हंसरूपी हंसावती के लिए (केलि क्रीड़ा करने हेतु) अनुकूल होगया ।

मन हिय वृत्त-न मुगधनिय, रमि राजन निय नेह ।

नमिय निसाकर अग-रथिय, निसि त्रिमल दिय छेह ॥ ७७ ॥

शब्दार्थः—वृत्त-न=वेरी नहीं गई । रमि=विनोद, प्रमोद की रचना की । निय=निकट । छेह=किनारा दिया ।

अर्थः—यद्यपि राजा पृथ्वीराज स्नेह मुक्त होकर आमोद प्रमोद की रचना (सुरति सुख) करने को उत्सुक था, किन्तु वह मुग्धा रानी (स्वाभाविक लज्जा-सकोचके कारण चन्द्रोदय और निर्मल रात्रि का वहाना लेकर) उसके हृदय और मन की भावनाओं के वशीभूत (घेरे में) नहीं हुई । इतना होने पर भी (कुछ समय बीतने पर) मृग-रथवाही निशाकर (चन्द्रमा) और निर्मल रात्रि ने उसको धोका ही दिया अर्थात् उनके विनोद मे वाधा देना ठीक नहीं समझा । दोनों ने ही किनारा कर लिया (शुक्ल पक्ष से कृष्ण पक्ष आगया) ।

काव्य (श्लोक)

गगन सरसि हस श्याम लोक प्रदीप ।

सर-सरसिज वधू चक्रवाकोपि कीरा ॥

तिमिर गज मृगेन्द्र चन्द्रकांत प्रमाथी ।

विकसि अरुण प्राची भास्करं तं नमामी ॥ ७८ ॥

शब्दार्थः—गगन सरसि=आकाश स्थित, आकाश तुल्य सीमा रहित । हसं= हस, (सूर्य), हसावती । श्याम=ईश्वरीय, स्वामी । सर-सरसिज=तालाव स्थित कमल, कर कमलों में जिनके बाण हैं । वधू=प्रेमी । चक्रवाकोपि=चक्रवाक दपति की मी, शासन चक्र, और वाक्विलास की मी । कीरा=क्रीड़ा । तिमिर=अधेर, अन्याय । चद्रकांत =चद्र प्रमा, चद्रमा तुल्य प्रमा वाली । प्रमाथी=नाशकर्ता मथन कर्ता । अरुण=अरुणिमा, श्रोजस्विता । प्राची=पूर्व दिशा, पूर्व प्रातः, पूर्व देश । ग' ररु =मास्कर, सूर्य स्वरूपी पृथ्वीराज ।

अर्थ—(कवि श्लेष में सूर्य और पृथ्वीराज की वन्दना करता है) ।

सूर्य के पक्ष में—आकाश-मण्डल पर जो हम कहा जाता है, ईश्वरीय लोकों का जो प्रदीप है, तालाब स्थित कमल का जो प्रेमी है, जिसके साम्राज्य में चक्रवाक-दपति की भी कीड़ा है, अधरे रूपी हाथी का जो मृगेन्द्र है, चन्द्र-प्रभा का जो नाश-कर्त्ता है ऐसे पूर्व दिशा से अरुणवर्ण युक्त विक्रान्त उस सूर्य को मैं नमस्कार करता हूँ ।

पृथ्वीराज के पक्ष में— जो आकाश-तुल्य गुण रूप आदि सीमा से परे है, हसावती का जो श्याम है, लोकों का जो दीपक है, कमल तुल्य हाथों में बाण रखने वालों का जो प्रेमी है, शासन चक्र और वाक् विलास की कीड़ा भी जिसके साम्राज्य में है, अधरे (अन्याय) रूपी हाथी का जो मृगराज है, चन्द्रमा जैसी प्रभावती युवती का जो मथन-कर्त्ता है, पूर्ण प्रात में जो अरुणवन लिए (ओजस्विता लिए) हुए प्रकट हुआ है, ऐसे भास्कर रूपी पृथ्वीराज की मैं वन्दना करता हूँ ।

अमृत मय शरीर सागरा नद हेतु ।

कुमुद वन विकामी रोहिणी जीवितेस ॥

मनसिज नस वधू माननी मान मर्दी ।

रमति रजनि रमन चद्रमा त नमामी ॥ ८० ॥

शब्दार्थ—सागरानद=सिंधु पुत्र, हर्ष सिंधु । हेतु=कारण । कुमुद=कुमोदिनी, पृथ्वी (पृथ्वीराज) के प्रमोद । रोहिणी=चद्रमा की स्त्री, रोक्ने वाली-गर्भ में करने वाली । जीवितेस=प्राणेश । मनसिज नस, मनसि-जन स=कामशत्रु शिव, मानते हैं सेवक और जनता । माननी=मानवती, रूप प्रेम और गुण का गर्व करने वाली । रमति=विहता है, रमण करती है । रजनि रमन=रजनी पति, रात्रि में पति में । चद्रमा=शशि, चद्रमुखी हसावती ।

अर्थ—(कवि श्लेष में चद्रमा और चद्रमुखी हसावती को वन्दना करता है) ।

चद्रमा के पक्ष में—

अमृत मय शरीर वाला होने के कारण समुद्र पुत्र है, जो कुमुद-वन का विहसित करने वाला है, रोहिणी का जो प्राणेश है, काम-गर्व-गर्वर का जो वल्लभ

है, मानवती स्त्रियों का जो मान-मर्दन करने वाला है और जो रजनी-रमण कहला कर बहरता है, ऐसे उस चंद्रमा को मैं नमस्कार करता हूँ।

—चन्द्र मुखी हंसावती के पक्ष में—

जिसका अमृतमय शरीर है, जो हर्ष सिंधु का कारण है, जो पृथ्वीराज के प्रमोद-वन को विकसित करने वाली है, जो अपने प्राणेश को कावू में किए हुए है, सेवक और जनता जिसे मन से कृपालु मानती है, रूप, प्रेम और गुण का गर्व करने वालियों का जो मान मर्दन करने वाली है, और जो रात्रि में पति से रमण करती है, ऐसी चन्द्रिका (चन्द्र मुखी हंसावती) को मैं नमस्कार करता हूँ।

गाथा

उवनि फलानि फंदा, विसनि पत्त बलाकरे हृत्थ ।

मरकति मनि भाजन्ने, परठिय पडुप सु तीयं ॥ ८१ ॥

शब्दार्थः—उवनि=अवनि, पृथ्वी । फंदा=फंदा हुआ, लगे हुए । विसनि=वृक्षनि, वृक्ष । पत्त=पत्ते, पत्ते । बलाकरे=बल्लिकाएँ, लतिकाएँ । हृत्थ=हथ, नारा । भाजन्ने=पात्र । परठिय=पहुँचाई, भेंट की । तीय=स्त्री (हंसावती) ।

अर्थः—(कवि द्रुपति के प्रेम वर्णन के साथ २ पदच्छतु का वर्णन करता है, वसंत में हंसावती के साथ राजा का विवाह हुआ था, अतः ग्रीष्म से वर्णन शुरू होता है)

वृक्ष और फल देने वाली लताओं में लगे हुए पत्ते नष्ट हो गये हैं, ऐसी ग्रीष्म ऋतु में वह सुवाला हंसावती मरकत-मणि के पात्र में पुष्प सजाकर स्वामी को भेंट करती थी ।

मिल्ली भिंगुर रवरी^१, गावन पुत्रिललित लुम्भरियं ।

पडु किय खंख सहासं^२, मलकिय सीताड मंद^३ मदाई ॥ ८२ ॥

ग्रा० पा० १, ३ भी का० पा० । २ भी ।

शब्दार्थः—रवरी=स्वर । लुम्भरियं=मोहित करती । पडु=राजा । खंख=अक, कुवि । सहास=सहर्ष । सीताड=शीतलता । मंद मदाई=मंद २, शनै २ ।

अर्थः—जिस समय वर्षा ऋतु में मिल्ली, भिंगुरादि की झरार सुन्दर गायिका-पुत्री

की (स्वर लहरी की) तरह मोहित कर देती थी, उस समय राजा ने महर्षि अपनी प्रेयसी (हसावती) को अक मे भर लिया, जिस से वर्षा कालीन तपन (तप्त) मे भी उस वृषति मे शनै २ शीतलता झलकने लगी ।

क्रिय मडिस पुक्करिय, मैन राइ सिरीय वधाय ।

पर दार चौर साही, पुक्कारे जाहु^१ रे जाहु ॥ ८३ ॥

प्रा० पा० १ भी पा० ।

शब्दार्थः—मडि=मडन । पुक्करिय=पुक्कर, तालाव । मैन=कामदेव । राइ=राजा (पृथ्वीराज) । सिरीय=सेहग । वधाय=वाधा । साही=वनाड्यों के ।

अर्थः—शरदागम मे तालावों का सुन्दर दृश्य हो गया (निर्मल हो गए) और राजा (पृथ्वीराज) ने (अपने मस्तक पर) कामदेव का सेहरा वाधा (कामोन्मत्त हुआ) । शरद की चादनी को देख कर लोगो ने कहा— पर-दाराओं से प्रेम करने वाले और वनाड्यों के चोर(धन चुराने वाले तस्कर)। अब तुम्हारी नहीं बनेगी । अतएव चले जाओ (चोर और कामी पुरुषों के लिए चादनी रात बाधक कही गई है) ।

पपट करि करतार, हसा सयनेव हस सहाय^१ ।

निसि बड्य अकुरिय, कुक्कडय कठ कल्लाय ॥ ८४ ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० का० ।

शब्दार्थः—पपट=पोपट, तोता । सयनेव=सहयोगिनी । सहाय=सहयोगी । बड्य=बड़ी । कुक्कडय=मुर्गे । कल्लाय=कुलाना (गग) देना ।

अर्थः—हेमत के आगमन पर प्रेय-मदिरा ने सहयोगिनी हसावती और उसके सहयोगी मूर्त्यस्वरूपी राजा पृथ्वीराज को पोपट (तोता) पक्षी के तुल्य बना दिया (अर्थात् वे एक दूसरे को 'तू ही' 'तू ही'—तुम मेरे हो, तुम मेरे हो—कहने मे तन्मय हो गये) । उस हेमत की रात्रि की वृद्धि के साथ ही साथ उनका प्रेमाकुंर भी बढ़ता रहा और कुक्कट के बोलने पर्यन्त वे मयोग-सुख मे लीन होते रहने लगे ।

अचलीय नेह ससिहर, रस रह^१ रगी सुरंगय देह ।

उवकठय सदेम, गावै पकत^२ चित्त सालाई^३ ॥ ८५ ॥

प्रा० पा० १, भी० का० । २, पा० । ३, का० ।

शब्दार्थः—अचलीय=अचल, अमिट । ससीहर=शिशिरऋतु- । रस-रह=रस के रास्ते पर । उवकठय=उत्कंठिता । चित्र-सालाह=चित्रशाला में ।

अर्थः—शिशिर-ऋतु में उस दंपति का स्नेह अमिट हो गया । जब उन प्रेम मांगियों की सुन्दर काया प्रेम रंग से रंगी जाने लगी तब पृथ्वीराज की अभिलाषा करने वाली अन्य रानियाँ (उत्कंठिताएँ) चित्रशाला में एकांत बैठ कर प्रितम के प्रति संदेश सूचक गीत गाने लगी ।

मौनं करि कोकिलयं, जलधर सम एह कठ उचती ।

विकसित करजल वदे, विकसित रमे कोक सावासी ॥ ८६ ॥

शब्दार्थः—एह=यह । उचती=उच्चारण करने लगी । कसल=कजरारे । कोक=कोकशास्त्र । सावासी=सहवासी ।

अर्थः—जलधर के समान काली कोयल वसंतागम में अपने मधुर स्वर से सुग्ध कर अन्य सब जीवों को चुप कर देती है । वे कन्ठों से उच्चारण करती हुई उस दंपति (हंसावती-पृथ्वीराज) के विषय में यह संकेत करने लगी कि (हंसावती के) विकसित एवं कजरारे नैत्र वंदना करते हैं और उसका सहवासी (पृथ्वीराज) प्रसन्नता पूर्वक कोक शास्त्र की रीति के अनुसार रमण करता है ।

संग्राम गए सूरौ, संपगो' होइ चंद्रोदए ।

विविधा काम तीयं, अवसर रत्त काम लभ्माई ॥ ८७ ॥

शब्दार्थः—सूरौ=सूर्य । सपगो=संपर्क रखने वाले । विविधा=विविध, अनेकों, तरह । काम तीय=काम की स्वी'रति । लभ्माई=देखा, प्राप्त किया ।

अर्थः—वह पृथ्वीराज युद्ध स्थल में प्रतापशाली सूर्य के समान, अपने सम्पर्क में आने वालों के लिए चन्द्रोदय के समान (शान्तिप्रद) और रति तुल्य बालाओं के लिए कामदेव के समान दिखाई देता था ।

गाहा नक्किय तत्ती, सहानं 'नूपुर उरवा ।

जिह अकुर पठ्वित, भूतं जुध्याइ मग भगुरया ॥ ८८ ॥

शब्दार्थः—नक्किय=निश्चय । तत्ती=तत्त्व युक्त । सहान=आवाज । उरवा=हृदयमें । जिह=जिहसे । पठ्वित=पठित (भाव) । मत=प्र.णी (दम्पति) । जुध्याइ=उलभते हैं । मग=मांग । भगुरया=नष्ट ।

अर्थः—यह गाथा निश्चय ही तत्व युक्त है इस रति-रण मे नूपुरों की ध्वनि हृदय मे पवित्र (काम) भाव अकुरित कर देती है, जिससे दंपति तो उलभ जाते हैं, पर वेचारी माग भग हो जाती है ।

जोई छविना वेन, रचया सि महिलान रूप महु कमले ।

सा^५ न चिय सु वियोगे, निमह मुत्त च जुग जुगाण ॥ ८६ ॥

ग्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—जोई=देखा । ना=नहीं । वेन=उसकी । रचया सि=रचना की । महु कमले=मुख कमल । मा=उसको । न=नहीं । चिय=छिया, छूआ । वियोगे=विछोह । निमह=निमाया । मुत्तच=उत्तम ।

अर्थः—राजा की प्रियतमा हंसावती के मुख पर (प्रेम की अति शयता के कारण) जो छवि सुशोभित थी, वह किसी अन्य स्त्री के मुख पर नहीं देखी गयी । उसे कभी वियोग ने नहीं छूआ उनका वह उत्तम प्रेम आजन्म बना रहा ।

पिय आरभन^१ त्रियय, त्रिय आरभ कत^२ चित्ताय ।

सो तिय पिय पिय, पतौ-मा पिम विद्दम धाम ॥ ८७ ॥

ग्रा० पा० १ भी० पा० । २ का० पा० ।

शब्दार्थः—चित्ताय=चित्त । पिय=प्रिय । पतौ=पतित । मा=नहीं । पिम=प्रेम । विद्दम=बद्रीका-श्रम । धाम=स्थान ।

अर्थः—जो पति स्त्री के और स्त्री पति के चित्त मे प्रेम का प्रस्फुटन कर देती है, उस दंपति का प्रेम कभी पतित नहीं होता । ऐसे दंपति का गृह बद्रीका श्रम (तीर्थ स्थान) के समान शोभित होता है ।

अज्जासन जो होज्जा, कठायं पयोहर फलय ।

दीह ते सय लख, हसन रसनाय स बकियं होई ॥ ८९ ॥

शब्दार्थः—अज्जासन=ब्रह्मासन । पयोहर=पयोधर । दीह=दिन । ते=वह । सय लख=सोइ । हसन=रस कर । रसनाय=रस चुखाती हुई । बकियं होई=बोली, तिग्मरी होकर ।

अर्थः—जिम व्यक्ति के कठ पयोधर-फल का स्पर्श कर लेते हैं (सुन्दर कुर्चों पर शयन कर पाते हैं) । उसको ब्रह्मासन की प्राप्ति के समान सुख होता है । जिस दिन

वाला वक्र होकर प्रेमरस का स्त्राव करती हुई हँस देती है, तब समझना चाहिये कि उसका वह दिन करोड़ों दिवस के समान सुख देने वाला होचुका ।

जो ती अह रस हाओ, उच्चसि या कील कंताई^१ ।

सो तिय अगग सुहाई, दिसअसि^२ नीरसं नायं ॥ ६२ ॥

ग्रा० पा० १ पा० २ का० ।

शब्दार्थः—जो=वह । ती=स्त्री । अह=अहो । हाओ=हाव । उच्चसि=उच्च । कील=कीलना, वश में किया । कंताई=पति को । तिय अगग=स्त्रियों के आगे, स्त्रियों में । सुहाई=सुहागिनी, सुहावनी । दिस असि=देखी गई । नायं=नहीं ।

अर्थः—अहा । जो स्त्री रस-युक्त उच्च हावों द्वारा स्वामी को वश में कर लेती है, वह स्त्रियों में सुहागिनी है (या सुहावनी है) । उस की ओर नीरसता नहीं फटकती (वह कभी नीरस नहीं देखी गई) ।

कवित्त

रयनि पंच संकुलित, पंच लज्जित दुरि लोइन ।

भिरत उभय भिरि खग, मगग लगिय जुरि जोइन ॥

मिलत चतुर इक रीय, अतुर ग्रह ग्रह^१ दुहूर बल ।

कमल कमल मडिय सु, चित्त नख अक्ख चक्ख बल ॥

आरत्ति सोइ दइता विल्लुटि, पार समुद्र न नेह लहि ।

इय प्रात-पतिवृत प्रथम पहु, नवति चित्त आचंस लहि ॥ ६३ ॥

ग्रा० पा० १ पा० भी० । २ प्र० प्रति टिप्पणी नं० ६ । ३ का० ।

शब्दार्थः—रयनी पंच=पांच रात्रि, कुछ दिन । संकुलित=पिक्कुड़ी हुई, सकुचित, गफित । लोइन=नेत्र । खग=तलवार (दगकपाण) । रीय=रीति । अतुर=आतुर । दुहूर=दुर्घुर्ष । कमल कमल=दोनों के हृदय कमल । मडिय=मडन किया, गोसा बढाई, एक हो गए । चित्त=चितवते, देखते । नख=नख शिख । चक्ख बल=चलुबल । आरत्ति=दुःख, दी-नता । दइता=देवता, ईश्वर, दया । विल्लुटि=दूर हो गई, हो गए । इय=यह । प्रात=प्रात । पहु=राजा । नवति=नमा दिया, नमगया । आचंस=अश्चर्य ।

अर्थः—कुछ समय तक तो वह नव विवाहिता रानी मुग्धत्व के कारण संकुचित (शक्ति) ही रही, पश्चात् मध्यत्व (मध्यावस्था) में लज्जा युक्त नेत्रों में छिप कर देखने लगी किन्तु प्रौढावस्था में तो दोनों के नेत्र रक्त होकर प्रेममार्ग पर तलवार के समान (कटाक्ष करते हुए) टकराने लगे । इस प्रकार वे दोनों प्रणयी एकाग्र हो गये जिससे दुधुर्प आकर्षण-शक्ति के कारण प्रीति-गृह में मिलने के लिए आतुर रहने लगे । उनके हृदय-कमल एक हो गये । वे एक दूसरे को टकटकी लगा कर चक्षु द्वारा नख से शिख तक देखते रहते । ईश्वरीय कृपा से वे दुःख मुक्त थे (या सुरति समय में होने वाली दीनता और दया दूर हो गई) । कोई उनके स्नेह-सागर का पार नहीं पा सकता । उस रानी का यह पतिव्रत प्रातःकाल के समान है जिसने प्रारंभ में ही राजा को भुका दिया (सुबह वदना की जाती है, इसलिए पतिव्रत को प्रातःकाल का रूप दिया गया है) उसी का मन में आश्चर्य है ।

हसराइ हसनिय, पानि ग्रहनी ग्रह हल्लिय ।

मालव द्रुग देवास, वास मुद्धत नव वल्लिय ॥

हय गय धुर धर धम्म, कम्म किन्ती अति दानह ।

ता पाछे रनयंभ, प्रीति खींची चौहानह ॥

चित्रगराइ रावर रमिय, देव-राज जहय वहिय ।

वित्तिय वसंत रिति अभ्रमरिय, अचल एक किन्ती रहिय ॥ ६४ ॥

शब्दार्थः—हसराइ=पर्याय रूप भानुराय । हसनीय=हसावती । हल्लिय=गई । मालव=मालव प्रातः ।

द्रुग=गढ । वास=स्थान, उत्पत्ति स्थान । मुद्धत=मुग्धा । नव वल्लिय=नवीन लतिका । कम्म किन्ती=क्रीति कार्य । ता पाछे=उसके पीछे, उसीके कारण । खींची=खींच लिया, आकर्षित किया । रमिय=प्रस्थान किया । देव राज=देव-नाम, देवास । वहिय=गया । रिति=रतु । अभ्रमरिय=अलम्ब, अभिगम ।

अर्थः—(कवि इस पद्य में राज कुमारी हसावती का परिचय देता है) ।

हसराय (पर्याय रूप में वही देवास का यादव राजा भानुराय) की सुपुत्री हसिनी (हसावती) ने पाणिग्रहण के पश्चात् गृह में (दिल्लीश्वर के राज महलों में) प्रवेश किया । जो मालव प्रातीय देवास दुर्ग में उत्तन्न हुई थी वह मुग्धा नवीन लतिका के समान थी जिमकी शादी में यादव राजा ने कीर्ति प्राप्त करने के लिये हाथी घोड़े पृथ्वी आदि का सकल्प किया । उसी (हसावती) की प्रीति के कारण

पृथ्वीराज का चित्त रणथंभोर की ओर आकर्षित हुआ (उसी के कारण पंचायन से लोहा लिया और उसे प्राप्त किया) । युद्ध के बाद चित्तौड़ पति रावल ने अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया और यादव राजा भो देवास (देव-राज) चला गया । इस तरह दुर्लभ वसत ऋतु व्यतीत हो गई । केवल उन वीरों की कीर्ति ही अटल रही

गेहा

वित्त^१ कवित्त उगाह करि, चद छद कवि चंद ।

समर अठारह वरप दस, दिवस त्रिपच रविद ॥ ६५ ॥

शब्दार्थः—वित्त=सपत्ति । उगाह=उगाहा छद । चद=चद्रमा । छद=वार्षिक, मासिक, गणवद्र ।
कवि=चद=चद बरदाई के ईश्वर (स्वामी) राजा-पृथ्वीराज । रविद=रवि और इन्द्र ।

अर्थः—(कवि, इस पद्य में पृथ्वीराज और समर-केशरी रावल की हंसावती के विवाह के समय जो आयु थी, उसका उल्लेख करता है) ।

मेरे (कविचंद के) स्वामी पृथ्वीराज की आयु इस समय—वित्त ८ (सपत्ति आठ प्रकार), कवित्त १ (पट्नीदी छंद), उगाह १ (उगाहा छद), करि ८ (दिग्गज), चन्द १, छद ३ (वार्षिक, मासिक, गणवद्र), कुल २२ वर्ष और समर-केशरी की आयु अठारह १८, दस १०, दिवस १, त्रिपंच १५, रवि १२, इन्द्र १, कुल ५७ वर्ष की थी । (समर-केशरी पृथ्वीराज से अधिक आयु के थे । पृथ्वीराज की बहिन पृथा-कुंवरी, समर-केशरी की पाचवीं रानी थी) ।

पहाड़ राय

(समय ४२)

दोहा

दुज समु^१ दुजी सु उच्चरिय, ससि निमि उज्जल देस ।

किम तौवर^२ पाहार पहु, गहिय सु असुर नरेस ॥ १ ॥

प्रा० पा० १ का० । २ पा० ।

शब्दार्थः—दुज-दुजी=द्विज-द्विजी (कविचन्द और उसकी स्त्री के प्रश्नोत्तर के साथ जो समय चलाया गया उसमें कविचन्द अपने को कहीं कहीं शुक और द्विज और अपनी स्त्री गो शुकि या द्विजी लिखता है । शुक शुकी से स्वकीय (अनूकूल) और स्वकीया मतलब है, और द्विज द्विजी से चन्द्र मुखी और चन्द हो जाता है, कवि चन्द और उसकी चन्द्रमुखी पत्नी या-वदी भी ब्राह्मण माने गये हैं) । ससिनिष=चन्द्रमा युक्त रात्री, शुक्लपक्ष । तौवर=तैवर क्षत्री । पहु=राजा । असुर नरेस=म्लेच्छ-राज गहाबुद्दीन ।

अर्थः—शुक्ल पक्षीय रात्रि में जिस समय चन्द्रोदय से सारा देश उज्ज्वल हो रहा था । उस समय चंद्र मुखी (कविचन्द की स्त्री) ने चन्द (कविचन्द) से कहा कि तौमर पहाडराय और पृथ्वीराज ने बादशाह को किस प्रकार पकड़ा, उसका वृत्तान्त कहिये ।

कवित्त

सवत सर च्यालीस, मास मधु पख धम्म धुर ।

त्रितिय दीह अहरुन्न, उदित रवि व्यव वरन तर ॥

आलिय आल आलोल, गरुअ गु जे विसम्म गन ।

रस रसाल मजरि तमाल, पल्लव कमल्ल मन ॥

साहाबदीन सुरतान भर आनि द्वार ठट्ठौ सु वर ।

अख्यै ततार खुरसानखा, कहा खवरि चहुआन घर ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—सर=शामदेव के प्राण पाच । च्यालीस=४० अंक (जुमले दोनों की संख्या ११४५) ।

मधु=चैत्र । पखल=पक्ष । धम्म=धर्म, धर्म उज्ज्वल है अतः शुक्लपक्ष । धुर=निश्चय । अहरुन्न=अरुण ।

तर=नीचे । अलिय=भ्रमर । आल=आलवाल, वगारियें । आलोल=किलोल । गरुश्र=गहरे । विसम्म=विषम ढग से, अस्थिर रूप से । रसाल=आम्र । मर=वीर । अरुखै=कहो ।

अर्थ:—तब कवि चंद कहने लगा—अनद संवत् ११४५ (वि० सं० १२३६) चैत्र-मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को अरुणिमा लिये हुए सूर्य उदय हुआ और उसने अपना प्रतिविव नीचे फैलाया । भ्रमर गुन्जार करते हुए चंचल गति से (विषम ढग से) कभी रसयुक्त मजरी के रस के लिये, कभी तमाल-पल्लव और कभी कमल की आकांक्षा से क्यारियों में किलोल कर रहे थे । उस समय वीर सुलतान शहाबुद्दीन अन्तपुर से बाहर दरवाजे पर आया और तत्तारखों तथा खुरसानखों से कहने लगा कि आज कल चाहुआन नरेश पृथ्वीराज के वहाँ की क्या सूचना है ।

गाथा

उच्चरि खान ततार, अरि वरजोर अतर अत्तार ।

सामंत सुर स भारं, मत्त अमित्त जम्म^१ आकार ॥ ३ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—अरि=शत्रु पृथ्वीराज । वरजोर=प्रवल । अतर=दुस्तर । अत्तारं=पार नहीं किया जाता । मार=मारी, बड़े-बड़े । मत्त=मतवाले । जम्म=यम ।

अर्थ:—तब तत्तारखों ने कहा—वह शत्रु सरजोर (प्रवल) और दुस्तर है उससे पार पाना मुश्किल है । उसके बड़े बड़े बहादुर सामंत विशेष मस्ती वाले और यम-स्वरूप हैं ।

दोहा

तवि^१ ततार खुरसानखां, सुनौ साह साहाव ।

अरि अभंग दल सकक रस, अमित तेज बल आव ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ टि० न० ४ ।

शब्दार्थ:—तवि=स्तवन किया, स्तुति वाक्य कहे । अरि=अड़िष्ट । सकक=मक, इन्द्र ।

अर्थ:—फिर तत्तारखों और खुरसानखों ने शहाबुद्दीन के विषय में भी स्तुति-वाक्य कहे—हे शाह आपका शक्तिशाली दल है और आप स्वयं इन्द्र तुल्य प्रताप, बल और नूरवाले हैं । आपको शत्रु से अवश्य लड़ना चाहिए ।

अरुन वरुन उदित अरुन, वदि प्राची रुचि रूप ।

मेच्छ सामि चदि सेत अह, रन दिल्ली सम भूप ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—वरुन=वरुन, रग । अरुन=सूर्य । वदि=उठा । रुचि=रुचिकर । सामि=सामो । सेत=श्वेत । अम=अश्व, घोड़ा ।

अर्थः—पूर्व दिशा से लालिमा लेकर सूर्य उदय हुआ और ऊपर उठने लगा है । उसी प्रकार है—मलेच्छो के स्वामी शहाबुद्दीन । दिल्लीश्वर जैसे राजा से युद्ध करने के लिये श्वेत रग के घोड़े पर चढ़िये ।

कवित्त

अरुन कोर वर अरुन, वदि सहाव साहि चदि ।

दिसि प्राची दिक्खन विपथ्य, पच्छिम उत्तर वदि ॥

सेस भाग भै भाग, भोमि सकुचि कुकपि निल ।

गसन सेन उडि रेन, गेन रवि पत्त धु ध इल ॥

दस कोस थान दल उत्तरिग, घन अवाज घर रिपु परिग ।

गत मेच्छ मडि मडल सु मति, गति सु जग अगार धरिग ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—अरुन कोर=अरुण किरण । प्राची=पूर्व । दिक्खन=दक्षिण । विपथ्य=राह कुराह । सेस भाग=शेषभाग को कपाली । भै=होने लगी । भाग=हिस्से, खंडित, भग्नि । कुकपि=बुरी तरह से कापने लगा । निल=अनिल, पवन । रेन=रेणुगुण, धूलि । गेन=गगन, आकाश । पत्त=पहुँच कर । धु ध इल=धूलि बला कर दिया । उत्तरिग=उत्तर पड़ा । घन-अवाज=विशेष आवाज, गोर गुल । परिग=पहुँच गई । गत मेच्छ=गमन करने वाले स्त्रियों ने । मडि मडल=मामा की । सु मति=श्रेष्ठ मंत्रणा । गति=हालत । अगार धरिग=मामने गया ।

अर्थः—सूर्य की श्रेष्ठ अरुण किरणों की वदना कर शहाबुद्दीन घोड़े पर सवार हुआ, उसकी सेना राह कुराह होती हुई पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण की तरफ घटचली, जिससे शेषभाग का कपाल भग होने लगा, भूमि मशक होगई । अन्य को कपा देने वाला पवन भी स्वयं बुरी तरह कापने लगा । सेना के चलने से धूल उड़ने लगी और वह आकाश में फैल गई, जिससे सूर्य धु धूल दिवाई देने लगा । दस

कोस चलने के बाद सेना ने पड़ाव ढाला, जिसके शोरगुल से शत्रु तक सूचना पहुँच गई। फिर चढ़ाई करने वाले मलेच्छों ने सलाह करने के लिये सभा बुलाई और युद्ध-स्थिति का प्रश्न सामने रक्खा।

दोहा

रति निसान डग मग अरुन, जिम दीपक वसि वात ।

सुनिव चप अति साह मन, तन विकंप अकुलात ॥ ७ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—रति=लाल । निसान=पताकाएँ । डग=हिलने । मग अरुन=सूर्य के रास्ते पर, सूर्य को स्पर्श करती हुई । वसि वात=पवन के कारण । चप=दवाया जाना । विकंप=प्रकंपित । अकुलात=व्यथित ।

अर्थः—अरुण पताकाएँ सूर्य का स्पर्श करती हुई इस प्रकार हिलने लगीं, जिस प्रकार पवन के कारण दीप शिखा हिलती हो, अथवा पृथ्वीराज द्वारा विशेष रूप से दवाये जाने पर शाह का तन-मन व्यथित और प्रकंपित होता हो ।

मिले मीर भर खान सव, रचि दिवान दरवार ।

मंड मसूरति मत्त वर, तव खुरसान ततार ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—भर=मट, योद्धा । मंड=मंडन किया । मत्त=मंत्रणा ।

अर्थः—मीर और खान योद्धाओं ने मिल कर दीवान भवन में सभा की और मसुरत्तिखॉ, खुरासानखॉ और तत्तारखॉ ने मंत्रणा की ।

कवित्त

मीर खान सेरन वितड, हक्किय हक्कारिय ।

सन मुख साहि सहाव, वोलि वह वह वक्कारिय ॥

हनों सेन हिंदवान, ऐन चहुआनह संधौ ।

अरि अरिन्न अरि भीर, हक्कि हक्कों खग वधौ^१ ॥

गज वाज साजि ऊयल पथल, खल अदुन भंजौ भरन ।

भुअ माख भिस्त मुंकों^२ दरन, के घोरह जीवत^३ धरन ॥ ९ ॥

प्रा० पा० १ भौ० । २ ३ का० ।

शब्दार्थः—वितंड=वितुण्ड, हाथी तुल्य । हविष्य=चल कर । हस्फास्य=टुफकार की । वह वह वक्कारिये=उर्ध्व घोषणा की । ऐन=मृग । मधीं=पाधन करो, लोहा लें । अरि=अङ्कुर । अग्नि=शत्रु । अरि भीरु=शत्रु और शत्रु-भुण्ड । हस्फि=विचलित करके । हस्फो=गडों । खग वधीं=तलवार बांध कर । अदुन=शृ सला । भुय माख=पृथ्वी पर रुहा जाऊ । मिस्त=बहिश्त । मुकों दरन=दलन करना, वन्द करें । घोरह=घोर में, कब में ।

अर्थः—मीर और ग्वांन योद्धाओं में वितुण्ड-तुल्य शेरन वीर था । उसने उठ कर हुंकार की और शहाबुद्दीन के समक्ष उर्ध्वघोष कर कहने लगा—मैं हिन्दू-सेना का नाश करूँगा और मृग-स्वरूपी चाहुवान नरेश पर शस्त्र आजमाऊँगा । मैं तलवार लेकर आक्रमण करूँगा और शत्रु समूह से लड़कर उसको विचलित कर दूँगा । विपत्ती के हाथी, घोड़ों आदि साज बाजों को उथल पुथल कर शत्रु योद्धाओं की शृंखला तोड़ दूँगा । शत्रुओं का नाश होना मेरे द्वारा तब ही बन्द होगा जब ससार की जवान पर मेरे बहिश्त में जाने की बात होगी, नहीं तो मैं जीता ही कब्र में निवास करूँगा

दोहा

रावन प्रव्व विनाश रज, ऐन सीस हय वीर ।

अप्पा^१ कौनन उच्छ्रयौ^२, कालू सेरन मीर ॥ १० ॥

प्रा० पा० १-२ का० ।

शब्दार्थः—प्रव्व=गर्व । विनाश=विनाश समय । रज=शोभित हुआ, किया । ऐन=उसका । हय=काटे गए । अप्पा=शक्ति । कौनन=किसका नहीं । उच्छ्रयौ=उछटा, दूर हुआ । कालू=काला, पगला ।

अर्थः—तब बादशाह ने कहा—हे पागल शेरन मीर । विनाश-समय रावण को गर्व हो आया था । हे वीर । इसीलिए उसका सिर खडित हुआ और किस बलवान का बल क्षीण नहीं हुआ है ?

गाथा

बुल्लवि^१ दूत हजूर, मडे पत्रीय वीर पत्राय ।

अखिखत पान प्रमान, कथी गाथाय सूर चहुवान ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—बुल्लवि=बुलाया। हजूर=मेरामें। मंडै=लिखी। वीर पत्राय=वीर रस पूर्ण पत्र। अखित=अक्षत (निमंत्रण के तदुल)। पान=हाथ। प्रमान=समझना। कंथो=कहना।

अर्थः—फिर बादशाह ने दूतों को हजूर में (सेवामें) बुलाया और वीरता की द्योतक (वीर रस से परिपूर्ण) पत्रिका लिखी और कहा— बहादुर चहुआन को कहना कि मेरे हाथों में यह (गाथावद्ध) पत्रिका निमंत्रण के चॉवल की भांति है।

दोहा

बोलि दूत वचन निकट लिय, दिय सु पत्र तिन हृथ्य ॥

कहौ जाइ ध्रम्मान सों; सजि चहुआन समथ्य ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—वच=मध्यस्थ। ध्रम्मान=धर्मायन कायस्थ। समथ्य=समर्थ।

अर्थः—शाह और दूतों के मध्यस्थ व्यक्ति ने दूतों को निकट बुलाकर उनके हाथों में वह पत्र दिया और कहा—धर्मायन से जाकर कहना कि बलवान चहुआन को सजने के लिए सूचित कर दे।

गाथा

निज केवी सारूढ, वर साहाय दिल्लीयं प्राप्त ॥

वरति मत्र मख किन्न; गविजय मद भद नीसान ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—निज=स्वयं। केवी=कहा। सारूढ=चढ़ा हुआ। प्राप्त=प्राप्त करने के लिए। वरति मत्र=अतिम मत्र। किन्न=क्रिया। मद=मस्ती। मद=भ्राद्रपद के। नीसान=नक्कारे।

अर्थः—स्वयं बादशाह ने भी कहा—मैं (शहाबुद्दीन) दिल्ली विजय के लिए चढ़ा हूँ। मेरे इस युद्ध-यज्ञ का यह अतिम मत्र-पाठ (मत्रणा) है। उसी मस्ती के कारण मेरे नक्कारे तेरे सिर पर भ्राद्रपद के मेघ के समान गर्ज रहे हैं।

दोहा

गए दूत चलि निकट चव, करि सलाम वर साह^१।

पुर डकिन ककन सजन, बलि आतुर वर राह^२ ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—चव=चार। पुर डकिन=योगिनि पुर (दिल्ली)। ककन=ककाल, उतग गरीर।

अर्थः—उन चारों दूतों ने निकट जाकर शाह को सलाम किया और दिल्ली के बलवान ककालों को (उत्तंग शरीर वाले योद्धाओं को) युद्ध के लिए तैयार करने की शीघ्रता के साथ रास्ता पकड़ा ।

स्याम पख्व पूरन क्रमिग, पहु जुगिन पुर नैर ।

दिय कगर धम्मान कर, बर मगै रिन बैर ॥ १५ ॥

प्रा० १ भी० का० ।

शब्दार्थः—स्याम पख्व=कृष्ण पक्ष । क्रमिग=चल कर । पहु जुगिन पुर=योगिनी पुर के राजा के, (दिल्ली पति के) नैर=नगर (दिल्ली) । कगर=कागज ।

अर्थः—कृष्ण पक्ष के पूर्ण होने पर वे दूत दिल्ली पति के नगर (दिल्ली) पहुँचे और धर्मायन के हाथ में शाह का पत्र दिया और कहा—हमारा वीर स्वामी युद्ध करना चाहता है ।

गाथा

दिय पत्री धम्मान, पान गहि पाइ नाइ बर मथ्य ।

भर चौहान समथ्य, सज्जौ सम साह कज्जय बैर ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—पान=हाथ में । पाइ नाइ=चरण-वदना करके । मथ्य=सिर । कज्जय बैर=शत्रुता के लिए ।

अर्थः—धर्मायन को जो शाही पत्र दिया गया था, उसे उसने शाह की चरण वदना कर हाथों में लिया और सभा में जाकर कहा—हे चाहुआन के सामर्थ्यवान योद्धाओं ! शाह से बैर लेने के लिये तैयार हो जाओ ।

दोहा

कायथ कगर वचिकर, हाय थडाय सु कीय ।

साहि काल सुभर-सुभर, आय पहुँच्यो दीय ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—कायथ=कायस्थ (धर्मायन) । वचिकर=पढ़कर । हाय=खेद । थडाय=स्तमित होकर । साहि काल=शाह के लिए कात स्वरूपी । सुभर सुभर=ग्रेष्ठ रंग से मिटने वाले सामत । दीय=दिन ।

अर्थः—धर्मायन ने वह पत्र पढ़कर सुनाया और स्तम्भित होकर खेद प्रकट किया और कहा—हे शाह के काल स्वरूपी योद्धाओं ! वह दिन (युद्ध का दिन) आ गया है ।

दोहा

मरदां खेती खग मरन, अस्थि समप्पन हथ्य ।

सो सच्चा कच्चा अवर; कौइ दिन रहै सु कथ्य ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—खग=मरन=तलवार द्वारा मारा जाना । अस्थि=अर्थ, दान । समप्पन=देना । कौइ दिन=सदैव ।

अर्थः—दान देना और खड्ग द्वारा मारा जाना वहादुरों की खेती (व्यवसाय) है । ऐसे वीर ही सच्चे वीर हैं अन्य सब कच्चे हैं । ऐसे वीरों की ही ख्याति हमेशा बनी रहती है ।

कथा रही पैगंवरों, अरु भारथ्य पुरान ॥

तानें हठ हजरति है, सुनौ राज चहुआन ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—हजरति=हजरत, बादशाह ।

अर्थः—राजा को सन्बोधित कर कहा—पैगम्बरों की ख्याति, कथाओं में और हिंदुओं की ख्याति महाभारत तथा पुराण ग्रन्थों में अब भी बनी हुई है । इसीलिए हे चाहुआन नरेश । बादशाह ने हठ पकड़ रखा है ।

दौ पत्री इह कहि सु कर, करि सलाम तिय वार ।

साहिब तुम सन लरन कौ, आयौ सिंधु उतार ॥ २० ॥

शब्दार्थः—तिय वार=तीन वार । साहिब=शहाबुद्दीन । मन=मे । सिंधु=सिंध नदी ।

अर्थः—उसने राजा की तीन वार वन्दना की और शाही पत्र हाथ में दे कर कहा कि शहाबुद्दीन आपसे लड़ने के लिए सिंध नदी पार कर आ गया है ।

सुनि मत्री नृप अखिख सम, वंचि पत्र तिनवार ।

कूंच कूंच खघार पति, आयौ सिंधु उतार ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—अखिख=रुहा । सम=समय । तिनवार=उस समय । खघार पति=बादशाह ।

अर्थः—यह सुन मंत्री कयमास ने उस पत्र को पढ़ उम्मी समय राजा से निवेदन किया कि पड़ाव करता हुआ कंधार-पनि (शहाबुद्दीन) सिंधु उतर कर आ गया है ।

सुनि पत्री चहुआन ने, सम सामतन राज ।

बात परट्टिय सब भरन, आप आप कल^प साज ॥ २२ ॥

प्रा० १ पा० का० ।

शब्दार्थः—सम=सहित । बात परट्टिय=सूचना दी । आप २=बुद्ध बखुद, अपनी २ ।

अर्थः— यह पत्र सामंतों सहित राजा ने सुना और सामंतों को अपने-अपने योद्धाओं (शक्ति) सहित सजने के लिए सूचित किया ।

कवित्त

कहै राज प्रथिराज, सुनौ सामत सूर भर ।

गज्जनेस चतुरथ्य, विरथ आयौ सु आप पर ॥

साज बाज मयमत्त, खग वर भर उभारिय ।

उतरि वेग नदि सिंधु, सुनिय धुनि अर उत्तारिय ॥

सज्जौ समथ सामत सब, समर चावर हवरन ।

सुरतान खान खुरसान पति, दल बहल पर बस परन ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—चतुरथ्य=चारों अर्थ-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । विरथ=व्यर्थ, कुछ नहीं समझता हुआ । आप=अपने । मय मत्त=मस्ताने, मतवाते । अर=अरि, शत्रु । उत्तारिय=उतारवल, आतुर । समर=युद्धार्थ । चावर=चैवरी । डहरन=आडवर । परन=पड़ने वाला, प्रवाहित होने वाला ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज कहने लगा—हे बहादुर सामंतों ! अपने ऊपर गजती पति चारों अर्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को कुछ नहीं समझता (परवाह नहीं करता) हुआ चढ़ आया है । जिसके बहादुर योद्धा मस्ताने साज बाज युक्त हैं, उन ने तलवारे उठाई हैं । वह शीघ्रता पूर्वक सिंधु नदी पार कर आ गया है । शत्रु के आने का शोर गुल सुनाई दे रहा है । अब हे मामर्थ्यवान मप्रस्त सामंतों ! युद्धार्थ चैवरी के आडम्बर सहित तैयार हो जाओ मर्याक खुरसान पति खान सुलतान के दल-बादल आने वाले हैं ।

तमकि राज प्रथिराज, कहै मामंत-सूर भर ।
 -चाहुआन समरथ्य, पृथ्य भारथ्य चारु चर ॥
 सिंधु साह राज गाह, खग खडौं खल खित्तह ।
 कर अजुरि रिखि आस्त, चन्द अचवन दल कित्तह ॥
 हर हार सार समुख समर, अमर मोह जग्यौ अमर ।
 व्योमान व्योम आरुध धर, वनी चमू चौसर चमर ॥ २४ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ भौ० पा० । ३ पा० का० । ४ का० ।

शब्दार्थः—तमकि=तैश में आता हुआ । पथ्य=पथ्य (अर्जुन) । चारु चर=श्रेष्ठ ढंग से सचालन करने वाला । गाह=कुचलता हुआ । खित्तह=रण क्षेत्र में, पृथ्वी पर । रिखि=ऋषि । अस्ति=अगस्त । चद=कविचन्द या एक की सख्या । अचवन=आचमन पीना । कित्तह=कीर्ति । हार=माला (मुण्डमाला) । सार=मजादूगा । अमर=अमरत्व । अमर=अलुण्ण । व्योमान=विमान । व्योम=आकाश । वनी=वन गई । चमू=सेना । चौसर चँवर=चौसरे चँवर (एक महावत के, दूसरा खवाही में बैठे हुए के और एक-एक दाहिने बाये हाथी पर चढे हुए सामन्तों के हाथों द्वारा राजा या बादशाहों पर चलाये जाने वाले चँवर को चौसरे चँवर कहते हैं) ।

अर्थः—तैश में आकर पृथ्वीराज कहने लगा—हे बहादुरों ! मैं चाहुआन-नरेश सामर्थ्यवान हूँ युद्ध का श्रेष्ठ ढंग से सचालन करने में मैं अर्जुन के समान हूँ । सिंध की ओर से आने वाले शाह के हाथियों को कुचल कर खड्ग से उन दुष्टों के पृथ्वी पर टुकड़े कर दूंगा । अगस्त ऋषि के समान अञ्जलि भर कर एक ही अञ्जलि से शत्रु दल और कीर्ति का आचमन कर डालूंगा (पो जाऊंगा, नष्ट कर दूंगा) । युद्ध में सामना कर शिव का गला मुण्ड-माल से सजा दूंगा । मुझ में अगस्त्य का (यश रूप से अमर रहने का) अलुण्ण मोह जाग्रत हो गया है । राजा के इतना कहते ही आकाश-मण्डल विमान स्थित देवताओं और आसराओं सहित और पृथ्वी चौसरे चमरों से सुसज्जित सेना सहित दिखाई पड़ने लगी ।

दोहा

सुनि अवाज सुरतान दल, हरखि राज पृथिराज ॥
 कोस पच दुअ स वचिग, हिंदुअ मेअ अवाज ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—पच दुअ=दस । स=उसके । वचिग=वीच मे ।

अर्थ—शाही सेना के आने की सूचना सुन कर राजा पृथ्वीराज उत्साहित हुआ और हिंदू तथा मुस्लिम सेना के बीच दस कोस का अंतर रह गया, जिस से शोर गुल मच गया (दोनों सेनाओं के पडाव मे दस कोस का अन्तर था) ।

उदय भान प्राची अरुन, चह्यौ राज सजि सेन ॥

उर पातर कातर इसे, मेछ पीर फरसे न ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—उर पातर=वैश्या का हृदय । इसे=ऐसे, समान । कातर=कायर । फरसे=फलसे, फलसा, द्वार ।

अर्थ—पूर्व दिशा अरुण वर्ण हुई और सूर्यादय हो पाया, उस समय पृथ्वीराज सेना सजाकर सवार हुआ । जिससे कायरों के हृदय वैश्याओं के समान चंचल दीख पड़े और मुसलमानों के दरवाजे (द्वार) पर पीर दिखाई नहीं दिए ।

गाथा

अच्छरि कच्छिय गैन, चैन चवसठु गैन गोमाय ॥

हर हरखै हाराय, जुद्ध सज्जाइ दो दसा दीन ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—अच्छरि=अस्सगएँ । कच्छिय=कसी, बनी ठनी । गैन=गगन, आकाश । चैन=सुख-पूजक । चवसठु=चौमठ योगिनियों । गोमाय=गमन करने लगीं । हाराय=हार के लिए (मु ड माला के लिए) । दो दसा=दोनों ओर से । दीन=दीन-हिंदू-मुसलमान ।

अर्थ—सज कर (बन ठन कर) अस्सराएँ और चौसठ ही योगिनियों सुख पूर्वक आकाश-मंडल में विचरने लगीं । दोनों ओर से दोनों दीन युद्ध के लिए तैयार हुए, यह देख कर शक्र को भी मुण्डमाला प्राप्ति की अशा से प्रसन्नता हुई ।

दोहा

मिलिवि सेन अरुन सु अनी, तनी तनी दुअ दीन ।

आसुर^१ सुर सज्जे सयन, दुअ^२ वीरा रस भोन ॥ २८ ॥

प्रा० १ पा० । २ का० ।

शब्दार्थ—मिलिवि=मिली, मिल गई । अनी=पुहाना । आसुर=दानव । वीरा रस=वीर रस में । भोन=भीनी हुई, नहा कर ।

अर्थः—दोनों दीन की सेना तन कर मुहाने पर अरुण वरण धारण कर इस प्रकार मिली मानो वीर रस (वीर रस का रंग भी अरुण माना गया है) में नहा कर देवता और वानव दोनों की सेना सुसज्जित हुई हो।

भेंटि^१ साहि भर खान सब, पतिपुच्छीं इह वत्त ।

अरि प्रचंड दल वल प्रवल, करहु समर सक मत्त ॥ २६ ॥

प्रा० १ भी० का० पा० ।

शब्दार्थः—पतिपुच्छीं=प्रतिपक्षी, विपक्षियों के लिए। इह वत्त=यही एक निश्चय किया। सकमत्त=शक्ता नहीं करनी चाहिये।

अर्थः—समस्त खान योद्धाओं ने शाह से भेंट की और विपक्षियों के लिए यही बात निश्चय की कि शत्रु की सेना प्रचण्ड और प्रवल है। फिर भी युद्ध करना चाहिये और मन में शक्ता नहीं रखनी चाहिए।

दोहा

दलकि डाल बहु रंग वर, गुरुतम चढि गजराज ।

मलकि नीर वपु दल चढिय, मनु पावस गुर राज ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—गुरुतम=गुरुत्तम, बड़े और उत्तम। दल चढिय=चढ़ाई की, बढ़ा। पावस गुर=वीर पावस, शक्ति वृद्धि। राज=सुशोभित हो।

अर्थः—बड़े और उत्तम योद्धा हाथियों पर सवार हुए। उनकी विविध रंगों युक्त ढालें झूलने लगीं (लटक कर हिलने लगीं) और उन बीरों के शरीर पर नूर झलकने लगा। उस समय सेना इस प्रकार बढ़ने लगी, मानों अति वृद्धि होने लगी हो।

भर सहाव सजिनय अनि, जवन^१ जोर चतुरग ।

सुभर प्रफुल्लित वीर मुख, काइर कंठ अग ॥ ३१ ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० ।

शब्दार्थः—जवन जोर=यवन शक्ति।

अर्थः—वीर शत्रुहीन ने यवन शक्ति के बल पर चतुरंगेन सेना सजाई, जिससे वीर योद्धाओं के मुख प्रफुल्लित हो गए और कायरों के शरीर झंपने लगे।

जनुकि पथ्य भारथ्य भर, लगि कुर दड प्रचट ।

चाहुआन दल मेच्छ दल, हकि हयगय भुण्ड ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—जनुकि=जानो, गानो । पथ्य=पार्थ । भरलगि=भिड़ने लगा । कुर=कोरव । पड प्रचट=प्रचट काय । हकि=वटे । हय-गय=घोड़े हाथी ।

अर्थः—जिस प्रकार महाभारत युद्ध मे अर्जुन प्रचटकाय-कोरवो से भिड़ने लगा था, उसी प्रकार चाहुआनी और मुस्लिम सेना हाथी घाडा के समूह के साथ बढ़ कर भिड़ पड़ी ।

इत हिंदू उत मेछ दल, रन चहुे वर धीर ।

हकि तेज असि वेग बढि, लगे सु भरहर भीर ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—रन चहुे=युद्ध में उमड़ पड़े । हकि=चलाते हुए । असि=तलवार । भरहर=मड़-हड़ाने, भयातुर । भीर=समूह ।

अर्थः—इधर से हिंदू और उधर से मुस्लिम सेना के श्रेष्ठ धैर्य धारी योद्धा रण क्षेत्र मे उतर पड़े और तेजी से तलवार चलाते हुए तीव्र गति से बढ़ कर शत्रु-समूह को भयातुर करने लगे ।

गाथा

नचिय नारद मोद, क्रोध घन देखि सुभट्टाय ॥

हर हरकिखय हार, पत्तो चदय भान पयान' ॥ ३४ ॥

प्रा० पा० १ प० भी० ।

शब्दार्थः—नचिय=नाचने लगे । मोद=प्रसन्नता पूर्वक । सुभट्टाय=सुभट्टों को । हार=(मुण्ड) माला के लिए । पत्तो=आ पट्टा उदय हुआ ।

अर्थः—श्रेष्ठ वीरों को विशेष क्रोध से भरे हुए देख कर प्रसन्नता युक्त नारद नाचने लगे और मुण्ड माला की इच्छा मे शकर भी प्रसन्न दीख पड़े । सूर्य के अस्त होने के बाद चंद्रमा भी आकाश मंडल मे आ पहुँचा ।

दोहा

यकि जुभक्त सभ्या सपत, सपत भान पायान ।

पटु प्राची बजि पचजन, लहु स्मृत गैयान' ॥ ३५ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० पा० ।

शब्दार्थः—धकि=धमित हो गए । सपत=आ पहुँची, हो गई । पहु=प्रात होने पर । पच जन=शंख । लहु=अरुण वरण । सूभत्त=दिखाई देने लगा । गैयान=गगन, आकाश ।

अर्थः—युद्ध करते-योद्धागण थक गए सध्या आ पहुँची और सूर्य अपने स्थान को लौट गया । दूसरे दिन सुबह होनेपर पूर्व दिशा से शंख नाद होने लगा और आकाश अरुण-वर्ण दिखाई देने लगा ।

कवित्त

उदय भान पायान^१, कोरि^२ दिह्मिदय दल चट्टिय ।

हय गथ नर आ ररिय^३ सह पर सहन वट्टिय ॥

अच्छरि तन सच्छरिय, व्योम, विम्मानह चट्टिय ।

दिखिख सूर सामत, देव जै जै मुख पट्टिय ॥

हथिय सुधारि हथनारि धरि, गजैनारि करनारि वजि ।

चढि हिंदु मेच्छ मुँह मिलि अनिय, मनो अंभ पावस सु रजि ॥ ३६ ॥

पा० पा० १ भी० पा० २ का० ३ । पा० ।

शब्दार्थः—कोरि=किरणों । आ ररिय=आकर रल गये, ठिल गए । सह=आवाज । तन=तनकर (इठला कर) । सच्छरिय=मंचार करने लगी । व्योम=आकाश । मुख पट्टिय=मुँह से उच्चारण करने लगे । हथिय सु धारि=हाथी वाले, हाथी पर चढ़ने वाले । हथनारि=तुपक, आग्नेयास्त्र । गजैनारि=गर्जना करने लगी । करनारि=करनाल, वाद्य विशेष । अम=अम्र, बादल ।

अर्थः—सूर्य के उदय होने और उसके ऊपर उठने से कुछ २ किरणें दिखाई देने लगीं उसी समय सेनाएँ चढ़ी । हाथी, घोड़े और सेनिक आ २ कर युद्ध स्थल में ठिलने लगे । और आवाज पर आवाज बढ़ने लगी । इठलाती हुई आसराएँ आकाश-मण्डल में विमानों पर चढ़ी हुई विचरण करने लगी । बहादुर सामन्तों को देख कर देवतागण मुँह से जय जय उच्चारण करने लगे । हाथियों पर चढ़े हुए योद्धाओं ने आग्नेयास्त्र (तुपकादि) ग्रहण किए जिनका शोर होने लगा । करनालादि रण वाद्य बजने लगे । इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम सेना चढ़ कर आमने सामने मिली, जैसे पावस ऋतु में बादल मिल कर शोभा पाते हों ।

दोहा

भर भीखम तीकम अमर, धनुष वान अमान ।

हिंदुअ मीर सु इक हुअ, वीर^१ चद सनमान ॥ ३७ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—भर=भिड पड़े । भीखम=भीषम, भयानक रूप से । तीकम=तिगिकम, पृथ्वी के तीन पैड कर्ने वाले विष्णु [विष्णु तुल्य पृथ्वीराज] । अमर=देवता तुल्य सामन्त । अमान=अग्रे किए । बढ़ाये । इक हुअ=मिल गए, गुथम गुथा हुए ।

अर्थः—धनुष बाणों को बढ़ाते हुए भयानक रूप से विष्णु सहित देवताओं तुल्य हिन्दू योद्धा भिड पड़े । और रण स्थल में हिन्दू और मुस्लिम योद्धा गुथम गुथा हो गए । मैंने (कवि चन्द ने) भी यह देख उन वीरों का सम्मान किया (प्रशंसा की) ।

कवित्त

नेत बधि हिंदू नरिंद सामत मत्त भर ।

मीर भार असवार^१, सवे ढाहे सु सद्धि सर ॥

पथ जेम भारथ, कथ सुभै जिम कथिय ।

सुकवि चद वरदाइ, एम कथिय रन वत्तिय ॥

वन घाइ अघाइ^२ सुघ इ घट, तेक तानि नचिय करस ।

चहुआन राइ सुरतान दल, नृत्य-वीर मड्यौ सरस ॥ ३८ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० । २ का० भी० पा० ।

शब्दार्थः—नेत बधि=नेतृत्व गृहण किया । हिंदू नरिंद=राजा पृथ्वीराज । भार=मारी, बड़े । सद्धि=साधकर, निशानाकर । पथ=पार्थ । पथ=ख्याति । सुभै=सुशोभित । कथिय=कही । एम=इस तरह । घाइ=घाव करते हुए । अघाइ=प्रकर । तेक=तैग, तलवारें । तानि=तानकर । नचिय=नावने लगे । करस=प्रार्थन करने लगे । नृत्य जोग=वीर नृत्य ।

अर्थः—उस समय हिन्दू राजा पृथ्वीराज ने नेतृत्व गृहण किया और वीर सामंत भिड़ने लगे । वड़े २ अश्वारोही मीरों को तीर का निशाना बनाकर उन सबको धराशायी किया । महाभारत युद्ध में जैसी अर्जुन की ख्याति थी वैसी ही ख्याति राजा की फैल गई । उसका (वरदायी कविचंद ने) मैंने रण चर्चा के बढ़ाने वणन

किया । वहादुरों के शरीर घावों से छक गये और तलवारें तानकर संघर्ष करते हुए नाचने लगे । इस प्रकार का वीर-नृत्य चाहुआन और सुलतान की सेना में होने लगा ।

दोहा

तेग तार मडिय समर, नचिय नच बिन खैर ।

चाहुआन सुरतान रिन, रचे नृत्य वर वैर ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—तार=तन्त्री तार । नचिय=किया । नच=नृत्य । खैर=कुशल । रिन=रण । रचे=रचना की ।

अर्थः—तलवारें ही उस समय तन्त्री तार की तरह वजने लगीं और जिनकी कुशल नहीं थी (जो मरने को तैयार थे) वे ही नृत्य करने लगे । चाहुआन और सुलतान के इस युद्ध में यह श्रेष्ठ नृत्य-रचना शत्रुता के कारण ही हुई ।

कवित्त

नव वड्डिय नाटिका, खग कट्टी असु हकिय ।

हिन्दु मेच्छ मिली खेत, आप अप्पन चडि ककिय ।

रा चावड रा-जैत^२, राइ-पञ्जून कनकइ ।

मीर खांन भर पच, खग वड्डय^२ तननकह ।

वपु वेद चन्द वानी विगल, विदुरि खग खल खेत वडि ।

कै-वल सु कट्टि सुरतान दल, लियरतन्न मथि देव दधि ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—वड्डिय=बढ़ी । नाटिका=नृत्यकारिणी । असु=अश्व । हकिय=चल पड़े । अप्प=आपा, शक्ति । चडि=चढ़ाया, वृद्धि की । कंकिय=कमलों में, अगों में । भर=भिड़ने वाले, लड़ाकू । वड्डय=काट दिये तननकह=मनसनाती हुई । वपु वेद=वेदांग । विदुरि=लुटकाकर । कै-वल=वल करके । दधि=पशुद, (सेन्य-समुद्र) ।

अर्थः—जिस प्रकार नवीन नाटिका (नृत्य कारिणी) रंग भूमि में आगे बढ़ती है (नृत्य करती हुई सामने आती है) उसी प्रकार म्यान से तलवारें निकाले हुए वीरों के अश्व चल पड़े । हिन्दू और मुसलमानों समरांगण में एकत्रित होकर अपने २ अगों में शक्ति की वृद्धि की । चावडराय, जैत्र, पञ्जून, और कनक राय ने पांच

मुस्लिम वीर जो लडाकू योद्धा थे, उन्हें खनखनाती हुई खड्ग द्वारा काट दिया ।
 (कविचंद) मैंने वेदांग तुल्य निर्मल वाणी द्वारा वर्णन किया है कि-इस प्रकार
 उन मीरों को खड्ग द्वारा लुटका कर सामंत रणक्षेत्र में आगे बढ़े और उन देव तुल्य
 सामंतों ने शक्ति प्रदर्शित कर सेना रूपी समुद्र का मन्थन कर रत्न तुल्य सुलतान को
 खोज निकाला [सुलतान तक जा पहुँचे] ।

दोहा

गिरे मेच्छ हिन्दू सुभर, हय गय घाइ अघाइ ।

सुड रुड मुडन भरत, रत्त भाकि भुकि ताइ ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—रत्त=रक्त । भाकि=खड्ग के विशेषवार । ताइ=तहा, उती जगह ।

अर्थः—इस युद्ध में हिन्दू और मुस्लिम योद्धा तथा हाथी, घोड़े घावों से छककर
 घराशायी हुए, और खड्ग के विशेष वार होने से उस जगह हाथियों की सूड और
 और मनुष्यों के रुड-मुड श्रोणित से भरते और भुक्तते हुए दिखाई दिये ।

भिरि तु अर लिय वग भरि, हय करि नीर प्रवाह ।

सघन घाइ समुख समर, लगे मेच्छ-पति थाह ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—वग=रास । भरि=ऐँच । मेच्छ-पति=वादशाह ।

अर्थः—उसी समय पहाडराय तोमर ने राम को खींच कर जल-प्रवाह के समान
 घोडा बढ़ाया और युद्ध में गहरे घाव करता हुआ सुलतान को थाहने (परखने) लगा
 (शाहके बल को आजमाने लगा) ।

घाइ घाइ तन छाई छिति, रत्त छिछ उद्धरत ।

भर तौवर हर जिम तमकि, लगि जमन गज अत ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—छाई=छा दिया, पाट दिया । छिछ=धारा । तमकि=तमक कर । जमन=यवन । अत=
 अतक ।

अर्थः—वार कर-कर उसने नर कफालों से पृथ्वी पाट दी और रक्त की धाराएँ
 उछलने लगी । वह तौवर-योद्धा रूद्र के समान उछल कर यवनों और हाथियों को
 घनघोर लग गया ।

कवित्त

भर तौँअरअ भिरत्त, धरत कर कुंत जत अरि ।
 गजन वाज धर ढारि, धरनि वररत्त जुथ्थ परि ॥
 भगि मीर काइर कनक, हिय पत्त मुच्छि दग^१ ।
 भगि सेन सुरतान, दिखि भर सुभर पानि खग^२ ॥
 उम्भारि सिंगि कुभन छरिय, भरिय श्रोत मद गज ढरिय ।
 हर हरखि हरखि जुगिनि सकल, जै जै जै सुर उच्चरिय ॥ ४४ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—तौँअरअ=तौँवर सत्रिय । कुत=माला । जत=जाने लगे, मगने लगे । वाज=बोझ ।
 ढारि=लुठका दिये । वररत्त=प्रावाज करती हुई फटने लगी । जुथ्थ परि=यूथ के यूथ उमड़ पड़े ।
 कनक=कलंक । पत्त=पतग । मुच्छि=मूर्च्छा । छरिय=माँ ।

अर्थः—वीर तोमर (पहाड़ राय) लड़ने लगा, उसके हाथ में बरछा लेते ही शत्रु भागने लगे । उस समय उसने हाथी घोड़ों को पृथ्वीपर पटक दिया । समूह के समूह बराशाई होने से पृथ्वी फटने लगी । कायर मीर भाग कर कलकित होने लगे और उनके हृदय का पतन हो गया तथा मूर्च्छा के कारण उनके दग मूँद गए । उस योद्धा के हाथ में तलवार देख कर शाही दल और शाह के योद्धा भी भाग गये । उस वीर ने सांग उठा गज-कुभ पर दे मारी जिससे शोणित बह निकला और मस्त हाथी लुढ़कने लगे । यह देख शकर और समस्त योगिनियों हर्षित होगई और देवताओं ने भी जय जय उच्चारण किया ।

दोहा

प्रतिपद^१ परि पातह पहर, समर सूर चहुआन ।

दिन दुतिया दल दुअ उरकि, समि जिम सद्वि खिसान ॥ ४५ ॥

ग्रा० पा० १ का० भी० पा० ।

शब्दार्थः—प्रतिपद=प्रतिपदा, एकम् । पातह=प्रात । पहर=वेला । खिसान=खिमक पड़े, चल पड़े ।

अर्थः—प्रतिपदा की प्रात वेला में युद्ध के लिये चाहुआन और उसके योद्धा भिड़ पड़े और तीया को दोनों दल उलफ कर चन्द्रमा के साथ २ ही चलते बने (अर्थात् चन्द्रमा के अस्थि हाने के साथ ही युद्ध बन्द हुआ) ।

कवित्त

दिन त्रितिया वर तु ग, भुक्कि भारन भुकि^१ भुक्कन ।
 हिंदु मेच्छ हय हक्कि, धक्क वज्जिव भर डक्कन ॥
 कटि मडल घटि घुम्मि, भुम्मि भम्भरनि अकालहि ।
 भूत वीर चेताल, मस तुद्धत भ्रम चालहि ॥
 दस कध कोपि रघुपति रहसि, विहसि चन्द बद्धिय वदन ।
 चतुरथ जुद्ध जगिय जगी, रगि कक डक्कनि रदन ॥ ४६ ॥
 पा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—तु ग=उत्त गकाय । भुक्कि=भुक्कर । भारन=भाइने, वार करने लगे । भुक्कि भुक्कन=नम कर गिरने लगे । हक्कि=बढाए, हाके । धक्क वज्जिय=धाक फैली, आतक फैला । भर डक्कन=सगठित वीरों में । भम्भरनि=भम्भेड़े, तड़फडाए, हिला दिए । तुद्धत=तोड़ कर । विहसि=उत्साहित होकर । बद्धिय-ववदन=वर्णन करने में वृद्धि की । चतुरथ=चौथ जगिय=जगा । डक्कनि=डाइन ।

अर्थः—तृतीया के दिन उत्त ग-काय श्रेष्ठ योद्धा टेढ़े हो होकर वार करने लगे जिससे विपक्षी भुक्क कर गिरने लगे । हिन्दु-मुसलमानों ने घोड़े बढाये जिससे सगठित योद्धाओं में आतक फैल गया । वीर समूह कट कटकर पडने लगा । उनके शरीर घायल अवस्था में विचरने, भूमने और अकाल मृत्यु वाले की तरह तड़फडाने लगे । प्रेत और वावन ही वीर तथा चेतालादि मास तोड़ २ कर खाते हुए भ्रमण करने लगे । रावण पर राम ने क्रोध किया वैसा ही रहस्य पूर्ण युद्ध देखकर उन्माह पूर्वक मैंने (कवि चन्द ने) भी वर्णन करने में वृद्धि की । फिर चौथ का भारी युद्ध हुआ जिसमें नर कालों को भक्षण कर डाइनियों ने अपने दातों को रक्त रजित किए ।

दोहा

भाग सेन सुरतान सच, रव लगगी मुख तक^१ ।

गह यौ साहि तवर पुरिस^२, जानि राह ससि बक ॥ ४७ ॥

पा० पा० १ का० । २ टि० न० ६

शब्दार्थः—रव=रव, गदग । तक्क=ताकना । पुरिस=पुरष । बक्क=बक ।

अर्थ:—समस्त शाही सेना भगचली, रव (खुदा) मुँह ताकता ही रह गया। उस समय तँवर पहाडराय ने शाह को इस प्रकार पकड़ लिया, मानो वक्र चन्द्रमा को राहू लग गया हो (वक्र चन्द्रमा को राहू नहीं प्रस सकता लेकिन राहू-तुल्य तँवर वीर ने वक्र-चन्द्र-तुल्य शाह को प्रस लिया इसमें विशेषता है)।

कवित्त

जुगिगनि गन गर सिंधु, करत उच्चार सार मुख ॥
 अछि अच्छरि वर इच्छ, विसन श्रकपानि नैन सिख ॥
 बज्जि ताल वेताल, रज्जि वर तण्ड^१ चड सँग ॥
 श्रोत छोनि छय छछ, गुज गन देन रत्ति अँग ॥
 मुरि सेन^२ घाइ मिछ^३ सघन परि, हथ्य घालि सुरतान लिय ॥
 जित्तो जुआनि सोमेस सुअ, अमै सुमै अंगन घटिय ॥ ४८ ॥
 प्रा० पा० १ टि० १, २-३ टि० २।

शब्दार्थ:—सिंधु=सिंधु राग। मुख=मुख्य। विमन=विष्णु। श्रकपानि=चक्रपाणि। सिख=शिखा। नैन=नमा, नमाकर। वरतड=श्रेष्ठ ताडव करने वाले शिव। चड=चड़िका। छोनि=पृथ्वी। छय=झागई। छछ=पिचकारो। हथ्य घालि=हाथ डाल कर। लिय=लिया। जित्तो=विजयो हुआ, जीत गया। जुआनि=जवान, युवा। अमैय=निर्मय। सुमै=सुशोभित हुई। घटिय=घटित हुई, दीख पड़ी।

अर्थ —योगिनियाँ मुख्य तत्व युक्त सिंधु राग का उच्चारण करने, और चक्र पाणि विष्णु को शिखा नवा कर उत्तम अस्त्राएँ वर की इच्छा करने लगीं। वेताल ताल वजाने लगे, श्रेष्ठ ताडव करने वाले शकर चड़िका सहित शोभा पाने लगे। शोणित की पिचकारियाँ पृथ्वी पर झागईं। गण-समूह की गुजारने वीरों के अंग में युद्ध-प्रेम बढ़ा दिया। मुस्लिम सेना मुड चली। घावों के लगने से बहुत से मुसलमान थोड़ा घराशायो हुए। उसी समय शाह पर हाथ डाल कर उसे पकड़ लिया। इस प्रकार सोमेश्वर का युवा पुत्र (पृथ्वीराज) विजयी हुआ और उसके शरीर पर निर्भयता शोभा पाने लगी।

गहि गोरी सुरतान, अप्प दिल्ली सपत्तौ।

माह सुनल पचमी, वार भ्रगु वर दिन जित्तौ ॥

किय सु दड पतिसाह, सहस सत्तह सुभ हैवर ।
 दुरद खट्ट प्रम्मान, वहै खट रिता मदभर ॥
 कोटेक द्रव्य त्रप हेम लिय, घालि सुखासन पठय दिय ।
 कलि काज कित्ति वेली अमर, सुभत सीस चहुआन किय ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—अप्प=स्वय । वित्तौ=व्यतीत होने पर । हैवर=घोड़े । खट्ट=छ । खट रिता=छ
 ऋतु । मदभर=मद बहते हुए । हेम=पोता । द्रव्य=पुद्रा । घालि=बिठा कर । सुभत=गोमित ।

अर्थः—गोरी शाह को पकड़ कर स्वयं राजा पृथ्वीराज दिल्ली पहुँचा, जब माघ
 शुक्ला ५ भृगुवार का श्रेष्ठ दिवस बीत गया तब शाह पर दण्ड किया गया और
 दण्ड में सात सहस्र उत्तम घोड़े, ज्यों ऋतु में मद से भरते रहने वाले छ हाथी
 और स्वर्णिम एक करोड़ मुद्राएँ लेकर शाह को सुखासन पर बैठा कर गजनी
 को चलता किया । इस कलियुग में अमर कीर्तिलता से चाहुआन ने अपने शिर को
 शोभा युक्त कर लिया ।

विनय-मंगल

(समय ४३)

दोहा

ग्यारह सै च्यालीस-चव, पग राजसू मडि ।

वर पंचम ससि तीय ग्रह, जनम सजोग विखडि^१ ॥ १ ॥

प्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—च्यालीस चव=चैवालीस, ४४ । पग=पगुराज, कन्नोजेश्वर । राजसू=राजसूय यज्ञ । तीय=स्त्री, बाला, सयोगिता । विखडि=दो माग ।

अर्थः—अनंद संवत् ११४४ (वि० स० १२३५) में पगुराज ने राजसूय-यज्ञ प्रारम्भ किया । उस समय उस बाला (सयोगिता) के ग्रहों में श्रेष्ठ चन्द्रमा पंचम स्थान में था । तथा उस समय उसकी कुल आयु में से अर्धायु हो चुकी थी (सयोगिता चौदहवें वर्ष में प्रवेश कर चुकी थी) ।

ससि विमल पूरनः उग्यौ, निसि निरमल अति नूप^१ ।

नृप नृप कन्या व्याहता, मरन अदब्बुद भूप ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—नूप=अनुपम, सुन्दर । अदब्बुद=अदभूत ।

अर्थः—सयोगिता रूपी चन्द्रमा का पूर्णोदय होने से उसकी शिशुत्व रूपी रात्रि भी विशेष निर्मल और सुन्दर बन गई । उसका वह सौन्दर्य ही पिता पत्न और पति पत्न के राजवंशियों का नाशकारी सिद्ध हुआ ।

जंज वालत पडै गुन, तंत वडूति काम ।

सिद्धि विमंतर तिय सहज लडि लच्छिन विश्राम ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—जंज=ज्यों ज्यों । तंत=त्यों त्यों । विमंतर=विमात्रादि अंतर में । लछि=लक्ष्मी । लच्छित=लक्षण ।

अर्थ: ज्यों २ वह बाला गुणो का पाठ पढने लगी त्यो २ उसमे काम की (यौवन की) वृद्धि भी होने लगी और अतर मे स्त्रियो के स्वाभाविक विभा-
वादि की सिद्धि भी सहज मे दिखाई देने लगी एव लक्ष्मी के लक्षण भी उसमे
उत्पन्न होने लगे ।

कवित्त

बढै बाल जौ दीह, घरिय सौ बढ स सुन्दरि ।
और बढै इरु^१ मास, पाख बढै रस गुदरि ॥
मास बढै खट आन, रित्त बढै सु बरख वर ।
बरख बढै सुदरी, होइ खट मध्य सरस^२ भर ॥
पूरन बाल खट विय बरख, नव मासह दिन पच वर ।
ता दिनह बाल सजोग उर, मदन वृद्ध माडय सुघर^३ ॥ ४ ॥
प्रा० पा० १ पा० । २ भी० । ३ टि० (१) ।

शब्दार्थ:—पाख=पक्ष । गुदरी=मरी हुई । रित्त=ऋतु । बरख=वर्ष । भर=भरना, टपकना ।
खटवीय=वारह । मदन=मदना नाम की ब्राह्मणी । वृद्ध=वृद्धि की । सुघर=सुषडपन, पट्टा ।

अर्थ:—अन्य सामान्य बालाओं का जितन विकास एक दिन और एक मास मे होता
था उतना ही विकास सयोगिता का एक घडी और एक पक्ष मे होता जारहा था ।
अन्य बालिकाएँ जितना अपना विकास छ महीने मे कर पाती थीं, उतना ही
वह एक मास मे कर लेती थी और अन्य बालाएँ जितनी छ वर्ष मे बढती थी
उतनी वह एक वर्ष मे बढ जाती थी । उसमे निरन्तर सरसता बढ रही थी ।
उसके बारह वर्ष, नौ मास और पाँच दिन पूर्ण हुए तब मदना ब्राह्मणी सयोगिता
के हृदय मे सुषडता और पट्टता की शिक्षा उतारने लगे ।

कवित्त

इह सजोइअ^४ राज-पुत्ति, बत्तीसह लच्छिन ।
रची विधाता काम, धाम कर आप विचच्छिन्न ।
छाजै छत्रिय गौख, गुमट कलसा छविछाजिय ।
करिय राम आवास, सरसरस रग विराजिय ।

तिन चित्रशाल चित्रत सुरंग, मनसिज आगम अंग अंग ॥

मन आस वास वसि मंदिरह, प्रथम दीप दीनौ सुरंग ॥ ५ ॥

प्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—इह=यह, सजोइअ=संयोगिता । राज=पुत्ति=राजपुत्री । विचच्छिन्न=विचक्षण । गुमट=गुमज । रास=लीला, विनोद । आवास=अवास । मनसिज=कामदेव । आस=आशा । दीप=दीनौ=उद्दीपन कर दी ।

अर्थः—उस राज-पुत्री संयोगिता में ३२ वत्तीस ही लक्षण थे । विधाता ने स्वयं उसे अपने हाथों द्वारा विचक्षण रीति से काम-मंदिर के समान बनाई । वह स्वर्ण-कनका से युक्त गुमज-गवाक्ष में छवि से शोभायमान होने लगी । वह अपने महलों में खेलती हुई रस से परिपूर्ण रहती थी । उसकी चित्रशाला सुन्दर सुरंगें चित्रों से सुमज्जित थी । उसके अंग अंग में कामदेव के आगमन का आभास होता था । इस प्रकार महल में रहती थी मदना ब्राह्मणी ने संयोगिता में सुंदर आशा उद्दीपन कर उसके मन में (पृथ्वीराज) को बसा दिया ।

श्लोक

अन्यथा नैव भावन्ति^१, द्विजस्य वचन यथा ।

प्राप्ते च योगिनी नाथे, सजोगी तत्र गच्छति ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—अन्यथा=मिथ्या, झूठ । म पन्ति=बोलते हैं । योगिनीनाथे=दिल्लीश्वर ।

अर्थः—जिस प्रकार ब्राह्मण अन्यथा (मिथ्या) वचन नहीं कहता उसी प्रकार मैं (मदना) भी कहती हू कि दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) के प्राप्त होने पर संयोगिता वहाँ जायगी ।

दोहा

सुअ सयोग समुख सुख. दिख सभोजन राड ।

अति हित नित नित्तह करै, तिय रयनी न बिहाइ ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—सुअ सयोग=पुत्र सयोग । समोजन=पह भोजन । हित=प्रेम । तिय=उसे । बिहाइ=विछुडता, भूलता ।

अर्थः—राजा सहभोज के समय सगोगिता को सम्मुख देवकर पुत्र के समान सुख मानता था । वह उस पर विशेष प्रेम रखता था तथा रात्रि में भी उसे दूर नहीं रखता था । (अर्थात् वह उससे क्षण-मात्र के लिये भी नहीं विछुड़ता) ।

सुहठ^१ आरि अपनी करै, सरै न सीखह तात ।

पढन केलि कलरव करै, कहत अपूरव वात ॥ ८ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—आरि=अडियल पन । सीखह=शिक्षा । अपूरव=अपूर्व ।

अर्थः—वह राज कुमारी अपने हट और अडियलपन को नहीं छोड़ती थी । पिता की शिक्षा वह स्वीकार नहीं करती थी । पढते समय सुन्दर वाक्क्रिडा करती और अपूर्व बातें किया करती थी ।

दोहा

नेवज पुष्प सुगध रस, बज्जन सह सु ढार ।

सु रति काम पूजन मिलहि, एक समै त्रयवार ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—नेवज=नेवैद्य । पुष्प=पुष्प । सुढार=अच्छे तरीके से, मधुर ध्वनि युक्त । त्रय=तीनों । बार=बाला ।

अर्थः—वह बाणी माधुर्य के कारण नैवैद्य, सुवास और सरसता के कारण पुष्प, मधुर ध्वनि के कारण वाद्य बन जाती थी । रति स्वरूपा वह बाला मानों एक ही समय में उपर्युक्त तीनों विशेषतायें केवल भाषण मात्र से ही अर्पित कर कामदेव की प्रेम पूर्वक पूजा करती थी ।

अति विचित्र मंडप सुरंग, अगन तस^१ सहकार ।

अव सु साल^२ कु आरि पढत, सदिस प्रतम सुमार ॥ १० ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ पा० का० ।

शब्दार्थः—अगन=अँगनाएँ । तस=उसकी । सहकार=सगिनी । अव=नीचे के । साल=मन्दिर । सदिस=पक्ष । प्रतम=प्रतिमा ।

अर्थः—राजकुमारी के लिये अति ही विचित्र और सुन्दर रंग वाला मण्डप सजाया गया । साथ में पढने वाली अँगनाएँ भी उसी के समान थीं । इन सबके साथ नीचे के महल में कुमारी सजोगिता कामदेव द्वारा रचित प्रतिमा की तरह थी, जो पढने लगी ।

पढ़तु सु कन्या पगजा सुन्दर लच्छित्रन रूप ।

मानहु अन्दर देखियै, मदन पवासन^१ भूप ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—पवासन=प्रवासी ।

अर्थः—जिसके लक्षण और रूप श्रेष्ठ है ऐसी वह पगु-पुत्री पढ़ती हुई इस प्रकार ज्ञात होती थी मानों उसके अन्दर प्रवासी राजा (पृथ्वीराज) कामदेव के रूप में विरोजमान है ।

वहु^१ भगिनि ता रा-सुअनि, अति सुचग प्रति रूप ।

जिन जिन भेद अभेद गति, ज ज मडहि जूप^२ ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ पा० का० ।

शब्दार्थः—ता=वे । रा-सुअनि=रात्रकुमारिया । सुचग=श्रेष्ठ । ज ज=जैमे, जैमे । जूप=यूप, विजयस्तम ।

अर्थः—उसके साथ पढ़नेवाली राजाओं की भगिनियों और पुत्रियां थी, वे सब अति श्रेष्ठ और रूपवती थीं । उनकी पढ़ाई में भेद और अभेद विषय में जैसी गति थी वैसी ही वे अपनी विजय की स्मृति बना लेती थी (अर्थात् अपनी विजय का स्तम्भ कायम कर देती थी) ।

दोहा

सो रक्खो सु दरि सु विधि, मदन-वृद्ध^१ निय हथ्य ।

सो कीनी मदन-सुवृधि, अति कोविद गुन कथ्य ॥ १३ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—मदन-वृद्ध=मदना नामक वृद्ध ब्राह्मणी । दिउ हथ्य=शिखार्थ उनके हाथ में कुमारी का हाथ दिया । मदन सुवृधि=कामदेव रूनी पृथ्वीराज के प्रेम की वृद्धि ।

अर्थः—उस सुन्दर सयोगिता को मदना नामक वृद्ध ब्राह्मणी के हाथों में शिखार्थ राजा ने सौंपा । इस ब्राह्मणी ने उस बाला के अन्दर कामदेव रूपी पृथ्वीराज, जिसके गुणों का वर्णन पंडितों ने अनेक प्रकार से किया है के प्रेम की वृद्धि कर दी ।

कवित्त

अति कोविद गुन कथ्य, मदन कीनी अति^१ वृद्धह ।
 जोग जिहाजन जाइ, ताहि जल मद्धित सद्धह ॥
 अति भय वित्तिय^२ बाल, रूप राजति गुन साजति ।
 आभूखन खट धरै, देव वद्धू दिखि लाजति ॥
 आरभ अत्र ता धाम मधि, अति विमुद्ध चिह्न पाम सखि ।
 सजीव जोग जगम बसे^३, तप सु तप मध्या सु लिखि ॥ १४ ॥

पा० पा० १ पा० । २ भी । ३ पा० भी० टि० (२) ।

शब्दार्थः—जोग=योग, सयोग, सहारा । जिहाजन=जहाज । जाइ=चले जाने पर, छूट जाने पर । मद्धित=मैं । सद्धह=साधना पढ़ता । वित्तिय=दूरकर दिया, बिता दिया । गुण साजति=गुणों को गूढ़ण करके । आभूखण खट=सिर भूषण (१), मुख भूषण (२), कंठ भूषण (३), कटि भूषण (४), कर भूषण (५), पैर भूषण (६), । देववद्धू=देवाङ्गनाएँ । स=उसका । जोग जगम=चलते फिरते योगी । तप मध्या=अंतर से तृप्त ।

अर्थः—जिसके गुणों का पंडितों ने विशेष गुणगान किया है ऐसे उस कामदेव रूपी पृथ्वीराज के प्रेम की उस बाला के हृदय में वृद्धि करदी । जिससे उसकी ऐसी दशा हो गई जैसे जहाज का सहयोग (सहारा) छूट जाने से व्यक्ति को जल में डूबना पड़ता है (अर्थात् उस प्रेम मिन्धु को पार करने का कोई सहारा न पाकर मृत्यु चाहती हो) किन्तु आशा होने के कारण उस बाला ने महान भय को दूर कर दिया । वह गुणों को गूढ़ण कर अपने रूप की शोभा बढ़ाने लगी । छ प्रकार के आभूषण धारण करती जिसे देख देवागनायें भी लज्जित होती थीं । उसके महल में अश्रु प्रवाह रूपी जल प्रवाह का प्रारम्भ होने लग गया था (अर्थात् पृथ्वीराज की स्मृति में वह अश्रु-पात करने लग गई) । उसके आसपास सुचरित्र वाली सखियाँ सदा रहती थीं । उस कुमारी का जीवन चलते फिरते जोगी के समान था और आंतरिक सततता ही उसकी तपस्या दीख पड़ती थी ।

दोहा

लै^१ लग्गी^२ भग्गी^३ न गुन, अति सु दरि तिन साथ ।

एक मत्त^४ दम अग्निरिय, विनय पढ़ावन गाथ ॥ १५ ॥

पा० पा० १, २, ३, ४, पा० का० ।

शब्दार्थः—=१ : गन । मग्गी=नहीं टूटी । शुन=समझना । एक सत्त दस=एकसौ दस ।

अर्थः—उस वाला के हृदय में जिस प्रेम की तान छिड़ गई थी वह फिर कभी टूट गई हो, ऐसा नहीं समझना चाहिये । उसके साथ अनेक सुन्दरियाँ रहती थीं जिनकी कुल संख्या एक सौ दस थी । उन सब को विनय-गाथा पढ़ाई जाने लगी ।

इक सत्त पचक^१ अगरी, राज कन्य रज रूप ।

तिन मध्ये मध्यान में, काम विराजत भूप ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—इक सत्त पचक=एकसौ पांच । रजरूप=रजेशुण स्वरूपा । मध्ये मध्यान में=उन मध्या वालाओं के बीच में,

अर्थः—उन एकसौ दस में से एकसौ पांच राज कन्याएँ थी, जो साक्षात् रजेशुण स्वरूपा थी और उन मध्याओं में प्रमुख राजकुमारी सयोगिता थी जिसके हृदय में कामदेव रूपी राजा पृथ्वीराज बसा हुआ था ।

दोहा

तादिन तें द्वै, दुजनिवर^१, पदिय सुशास्त्र विचार ।

उन आरभअ रंभ करि, आय^२ सपत्तिय वार ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १ स० । २ पा० का० भी ।

शब्दार्थः—तादिन तें=उसी दिन से । द्वै=दो प्रकार के, धर्म और गार्हस्थ्य । दुजनि=ब्राह्मणी । पदिय=पढ़ाई । उन आरम्भअ=उपको अध्ययन शुरू करने के लिये । रंभ=रंभारूपी । सपत्तिय=पहुँची, वार=वाला ।

अर्थः—उसी दिन से उन सब बालिकाओं को श्रेष्ठ मदना ब्राह्मणी ने धर्म और गार्हस्थ्य इन दोनों शास्त्रों का अध्ययन कराना शुरू किया । वहा पर वह रम्भा सयोगिता के रूप में आकर पढ़ने लगी ।

आय सपत्तिय वाल वर, वे दिखि चव सह वाल ।

मानौ रम-अलि अलिनमौ, ले आयहु गृह काल ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—वे=दो । चव=चतु, मदबाल=ममी बालिकाओं ने । रम-अलि=प्रमर रूपी पृथ्वीराज का प्रेम । अलिन को=प्रमरी रूपी सयोगिता को ।

अर्थ—वह बाला सयोगिता वहा आई, जिसे अन्य सब बालाओं ने अपने दोनों नैत्रों से देखा । उस समय वह ऐसी प्रतीत हुई मानों भ्रमर रूपी पृ०वीराज के यम रूपी प्रेम को ले भ्रमरी की भांति गृह में प्रवेश कर पाई हो ।

पदि संयोगि^१ सयोगवृत्त, विनय^२ सु देवह दाव ।

चक्ररुह चक्रसु,वेन बस, दिखि संजोगअन हाव ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ का० ।

शब्दार्थ—संयोगवृत्त=संयोग के नियम । देवह दाव=वश में करने को । चक्ररुह=चकित, स्तमित । संजोगअन=सयोगिता के ।

अर्थ—सयोगिता ने मदना ब्राह्मणी से संयोग के नियमों का अध्ययन किया और पति को वश में करने के लिए विनय का पाठ भी पढ़ा । उसकी वाणी को सुन और हावभावों को देख कर चक्र पाणि विष्णु भी वश में हो चकित (स्तमित) हो जाता था (अर्थात् चक्रपाणी भी उसे देख लेते तो चक्र चलाना भूल चित्र लिखे से रह जाते) ।

जाम एक निसि पच्छिली. दुजनिय दुजबर पुच्छ^१ ।

प्रात आप धर दिसि उडै, जे लच्छिन कहि अच्छ^२ ॥ २० ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थ—जाम=याम, प्रहर । पच्छिली=पिछली । दुजनिय=मदना ब्राह्मणी । दुज=द्विज, मदना के पति । लच्छिन=आपने देखलिये हैं, जानते हो ।

अर्थ—एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में मदना ब्राह्मणी ने अपने पति से पूछा कि रभारूपी सयोगिता अपने स्थान स्वर्ग को जिम सुप्रभात में उडकर जायगी, हे यक्ष रूपी पति क्या करके जायगी ? इसके बारे में आप जानते हों तो मुझे कहिये ।

कवित्त

इन लच्छिन सुनि बाल, नृपति करि रुधिर प्रकारह ।

बहु छत्रिय भुभिभ है, मुड^१ हर हार अवारह ।

गिद्ध सिद्ध वेताल, करै कृत्या कोलाहल ।

इह लच्छिन सुनि सच्च, बाल लच्छित जिन चाहल ।

सजोग फूत फूत नन दिग्न, ए कन्या जिम प्रथम तिम ।

कलहंत राज-छत्री सुवर, भवसि बात होवे सु मम^२ ॥ २१ ॥

ग्रा पा० १ का०, २ पा० का० ।

शब्दार्थः—लच्छिन=लक्षण । कंधिर प्रकारह=कंधिर कारह, खून-बहाने-वाले । कुम्भिर्न हैं=लडे गे । धारह=धारेंगे, धारण करेंगे, स्थान देंगे । सिद्ध=योगिनियें । लच्छिन=ज्ञान पाया हूँ । लच्छित=लक्षित । चाहल=चाहने मे । फूलफल=फूले फलेगो नहीं, सतान नहीं होगी । कन्या=कुमारी ।

अर्थः—तब ब्राह्मण-(सदना के पति) ने कहा कि इस बाला के लक्षण सुन-यह कितने ही-राजाओं का खून-बहाने वाली होगी, बहुत से क्षत्रिय लड़ेंगे । उनके मुखों को शिव अपने द्वार (माला) में स्थान देंगे । गिद्धनियाँ, योगिनियाँ, वैताल और कृत्यादि पिशाचिनियाँ युद्धस्थल में कोलाहल करेंगी । इस बाला ने जिसको चाहा है, उसी को देखकर मैं जान सका हूँ । सयोगिता के कोई संतान नहीं होगी । यह कुमारी पहले से-रंभा रूप में नि-संतान है, वैसी ही रहेगी । यह राज वशियों के लिये कलह-कारक है । मेरा यह भविष्य कथन हो कर रहेगा ।

दोहा

तिन कारन हों यत्त गुन, भुगति भुगति सह देन ।

सो कन्या पहुग कै, आय सपत्तिय एन^१ ॥ २२ ॥

ग्रा० पा० १ सं० ।

शब्दार्थ—गुन=समस्त पाया । भुगति भुगति=भोग और मोह । एन=घर ।

अर्थः—इसी कारण मैं यत्त रूपी द्विज यह भविष्य समझ सका हूँ । यह बाला भोग और मोह दोनों देने वाली होगी । अतः इस कन्या ने राजा पगु के घर इमीलिये आकर जन्म पाया है ।

जयति जग्य सयोग वर, दिखि लक्खन^२ अंग चार^३ ।

एक अलक्खन भिन्न है, सो कलहंतर सार^३ ॥ २३ ॥

ग्रा० पा० १, २, ३, पा० ।

शब्दार्थः—ति=स्त्रियें । जग्य=जग, मवार । चार=चार, गेष्ट । अलक्खन=कुलक्षण । कलहतर=कलह कारिणी । सार=सूक्ष्म ।

अर्थः—इसके श्रेष्ठ लक्षणों को देखने से ज्ञात होता है कि यह सयोगिता समार की वालाओं में विजयी है, किन्तु सुलक्षणों से भिन्न इसमें सूक्ष्म रूप में यही कुलक्षण है कि यह कलह कारिणी होगी ।

कलहतरि सुदरिय वर, अति उतग छिति रूप ।

तिन समान दुज पिक्खकै, मदन लम्भ तन भूप ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—उतग=उन्नत । छिति=पृथ्वी । रूप=सौन्दर्य । पिक्ख=देखकर । लम्भ=प्राप्त किया ।

अर्थः—यह कलह कारिणी सुन्दरि पृथ्वी पर अगने सौन्दर्य के कारण अति श्रेष्ठ है । अतः इसके तुल्य इसका पति कामदेव के समान शरीर धारी राजा (पृथ्वीराज) ही है, यह मैं देखकर समझ पाया हूँ ।

कवित्त

मदन वृद्ध वभनिय, प्रेह हिंडोल सँजोइय^१ ।

कनक डड परचड, इद्र इद्रिय वर जोइय ॥

परहि लत्त हिंडोल, दुन्ननि^२ उप्पम तिन पाइय ।

कनक खभ पर काम, चड चकडोल फिराइय ॥

लग्गे नितव विन्नी उवटि,^३ सो कवि इह उप्पम कही ।

सैसव पयान कै करत ही, काम अवगो^४ कर गही ॥ २५ ॥

प्रा० पा० १, २ स० । ३, टि० १ । ४ भी का० ।

शब्दार्थः—हिंडोल=झूला । डड=झड़ी । परचड=उन्नत । इद्रिय=इन्द्राणी । जोइय=देखा ।

चकडोल=झुलाया, टिनाया । विन्नी=वेशी, चोरी । उवटि=उलट २ कर, बार बार । अवगो=इक प्रवार का चावुक ।

अर्थः—मदना नामक वृद्धा ब्राह्मणी के घर पर सयोगिता झूला झूलती हुई ऐसी दिखाई देती थी, मानों उँची स्वर्ण की छड़ी हो । यदि उसे इन्द्र देख पाना तो वह उसे इन्द्राणी ही समझता । झूलने को जब वह पैरों के बल चढ़ाना थी तो मदना यही तुलना करती थी मानों कामदेव ने स्वर्ण स्तम्भ स्थित चन्द्रमा को झूलने पर रख कर झुलाया हो । उस समय उसकी बेणी उसके नितवों पर बार २ इस प्रकार लगती थी, मानों चलत तुरग-रूपी सयोगिता के शरीर से शिशुत्व के प्रयाण करते ही उसे शिथिल बनाने के लिए उस पर कामदेव रूसो अरुण-शिशुक ने चावुक उठाया हो (मारा हो) ।

दोहा

सजि सु पग वर व्याह कृत, बहु रचना गुन लाहु ।

वाल सु वय जिम वाल मुन, त्यों समुझै गुन चाहु^१ ॥ २६ ॥

प्रा० पा० १ स०

शब्दार्थः—सजि=तैयारी की जाने लगी । वर=श्रेष्ठ, सुंदर । व्याह कृत=विवाह कार्य । बहु रचना=विविध रचना । गुन=सौचकर । लाहु=उल्लास, उत्साह । मुन=मुनि । गुन=गुण, फल । चाहु=इच्छा, आशा ।

अर्थः—राजा पंगु (जयचन्द) उत्साह से राज कुमारी सयोगिता के विवाह-कार्य की तैयारी सोच समझ कर विविध सुंदर रचनाओं से करने लगा, इधर राजकुमारी की वय भी बालक मुनि के तुल्य दिखाई देने लगी । जैसे बालक मुनि गुण को समझकर ईश्वर प्राप्ति की इच्छा से बराबर आगे बढ़ता है, वैसे ही वह बालिका गुणों को समझ कर पृथ्वीराज को प्राप्त करने की इच्छा से आगे कदम बढ़ाने लगी (अर्थात् प्रेम की अधिक वृद्धि होने लगी) ।

कवित्त

एक सु पुत्तिय पग, देव दक्खिन^१ देवप्रह ।

मेनहीन माननी, हीन उपजैअ रभ^२ कह ।

मन मोहन मोहनी, निगम करि वत्त प्रकारं ।

आ समान इक्खियै, नाग नर सुर नहिं नार^३ ।

अक्खौ उमाह मगल विनय, धम्म सकल जिम मुगति मति ।

मुनि मत्ति गत्ति रत्तिय सुवर, त्रिधि त्रिवान निरमान गति ॥ २७ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० । २ का० । ३, टि० (३) ।

शब्दार्थः—देव=देवता, दक्खिन=दक्खिन, नहीं देखी । देवप्रह=उद मवन । मेनहीन=कामेच्छा जिसमें कम है । माननी=मानवती । हीन=अरिष्टकारी । उपजैअ=उपजना, प्रादुर्भाव होता । रभकह=रमा का । निगमकरि=शास्त्रोक्त । प्रकार=समान । आ=उसके । दक्खिये=देखोगई । नारं=नारी, स्त्री । अक्खौ=करता हूँ, वर्णन करता हूँ । उमाह=चंद की स्त्री गवरी का पर्याय उमा । धम्म=धर्म । मुगति=मोक्ष । मति=बुद्धि, चेष्टा । मत्ति=मनवत्सी । गत्ति=गति चान । रत्तिय=रत, स्नान । सुवर=अपने प्यारे में ।

अर्थः—पगुराज के एक ही पुत्री थी। वैसी स्त्री देवताओं ने इन्द्र भवन में भी कभी नहीं देखी थी। उसमें उस समय कामेच्छा कम थी किन्तु मान विशेष था। उस रम्भा का प्रादुर्भाव होना (पितृकुल और पति के लिये) अरिष्टप्रद था। शास्त्रोक्त बातों के समान ही वह मन मोहिनी स्वरूपा थी। उसके समान नाग, नर और देवताओं के यहाँ भी स्त्री नहीं देखी गई। कवि अपनी स्त्री से कहता है। हे उमा (गवरी) मैं उसके मंगल-विनय का वर्णन करता हूँ। उसमें (सयोगिता में) मोक्ष प्रद वृत्ति और सब प्रकार की धर्म की चेष्टा थी और उसकी गति मतवाली थी। विधाता के विधान से निर्मित की हुई उसके मन की गति अपने प्यारे में रत थी।

दोहा

सुकल पच्छ बभनि सु-कल, सुकल सु जुवति चरित्त ।

विनय विनय बभनि कहै, विनय सु मगल वृत्त ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—सुकल पच्छ=शुक्ल पक्ष। बभनि=ब्राह्मणी। सु-कल=श्रेष्ठ कांति वाली। विनय=विनम्र। विनय=वनना चाहिये। वृत्त=पाठ, प्रतिज्ञा।

अर्थः—शुक्लपक्ष में विविध श्रेष्ठ कला युक्त वह ब्राह्मणी उस उत्तम चरित्र वाली कांति युक्त युवति से कहने लगी। हे कुमारी-विनम्र वनना चाहिये। क्योंकि विनय ही मगल-प्रद वृत्त है।

मुग्ध^१ मध्य^२ प्रौढह^३ प्रकृति, सुबर वसीकर चित्त^४ ।

सुनि विचित्र बाला वनय, श्रवन स वदि नचित्त ॥ २९ ॥

प्रा० पा० १, २, २ पा० । ४ स० ।

शब्दार्थः—मुग्ध=मुग्धा। मध्य=मध्या। प्रौढ=प्रौढा। सु वर=अपने पति। वदि=कहना चाहिये। नचित्त=निश्चिततापूर्वक।

अर्थः—मुग्धा, मध्या और प्रौढा अवस्था प्रकृति से ही अपने पति के चित्त को वश में कर लेती है किन्तु हे जाना। मेरा कथन सुन — विनय ही सबसे विचित्र है। अतः निश्चित होकर पति के कानों में विनय वचन डालना चाहिये।

कवित्त

भुगति न मंगल विना, भुगति विन शकर धारी ।
 भुगति न हरि विनु^१ लहिय, नेह विनु^२ वाल वृधारी ।
 जल विन उज्जल नथि, नथि, त्रिमान ग्यान विनु^३ ।
 कित्ति नकर विनलहिय, छित्ति विनु-सस्त्र^४ लहिय किनु^५ ।
 विन मात मोह-पावै न नर, विनय विना सुख प्रसित तन ।
 संसार सार^६ विनयौ बड़ौ, विनय वयन मुहि श्रवन सुन^७ ॥ ३० ॥

प्रा० पा० १ से ५ पा० । ६ मी० पा० । ७ मी० ।

शब्दार्थः—भुगति=भक्ति । शंकर धारी=राक्षस को हृदय में धारण करना, हृदय में स्थान देना ।
 उज्जल=उज्ज्वलता । नथि=नहीं । त्रिमान=निर्माण । छित्ति=पृथ्वी । किनु=किसी ने । मोह=ममत्व ।
 प्रसित=नहीं प्रसता, नहीं होता ।

अर्थः—शुभ कामना के बिना कोई युक्ति नहीं, भक्ति के बिना शिव-हृदय-स्थित नहीं होते, ईश्वर की कृपा के बिना मुक्ति नहीं मिलती, स्नेह के बिना स्त्री व्यर्थ है, जल के बिना निर्मलता नहीं आती, ज्ञान के बिना कोई निर्माण नहीं हो सकता, हाथों द्वारा कार्य किये बिना किर्ति नहीं प्राप्त की जा सकती, राख के बिना किसी ने पृथ्वी नहीं प्राप्त की, माता के बिना मनुष्य वास्तविक ममता नहीं पा सकता और विनय बिना शरीर सुखी नहीं होता । इस पृथ्वी पर सबसे बड़ा विनय ही तत्व है । अतः मेरा यह वचन हे कुमारी-तू श्रवण कर ।

दोहा

न भवति मान संसार गुन, मान दुख को मूल ।
 सो परिहरि संयोग तू, मान सुहागिनी सूल ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—नभवति=नहीं प्राप्त होता । परिहरि=छोड़ दे ।

अर्थः—संसार में मान (गर्व) करने से मनुष्य गुण प्राप्त नहीं कर सकता । मान ही सब दुखों का मूल है अतः हे मयोगिता तू यह मान सुहागिनियों के लिये शूल स्वरूप है उसे छोड़ दे ।

एक विनय गरुअत्त^१ गुन, अब्वह विनयति सार ।

शीतल मान सु जपिअै, तौ बन दमै तुखार^२ ॥ ३२ ॥

प्रा० पा० १, २ भी० ।

शब्दार्थः—गरुअत्त=बड़ा, अब्वह=सब । तुखार=तुषार, दावाग्नि ।

अर्थः—गुणों में विनय ही सबसे बड़ा गुण है, सब तत्वों में विनय ही महातत्त्व है, यदि मान शीतल भी हो तो भी तुषार-रूप है, जो (प्रेमरूपी) बन को दग्ध कर देता है ।

विनय महा रस भति गुन. अबगुन विनय न कोइ ।

जोगीसर विनय जु पढै, मुगति सु लम्भै सोइ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—भति=भोति, । सु=वही ।

अर्थः—इस विनय में महान रस और भोति २ के गुण है इसमें किसी प्रकार का अवगुण नहीं है । योगीश्वर भी विनय का पाठ पढ़ते हैं । वे ही मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं ।

विनयन ही जो पखियन, तरु नहिं दोख दियत ।

भल मक्खै^१ पत्तह हतैं, मानय गुनय गहत ॥ ३४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—विनयन=ही=विनम्र होने से ही । दोख=दोष । मानय=समान करता है ।

अर्थः—विनम्र होने से ही जो वृक्ष पक्षियों को दोष नहीं देता उनके फल खाने और पत्तों को नष्ट करने पर भी वह समान करता है । यही तो उसका सच्चा गुण प्रहण करने योग्य है ।

इक्कै^१ विनय सुभग गुन^२, तजितन^३ विनय अरिष्ट ।

जाने घर सुना हुआ, भोजन ता करि मिष्ट ॥ ३५ ॥

प्रा० पा० १, २ ३ पा० ।

शब्दार्थः—इक्कै=एक ही । सुभग=सुन्दर, तजितन=छोड़ देने वालों को । भोजन=भोजन ।

अर्थः—विनय ही एक मान सुन्दर गुण है, उसको छोड़ देना अपना अरिष्ट करना है । विनय रहित शरीर मृते 'प्र क' तत् ३ है, जिसमें ममुर भोजन हो तो भी वृथा है ।

मो पुच्छै जौ सुन्दरी, तौ जिन तजै सुरग ।

जिम जिम विनय अभ्यासिहै, तिम तिम पिय मन पंग ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—पुच्छै=पूछती है। सुरग=श्रेष्ठ रंग, सुन्दर प्रेमभाव। जिम जिम=जैसे २। तिमर=तैसे २। पंग=पंथ कुमारी (संयोगिता)

अर्थः—हे सुन्दरी। यदि तू उसे पूछती है तो कहती हूं कि तू अपने प्यारे से श्रेष्ठ प्रेम भाव मत छोड़ना। हे पंगुजा। तू जैसे २ विनय का अभ्यास करती जायगी, वैसे २ ही प्रियतम के मन में स्थान पाती जायगी।

कवित्त

विनय देव रंजियै, विनय बहु विद्य देह गुर ।

विनय द्रव्य लहिसेब, विनय विष तजै श्रप सुर ॥

विनय दत्त अदतार, विनय भरतार हार चर ।

विनय करह करतार, विनै संसार सार सुर ॥

वय चढत चढ़ै विनया सु बर, सब शृंगारति भार वपु ।

वंभनिय भनै संजोग सुनि, विनय विना सब आर तपु ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—रजिये=प्रसन्न किये जाते हैं। विष=विषा। गुर=गुरु। सेब=मेवन करने से, अपनाने से। श्रप सुर=नागराज। दत्त=उदार। अदता=कृपण। भरतार=गति। कह=हाथमें, वश में। करतार=सृजता। सुर=स्वर, वाणी। चढत=चढती हुई। चढ़ै=बढ़ै। वपु=शरीर। भनै=कहती है। आर=वृथा। तपु=तपस्या।

अर्थः विनय द्वारा ही देवता प्रसन्न किये जाते हैं, विनय ही विविध विद्या गुरु से दिलाती है, विनय को अपनाने से ही द्रव्य की प्राप्ति होती है, विनय के द्वारा न केवल साधारण सर्पों का ही अपितु स्वयं नागराज का विष भी दूर किया जा सकता है, विनय द्वारा ही कृपण को उदार बना लिया जाता है, विनय द्वारा ही स्त्री पति के हृदय का हार हो जाती है, विनय से स्वयं विधाता भी वश में हो जाते हैं अतः विनय-वाणी ही संसार में तत्त्व है। यदि बढती हुई आयु के साथ साथ श्रेष्ठ विनय भी बढ़ै तो, अन्य सब शृंगार इस शरीर के लिये भार-तुल्य हो जाते हैं [अर्थात् विनय से अलंकृत सुन्दरी को अन्य शृंगार की

आवश्यकता नहीं] मदना ब्राह्मणी ने कहा कि हे सयोगिता सुन, बिना विनय के सब तपस्या वृथा है ।

दोहा

विनय उचारन चत्र^१ मुख, दिखिखय सारन सार ।

काम तत्त^२ सुद्धै सगुन, कत करै उरहार ॥ ३८ ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ पा० ।

शब्दार्थः—चत्र=चतुर । सारन सार=सब तत्वों में श्रेष्ठ तत्व । काम=काम शास्त्र । सुद्धै=सोज पाया । सगुन=समझ लेने पर । कत=पति ।

अर्थः—चतुर पुरुषों ने इसे सब तत्वों में श्रेष्ठ तत्व माना है । इसी से वे मुख द्वारा विनय वाक्य ही उच्चारण करते हैं । काम-शास्त्र में भी यही तत्व रूपी जाना गया है । इसे समझ लेने वाली सुन्दरी को पति अपने हृदय का हार बना लेता है ।

गाथा

मुख पित्तौ पित^१ रोगै, लगै विषमाइ सकर मुखय ।

ज तुर-पये सुवाले ^२, काम रत्ताय मोहनो-धरय ॥ ३९ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—पित्तौ=पीला । विषमाइ=विष तुल्य । ज=जैसे ही, उसी प्रकार । तुर-पये=आतुर प्रेयसी । सुवाले ^२=हे सयोगिता । काम रत्ताय=काम में लीन हो जाती है । मोहनो-धरय=वास्तविक प्रेम को नहीं धारण करती ।

अर्थः—हे सुवाले ! जैसे पित्त रोग में रोगी का मुख पीला पड़ जाता है और मुख में शक्कर दीजाय तो भी वह विष तुल्य लगती है, इसी प्रकार आतुर-प्रेयसी काम में लीन हो जाती है (काम रूपी रोग के कारण उसके प्रत्येक अंग में काम दृष्टि गोचर होता है) किंतु वह वास्तविक प्रेम को धारण नहीं कर पाती (वास्तविक प्रेम-शक्कर रूपी मधुर विनय के अन्तर्गत ही है और काम वासना से वश में करना क्षणिक है । विनय द्वारा प्राप्त किया हुआ प्रेम अक्षुण्ण है । ऐसे मधुर स्वाद को वह नहीं समझ पाती ।

दोहा

जिन त्रिय लभ्यौ विनय-रस, -सुख लब्धौ तन मभ ।

विनय बिना सुंदर इसी, -विनु दीपक ग्रह संभ ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—लभ्यौ=प्राप्त किया । विनय-रस=विनय द्वारा प्रेम । लब्धौ=प्राप्त किया । इसी=इस प्रकार । सभ=संध्या ।

अर्थः—जिस स्त्री ने विनय द्वारा पति प्रेम प्राप्त किया है उसी को जीवन में शारिरिक सुख प्राप्त हुआ है । विनय रहित सुंदरि सी प्रकार होती है जिस प्रकार संध्या होने पर दीपक रहित घर असुंदर (भयानक) दीख पड़ता है ।

—कवित्त

ज्यों विन दीपक ग्रह, जीव विनु देह पुकार ।

देवल प्रतिम बिहून, कंत विनु^२ सुन्दरि सार ॥

लज्जा विन^३ रजपूत, बुद्धि विनु^४ ज्यों गुन जानिय ।

वेद बिना वर विप्र, करन विनु^५ कित्ति न ठानिय ॥

विनय बिना सुन्दरि अधम^६, कंत देइ दूनौ सु दुख ।

संजोगि भोग विनयौ वडौ, लहै विनय मगल सु सुख ॥ ४१ ॥

प्रा० पा० १ से ५ पा० । ६ सं० ।

शब्दार्थः—ग्रह=घर । प्रकारं=तरह । देवल=देवालय । प्रतिम=प्रतिमा, मूर्ति । बिहून=बिना, रहित । सारं=श्रेष्ठ भोग=पति-मिलन ।

अर्थः—बिना दीपक का घर, प्राण बिहीन शरीर, प्रतिमा रहित-देवालय, श्रेष्ठ होती हुई भी बिना पति के सुन्दरी, बिना लज्जा का क्षत्रिय, बुद्धि रहित गुण, बिना वेदाध्ययन के ब्राह्मण और हाथों को बढ़ाये बिना कीर्ति की लालसा करने वाला, जिस प्रकार अधम माना गया है, उसी प्रकार विनय-रहित सुन्दरी भी अधम है । वह अपने स्वामी को दुगुना दुःख देती है । अतः हे सयोगिता, पति मिलन के समय स्त्री के लिये विनय ही सबसे विशेष हितकारी है । अतः विनय-मगल के द्वारा ही श्रेष्ठ सुख प्राप्त किया जा सकता है ।

गाथा

वेदयौ वचित विप्पो^१, भेषज बहुलोइ प्रथयं गुनय ।

सह^२ जजार सु जान, जुन्हाई नेव जानय तत्त ॥ ४२ ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ पा० ।

शब्दार्थः—विप्पो=विप्र । भेषज=दवाई । बहुलोइ=विशेष । गुनयं=गुणना, पढ़ना, समझना । सह=सब । नेव=नहीं । तत्त=तत्त्व ।

अर्थः—वेद वचित विप्र रोगी की भांति है । उसके लिये विशेष ग्रन्थों का अध्ययन ही दवा है । उसी तरह सासारिक जाल में पड़ी हुई स्त्री के लिये विनय ही औषधि है । हे संयोगिता ! तेरी माता जुन्हाई उन सब सासारिक जालों में ही कुशल है, किन्तु वह इस विनय रूपी तत्त्व को नहीं जानती ।

त तू विनय बिहूनी, य^३ दिट्ठाइ सु दरी तनय ।

यो वासत^४ काल, पत्र विना तरवर रचय ॥ ४३ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—त=तैसे ही, उसी प्रकार । बिहूनी=रहित । य=इस तरह । दिट्ठाइ=दीख पड़ता है । वासत=वसत । काल=समय । पत्र=पत्र । तरवर=वृक्ष ।

अर्थः—उसी से उत्पन्न हे सुन्दरी संयोगिता ! तू भी उसी की तरह विनय रहित है इसलिये तेरा शरीर इस भांति दिखाई देता है, जैसे वसतागम के प्रारम्भ में घृत पत्तों से रहित हो ।

दोहा

बहु लज्जा कहि जात त्रिय तन मडन अवलान ।

काल वसतरु^१ बाल गृह, सो मतिमत सुजान ॥ ४४ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० ।

शब्दार्थः—बहु=विशेष । अवलान=अवलानों का । मतिमत=बुद्धिमत्ता ।

अर्थः—विशेष लज्जा ही अवलान कहलाने वाली स्त्रियों के शरीर की शोभा कही जाती है । उसके साथ २ यदि उनमें बुद्धिमत्ता और चतुराई आजाय तो उस बाला के गृह में और वसत ऋतु में माम्यना आजाती है [अर्थात् लज्जा, बुद्धि, और पटुता के कारण स्त्री का घर फलता-फलता दिखाई देता है] ।

कवित्त

विनय सार ससार, विनय ब्रंध्यौ जु जगत वस^१ ।
 विनय काल निक्काल, विनय संसार सूर रस^२ ॥
 विनय विना^३ संसार, पलक लम्भै न सुखल तनु ।
 जिही जाइ सोइ^४ सत्तु,^५ ग्राह संप्रह्यौ देह जनु ॥
 नृप रीति विनय लग्गी रवनि, विनय उच्चारन चार रस ।
 विनय विना सुंदरि इसी, पसुन^६ होइ उद्यान अस^७ ॥ ४५ ॥
 प्रा० पा० १ से ७ पा० ।

शब्दार्थः—निक्काल=कलत्र मे रहित, काल कर्म मे रहित, नाशकारक प्रकृति से रहित । सूर=वहादुर । रस=प्रेम । सत्तु=शत्रु । संप्रह्यौ=इस लिया हो, पकड़ लिया हो । विनय लग्गी=विनय करने वाले से ही लगे रहते हैं (प्रेम करते हैं) । रवनि=रमणि । चार=चार श्रेष्ठ । इसी=इस प्रकार । पसुन=प्रसून, पुष्प । उद्यान=वागं । अस=जैसा, वैसा ।

अर्थः—विनय ही केवल संसार में सार है और सारा ससार विनय द्वारा आवद्ध है । विनय, काल को भी नाशकारक प्रकृति से रहित कर देती है । विनय वहादुर से प्रेम (सधि) करा देती है । विना विनय के संसार का कोई भी शारीरिक सुख प्राप्त नहीं कर सकना । विनय-रहित पुरुष जिसके पास रायगा वह उसका शत्रु हो जायगा । उस समय उसे ऐसा लगेगा मानों ग्राह ने उसके शरीर को पकड़ लिया हो । हे रमणी राजकुमारी ! रागाओं की रीति है कि वे विनय युक्त से ही लगे रहते हैं (प्रेम करते हैं) । विनय-युक्त उच्चारण करने से ही उनके द्वारा श्रेष्ठ प्रेम की पूर्ति हो जाती है । विनय हीन सुन्दरी उसी प्रकार है जिस प्रकार उद्यान में (बगीचे में) खिला हुआ क्षणिक पुष्प (खिल जाने पर पुष्प तोड़ लिया जाता है और कुछ ही समय में उसकी सुवास, सरसता सुन्दरता आदि नष्ट हो जाती है इसी प्रकार विनय रहित मान वाली स्त्री पति से तिरस्कृत हो नष्ट हो जाती है) ।

दोहा

विनय सुरम बभनि कहै, - पढ़न सु पग कुआरि ।
 बल्लह^१ वसि^२ दूजै सुवल, तौ बल्लह^३ वसि^४ नारि ॥ ४६ ॥
 प्रा० पा० १ से ४ पा० ।

शब्दार्थः—सुरस=सरस । पढन=पढ़ लिया, पढ़ा । वल्लह=बल, शक्ति । वसि=वश । दूर्जे=अन्य । सुवल=सबल, बलशाली । वल्लह=बल्लभ, प्यारा ।

अर्थ—मदना ब्राह्मणी ने कहाः— हे पंगु-कुमारी । जो विनय पाठ तू ने पढ़ा है वह अति सरस है । क्योंकि जिस (पृथ्वीराज) ने अपनी शक्ति द्वारा अन्य बलशाली वीरों को वश में कर लिया है वह तेरा प्रियतम तेरे वश में हो जायगा ।

विनय पढ्यौ सजोगि वर, तन में विनय सुहंत^१ ।

ज्यौं जल वलि^२ जलहीं जियै, विनय जियै वर कत ॥ ४७ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—सुहत=सहाती है, शोभित होती है । वलि=लतिका, बेल । जलहीं जियै=जल से ही पोषण होती है । जियै=जिय में ।

अर्थ—हे सयोगिता । तू ने श्रेष्ठ ढंग से विनय पाठ पढ़ा है । वह तेरे शरीर में इस प्रकार सुशोभित है जिस प्रकार जल का लता जल में रहती हुई पोषण पाती है । इसी विनय के कारण तू भी अपने श्रेष्ठ पति के जो मे वसेगी ।

दोहा

होत प्रात तब पठन तजि, धाइ हिंडोलन^१ आइ ।

इय^२ चरित्त दुज दिक्खि^३ कै, पछै^४ जुगिनिपुर^५ जाइ ॥ ४८ ॥

ग्रा० पा० १, २, ३ पा० ४, ५ भी० ।

शब्दार्थः—पठनतजि=पढ़ाई समाप्त होने पर । इय=यह । दुज=द्विज-दम्पती, मदना और उसका पति । पछै=पश्चात् । जाइ=रवाना हुए ।

अर्थ—विनय-पाठ की पढ़ाई समाप्त हो जाने पर प्रात के समय सयोगिता भूलें पर चढ़ कर भूलने लगी । उसका यह चन्चल-चरित्र देखने के पश्चात् वे द्विज-दम्पति (मदना और उसका पति) दिल्ली को और रवाना हुए ।

संयोगिता नेमाचरण

(समय ४४)

दोहा

दूत दोइ जुगिनि पुरैं, गय कनवज फिरि दिक्खि ।
दिल्लीवै दिल्ली चरित; कहैं पग सों सिक्खि ॥ १ ॥

१ का०, भी०, पा०, घ० ।

शब्दार्थः—जुगिनि पुर=दिल्ली । दिल्लीवै=दिल्लीश्वर । सिक्खि=सख्यमात्र से, शिवा रूप से ।

अर्थः—दो दूत दिल्ली नगर से कन्नौज गए और दिल्लीपति तथा दिल्ली के हालात (वृत्तांत) राजा जयचंद से इस प्रकार कहेः—

कवित्त

एक देह पट्टपंग वंधि, निहडर^१ निसंक भर^२ ।
दुतिय देह पञ्जून, सुरैम कूरंभदेव वर ।
तृतीय देह तूअर^३ पहार, पांवार सलक्खी ।
चतुर देह दाहिम्म, धरन नरसिह सुरक्खी ।
पंचमी देह कैमास मति, वर रघुवंस कनक्क विय ।
छट देह गौर गुज्जर अठिल, लौहानौ लंगुरि स विय ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ घ० । २, ३ पा० का० घ० ।

शब्दार्थः—बंधि=बन्धु, भाई । सुरैम=श्रेष्ठ घोषणा करने वाला, श्रेष्ठ रूप से युद्ध का आरम्भ करने वाला । सलक्खी=सलखानी, सलख वंशज । मति=बुद्धि ।

अर्थः—हे राजा पंगुराज ! राजा पृथ्वीराज के अग्र-स्वरूपी सामंत निम्न हैंः—एक तो आप ही का सगेत्री बंधु निर्भय योद्धा निहडुर राय, दूसरा श्रेष्ठ योद्धा कलवाहा पञ्जून, तीसरा पहाड़राय तोमर और सलखानी प्रमार, चौथा चामडराय, और पृथ्वी का रत्नक वीर नृसिंह, पाचवा श्रेष्ठ मतिवाला कैमास और कनकराय रघुवंशी, छठा केहरी गौड़, रामराय बडगुज्जर तथा लौहाना आजान बाहु और लंघरीराय हैं ।

कवित्त —

तत्र सुमत परधान, पग सब सेन बुलाइय ।
 जु कछु मत मंतिरै, मत चहुआन सु घाइय ॥
 प्रथम मूल दिजिये, व्याज आवे कै नावै ।
 जिनहि नाहि दिजिये, लाभ सुन्दरी अकरावै ॥
 मो मत मत चितै नृपति, बाल स्वयंवर किजिये ।
 ता पच्छ सत्थ^२ एकत्तई फिरि दुज्जन भिरि भजियै ॥ ३ ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० का० घ० । २ पा० ।

शब्दार्थः—मतिरै=करिये । घाइय=नाश । नावै=नहीं आवे । अकरावै=एँठता हो । पच्छ=पीछे, बाद में, पश्चात् । सत्थ=साथी-समूह । एकत्तई=एकत्रित है ही ।

अर्थः—यह सुन राजा पगु ने सम्पूर्ण सेना सहित मन्त्री सुमन्त को बुलवाया और कहा कि जो कुछ भी मन्त्रणा की जाय, वह चौहान को बिनष्ट करने की ही होनी चाहिये । प्रथम मूल वन का चुकारा (शत्रु की की हुई करतूतों का भुगतान) तो करही देना चाहिये । सूद (व्याज) आवे या नहीं (शेष दण्ड दिया जा सके या नहीं) उसकी कोई परवाह नहीं । जो अभिमानी हो, उसको सुन्दरी (कुमारी) की प्राप्ति का लाभ नहीं देना चाहिये । तब मन्त्री ने कहा — हे राजन ! यदि मेरी सम्मति पर विचार करते है तो प्रथम आर कुबार का स्वयंवर कर दीजिये । उसके पश्चात् अपना सब साथ (सैन्य समूह) एकत्रित है ही, उसके बल पर शत्रु से भिड़कर उसे नष्ट करना चाहिये ।

दोहा

इतनी बात जैचद सौ, कही सुमत प्रधान ।

वत^३ मन्तो जैचद ने, आर मत भए आन ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—वत मन्तो=बात मानली ।

अर्थः—मन्त्री सुमन्त ने इतनी बात राजा जयचद से कही—जिसे राजा जयचन्द ने मान लिया और मन ही मन अनेक बातों पर विचार करने लगा ।

मानि मंत पट्टपंग ने, महल कहल उठि जाइ ।

वर संवर संजोग को, मुच्छि जुन्हाई आइ ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—कहल=कष्ट, उद्विग्नता । सवर=स्वयंवर ।

अर्थः—राजा पंगु ने सुमंत की बात ठीक समझी और उद्विग्न होकर उठा और महल में जा रानी जुन्हाई से संयोगिता के स्वयंवर के सम्बन्ध में पूछा ।

मुच्छ^१ सु राजन मुच्छि^२चित, मुच्छि^३ विलम्ब न घोर ।

पुरुष जु क्रम २ सचरै, नेन स तप्पन^४ पीर ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० १, २, ३ पा० । ४ दे० ।

शब्दार्थः—मुच्छ^१=मुचि, पवित्र, । सचरै=जाते हैं ।

अर्थः—रानी जुन्हाई ने कहा —हे राजन् । आप और आपका चित्त तथा आपका नहीं ढिगने वाला धैर्य पवित्र है किन्तु जन्म लेने वाला पुरुष क्रमशः ससार से जाता है । यह नैत्र ही जलन और पीडा के कारण हैं (ससार का यह असत्य दृश्य नेत्रों से ही देखा जाता है और उसी के कारण दुःख प्राप्त होता है अत अन्य कार्यों के पूर्व संयोगिता का पाणिग्रहण कर दीजिये) ।

गाथा

चंचल चित्त प्रचारी, चंचल नैनीय चंचला बेनी ।

थावर चित्त सँजोई, थावर गति गुंझ^१ गमाही ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १ का० पा० घ० दे० ।

शब्दार्थ—प्रचारी=प्रचारिका । थावर=स्थावर, स्थिर । सँजोई=संयोगिता । गुंझ=गुंझ । गमाही=गमन कराया, भेजा ।

अर्थः—तब राजा जयचंद ने एक चंचल चित्त वाली प्रचारिका को जिसके नैत्र चंचल और बोलने में कुशल थी, उसको स्थिर चित्त और स्थिर गति वाली संयोगिता के पास गुप्त रूप से (सम्मानने को) भेजा ।

कवित्त

दे वर सेन सजोगि^१, सखी सहचरि नम बुल्लिय ।

अवुझ वात^२ वज्रपात, काम बेमो दुख मुल्लिय ।

परममाद^३ की^४ कित्ति, ताहि गुंगो^५ गुन गावै ।

वक्कि पुत्त^६ रस चढ़त, कन हीनह समझावै ।

सहचरिय बतनि सुन्निय सुवर, चित चल चित बत्तन वक्य^७ ।

वर भई समझि संजोगि पै, फिरि उत्तर तिन तब्व दिय ॥ ८ ॥

प्रा पा १ का घ । २ घ । ३ भी । ४, ६ पा. । ५, ७ पा का घ ।

शब्दार्थः—दे=देती हुई, करती हुई । सेन=सकेत । अयुभ=अयानी । काम=कामदेव, (कामदेव स्वरूपी पृथ्वीराज) । वेमो=वहम, भ्रम । परमाद=प्रमादी । गु गो=गुंगा । वक्कि=वध्या । कन-हीनह=कानों से बहरा, बधिर । चित=चितना, देखना । वक्य=बकने लगी । समझि=सुध ।

अर्थः—वह प्रचारिका सयोगिता के पास जाकर उसकी और मंकेत करती हुई कुमारी की सखी सहेलियों से कहने लगी । अयानेपन की बात वञ्च तुल्य है । अहो । इस कुमारी ने कामदेव के भ्रम में पडकर (पृथ्वीराज को कामदेव का रूप मानकर) आने वाले (पिता और पति पत्न के) दु खों को भूला दिया है । उस प्रमादी (पृथ्वीराज) की कीर्ति का गुणगान गूगों द्वारा कराना चाहती है । वध्या के पुत्र को यह रस-पाठ पढ़ा रही है । बविर को सदुपदेश दे रही है । वह मव की और देखती हुई चित्त को विचलित कर देने जैसी इधर-उधर की बातें करने लगी । उसे उस समय सब सहचरियाँ सुनती रहीं । जब सयोगिता को प्रचारिका की बातों से सुध आई (पृथ्वीराज के ध्यान में चेतना शून्य थी सो सचेत हुई) तब उसने उत्तर दिया ।

दोहा

जो वधे पित सकरह, जे खड्डे पित लोन ।

ते वदीजन^१ वापुरे, बरै संजोगी कोन ॥ ९ ॥

प्रा० पा० १ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—पित=पितृ, पिता । सकरह=माँकलों से, जर्जर से । खड्डे=झाया । लोन=नमक । वदीजन=वैदी, और स्तुति पाठक ।

अर्थः—कुमारी कहने लगी —प्रचारिका सुन, जिनको मेरे पिता ने 'साकलों से खाया है और जिन्होंने मेरे पिता का नमक खाया है वे दोनों वदीजन अर्थात् पिता

के कैदी और पिता के स्तुति पाठक हैं। उनमें से संयोगिता को कौन वरण कर सकता है ? (अर्थात् मेरे पिता द्वारा केवल पृथ्वीराज ही साकलों से नहीं बाधा गया है और न उसने पिता का ही नमक खाया है अतः वही एक वरण करने योग्य है) ।

रे सह सह सहचरिय गुन, का जानौ कुल वत्त ।

जे मो पित बापह कहै, ते मो बधव भत्ता ॥ १० ॥

शब्दार्थः—कुल वत्त=कुल की बात, कुल की कहानी। बापह=बाप, पिता। भत्त=भ्रत्य, दास।

अर्थः—हे दासियों ! तुम सब में केवल दासत्व का ही गुण है तुम कुलकानी की बातों को क्या समझती हो ? ये सब सेवा में रहने वाले राजा लोग मेरे बाप (पिता) कह कर संबोधित करते हैं। वे तो मेरे भाई और दास के तुल्य हैं (उनसे मेरा वरण कैसे हो सकता है) ।

तिहि पुत्ति सुनि गन इतौ, तान वचन तजि लाज ।

कै वहि गंगहि संचरौ, (कै) पानि प्रहण पृथिराज ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—तिहि पुत्ति=उसी राजा जयचन्द की मैं पुत्री हूँ। संचरौ=समाप्त हो जाऊँ।

अर्थः—हे प्रचारिका सुन। मैं उस राजा जयचन्द की पुत्री हूँ और मेरे में वही कुलीनता के गुण हैं अतः उन्हीं गुणों के कारण पिता के वचन और लज्जा को मैंने छोड़ी है। मेरी प्रतिज्ञा है कि या तो गंगा में डूब कर मरूंगी या पृथ्वीराज से ही पाणिप्रहण करूंगी।

सुनत राइ^१ अचरजिज किय, हियै मन्निअन राव ।

नृप वर औरहि^२ समवै, दैवै अवर सुभाव ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ पा० का० घ० ।

शब्दार्थः—राइ=राजा, जयचन्द। मन्निअन=मानलिया। राव=राजा जयचन्द। समवै=सम्भावना करता हूँ। दैवै=देव, ईश्वर। अवर=और ही। भाव=इच्छा।

अर्थः—यह बात प्रचारिका ने जब जाकर राजा से कही—तो जयचन्द ने आश्चर्यान्वित होकर उस लोकोक्ति को सत्य माना और कहा, मैं किसी अन्य ही वर की सम्भावना करता हूँ किन्तु देव (ईश्वर) के मन में और ही कुछ भाव (इच्छा) है।

तत्र पगुरि मन पंगु करि, धाइ स बुझिभी बत्त ।

तुम पुत्री गुन जानि हौ, करहु दूरि हठ इत्त ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—इत्त=इस समय ।

अर्थः—यह जानकर पगुकुमारी के मन को कमजोर करती हुई (मन के विपरीत कहती हुई) सयोगिता की धाय (धातृ) उससे जाकर पूछने लगी (समझाने लगी)—हे कुमारी ! तुम गुणों को जानने वाली हो । अतः इस समय इस हठ को दूर कर देना ही अच्छा है ।

अनदिठ^१ वृत लीजे नहीं, तात मात वरजन्त ।

पुच्छि^२ मनोरथ पुज्जि है, मानि सीख धरि मन्त ॥ १४ ॥

ग्रा० पा० १, २ का० भी० घ० ।

शब्दार्थः—अनदिठ=बिना देखे । वरजन्त=निषेध करने पर । पुच्छि=पूछकर । सीख=शिक्षा । मन्त्र=मन्त्रणा ।

अर्थः—हे कुमारी ! बिना देखे और माता पिता के निषेध करने के बाद कोई प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिये । माता पिता को पूछ कर जो मन में मनोरथ किया जाता है वही पूर्ण होता है । अतः मेरी इस शिक्षा और मन्त्रणा को तू मान ले ।

गाथा

मुगधे मुगधा रमया, उवर जे म्यन^३ रस एवी ।

लहुआ लुहान पुत्त, तू पुत्ती राज प्रेहाय ॥ १५ ॥

ग्रा० पा० १ दे० ।

शब्दार्थः—मुगधा रमया=रम म (प्रेम में) मग्न है । उवर=हृदय स्थित । म्यन=मिन्न । लहुआ=खूनी और लोहकार । लुहान=खूनी, लोहकार पुत्त=पुत्र । पुत्ती=पुत्री । प्रेहाय=पृह में ।

अर्थः—हे मुग्धे ! तेरे हृदय में जो वसा हुआ है और तू जिसके रस (प्रेम) में लीन है, वह अन्य ही रस (वीर रस) में लगा हुआ है । वह स्वयं खूनी और खूनी का पुत्र है । तेरी और उसकी समानता कैसे हो सकती है ? तू तो राजकुमारी है (यहा लहुआ और लुहान “शब्द” श्लेष युक्त है) । जिनका

आशय खूनी के अतिरिक्त लोहकार भी होता है। घाय ने श्लेष में यह भी ताना मारा है कि वह स्वयंवर लोहकार और लोहकार का पुत्र है तू तो राजकुमारी है।

कवित्त

जिहि लुहार मुनि दुत्त, साहि सङ्कर गढि बंध्यौ ।

जिहि लुहार गढि खग, पंग जगह घर रुंध्यौ ॥

जिहि लुहार सांडसी, भीम बालुक^१ अहि साहिय ।

जिहि लुहार आरन्त, बरे बर मानस गाहिय ॥

पावक सवर बर नैरि^२ सह, अरनि मंडि जिहि बारयो ।

अवमूत भविकखत व्रतमनह, कुल चहुआनह तारयो ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १, २ घ० ।

शब्दार्थः—लुहार=लोहकार । दुत्त=दुत, शीघ्र । साहि=शाह । सङ्कर=सांकल । गढि=बढ़कर । जगह=घर=यज्ञस्थान । सांडसी=संडामी । बालुक=बालुकाराय उपाधि या बाल्यावस्था वाला । अहि=सर्प । साहिय=पकड़ा । आरन्त=एरण बरे=जलाई, प्रज्ज्वलित श्री । वर=व्रत, शक्ति मानस=मनुष्य । गाहिय=कुचल दिया । पावक=अग्नि । सवर=सवग्ता, प्रताप । नैरि=नयर, नगर । अरनि मंडि=शत्रुओं से युद्ध करके भविकखत=मविष्यत् । व्रतमनह=वर्तमान ।

अर्थः—हे धातु ! उस लुहार (पृथ्वीराज) के चरित्र सुन- उस लुहारने ऐसी साकल घड़ी कि जिससे शीघ्र गौरीशाह बांधा गया उसने ऐसी तलवार बनाई कि जिससे पंगुराज (मेरे पिता) का यज्ञ-स्थान रोंधा गया । उसने ऐसी संडासी बनाई कि जिससे सर्प रूपी बालुक भीम पकड़ा गया । उसने ऐसी एरण प्रज्ज्वलित श्री जिसमें कितने ही पुरुषों की शक्ति कुचल दी गई । उसने अपने प्रतापानल द्वारा शत्रुओं के समस्त श्रेष्ठ नगरों को युद्ध करके जलादिया उसने इस पृथ्वी पर जो हो चुके हैं, जो विद्यमान हैं और जो होंगे उन चहुआन कुल में अवतरित वीरों का उद्धार किया है ।

दोहा

अथवा राजन राज प्रह, अथवा माय लुहानि ।

विधि वधिय पट्टल सिरह, इय^३ मुखगध्रव जानि ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १ घ० ।

शब्दार्थः—माय=माता । लुहानि=खूनी (पृथ्वीराज) । पट्टल=लेख पत्र । इय=यही । गधव=यक्ष-यक्षिणी [मदना और उसका पति] ।

अर्थः—हे माता । मैं या तो पिता के राज गृह में ही कौमार्य व्रत धारण करके रहूँगी या उस रक्त-रजन करने वाले (खूनी) के घर में ही रहूँगी । यह विधाता ने मेरे भाग्य पर लेखपत्र लिख कर बांध दिया है और यही प्रिय-वाक्य मैं गधर्व (यक्ष स्व-रूपी मदना और उसके पति) के मुख से सुन चुकी हूँ ।

श्लोक

नमो राजन संवादे, नमो गुरुजन आग्रहे ।

वरमेक स्वयं देहे, नान्यथा प्रथिराजय ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—राजन=जयचंद । आग्रहे=आग्रह पूर्वक कहने पर ।

अर्थः—पिता ने जो सवाद छेड़ा है उसको तथा गुरुजन के आग्रह को मैं शिरोधार्य करती हूँ, किन्तु मेरे इस शरीर के लिये पृथ्वीराज ही एक मात्र पति है । पृथ्वीराज के अतिरिक्त दूसरा कोई पति नहीं हो सकता ।

दोहा

सा- जीवतु^१ वतह-वयनु^२, वयनु-गर्भ^३ मृतु^४ होइ ।

जा थिरु^५ रह सोई^६ कहौ, हों पखू तुम सोइ ॥ १९ ॥

प्रा० पा० १ से ६ दे० ।

शब्दार्थः—सा-जीवतु=उसी का जीवन सार्थक है । वतह वयनु=वचन वान है, वचन पालक है, प्रतिज्ञा का पालन करता है । वयनु गर्भ=वचन भग होने पर । जी=वह (प्रतिज्ञा) ।

अर्थः—कहा गया है कि जो प्रतिज्ञा पालन कर सकता है, वही जीवित है । प्रतिज्ञा भग होने पर प्राणी मृत-तुल्य है । इसलिये मैं तुम्हीं से पूछती हूँ कि मेरा यह व्रत किस प्रकार स्थिर रहेगा, यह तुम ही मुझे समझाओ ?

दोहा

प्रभ आट पहुपग वै, वर चहुआन सु लेखि ।

सुद्धि नहीं फिर बोलु तुही, रन खत्तह करि देखि ॥ २० ॥

शब्दार्थः—प्रमम=गर्म । लेखि=लिखा मानती है । सुद्धि नहीं किर=ज्ञानयुक्त नहीं । खत्तह=लेख में, रणस्थल में । देखि=देखेगी ।

अर्थः—पंगुराज के घर पर जन्म लेकर तू चहुआन पृथ्वीराज को वर-रूप में विधाता द्वारा लिखा मानती है, किन्तु हे कुमारी ! तेरा यह कथन ज्ञान युक्त नहीं है । तू तो रण क्षेत्र में युद्ध कराकर ही उसे देखेगी (अर्थात् कलह करायेगी ही) ।

श्लोक

संवादेव विनोदेव, देव देवान रच्छित ।

अनुप्राने प्रयानेवा, प्रानेस दिल्लीश्वर ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—संवादेव=विवाद करने पर भी, छेड़-झाड़ करने पर भी, कलह करने पर भी, युद्ध करने पर भी । विनोदेव=प्रसन्नता पूर्वक । देव=पृथ्वीराज । देवान=देवताओं से । रच्छित=रक्षित । अनुप्राने=विना प्रयाण किये । प्रयानेव=प्रयाण करने पर ।

अर्थः—जो दिल्लीश्वर पृथ्वीराज देवताओं से रक्षित है, वह छेड़-झाड़ करने या प्रसन्नता पूर्वक प्रयाण नहीं कर या प्रयाण कर के किसी भी तरह से मेरा प्राणेश्वर हाकर ही रहेगा ।

दोहा

षोडस दान स मान करि, दिन्ने^१ दुज्जनि^२ पंग ।

घन अनकख^३ चहुआन कै, रक्खि सुरी तट गंग ॥ २२ ॥

मा. पा. १, २ भी पा. घ । ३ भी पा ।

शब्दार्थः—समान=मान सहित । दिन्ने=दिया । दुज्जनि=ब्राह्मणों को । घन=विशेष । अनकख=द्वेष । सुरी=देवाङ्गना ।

अर्थः—इधर राजा पंगु ने पुत्री को निर्वासित करने का विचार कर प्रायश्चित् स्वरूप ब्राह्मणों को आदर सहित शोडष प्रकार का दान किया और पृथ्वीराज के साथ उसका अधिक द्वेष होने से देवाङ्गना-तुल्य कुमारी को गङ्गा तट पर रक्खा ।

शुक-वर्णन

(समय ४५)

दोहा

मदन वृद्ध प्रह वभनिय, पढन कुँआरिक वृंद ।

वार वार लोकन करहि, जिम नखित्र बिच चद ॥ १ ॥

शब्दार्थ:—पढन=पढ़ी । लोकन=श्रवलोकन, देखा । नखित्र=तारे ।

अर्थ:—दिल्ली पहुँचने पर द्विज-दम्पति गुप्त रूप से जाकर पृथ्वीराज से कहने लगे - हे राजन् वृद्ध मदन ब्राह्मणी के घर पर कुमारिया पढ़ी हैं, उन सब के साथ पगु कुमारी को भी वार २ देखा है । वह सयोगिता नक्षत्रों से आवृत्त चंद्रमा के समान हमें दिखाई दो है ।

वालपन आपान सुख, सुख की जुव्वन^१ मेन ।

सु भर श्रवन साखि न भरह^२, दुरि दुरि पुच्छत नैन ॥ २ ॥

पा पा १, २ पा ।

शब्दार्थ:—आपान=अपने को । की=क्या । सु-भर=जो बात मरी गई । साखि न भरह=मन सही नहीं देता, सही नहीं दिखाई देती । । दुरि दुरि=अश्रुपात करती हुई । पुच्छत=पोंछती है ।

अर्थ:—आपक विरह में व्याकुल और लीन वह बालिका कहता है कि बचपन में जो सुख है वह युवावस्था में नहीं देखा । जिस बात से (पृथ्वीराज के प्रति प्रेम होने की) कान (मदन ब्राह्मणी द्वारा) भरे गये हैं । वह सही होती नहीं दिखाई देती । यह कह कर कुमारी सयोगिता अश्रुपात करती हुई नैत्रों को पोंछने लग जाती है ।

श्लोक

प्राप च पग प्रेह जग्य जापय होमन ।

तत्र वय दड देहा, राजा मय महापन ॥ ३ ॥

शब्दार्थ:—प्रेह=पर । वय=स्वप्ने हुए । दड=दृष्टी । देहा=देह, प्रतिमा । राजा=नयचंद । म १=मे । म २ वन=महापन तत्र ।

अर्थः—फिर कहती है—पंगुराज के घर पर यज्ञ, जप, होमादि होते हैं, वहां पर छड़ी कसे हुए प्रियतम की मैं स्वर्ण-प्रतिमा देखती हूँ। अहो ! राजा (जयचन्द) का क्या यही महान व्रत है (पृथ्वीराज का अपमान करना ही क्या महान व्रत माना जा सकता है, अर्थात् नीचता है)।

कवित्त

कहै सु दुञ्ज^१ दुञ्जनिय^२, सुनो सभरि नृप राजं ।

जयू दीप महीप, महिल दिक्खीं सह साजं ॥

ज हम दिख्यइ इक्क^३ तेज घन तडित^४ अकारिं^५ ।

कनवज्जह जैचद, ग्रेह सजोगि कुमारिं ॥

सित पच कन्य तिन मद्धि इक्क^६, अवर सोम तिहि सम दुव न ।

आकास मद्धि जिम उड़गनिन, चद विराजै मनु^७ भुवन ॥ ४ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० घ० । ३, ४ पा० घ० का० । ६ भी० पा० घ० । ५, ७ स० ।

शब्दार्थ—गवन=गति । पित्तपच=एकसौ पाँच । कन्य=कुमारियाँ, राजकन्यायें । अवर=अन्य, दूसरी । भुवन=पृथ्वी पर ।

अर्थः—परचात् द्विज दम्पति कहने लगे कि हे संभरो नरेश ! सुनो, हमने जम्बु-द्वीप की सुसज्जित समस्त राज महिलाओं को देखा है । जिनमे से हमने एक स्थान पर एक नभ स्थित तडिताकृति वालिका को देखा है । वह कुमारी कनवज्ज में महाराजा जयचन्द के घर पर सयोगिता के नाम से प्रसिद्ध है । जिसकी सगिनियों एक सौ पाच राजकुमारियाँ हैं । उनमे वही एक विशेष सुदरी है । उसके समान अन्य नहीं, वह कुमारियों से आवृत्त ऐसी दिखाई देती है, मानों आकाश मंडल स्थित चद्रमा नक्षत्रों सहित पृथ्वी पर आकर सुशोभित हुआ हो ।

दोहा

मदन-चरित्र-सु वभनिय, मदन कुंआरि सुरग^१ ।

सोइ वत्त कनवज्ज पुर, पंग पुत्ति मन^२ चंग ॥ ५ ॥

ग्रा० पा० १ पा० घ० का० । २ पा० का० ।

शब्दार्थः—चरित्र=सु=श्रेष्ठ चरित्र । मदन कुआरि=रामदेव मे उत्पन्न कुमारी हो जैमी । सोइ वत्त=यही बात । पंग पुत्ति=पंगुराज की कुमारी । चंग=चंगी, उत्तम, उन्नत ।

शुक-वर्णन

(समय ४५)

दोहा

मदन वृद्ध ग्रह वभनिय, पढन कुँआरिक वृद ।

बार बार लोकन करहि, जिम नखित्र विच चद ॥ १ ॥

शब्दार्थः—पढन=पढ़ी । लोकन=अवलोकन, देखा । नखित्र=तारे ।

अर्थः—दिल्ली पहुँचने पर द्विज-दम्पति गुप्त रूप से जाकर पृथ्वीराज से कहने लगे - हे राजन् वृद्ध मदना ब्राह्मणी के घर पर कुमारिया पढ़ी हैं, उन सब के साथ पगु कुमारी को भी बार २ देखा है । वह सयोगिता नक्षत्रों से आवृत्त चंद्रमा के समान हमें दिखाई दो है ।

वाल्गपन आपान सुख, सुख की जुव्वन^१ मेन ।

सु भर श्रवन साखि न भरह^२, दुरि दुरि पुच्छत नैन ॥ २ ॥

पा पा १, २ पा ।

शब्दार्थः—अपान=अपने की । की=क्या । सु-मर=जो बात भरी गई । साखि न भरह=मन साखी नहीं देता, सही नहीं दिखाई देती । । दुरि दुरि=अश्रुपात करती हुई । पुच्छत=पोंछती हैं ।

अर्थः—आपक विरह में व्याकुल और लीन वह वालिका कहता है कि बचपन में जो सुख है वह युवावस्था में नहीं देखा । जिस बात से (पृथ्वीराज के प्रति प्रेम होने की) कान (मदना ब्राह्मणी द्वारा) भरे गये हैं । वह सही होती नहीं दिखाई देती । यह कह कर कुमारी सयोगिता अश्रुपात करती हुई नैत्रों को पोंछने लग जाती है ।

श्लोक

प्राप्त च पग प्रेष्ट, जग्य जापय होमन ।

तत्र वय दड देहा, राजा मय्य महायन ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—प्रेष्ट=पर । वय=व्ये हुए । दड=श्री । देहा=देह, प्रतिमा । राजा=त्रयचद । म र=में । महायन=महायान मत ।

शब्दार्थः—ऐरापतीय=ऐरावत, इन्द्र का हाथी । चामर=चमर । मराल=हंस । पुहय=पुष्प ।
अंबीय=श्वेत कमल । प्रमान=समान । सीमजो=सोमेश्वर का पुत्र ।

अर्थः—हे सोमेश्वर के वीर पुत्र ! आपकी उज्ज्वल कीर्ति ऐरावत, गंगा, चमर, हंस, मालती पुष्प और श्रेष्ठ कमल के समान है ।

अति उज्जल^१ इम^२ किन्ती^३, वरने वा चंदयो कव्वी ।

जानिज्जै परिमानं, राजान समयो नत्थी^४ ॥ ६ ॥

प्रमा. पा. १ से ३, पा. ध. १४ का. भी ।

शब्दार्थः—वरने वा=वर्णन करने वाला । समयो=समान । नत्थी=नहीं ।

अर्थः—हे पृथ्वीराज ! आपकी जैसी उज्ज्वल कीर्ति है, उसका वर्णन करने वाला वैसा ही कवि चंद है । इसी से जाना जा सकता है कि आपके समान अन्य कोई राजा नहीं ।

दोहा

वह मंडल नृप देखिके, चंद सु, वषम पाइ ।

मानौ चंद सरह कौ, सग उड़गन आइ ॥ १० ॥

शब्दार्थः—वह मंडल=वह मंडल, ब्रह्माण्ड । सग=साथियों का यश समूह ।

अर्थः—हे राजन् ! सारे ब्रह्माण्ड में आपका यश और आपके साथियों के यश को विस्तृत देखकर कवि (चंद) यही श्रैष्ठ्य तुलना कर सकता है कि शरद का चंद्रमा मानों नक्षत्र मालाओं सहित त्रिभुवन में सुशोभित हो रहा हो ।

दैं दुज्जनि दुंज उत्तरह, दुंहु रूप चमेकत ।

कोइ कहै प्रतिव्यंव है, को कहै प्रीति अनंत ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—दुज्जनि=मदना ब्राह्मणी । दुज्ज=मदना का पति । रूप=मौन्दर्य । प्रतिव्यंव=प्रतिविम्ब ।

अर्थः—तब द्विजनी (मदना) ने द्विज (मदना के पति) को कहा—जैसा पृथ्वीराज है वैसी ही संयागिता है । दोनों का सौन्दर्य कांति युक्त है । इन्हें देखकर कोई कहता है कि ये तो एक-दूसरे के प्रतिविम्ब हैं और कोई कहता है कि इनमें अनन्त प्रीति है । इसी कारण से समान प्रभा है (एक्य रूप है) ।

कवित्त

चंद वदनि अग नयनि, काम^१ कौवड^२ भोइ वनि ।

गग सग तरयल तरग, बैनी, अग वनि ।

अर्थः—जैसी उत्तम चरित्र वाली मदन ब्राह्मणी है, वैसी ही कामदेव के समान उत्पन्न उसकी शिष्या ऊँचे मन वाली पशु पुत्री सुदरी सयोगिता है। यह बात कन्नौज के प्रत्येक घर में कही जाती है।

गाथा

अपन तन छवि दिक्ख, सिक्ख भेदाइ दुक्खनो जीवी ।

दुक्ख सभरिराई, कहिय राज^१ आगम नीरं ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ घ० पा० का० ।

शब्दार्थः—सिक्ख=शिखा देने पर। भेदाइ=भेदी जाती है, व्याकुल होती है। नीर=निफट ही, शीघ्रातिशय ।

अर्थः—उसकी शारीरिक दशा देख कर उस दुखी आत्मा (सयोगिता) को ज्यों २ सात्वना दी जाती है, त्यों २ वह और विंधी (व्याकुल होती) जाती है। हे सभरेश्वर। आपही (आपका प्रेम ही) उसके कष्ट के कारण हैं। अतः आप शीघ्रातिशीघ्र आने की अवधि निश्चित कर हमें कहिये।

दोहा

अपन तन छवि दिक्खि कै^१, सुख भरि दिक्खी नाहि ।

दुक्ख सभरिय अनुप^२ रग, वर ओपम नहँ ताहि ॥ ७ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ पा० घ० का० ।

शब्दार्थः—अनुप=अनुपम । रग=प्रेम ।

अर्थः—हे राजन्। वह राज-कन्या अपनी छवि देख कर कभी सुखी हुई हो, ऐसा हमने नहीं देखा (आपके बिना वह अपनी शोभा नष्ट प्रायः समझती है)। हे सभरेश्वर। आपका अनुपम रग (प्रेम) ही उसको कष्टप्रद है, क्योंकि आपकी तुलना में दूसरा कोई वर उसे नहीं जँचता (पसन्द नहीं आता)।

गाथा

ऐरापतीय^१ गग, चामर मराल मालती पुहय^२ ।

ता अचोय प्रमान, उज्जल किन्तीय सोमजा सूर ॥ ८ ॥

पा पा १, २ पा का ।

शब्दार्थः—अपुञ्च=अपूर्व, कथ=कथा, ख्याति । मंत्र=संमति देते हुए । वसै=सबे हुए ।
जोग=सुयोग ।

अर्थः—संयोगिता की अपूर्व ख्याति व पंगुराज के कार्यों का चरित्र पृथ्वीराज ने सुना । इतने में (अपने पति सहित गमनार्थ) खड़ी होती हुई मदना ब्राह्मणी ने राजा को सम्मति दी कि हे राजन् । इस सुयोग पूर्ण बात को मत भूलना ।

जो चरित्र चितै मनह, सोई रूपक राइ ।

नृप अगौ हर बधिकै, कल कनवज्जह जाइ ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—रूपक=शोभा । राइ=राजा । नृप अगो=राजा के सामने । हर बधिकै=जय शिव करते हुए । कल=सुंदर ।

अर्थः—हे राजन् । जिस कुमारी का मैंने वर्णन किया है, उसी के चरित्र का आप मनमें चिंतन कर रहे हैं । वह संयोगिता आप के गृह की शोभा-स्वरूपा है । यह कहते हुए वे द्विज-दम्पति राजा के समक्ष जय-शिव, कहते हुए सुन्दर कन्नौज नगर को खाना हुए ।

जिम जिम सुन्दरि दुजि वयन, कही सु कथ^१ सँवारि ।

वरनन सुनि पृथिराज कौ, भय अभिलाष कुआरि ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—दुजि=मदना ब्राह्मणी । कथ=ख्याति, चरित्र । सँवारि=सुन्दर ढग से सँवार कर । भय=हुई, हो पाई ।

अर्थः—(दिल्ली से आने पर) जैसे २ सुन्दरी संयोगिता को मदना ब्राह्मणी ने पृथ्वीराज की ख्याति (चरित्र) का वर्णन कर सुन्दर ढग से सुनाया, वैसे २ उस कुमारी के हृदय में अभिलाषा की वृद्धि होती गई ।

असन सेन शोभा तजी, सुनत^१ श्रवन्न कुआरि ।

मन मिलीवे की रुचि वढी, और न चित्त दुआरि^२ ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १ भा० का० । २ पा० ।

कीर नास भ्रगु दिपति, दसन दामिनि दारिम कन ।
 छीन लक श्रोफलअ पीन, चपक वरन तन ।
 इच्छति भ्रतारु प्रथिराज तहि, अहनिंसि पूजति सिव सकति ।
 अथ-तेरह बरख पदंमिनी, हस गमनि पिक्खिय नृपति ॥ १२ ॥
 ग्रा० पा० १, २, दे० ।

शब्दार्थ—कोवड=कोदड, धनुष । मग=माग । तरलति=चचल । बैनी=बोटी । भुअग=भुजग, सर्प । कीर=शुक, तोता । नास=नासिका । दिपति=दीप्ति । दसन=दोत । दारिम कन=अनार दाने जैमे । वरन=वर्ण, रंग । इच्छति=इच्छा करती है । भ्रतार=मर्तार, पति । अथ-तेरह=मादे तेरह ।
 अर्थ:—हे राजा पृथ्वीराज । जिसका चन्द्रमा के समान मुख, मृग के समान नैत्र, कामदेव के धनुषाकार सी भोंहें, गंगा की तरल तरंगों के सदृश मुक्ता-माग, सर्प-सदृश वेणी, शुक के समान नासिका, भ्रगु कांति के समान दीप्ति, विद्युत्-प्रभा के समान या अनार दाने जैसी रद पक्ति, पतनी कमर, श्रीफल के समान पेने कुच है और जिसका वर्णन चपा के रंग के समान है, वह आपको पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा करती रहती है और रात दिन शिव शक्ति को पूजती है । इस समय उसकी आयु साठे तेरह वर्ष की है । वह पद्मिनी के लक्षणों से युक्त और हम गामिनी है । उसे आप आकर अवश्य देखिये ।

दोहा

इह सुनि नृपति नरिद चिन^१, भय श्रोतान सुराग ।
 तत्र लागि पग नरिद कै, वाजे वज्जन^२ लाग ॥ १३ ॥

ग्रा० प्रा० १ पा० । २ घ० का० पा० ।

शब्दार्थ—वज्जन लाग=वज्जने लगे ।

अर्थ:—सयोगिता के सौंदर्य आदि का वर्णन सुनकर राजा पृथ्वीराज को श्रोत्रा-नुराग उत्पन्न होगया और डर सयोगिता के विवाह की मंगल क ना के वाजे पगुराज के यह वज्जने लगे ।

सुनि सजोगि अपुट्र कथ, पग चरित्त न काज ।

मत्र मदन वमनि उभै, जोगन^१ मुक्कै राज ॥ १४ ॥

ग्रा० पा० १ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—अपुञ्ज=अपूर्व, कथ=कथा, ख्याति । मत्र=सम्मति देते हुए । उमै=खड़े हुए ।
जोग=सुयोग ।

अर्थः—सयोगिता की अपूर्व ख्याति व पंगुराज के कार्यों का चरित्र पृथ्वीराज ने सुना । इतने में (अपने पति सहित गमनार्थ) खड़ी होती हुई मदना ब्राह्मणी ने राजा को सम्मति दी कि हे राजन् ! इस सुयोग पूर्ण बात को मत भूलना ।

जो चरित्र चितै मनह, सोई रूपक राइ ।

नृप अगै हर बधिकै, कल कनवज्जह जाइ ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—रूपक=शोभा । राइ=राजा । नृप अगै=राजा के सामने । हर बधिकै=जय शिव करते हुए । कल=सुंदर ।

अर्थः—हे राजन् ! जिस कुमारी का मैंने वर्णन किया है, उसी के चरित्र का आप मनमें चिंतन कर रहे हैं । वह संयोगिता आप के गृह की शोभा-स्वरूपा है । यह कहते हुए वे द्विज-दम्पति राजा के समक्ष जय-शिव, कहते हुए सुन्दर कन्नौज नगर को रवाना हुए ।

जिम जिम सुन्दरि दुजि बयन, कही सु कथ^१ सँवारि ।

वरनन सुनि पृथिराज कौ, भय अभिलाष कुआरि ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—दुजि=मदना ब्राह्मणी । कथ=ख्याति, चरित्र । सँवारि=सुन्दर ढग से सँवार कर । मय=हुई, हो गई ।

अर्थः—(दिल्ली से आने पर) जैसे २ सुन्दरी संयोगिता को मदना ब्राह्मणी ने पृथ्वीराज की ख्याति (चरित्र) का वर्णन कर सुन्दर ढग से सुनाया, वैसे २ उस कुमारी के हृदय में अभिलाषा की वृद्धि होती गई ।

असन सेन शोभा तजी, सुनत^१ अवनन कुआरि ।

मन मिलीवे की रुचि बढी, और न चित्त दुआरि^२ ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १ भी० का० । २ पा० ।

शब्दार्थः—असन=भोजन । सेन=शयन । चित्र दुआरि=चित्त रूपी द्वार पर ।

अर्थः—उसने भोजन, शयन तथा शारीरिक श्रृ गारादि छोड़ दिये । उसके मन में पृथ्वीराज से मिलने की इच्छा बढ़ गई । उसके चित्त में पृथ्वीराज के अतिरिक्त और किसी के लिए स्थान नहीं था ।

गाथा

अमिह अमिय वयने^१ रचने वाल ध्यान प्रथिराजं ।

गोलक डुलै न थान, जानै लिखि चित्रयं चरितं ॥ १८ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—अमिह=अमृत मय, माधुरी मूर्ति । अमिय वयने=अमृत-वाणी । रचने=रचना, गुणगान । गोलक=नैत्रों की पुतली । चरित=बनाई हो ।

अर्थः—अमृतमयी (माधुरी मूर्ति) बालिका (सयोगिता) अपनी अमृत-वाणी द्वारा पृथ्वीराज का गुणगान और उसी का ध्यान करने लगी । उसके नैत्रों की पुतलियाँ स्थिर और काया चित्र लिखित पुत्तलिका के समान दिखाई देती थी ।

कवित्त

मन अभिलाख सु राज, वरन सुन्दरी भइय मति ।

जौ तन मध्यै सास, मोहि सभरिय नाथ पति ॥

कै कुआरपन मरौ, धरौ फिरि अग पहुमि परं ।

तो राजा पृथिराज, आन मन इछ नहौ वर ॥

इम चित चित्त कुअरी सु वृत, रही मोइ मन मोन अदि ।

फलहत वोज अहि मडि दुज, अपु सपत्ते प्रेइ कहि ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—सास=श्वास । आन=अन्य । इछ=इच्छा । मोइ=वक्क लगाता । अहि=वह । दुज=द्विज दपति । सपत्ते=गये, चलने बने ।

अर्थः—सुंदरी (सयोगिता) के मन में उस श्रेष्ठ राजा (पृथ्वीराज) की अभिलाषा के साथ २ उसे ही वरण करने की इच्छा हुई और उसने निश्चय किया कि जब तक मेरे शरीर में साम रहेगी, मेरा पति सभरी नरेश ही होगा । यदि ऐसा नहीं हुआ तो मैं कुमार्यावस्था में ही मृत्यु प्राप्त करूँगी और पुनः पृथ्वी पर जन्म लेकर पृथ्वीराज को ही पति रूप में प्राप्त करने की मेरी इच्छा है, अन्य की नहीं । इस प्रकार

मन में चिंतन किया ' उमके मन में वही व्रत चक्कर लगाता रहता था । उम व्रत को दूसरों पर प्रकट करने के लिये वह बहुधा मौन रहती थी । इस प्रकार पृथ्वी पर कलह का बीज बोकर द्विज-दम्पति अपने स्थान (घर) को चलते बने ।

दोहा

यौं वृत लिन्नौ सुंदरी, ज्यों दमयंती पुत्र ।

कै हथलेवौ पिथ करौ, कै जल मध्ये डुव्व' ॥ २० ॥

आ० पा० १ घ० पा० भी० का० ।

शब्दार्थः—वृत=प्रतिष्ठा । पुत्र=पूर्व समय में । हथलेवौ=पाणिगृहण । पिथ=पृथ्वीराज से ।

अर्थः—उस सुंदरी ने इस प्रकार व्रत लिया, जैसा कि पहले दमयंती ने लिया था । उसने यही निश्चय किया कि या तो पाणिगृहण पृथ्वीराज के साथ करूँगी, अन्यथा जन्न में डूब मरूँगी ।

—*—❁—*—

बालुका राय

(समय ४६)

दोहा

राजा जज्ञ अरभु किय, सम्मर सहित सँजोग ।

मिलि मगल मडप रचिय, जहाँ विविध विधि भोग ॥ १ ॥

शब्दार्थः—राजा=जयचंद । जज्ञ=यज्ञ । अरभु=शुरू । सम्मर=स्वयंवर । सँजोग=संयोगिता ।
मगल=शुभ, मंगलीक । भोग=विलास सामग्री ।

अर्थः—राजा जयचंद ने संयोगिता के स्वयंवर सहित यज्ञ आरंभ किया और मंगलीक मंडप की रचना की, जहाँ विविध प्रकार की विलास सामग्री उपलब्ध थी ।

मन मडत छडत कलह, बल दीरघ प्रति वाम ॥

कहै पंग त्रप ऊँच मति, रहै तो रक्खौ नाम ॥ २ ॥

शब्दार्थः—मत=मंत्रणा । मडत=घरते हैं । छडत=छोड़ देते हैं । कलह=युद्ध । बल-दीरघ=विशेष बलवान । वाम=बायें, बाके विपत्ती । पंग त्रप=पगुराज, जयचंद । ऊँचमति=ऊँचीमति वाला । रहै=रख सके तो ।

अर्थः—ऊँची मतिवाला राजा जयचंद कहने लगा । बलवान विपत्ती के साथ युद्ध करने की मंत्रणा कोई निभा सकता है, कोई छोड़ देता है । हे वीरों ! यज्ञ, और स्वयंवर के वहाने यदि नाम अमर रखना चाहते हो तो रक्खो ।

गाथा

के के न गया महिमडला, वज्जाये दीह दिवहाई ।

विफुरै जासु किन्ती ते गया नहँ गया हुतो ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—के के=कितना ही । गया=गये । महिमडला=भू मंडल । वज्जाये=कहला कर दीह=बड़े, दीर्घ । दिवहाई=दिवस, आयु के दिनों में । विफुरै=विस्तृत । जासु=जिसकी । किन्ती=कानि । ते=वे । गया=गये, मरगये । नहँ गया=नहीं मरे । हुती=मे ।

अर्थः—अपनी जिंदगी में बड़ा महला वर दस भूमंडल से कौन विदा नहीं हुआ (अर्थात् सत्रका एक दिन जाना पडा), किंतु जिनकी कीर्ति मसार में फैल गई है, वे मर कर भी अमर हैं ।

ववूरे मलय मरुत, जगुरेव पिक पराग, परपंच ।

उत्कंठं भार तरला, मम मानसं किम्म खंमंती ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—ववूरे=वंचूल की तरह, वचूल के काटे की तरह । मलय=चंदन । मरुते=पवन । जगुरेव=जग के, संसार के । पिक=कोयल । पराग=पुष्प रज । परपंच=प्रपंच स्वरूप । उत्कंठ=अभिलाषा । भार=भार स्वरूप । तरला=विजली । मम=मेरा । मानसं=मानस, मन । किम्म=क्यों । खंमंती=चमकता, दमकता है ।

अर्थः—उधर सयोगिता सखि से कहने लगी — हे सखी ! मुझे मलय-मारुत वचूल के काटों के समान तीक्ष्ण, पिक-स्वर और पुष्प-रज विश्व-प्रपंच के समान और अभिलाषा भार स्वरूप लगती है । मेरा मन विजली की तरह है । क्यों कि कभी क्षण भर के लिए दमक कर रह जाता है (कभी प्रसन्न कभी विषाद सा हो जाता है) ।

मानीय दाह वाले, पुत्तलिका, पानिग्रहनाय ।

एकंत सैज सहवं, लवजावीय न आसाई ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—मानी=मान, समान । दाह=जलन । वाले=वाला । पुत्तलिका=गुड़ियों का । पानिग्रहनाय=पाणि ग्रहण कराना । सहव=सहवास, सौहाग्राभि । लवजावीय=लवजा होती है । न आसाई=निराशा होती है ।

अर्थः—गुड़ियों का पाणि-ग्रहण कराते समय मुझे न मालूम क्यों जलन सा होती है ? उन्हें एकांत सहवास की शैया पर देख कर निराशा के साथ नजाने क्यों लवजा आती है ?

वज्जाह गाह श्रवन, नयनं चित्रेह दृष्टि लगाह ।

गामान गाम लवजा अनंग अकूरिय वाला ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—वज्जाह=वाद्य स्वर । गाह=ग्रहण करन लगे । श्रवनं=श्रवण, कान । नयनं=नेत्र । चित्रेह=चित्र । लगाह=लग गए । गामान गाम=प्रत्येक ग्राम में (माइरत) । अनंग=काम देव । अकूरिय=अकूरित हो गये । वाला=वाला में ।

अर्थः—तब सखि कहने लगी—तेरे कान वाद्य स्वर की ओर, नेत्र प्रिय चित्र की तरफ (पृथ्वीराज के चित्र की ओर) लग गए हैं और प्रत्येक ग्राम में लुप्त में लवजा, और अनंग अंकुरित होने की शोहरत होगई है ।

आनन उछंग चिउकी, आलोलीय इच्छ सजोई ।

वरनीय पानि पत्तौ, दीहा सत्तामि अट्ट मभभामी ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—आनन उछंग=मुँह को गोदी में लेती हुई । चिउकी=चिबुक का, ठुड़ी का । आलोलीय=स्पर्ध करती हुई । इच्छ=इच्छा । सजोई=सयोगिता । वरनीय=कहा । पानिपत्तौ=पाणिग्रहण । दीहा=दीह, दिन । सत्तामि=सात । अट्ट=आठ । मभभामी=अन्दर, में ।

अर्थः—यह कहती हुई सखि । उसके मुँह को गोद में ले ठुड्डी पकड़ प्यार करती हुई, इच्छा पूर्ण दृष्टि से सयोगिता को देखकर कहने लगी हे प्यारी । तेरा सात आठ दिन में ही पाणि-ग्रहण होने वाला है ।

हा हत । सास खिन्ना, या सुन्दरी कथ वरयामी ।

वालीय विधि विहीना, सजोइय जोगिना पानी ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—हा हत=दुःख सूचक शब्द । सास खिन्ना=क्षीण श्वास, उदासी के श्वास । कथ=कहाँ, किससे । वरयामी=वरण करेगी । वालीय=यह वाला । विधि विहीना=बे तरीके, शास्त्रोक्त ढंग से रहित । सजोइय=सयोगिता । जोगिना=योगिनि पुरेश्वर, दिल्लीश्वर । पानी=पाणिग्रहण ।

अर्थः—अहो ! दुःख का विषय है कि विरह वेदना से क्षीण श्वासा युक्त सुन्दरी किसे व्याही जायगी ? तब दूसरी सखि ने कहा— यह बालिका सयोगिता शास्त्रोक्त ढंग के विहीन दिल्लीश्वर को प्राप्त होगी ।

श्लोक

अन्यथा नैव पिकखती, दुज वाक्य न मुच्यते ।

प्राप्त जोगिनी नाथो, सजोगी तत्र गच्छती ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—अन्यथा=विपरीत । नैव=नहीं । पिकखती=दोख पाता । दुज=वाक्य । वाक्य=वाक्य, वचन । मुच्यते=असत्य होने ।

अर्थः—ब्राह्मण के वाक्य (मदन ब्राह्मणों के पति के कहे हुए) असत्य नहीं होते और न वे विपरीत ही होते हैं । योगिनि पति (दिल्लीश्वर) इसे प्राप्त करेगा और सयोगिता वहीं पर जायगी ।

दीहा

जग' वत्त जुगिनि पुरह, सुनी कृत्य कमवज्ज ।

मन्नि अप्प विभ्रम मन, तमि सामन सु रज्ज ॥ १० ॥

प्रा पा १ म ।

शब्दार्थः—जग-वत्त=यज्ञ की बात । क्रय्य= करने की । कमध्वज=राष्ट्रवर जयचंद । मन्नि=मानी । अप्प=अपने । विप्रम=भ्रम युक्त । तमि=तमोगुण युक्त । सामंत सुरज्ज=सामंतों का सूर्य ।

अर्थः—दिल्ली नगर में सुना कि जयचंद यज्ञ कर रहा है । जिससे भ्रम में पड़ कर सामंतों के सूर्य में तमोगुण बढ़ गया ।

दूत वत्त कग्गद सयन, थप्पि वत्त सा सत्त ।

चमकि चित्त चहुवान नृप, तमि सामंत विरत्त ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—दूत वत्त=दूतों द्वारा कही हुई बात । कग्गद सयन=सज्जनों के पत्रों से । थप्पिवत्त=बात स्थापित करली । सा सत्त=उमे सत्यता पूर्वक । चमकि=चकित हो गया । तमि=तमोगुण । विरत्त=विरक्त ।

अर्थ—दूतों द्वारा प्राप्त सूचनाओं, और अपने सहयोगियों के प्राप्त पत्रों से जयचंद द्वारा किये जाने वाले यज्ञ की बात सत्य मान कर चहुआन नरेश का मन चकित रह गया और उसके सामंत ससार से विरक्त होकर तमोगुणी बन गये (अर्थात् क्रुद्ध हो गये) ।

सुनो वत्त दिल्ली नृपति, थप्प्यौ पौरि प्रथिराज ।

अव जीवनु वळ्थ्यौ न नृप, करौ मरन को साज ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—वत्त=बात । थप्प्यौ=स्थापित किया । पौरि=द्वार पर । अव=अव । जीवनु=जीने की । वळ्थ्यौ=इच्छा करना । मरन=मरने का । साज=साजगी ।

अर्थः—सामंतों ने कहा-हे दिल्लीश्वर ! आपकी स्वर्ण-प्रतिमा जयचंद ने अपने द्वार पर स्थापित की है । यह बात हम सब ने सुन ली है । अब हमारे लिये जीने की इच्छा करना उचित नहीं है । मृत्यु का साज सजाना चाहिये ।

गाथा

दिदु किय मत्त उहासौ, पत्तौ धाम राज ना भ्रत्त ।

अंतर महल उहासौ, आसमेव तत्थ चहुवान ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—दिदु=दृढ़ । मत्त=मंत्रणा । उहासौ=वहाँ से । पत्तौ=लौटे । धाम=घर । सा=वह । अर्त्त=बुगुण, सुमदादि । अंतर महल=मीतगी स्थान । आसमेव=आसन पर बैठा । तत्थ=जहाँ । चहुवान=पृथ्वीगज ।

अर्थः—इस प्रकार वहाँ दृढ मंत्रणा कर सामतगण अपने २ स्थान को लौटे और राजा वहाँ से अतरग महल में जाकर आसन पर बैठा ।

स्यंघासने सुरेस, सम आरोहि धीर दिल्लेस ।

मत्त पयान विचार, बुल्ले रज्ज कज्ज दैवज्ञं ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—स्यंघासने=सिंहासन पर । सुरेस=इन्द्र । सम=समान । आरोहि=आरूढ होना, बैठना । धीर=धैर्यवान् । दिल्लेसं=दिल्लीश्वर । मत्त=भ्रमण । पयान=प्रस्थान । विचार=विचार । बुल्ले=बुलवाये । रज्ज कज्ज=राज काज (कार्य कर्त्ता) । दैवज्ञ=देवराम, पुरोहित ।

अर्थः—धैर्यधारी दिल्लीश्वर सिंहासन पर इन्द्र के समान आसीन हुआ और युद्धार्थ विदा होने के लिए विचार करते हुए उसने राज्य काज-कर्त्ता (मन्त्रीगण) और देवतुल्य देवराम पुरोहित को समन्त बुलाया ।

दोहा

बोल्यौ वमनु सूर तहँ, कही सुमन की वात ।

सो दिनु पंडित देहि हम, जिहि दिन चले सघात ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—ब्यौ=बोला । वमनु=वाहण । सूर=बहादुर । तहँ=वहाँ । सो=वह । दिनु=दिन । देहि=दे । जिहि=जिस । सघात=शास्त्राघात ।

अर्थः—उस बहादुर राजा ने वहाँ पर द्विज (देवराम) को बुलाकर मन की बात कही और कहा—हे पंडित । ऐसा दिन हमें बतलाओ । जिस दिन शस्त्राघात प्रारंभ हो सके (अर्थात् युद्ध किया जाय) ।

तव वमन कर जोरि कहि, सुनहित नृपति नरयद ।

पुखि नखिन्न रविवारु है, तिहि दिन करहि अनद ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—तव=तव । सुनहित=सुनिये । नृपति नरयद=राजाओं के राजा राज राजेश्वर पुखि=पुष्प । नखिन्न=नक्षत्र । वारु=वार । तिहि=उस । अनद=आनन्द, कुशल ।

अर्थः—तव द्विज ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया—कि हे—राज राजेश्वर । पुष्प नक्षत्र और रविवार के दिन प्रस्थान करने से सब प्रकार की कुशल है ।

चडिह चलयौ प्रियराज नृप, जय २ वदिन जपि ।

विगसे मूरति नृ तन, कलत सु कातर कपि ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—चढि=चढ़ कर । वदिन=वदीजन । जपि=कड़ने लगे । विगमे=भूले । सूरनि=बहादुर । नूर=क़ाति । कलत्त=कलत्र, स्त्री । कातर=कायर । कपि=कपने लगे ।

अर्थः—तब राजा पृथ्वीराज घोड़े पर चढ़ कर रवाना हुआ और वंदीजनों ने उनकी जय जय कार की । उस समय जो तेजस्वी थे, उनके मुख खिल पड़े और कायर पुरुष स्त्रियों की तरह कापने लगे ।

कवित्त

धाह थाह खोखद, सुनिय वालुकाराइ रव ।
लघु वधव जयचद, राइ मंकेस सु सभव ॥
सोइ संभलिकल कूक, ऊक ब्रद्धिय दसदिसि दर ।
नह सुनिये श्रुति अवर, नयर सब गजिज गहम्भर ॥
वालुकाराइ इम उच्चरै, कहौ वत्त कारन सकल ।
मम करौ थाह थिर होइ करि, कवन तेक वंवी सुवल ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—धाह=शोर गुल । थाह=स्थान । खोखद=स्थान विशेष । रव=आवाज । लघु=छोटा । राइ मकेस=मंकेसराय । समव=पैदा होना, उत्पन्न होना । सोइ=वही । समलि=सुनकर । कल कूक=किनकारी । ऊक=उकताना, घबराहट । ब्रद्धिय=बढ़ा । दसदिसि=दशों दशाम्रो, प्रत्येक दिशा । दर=द्वारा श्रुति=कान । अवर=और । नयर=नगर । सब=सब । गजिज=गर्जना । गहम्भर=गर्जना । इम=इस तरह । उच्चरै=कहे । वत्त=वात । सकल=सब । मम=नहीं । थिर=स्थिर होकर । कवन=कौन । तेग=तलवार । वधी=वांधी । सुवल=वलशाली ।

अर्थः—जयचद के छुट भाइयों ने मकेसराय नामक व्यक्ति के पुत्र वालुका राय के स्थान-खोखद में पृथ्वीराज के चढ़ आने से शोर गुल मच गया । उस शोर गुल के सुनने से प्रत्येक द्वार पर घबराहट बढ़ गई । उस समय और कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ती थी । यह देख वालुकाराय अपने साथियों आदि से कहने लगा—यह वात वीत रही है इसका क्या कारण है ? अतः तुम सब धैर्य धारण कर शोर गुल का वद करो और निश्चय करो कि हम पर किसने तलवार कसी है ?

किहि रुदृक्यो सुव तरनि, कहै नयरी पति सं-जम ।

अज्ज रज्ज जयचन्द, कवन उद्देग करइ दम ॥

तब धाहुनि उच्चगि, सुनहि मंकेस राइ सुव ।

दिल्लीवै चहुवान, तेन उज्जारि जारि भुव ॥

सुनि सह नह निस्सान किय, आप वोलि पज्जे सुभर ।

सज होइ चढौ सज्जौ सिलह, अनी वंधि आपाढ वर ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—किह=किसने । रुटूठ्यो=रुष्ट किया, क्रोधित किया । सुव=सुत । तरनि=सूर्य । स-जम=यमराज के समान । अज्ज रज्ज=आज । रज्ज=राज । कवन=कौन । उद्देग=घवराहट । दम=साहम । तव=तव । घाहुनि=घावन, दूत । तेन=उसने । उज्जाणि=नष्ट किये । जारि=जलाकर । भुन=पृथ्वी । सह=आवाज । नह=नाद, गर्जना । आप=अपने वोलि=दुलाये । सज्जे=मजाये, तैयार किये । सुभर=सुभट । सज होइ=सजग होकर । सिलह=कवच, वस्त्र । अनी वंधि=मेना पक्ति बद्ध हुई । आपाढ वर=आपाढ के बदलों की तरह ।

अर्थ—उस नगर का स्वामी (बालुकाराय) जो यमराज के समान था, कहने लगा—मुझ (सूर्य पुत्र) को किसने रुष्ट किया है ? आज जयचंद के राज में घवराहट मचाने का क्रिमने साहस किया है ? दूनों ने कहा—हे मकेशराय के पुत्र । दिल्लीश्वर चाहुआन ने आपके भू भाग को जलाकर उफाड़ दिया है । यह सुनते ही नक्कारे बजवाये और अपने सब साथियों को बुलाकर कहा कि सजग हो जाओ और कवच कस कर घोड़े पर चढो । इतना कहते ही उसकी सेना आपाढ के बदलों की तरह पक्तिबद्ध होगई ।

दोहा

सयन महम बत्तीस भर, चह्यौ सु जगम जूहि ।

नगर छडि बाहर चढे, तव रज इक्खी ऊहि ॥ २० ॥

शब्दार्थ—मयन=सेना । भर=सुभट । जूहि=जूह-मपूह । बाहर=मदर । तव=तव । रज=गिर्द । इक्खी=दिखाई दी । उहि=आह । अग । ।

अर्थ—उस उगम पीर का सैन्य-मपूह बत्तीस हजार की संख्या में सुसज्जित होकर नगर को छोड़ जनता की मदद पर आया जिससे रज उड़ती दिखाई देने लगी ।

गाथा

दल दुव हुव दिट्ठाल, पज्जे नह वीर विमराल ॥

सज्जे मयन सुचाल, बवे फौज कमव मजि काल ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—दल=सेना हुव=दोनों । हुव=यामने । दिव्दलं=दिखे । वज्जे नद=नक्कारे वजे । त्रिसरालं=कण कट्ट । सुचाल=अच्छे ढंग से । वधे=पक्तिवद्ध हुए । कालं=काल रूप ।

अर्थः—दोनो सेनाओं की आंखें मिजों और विप-तुल्य कर्ण-कट्ट-याग वज्जने लगे । अच्छी तरह सेना सजा कर यम-तुल्य वीर कमवज (बालुकाराय) ने स्वयं सुमज्जित हो अपना सेना को पक्ति वद्ध किया ।

बंधो फौज दिक्खि चहुआनं, सज्जिय अप्प सेन सञ्चानं ।

वधे मिलह सुरान, सज्जे सीस सुमर असमानं ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—वधी=पक्तिवद्ध । दिक्खि=दिखाई दिए अप्प=अपनी । सञ्चानं=सत्रको । वधे=बंधे । सुरान=बहादुर । सज्जे=सजाये । सुमर=सुमट । असमानं=आकाश ।

अर्थः—बालुका राय की सेना का पक्ति वद्ध हुई देख कर अपनी सेना के समस्त सैनिकों को बाहुआन नरेश्वर ने सावधान किया । उन कवच कसे हुए बहादुरों ने उत्साहित हो अपने सिरों को आसमान से लगा दिया अर्थात् ऊचा उठाया ।

दोहा

जले सज्जि दूनौ सयन, दिक्खियै दिट्ठि करूर ।

स्वामि धर्म सा कर्म वस, ते सभारे सूर ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—जलै=बडे । दूनौ=दोनों । सयन=पेना । दिट्ठि=दृष्टि । करूर=कूर । मा कर्म वस=अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले ते=उनके । सभारे=व्रतम किया । सूर=वीर ।

अर्थः—दोनों सेनाएँ सज कर रवाना हुई और आगे बढ़ी । एक दूसरे पक्ष को वह कूर दृष्टि से देखने लगी । उसी समय पृथ्वीराज के स्वामी धर्म धारक और अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले वीरोंने विपक्षी वीर कमवज (बालुकाराय) को व्रतम कर दिया ।

परत सु बालुकाराय रन, सहस पच सम सत्य ।

उभय घटी मध्यान्ह उध, धनि सामतनि हत्य ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—परत=धराशाई । सहसपच=पाँच हजार । मम=वात्र । मत्य=माघ । उमय=दोनों । घटी=घड़ी । उध=ऊपर । धनि=धन्य । हत्य=हाथ ।

अर्थः—धन्य है ऐसे युद्ध करने वाले सामन्तों के हाथों को जिन्होंने मध्यान्ह काल पर दो घड़ी बीतते बीनते बालुकाराय और उसके समान पाँच सहस्र साथियों को धराशायी किया ।

दिल्लीईसय सत्त भ्रत, परेसु कटि रन थान ।

छह सत्तह सामत कुसल, जय लद्धी चहुआन ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—दिल्लीईसय=दिल्ली पति के । सत्त भ्रत=सौ सामत । कटि=कट कर । रन थान=रण स्थल । छह सत्तह=छ सात । सामत=सामन्त । कुसल=कुशल । लद्धी=प्राप्त की ।

अर्थः—इस युद्ध-स्थल में दिल्लीश्वर के सौ सामन्त घायल होकर धराशायी होगये । केवल छ. सात सामन्त ही सकुशल रहे । ऐसी परिस्थिति में चाहुआन नरेश्वर ने विजय प्राप्त की ।

कवित्त

हनिग राउवालुका, भजि खोखद महापुर ।

लुट्टि रिद्धि बहु निद्धि, कनक पट कूर नग धुर ॥

करत सास उद्दास, छोहि जोरी वर दपाति ।

फिर्यौ राज चहुवान, पान दक्खै हरि सपति ॥

वज्जत नद् निस्सान रव, धाह प्रकेसे लोटि धर ।

भग्गेव जग्य जयचद नृप, थान वयट्ठौ कपि पर ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—हनिग=मारा गया । भजि=नष्ट हुआ । महापुर=नगर, बड़ा शहर । बहु=बहुत, सब । पटकर=जरीन वस्त्र । नग=नगर । धुर=निश्चय रूप से । करत सास उद्दास=साधु को उदास वरती हुई । छोहि=उत्साह । जोरा=जोड़ा । फिर्यौ=लौट गया । पान=हाथ में । दक्खै=दाँखी । हरी=हरण की हुई । वज्जत=वज्रते हुए । नद्=नाद । निस्सान=नक्कारे । रव=थावाज । धाह=घ्रातम् । प्रग्गे=प्रशान में लाकर । लोटि=लोड़ना, कुचलना । भग्गेव=नष्ट हो गया । थान वयट्ठौ=घर पर बैठ गया, आराग्य छोड़ दी । कपि पर=घोड़ों के कपित (बालुकाराय के साथियों के कपित) होने पर ।

अर्थः—बालुकाराय मारा गया और महान पुर (बड़ा नगर) खोखद नष्ट हुआ । वहाँ की रिद्धि-मिद्धि, स्वर्ण, वस्त्रादि लूट लूट गए । बालुकाराय की मृत्यु के

कारण उसकी स्त्री, सास को उदास करती हुई अपनी श्रेष्ठ जोड़ी बनी रखने को बरसाहित हो गई (अर्थात् बालुकाराय मारा गया और वह सती हो गई) । लूटी हुई सपत्ति पृथ्वीराज के हाथ में दीख पड़ी (या ऐश्वर्य्य उसके हाथ में दिखाई दिया) । वह राजा वहाँ से लौट गया । इस प्रकार वजाते हुए नगरों आदि की ध्वनि के साथ आतक फैलाते हुए उसने बिगुल के मू-भाग को कुचन दिया । इस तरह जयचंद की यज्ञ ध्वंस हो गया और जयचंद दूनों (बालुकाराय के साथियों) के कपित होने से ६ यज्ञ की आशा छोड़ घर बैठ गया ।



अर्थः—धन्य है ऐसे युद्ध करने वाले सामन्तों के हाथों को जिन्होंने मध्यान्ह काल पर दो घड़ी बीतते बीनते बालुकाराय और उसके समान पाँच सहस्र साथियों को धराशायी किया ।

दिल्लीईसय सत्त भ्रत, परेसु कटि रन थान ।

छह सत्तह सामत कुसल, जय लद्धी चहुआन ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—दिल्लीईसय=दिल्ली पति के । सत्त भ्रत=सौ सामत । कटि=कट कर । रन थान=रण स्थल । छह सत्तह=छ सात । सामत=सामन्त । कुसल=कुशल । लद्धी=प्राप्त की ।

अर्थः—इस युद्ध-स्थल में दिल्लीश्वर के सौ सामन्त घायल होकर धराशायी होगये । केवल छ. सात सामन्त ही सकुशल रहे । ऐसी परिस्थिति में चाहुआन नरेश्वर ने विजय प्राप्त की ।

कवित्त

हनिग राउवालुका, भजि खोखद महापुर ।

लुट्टि रिद्धि बहु निद्धि, कनक पट कूर नग धुर ॥

करत सास उदास, छोहि जोरी वर दपति ।

फिर्यौ राज चहुवान, पान दक्खै हरि सपति ॥

वज्जत नह निस्सान रव, धाह प्रकेसे लोटि धर ।

भग्गेव जग्य जयचद नृप, थान वयट्ठौ कपि पर ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—हनिग=मारा गया । भजि=नष्ट हुआ । महापुर=नगर, बड़ा शहर । बहु=बहुत, सब । पटकूर=जरीन वस्त्र । नग=नगर । धुर=निश्चय रूप से । करत सास उदास=सास को उदास वरती हुई । छोहि=उत्साह । जोरी=जोड़ी । फिर्यौ=लौट गया । पान=हाथ में । दक्खै=दाखी । हरी=हरण की हुई । वज्जत=वज्रते हुए । नह=नाद । निस्सान=नक्कारे । रव=आवाज । धाह=धातक । प्रमे=प्रशंसा में लाकर । लोटि=लोढ़ना, कुचलना । भग्गेव=नष्ट हो गया । थान वयट्ठौ=घर पर बैठ गया, आशा छोड़ दी । कपि पर=शौरों के कपित (बालुकाराय के साथियों के कपित) होने पर ।

अर्थः—बालुकाराय मारा गया और मदान पुर (बड़ा नगर) खोखद नष्ट हुआ । वहाँ की रिद्धि-सिद्धि, स्वर्ण, वस्त्रादि लूट लाने गए । बालुकाराय की मृत्यु के

कारण उसकी स्त्री, सास को उदास करती हुई अपनी श्रेष्ठ जोड़ी बनी रखने को उत्साहित हो गई (अर्थात् बालुकाराय मारा गया और वह सती हो गई) । लूटी हुई सपत्ति पृथ्वीराज के हाथ में दीख पड़ी (या ऐश्वर्य्य उसके हाथ में दिखाई दिया) । वह राजा वहाँ से लौट गया । इस प्रकार बजाते हुए नगरों आदि की ध्वनि के साथ आतंक फैलाते हुए उसने विरक्त के भू-भाग को कुचन दिया । इस तरह जयचंद की यज्ञ ध्वंस हो गया और जयचंद दूसरों (बालुकाराय के साथियों) के कपित होने से ६ यज्ञ की आशा छोड़ घर बैठ गया ।



अर्थः—धन्य है ऐसे युद्ध करने वाले सामन्तो के हाथों को जिन्होंने मध्याह्न काल पर दो घड़ी बीतते बीनते बालुकाराय और उसके समान पांच महत्स साथियों को धराशायी किया ।

दिल्लीईसय सत्त भ्रत, परेसु कटि रन थान ।

छह सत्तह सामत कुसल, जय लद्धी चहुआन ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—दिल्लीईसय=दिल्ली पति के । सत्त भ्रत=माँ सामत । कटि=कट कर । रन थान=रण स्थल । छह सत्तह=६ सात । सामत=सामन्त । कुसल=कुशल । लद्धी=प्राप्त की ।

अर्थः—इस युद्ध-स्थल में दिल्लीश्वर के सौ सामन्त घायल होकर धराशायी होगये । केवल छ सात सामन्त ही सकुशल रहे । ऐसी परिस्थिति में चाहुआन नरेश्वर ने विजय प्राप्त की ।

कवित्त

हनिग राउवालुका, भजि खोखंद महापुर ।

लुट्टि रिद्धि बहु निद्धि, कनक पट कूर नग धुर ॥

करत सास उदास, छोहि जोरी वर दपात ।

फिर्यौ राज चहुवान, पान दक्खै हरि सपति ॥

वज्जत नह निस्सान रव, धाह प्रकेसे लोटि धर ।

भग्गेव जग्य जयचद नृप, थान वयट्ठौ कपि पर ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—हनिग=मारा गया । भजि=नष्ट हुआ । महापुर=नगर, बड़ा शहर । बहु=बहुत, सब । पटकर=जरीन वस्त्र । नग=नगर । धुर=निश्चय रूप से । करत सास उदास=सास को उदास करती हुई । छोहि=उत्साह । जोरी=जोड़ी । फिर्यौ=लौट गया । पान=हाथ में । दक्खै=दीखी । हरी=हरण की हुई । वज्जत=बजते हुए । नह=नाह । निस्सान=नक्कारे । रव=श्रावाज । धाह=श्रातक । प्रकेमे=प्रकाश में लाकर । लोटि=लोढ़ना, कुचलना । भग्गेव=नष्ट हो गया । थान वयट्ठौ=घर पर बैठ गया, आशा छोड़ दी । कपि पर=शत्रुओं के कपित (बालुकाराय के साथियों के कपित) होने पर ।

अर्थः—बालुकाराय मारा गया और महान पुर (बड़ा नगर) खोखंद नष्ट हुआ । वहाँ की रिद्धि-सिद्धि, स्वर्ण, वस्त्रादि लूट लाने गए । बालुकाराय की मृत्यु के

कारण उसकी स्त्री, सास को उदास करती हुई अपनी श्रेष्ठ जोड़ी बनी रखने को उत्साहित हो गई (अर्थात् बालुकाराय मारा गया और वह सती हो गई) । लूटो हुई संपत्ति पृथ्वीराज के हाथ में दीख पड़ी (या ऐश्वर्य उसके हाथ में दिखाई दिया) । वह राजा वहाँ से लौट गया । इस प्रकार बजाते हुए नगरों आदि की ध्वनि के साथ आतक फैलाते हुए उसने बिचू के भू-भाग को कुचन दिया । इस तरह जयचंद का यज्ञ ध्वंस हो गया और जयचंद दूरों (बालुकाराय के साथियों) के कपित होने से ६ यज्ञ की आशा छोड़ घर बैठ गया ।



पुर्ण जग्य विध्वंस

समय ४७

दोहा

जग^१ उजाये अट्ट दिन, अट्ट रहे दिन अगग ।

तेरसि माघह पुच्च पख, दरह^२ पुकार सजग^३ ॥ १ ॥

प्रा० पा० १ घ० । २, ३ का० पा० ।

शब्दार्थः—जग उजाये=यज्ञारम्भ किये । पुच्च पख=मास का प्रथम पक्ष (कृष्ण पक्ष) । दरह=द्वार पर । सजग=सावधान ।

अर्थः—यज्ञारम्भ करने के आठ दिन बाद और पुर्णाहुति के आठ दिन शेष रहने पर माघ कृष्ण त्रयोदशी को (जयचन्द के) यज्ञ द्वार पर पुकार (बालुका की पराजय आदि की) पहुँची कि हे राजन् ! सजग हो जाइये ।

खीर-नीर-दधि ईल घृत, वारुनि, समुद्र-लवन्न ।

इन सत्तन सम ऊफने, बोलिय कमध वचन्न ॥ २ ॥

शब्दार्थः—खीर-नीर-दधि=खीर सिन्धु, जल सिन्धु । समुद्र लवन्न=लवण समुद्र । सत्तन=सातों ।

अर्थः—जिसको सुनकर राजा कमधञ्ज इस प्रकार क्रोध वश उबल पडा, मात्तों खीर सिन्धु, जल सिन्धु शुद्ध बनाते समय गन्ने का रस, कडाह स्थित घृत, भट्टी से मदिर्। और लवण सागर उबल कर उफणें हों । उपरोक्त सातों के समान उफणता हुआ कमधञ्ज नरेश कहने लगा ।

कवित्त

पूरव दिसि पति^१ इद्र, अग्नि कूँनह अग्निनेय ।

दच्छिन यम नैरत्ति, कून नैर्त्ति सुनेय ।

पच्छिम अधिपति वरुन, वायु कूँ न वायान^२ ।

उत्तर हेरि कुवेर, कून ईमह ईसान ।

ऊरुद्ध ब्रह्म पाताल नग, मान खडि दिगपाल कौ ।

पृथिराज काल्हि आनो पकरि, तौ जायौ विजपाल कौ ॥ ३ ॥

भा० पा० १, २, सं ।

शब्दार्थः—अग्निनेय=अग्नि । कुँन=कोण । नैर्ऋति=निर्ऋति । सुनेय=सुना है । वायान=वायु ।

ईसान=ईश । ऊरुद्ध=ऊर्ध्व । नग=अनन्त, नाग । काल्हि=कल ही । जायौ=जाया, जन्मा हुआ, पुत्र ।

अर्थः—पू० दिशा का इंद्र, अग्निकोण का अग्नि, दक्षिण का यम, नैर्ऋत्य का निर्ऋति, पश्चिम का वरुण, वायव्य का वायु, उत्तर का कुवेर, ईशान का रुद्र, ऊर्ध्व का ब्रह्मा, पाताल का अनन्त (नाग) वे क्रमशः दिशाओं के स्वामी कहे गये हैं । मैं दिक्पालों सहित उन सबका मान भंग कर कल ही पृथ्वीराज को पकड़ कर लाऊँगा, तब ही मेरा विजयपाल का पुत्र कहलाना सार्थक होगा ।

दोहा

जित्ति जुद्ध^१ जैपत्त लिय, दिसि मुरधर उप-देस ।

द्धिति रक्खन द्धिति पर सवर^२, सुनि पुगरे^३ नरेस ॥ ४ ॥

भा० पा० १ पा. । २ दे. । ३ पा ।

शब्दार्थः—जैपत्त=जय पत्र । उप देस=समीपवर्ती देश । सवर=सबल ।

अर्थः—(जयचंद को क्रोध करते हुए देखकर रानी जुन्हाई ने कहा) आपने मरुधर और समीपवर्ती देशों को जीत कर जय-पत्र प्राप्त किया है । हे पगुनरेश । आप ही इस पृथ्वी के रक्षक और सबल वीर माने जा सकते हैं ।

गठि जुन्हाइ उन्हाइ निजु, राइ वरन निज-दान ।

श्रुति अनुराग सजोगिकौ, करहु न प्रभू प्रमान ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—उन्हाइ=उमड़ती हुई, अर्थात् आसू सरती हुई । राइ वरन=किमी राजा को सयोगिता का वरण कराना । निज-दान=आपका मुख्य दान है (कन्यादान प्रमुख है) । श्रुति-अनुराग=श्रोतानुराग ।

अर्थः—स्वयं आँखों में आँसू भर रानी जुन्हाई अपने पति जयचंद को वश में करती हुई कहने लगी हे स्वामिन् ! आप अपना मुख्य दान जो कि कन्या

दान है, उसे सयोगिता का किमी राजा से तरण करा कर पूरा करिये । सयोगिता के श्रोतानुराग ने आप सत्य नहीं समझिये (यह उसका वचन है) ।

कवित्त

बालवेस वय^१ चढन, ध्रम्म रक्खे न पुत्रि ग्रह ।

मुम्मि^२ मुम्मि^३-न्निय मिलै, जानि वातूल तूल तह ॥

वर मजोगि पर नाय^४, राज बधौ^५ चहुआन ।

वधि वीर पृथिराज, जग्य मडौ पर वान ॥

सुज्जै^६ सु काई भजै कवन, क्य^७ जानै किम होइ फिरि ।

पुत्रीय स्वयवर मडिकै, फिरि बधौ : दुव्वजन सुजुरि^८ ॥

प्रा० पा० १ पा० भी० । २, ३ पा० । ४ का० पा० घ० । ५ स० । ६ पा० । ७ भी० । ८ का० घ० ।

शब्दार्थः—बालवेस=बाल्यावस्था । वय चढत=चढती आयु में (चढती हुई) । ध्रम्म=धर्म । मुम्मि=पृथ्वी । मुम्मि नृप=पृथ्वीपति, राजा । मिलै=मिड़े । वातूल=वात चक्र, हवा का बवडर, बवूला । तूल=तुल्य । परनाय=विवाह कराकर । बधौ=बधन में लीजिये । मडौ=मडन । परवान=सप्रमाण, सार्थक । सुज्जै=दीखना, जान सकना । काइ=किसको । मंजै=विनाश । क्य=क्या, कौन । दुव्वजन=दुर्जन, शत्रु । जुरि=छुटकर ।

अर्थः—बाल्यावस्था के बाद बढ़ती आयु में पुत्री को अविवाहित घर में रखना धर्म सगत नहीं है । पृथ्वीपर राजाओं का एकत्रित होना वात चक्र (हवा का बवडर) के तुल्य है । इस लिये पहले आप श्रेष्ठ सयोगिता का विवाह कर दीजिये । इसके पश्चात् चौहान को बन्धन में लीजिये । पृथ्वीराज को बंदी बनाकर ही यज्ञ को सजाना सार्थक है । हे स्वामी ! यह नहीं कहा जा सकता है कि चढ़ाई करने पर किसका विनाश होगा ? फिर न जाने क्या हो-कौन जान सकता है ? अतः पुत्री के स्वयवर को पूर्ण कर बाद में शत्रु से भिड़ उसे बंदी बनाना ही ठीक है ।

गोहा

इह^१ सुमत त्रप चित्ति मन, वजी अवाजन साज ।

सुनि सजोगि कुआरिने^२, शृत लीनो पृथिराज ॥ ७ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० घ० । २ पा० घ० ।

शब्दार्थः—सुमत=सुमन्त्रणा । अवाजन=वाय ध्वनि । साज=तैयारी । कुआरि=कुमारी ।

अर्थः— राजा जयचन्द ने रानी की सुमन्त्रणा पर मन में चिंतन किया और स्वयंवर की तैयारी के लिये वाजे बजवाये । उधर राजकुमारी सयोगिता ने सुना कि उसके ही समान पृथ्वीराज ने भी सयोगिता को वरण करने की प्रतिज्ञा ली है ।

कवित्त

जग्य विध्वसिय पंग, दुअन श्रोत्रानु बढाइय ।

'सुनि सुनि इह' संजागि, चित्त वृत लिन्न^२ प्रवाहिय ।

वरों कि वर चहुआन, वार-खोऊँ धम-सारिय ।

कै कृसान^३ देंउ प्रान, वरों मनमध्य विचारिय ।

मन संक वत्त इत्ती करी, प्रगट नवल-वल्लह^४ करी ।

पहु पंग संत-बहु मानिकै, राज-राज उच्चित फिरी ॥ ८ ॥

पा० पा० सर्व प्रति १ । २, ३ पा० । ४ का० पा० मी० ।

शब्दार्थः—दुअन=दोनों । इह=यह । लिन्न=लिया । वार-खोऊँ=जल में खोजाऊँ, जलान्तर लुप्त हो जाऊँ । कृसान=अग्नि । मनमध्य=कामदेव स्वरूपी पृथ्वीराज । मभ=मैं । इत्ती=इतनी नवल=नवेली । वल्लह=वल्लभ, प्यारा । बहु=बहन कर दिया, हटादिया, निषेध कर दिया, नहीं मानने योग्य । उच्चित=उच्चरत, उच्चारण, जप ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने पंगु के युद्ध का विध्वंस किया । सयोगिता और पृथ्वीराज ने एक दूसरे को वरण करने की प्रतिज्ञा की । जिससे उन दोनों में श्रोतानुराग और भी बढ़ गया । पृथ्वीराज की वरण करने की प्रतिज्ञा सुन कर सयोगिता ने वृत लिया था वह वृत स्रोत स्वरूप हो उसके चित्त से प्रवाहित होने लगा । वह कहने लगी- या तो चहुआन राजा (पृथ्वीराज) को ही वरण करूँगी या अपने श्रेष्ठ धर्म के लिये जल में प्रवेश कर लुप्त हो जाऊँगी अथवा अग्नि में जलकर प्राण दे दूँगी । मैंने तो उस कामदेव-स्वरूपी पृथ्वीराज को ही वरण करने की सोच ली है । इतनी बात मन में निश्चय कर उस नवेली ने अपने प्रियतम का नाम सब पर प्रगट

दिया । राजा पगु की सत्रणा नहीं मानने योग्य समझ कर वह कुमारी राजा^२ वहुआन पद्मीराज के नाम का) हो उच्चारण (जप) करती हुई फिरने लगी ।

दोहा

पग सुयघर थपि तहें, सुनिय जुन्हाइय गत्त ।

वर कमोद जिम सुन्दरी, रचि-वचननि सुनि गत्त' ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—कमोद=कुमोदिनी । रचि-वचननि=वचन द्वारा रचकर, वाग्य चातुर्यता कर । सुनि=सुना गया । गत्त=चली गई ।

अर्थः—रानी जुन्हाई की बात सुन कर (मानकर) पगुराज ने सयोगिता के स्व-घर की स्थापना की । वह सुन्दर रानी जयचन्द रूपी चन्द की श्रेष्ठ कुमोदिनी स्वरूपा थी । सुना है कि उसने वाक चातुर्य द्वारा राजा के क्रोध को शांत किया और अपने महल में चली गई ।

मा मुच्छी' धुक्किय-धरनि, सुनिय सँजोइय बाल ।

सुहन सु हदी बत्तरी, भुवन परदी^२-भाल ॥ १० ॥

प्रा० पा० १ का० भी० पा० । २ सर्व० ।

शब्दार्थः—मा=माँ, (सयोगिता की माता) । मुच्छी=मूर्छित हो । धुक्किय धरनि=पृथ्वी की ओर झुक गई, पड़ गई । सँजोइय=सयोगिता । सुहन=सुहावनी, मन माती । सु हदी=उसकी । बत्तरी=बात । भुवन=घर । 'परदी भाल=ज्वाला फैलाने जैसी, आग फैलाने जैसी ।

अर्थः—रानी जुन्हाई ने सुना कि सयोगिता के मन में जो बात है वह घर में आग फैलाने जैसी है । इससे सयोगिता की वह माता मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी ।

अप्प स्वयवर काज^१ रहि, सथ मुक्किय आरि काज ।

सवै बीर सथ्थह दए, रहि कन वज्ज सु राज ॥ ११ ॥

प्रा. पा १ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—सथ=साथ, सग, समूह । मुक्किय=मेजा । सथ्थह=साथ में ।

अर्थः—उधर कन्नौजेश्वर स्वयं संयोगिता के स्वयंवर के कार्यार्थ कन्नौज में ही रहा और अपने सब सैन्य-समूह को शत्रु (पृथ्वीराज) का सामना करने के लिये भेजा ।

हालाहल किय^१ फौज रत, तुं तरकिय चहुआन ।

अप्प अप्प कों है गई, धर जंगरी विहान ॥ १२ ॥

प्रा पा. १ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—हालाहल=हलाहल, जहर । रत=रात्री । तुं=तू, तैमे । तरकिय=तड़क पड़ा, फूल गया । धर जंगरी=जंगल धरा, जंगल धरा के निवासी । विहान=प्रातः, प्रात रूप ।

अर्थः—उस कन्नौजी-सेना ने जहर फैलाकर युद्ध-स्थल को रात्रि रूप दे दिया । जिससे चाहुआन नरेश बरसाह से फूल उठा और उस जंगलेश्वर के भू-भाग के निवासी वीर एक दूसरे को जागृत करने के लिये प्रातः स्वरूप बन गये ।

कवित्त

गय^१-जंगल जंगलिय, राज निरवास देस करि ।

राजौरे^२ वन जुद्ध^३, गयौ पृथिराज मत करि ॥

प्रजा पुलिंद नरिंद, समर रावर धर रक्खिय^४ ।

तीय^५ तीय^६ मावित्र, थान थानं नृप पक्खिय^७ ॥

सम हथ्य जुद्ध^८ को कथ्य गै, सुवर कथ्य कवि चंद कहि ।

पृथिराज राज अरु वीर मति^९, विपन ममम् आखेट गहि ॥ १३ ॥

प्रा पा. १ का. पा. भी. । २ का. पा. घ. । ३ पा. । ४ भी. । ५, ६ का. पा. घ. । ७ भी. । ८ पा. । ९ घ का ।

शब्दार्थः—गय जंगल=जंगली हाथी । जंगलिय=जंगलेश्वर (पृथ्वीराज) । निरवास=निर्वासित । राजौरे=एक स्थान का नाम है । पुलिंद=विचलित होती हुई । तीय २=तीन २ । मावित्र=आवित्र, आवृत्त, घेग । पक्खिय=त्रपाती । समहथ्य=सम्हाते समय, सामना करते समय ।

अर्थः—जंगली हाथी के समान (मतवाजा) जंगलेश्वर (पृथ्वीराज) था । उस राजा ने शत्रुओं द्वारा विघ्न उपस्थित किये जाने पर देशवासियों को

हटा कर सुरक्षित स्थान पर रख दिया । वह राजा पञ्चीराज मारणा कर राजोर वन में युद्धार्थ गया । प्रजा को विचलित होने से राजा मगरिकम ने वचाया । प्रत्येक स्थान सभरेश्वर के पञ्चराती वीरों द्वारा तीन २ के घेरे में सुरक्षित था । जिस समय युद्ध में वीर टकराने लगे (भिड़ने लगे) उसका वर्णन कौन कर सकता है ? उम ग्याति को मैं (कवि चन्द) ही वर्णन कर सका हूँ । वन में जैसे शिकारी शिकार करता है उस समय उसकी बुद्धि हिंसा में प्रवर्त हो जाती है, उसी प्रकार उस समय राजा पञ्चीराज और उसके वीरों की बुद्धि शत्रुओं पर हिंसक रूप में बदल गई (अर्थात् निर्दयता पूर्वक शत्रुओं को मारने लगे) ।

यों कायर^१ मुक्क्यों, पुहप रज्जत^२ मधुप तजि ।

सूके^३ सर तजि हस, दद्व^४ वन मृगन पत्ति भजि ॥

ज्यों फल^५ हीनति पखि, तजे तरवर नन सेवं ।

द्रव्य हीन कौ गनिक, तजत पत्थर करि देव ॥

जल तजत कुम्भ ज्यों भिष्ट दुज, जग्य पवित्र न मानइय ।

भजि थान थान अरि भुत-गयै^६ वर लालचिच सु प्राण इय ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १, २ घ० । २ सर्व । ४ पा० घ० । ५ पा० । ६ का० ।

शब्दार्थः—पुहप=पुष्प । रज्जत=रज, धूल में मिल जाने पर । सूके सर=सूखा सरोवर । दद्व=दग्ध । पत्ति=पक्ति । हीनति=हीन । नन सेवं=नहीं बसते । गणिक=गणिका, वाराहना । पत्थर करि=पत्थर मान लेने वाले, नास्तिक, अविश्वासी । भिष्ट दुज=भृष्ट द्विज । भजि=भाग कर । अरि भत=शत्रु के योद्धा । लालची=स्वार्थी । प्राणइय=प्राणों के ।

अर्थः—विपत्ती कायरों ने युद्ध-स्थल को इस प्रकार छोड़ दिया, जिस प्रकार धूल में मिले हुए पुष्प को भ्रमर, शुष्क सरोवर को हस, दग्ध वन को मृग पक्ति, फल हीन वृक्ष को पक्षी, द्रव्य रहित को वैश्या, देव प्रतिमा को अविश्वासी और यज्ञ-कुम्भ के मन्त्रित जल को भृष्ट द्विज छोड़ देता है । अपने प्राणों को प्यारे समझने वाले विपत्ती राजा के वीर युद्धस्थल से भाग कर यत्र तत्र बिखर गये ।

दोहा

मानि प्राण की लालसा, तजि साईं^१ सूं^२ हेत ।

छंडि गए कायर सवै, रहै सूर वैंधि^३ नेत ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० । ३ घ० ।

शब्दार्थः—लालसा=इच्छा, अभिलाषा । साईं=स्वामी । सूं=से । हेत=प्रेम । सूर=बहादुर ।
वैंधि नेत=नेतृत्व ग्रहण करने वाले ।

अर्थः—प्राणों को अधिक प्रिय मानने वाले वे कायर अपने स्वामी के प्रेम को भूल रणस्थल छोड़ कर चलते वने । युद्धस्थल में नेतृत्व करने वाले बहादुर ही वहाँ रहे ।



संयोगिता पूर्व जन्म

(समय ४५)

नोहा

कहै चडि सुरपति सुनहि, रुधिर^१ अघावहु मोहि^२ ।

रामाइन भारथ्य छुधि^३, रही निहारै तोहि ॥ १ ॥

प्रा० पा० १, २, ३ पा० का० ।

शब्दार्थः—छुधि=छुधा ।

अर्थः—देवी चंडिका ने इन्द्र से कहा - मुझे शोणित से तृप्त करदो । रामायण और महाभारत जैसे युद्धों के होते हुए भी मैं क्षुधित हूँ । इसीलिये तुम्हारी ओर देखती हूँ ।

चवत राज सुरराज सौ^४, इह रघुकुल व्योहार ।

लेत लक छिन इक लगी, देत न लगो वार ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—चवत=कहता हुआ । राज=सुशोभित हुआ । सौ=वह । व्योहार=व्यवहार, तरीका ।

अर्थः—देवों में श्रेष्ठ इन्द्र ने यह कहा कि रघुवंशियों की यह सदा रीति रही है कि लका को लेने में कुछ क्षण लगे, किन्तु देने में किञ्चित् मात्र भी समय न लगा ।

कहै देव-सुर देवि^५ सौ, लंक भभीखन अपि ।

रघुपति से साईं सिरह, तू किम रही अधपि ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—देव-सुर=देवताओं का देव, इन्द्र । भभीखन=विभीषण । अपि=अपित की, दी । साईं=स्वामी । अधपि=अतृप्त ।

अर्थः—देवराज ने चंडी (देवी) से आगे कहा — रामचन्द्र ने लका विभीषण को दी । उस समय ऐसे स्वामी के होते हुए भी तू कैसे अतृप्त रही ?

घन तोमर अरि दल अलप^१ सस्त्र अस्त्र^२ वर मंत्र ।

तिन रत त्रपत न छिन भई, दवि दुरि ठुंठ^३ भ्रमंत ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ का० २ स०, ३ पा० ।

शब्दार्थः—अलप= तुच्छ । वर=वल । रत=रक्त । दवि=रुक्कर । दुरि=दुलक गये, धराशाई हुए । ठुंठ=रुड ।

अर्थः—रामचंद्र के तीष्ण वाणों के सामने शत्रुदल और इनके शस्त्रास्त्र तथा मंत्र-शक्ति तुच्छ दिखाई दी, इन वाणों की मार से रुग्ण रुक्कर भ्रमण करते हुए धराशाई हुए । उनके रक्त से क्षण मात्र के लिये तू कैसे वृम न हुई ?

अव कनवज दिल्लो वयर, दलन दुअन वडि खेद ।

रुड मुड खडन खलन, विधि वधि वदि वेद ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—वयर=शत्रुता । खेद=द्वेष । विधि=तरीका । वदि=कथित ।

अर्थः—कन्नौज और दिल्ली राज्य के बीच शत्रुता बढ़ गई है । क्योंकि दोनों सेनाओं में द्वेष छा गया है । अत वेदों में वर्णित युद्ध-रीति से शत्रुओं के (एक दूसरे के) रुड मुड खण्डन होने वाले हैं ।

चडि वरन पुज्जाइ त्रिख, मंडि मु ड डरमाल^१ ।

जो कनवज डिल्लिय^२, वयर, भरहि पत्र रजवाल ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ पा०, २ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—चडि वरन=योगिनियां । पुज्जाइ=पूर्ण करके । त्रिख=तृपा, प्यास । वयर=शत्रुता । वाल=वाला ।

अर्थः—हे चण्डी ! यदि कन्नौज और दिल्ली राज्य में लड़ाई छिड़ गई तो योगिनियों की रक्त पिपासा पूर्ण हो जायगी और शिवको हृदय मुण्ड माला से मंडित (सुशोभित) हो जायगा, तथा तुम्हारा रक्त-पात्र भी पूर्ण रूप से भर जायगा ।

कवित्त

मति प्रधान गंधर्व, देव दिन राज बुलायौ ।

कलह करौ भारथ, मत्ति आपनो वढायौ ॥

संयोगिता पूर्व जन्म

(समय ४५)

तोहा

कहै चडि सुरपति सुनहि, रंधिर^१ अघावह मोहि^१ ।

रामाइन भारथ्य छुधि^२, रही निहारै तोहि ॥ १ ॥

प्रा० पा० १, २, ३ पा० का० ।

शब्दार्थः—छुधि=जुधा ।

अर्थः—देवी चडिका ने इन्द्र से कहा - मुझे शोणित मे तृप्त करदो । रामायण और महाभारत जैसे युद्धों के होते हुए भी मैं जुवित हूँ । इसीलिये तुम्हारी ओर देखती हूँ ।

चवत राज सुरराज सौ^१, इह रघुकुल व्योहार ।

लेत लक छिन इक नगो, देत न लगो वार ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—चवत=कहता हुआ । राज=सुशोभित हुआ । सौ=यह । व्योहार=व्यवहार, तरीका ।

अर्थः—देवों में श्रेष्ठ इन्द्र ने यह कहा कि रघुवंशियों की यह सदा रीति रही है कि लका को लेने में कुछ जग्न लगे, किन्तु देने में किञ्चित मात्र भी समय न लगा ।

कहै देव-सुर देवि^१ सौं, लक भभीखन अग्नि ।

रघुपति से साईं सिरद, तू किम रही अधपि ॥ ३ ॥

प्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—देव-सुर=देवताओं का देव, इन्द्र । भभीखन=विभीषण । अग्नि=अपित की, दी ।

साईं=स्वामी । अधपि=अतृप्त ।

अर्थः—देवराज ने चडी (देवी) से आगे कहा — रामचन्द्र ने लका विभीषण को दी । उस समय ऐसे स्वामी के होते हुए भी तू कैसे अतृप्त रही ?

घन तोमर अरि दल अलप^१ सस्त्र अस्त्र^२ वर मंत्र ।

तिन रत^३ त्रपत न छिन भई, दवि दुरि ठुंठ^३ भ्रमत ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ का० २ स०, ३ पा० ।

शब्दार्थः—अलप= तुच्छ । वर=वल । रत=रक्त । दवि=रुक्कर । दुरि=दुलक गये, धराशाई हुए । ठुंठ=रुड ।

अर्थः—रामचंद्र के तीष्ण वाणों के सामने शत्रुदल और इनके शस्त्रास्त्र तथा मन्त्र-शक्ति तुच्छ दिखाई दी, इन वाणों की मार से रुच्छ रुक्कर भ्रमण करते हुए धराशाई हुए । उनके रक्त से क्षण मात्र के लिये तू कैसे तृप्त न हुई ?

अव कनैवज^१ दिल्ली वयर, दलन दुभन वडि खेद ।

रुड मुंड खडन खलेन, विधि वधि वदि वेद ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—वयर=शत्रुता । खेद=द्वेष । विधि=तरीका । वदि=कथित ।

अर्थः—कन्नौज और दिल्ली राज्य के बीच शत्रुता बढ़ गई है । क्योंकि दोनों सेनाओं में द्वेष छा गया है । अतः वेदों में वर्णित युद्ध-रीति से शत्रुओं के (एक दूसरे के) रुड मुंड खण्डन होने वाले हैं ।

चडि वरन पुञ्जाइ^१ त्रिख, मंडि मुंड उरमाल^१ ।

जो कनवज दिल्ली^२ वयर, मरहि पत्र रजवाल ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ पा०, २ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—चडि वरन=योगिनियाँ । पुञ्जाइ=पूर्ण करके । त्रिख=तृपा, प्याठ । वयर=शत्रुता । वाल=वाला ।

अर्थः—हे चण्डी ! यदि कन्नौज और दिल्ली राज्य में लड़ाई छिड़ गई तो योगिनियों की रक्त पिपासा पूर्ण हो जायगी और शिवको हृदय मुण्ड माला से मण्डित (सुशोभित) हो जायगा, तथा तुम्हारा रक्त-पोत्र भी पूर्ण रूप से भर जायगा ।

कवित्त

मति प्रधान^१ गधर्व, देव दिन राज बुलायौ ।

कलह कतौ भारथ्य, मत्ति आपनो बढायौ ॥

भूमि भार उत्तार, कलह कितिय विस्मारौ ।
 चाहुआन कमधज्ज, वीर विप्रह जग्मारौ ॥
 करि कीर रूप कनवज गयौ, उभय गिवम दिक्खिय पुरिय ।
 वभनिय मदन अगन सुतरु, निसि निवास तहां उत्तरिय ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—मति=समति । बढायौ=रवाना । जग्मारौ=जाग्रत करो । कीर=तोता । वभनीय=ब्राह्मणी । मदन=मदना नाम है ।

अर्थ—इतना कहने के पश्चात् गंधर्व में जो सबसे श्रेष्ठ और बुद्धिमान था । उसको देवराज इन्द्र ने बुला भेजा और उसको सु-सम्मति देकर रवाना किया तथा कहा कि दिल्ली और कन्नौज राज्य के बीच महाभारत के समान युद्ध कराओ । इस प्रकार भू-मण्डल का भार उतारने के लिये कीर्ति का विस्तार करो । हे वीर ! तुम राजा चाहुआन और कमधज्ज (जयचंद) के बीच में विप्रह भावना (झगड़े) को जाग्रत करो । तब वह गंधर्व तोते का रूप धारण कर कन्नौज गया और दो दिन तक सारे शहर को देखता रहा, फिर वह मदना ब्राह्मणी के आगन में स्थित वृक्ष पर रात्रि में निवास करने के लिए उतरा ।

श्लोक

सतियुगे काशिका दुर्गे, त्रेतायाच अयोध्यया ।
 द्वापरे हस्तिनावासं, कलौ कनवज्जिकापुरी ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—कलौ=कलियुग । हस्तिनावास=हस्तिनापुर ।

अर्थ—सतयुग में काशी दुर्ग, त्रेता में अयोध्या, द्वापर में हस्तिनापुर तथा कलियुग में कन्नौजपुरी ही श्रेष्ठ हैं ।

दोहा

गंधर्व त्रिय प्रिय पुच्छि रस^१, नाथ कथा समुक्ताय ।
 सजोगिय अवतार कहि, नृप प्रह ज्यों जमि आइ ॥ ९ ॥
 प्रा० पा० १, पा० टि० का० ।

शब्दार्थ—रस=सरसतापूर्वक । जमि आय =जन्म लिया ।

अर्थ—तब गंधर्व की स्त्री ने रस लेकर गंधर्व से पूछा—हे स्वामी ! सयोगिता के अवतार तथा कन्नौजेश्वर के घर में जिस प्रकार उसने जन्म लिया, वह सारी कथा समझा कर कहो ।

राजपुत्रि उत्पत्त मुनि, इह अच्छरि अवतार ।

सुमत् आप म्रत लोक मर्हि, सूरनि करन संहार ॥ १० ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० का । २ दि० पा० । ३ पा० ।

शब्दार्थः—उत्पत्त=उत्पत्ति अच्छरी=असग । सुमत=सुमत ऋषि ।

अर्थः—तव गधर्व ने कहा-हे प्रिये । राजकुमारी की उत्पत्ति सुन, यह आसरा का अवतार है और तु आप से मृत्यु-लोक में वीरों का संहार करवाने हेतु यहाँ जन्म लिया है ।

सुकी सुनै सुक उच्चरै, पुत्र संजोय प्रताप ।

जिहि छर अच्छर मुनि छर्यौ, जिहि त्रिय भयौ सराप ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—सजोय=संयोगिता । छर=छल । छर्यौ=छला ।

अर्थः—इसके बाद जिस छल से उस आसरा ने मुनि को छला तथा जिसके कारण वह आ. हुई, उसकी सब पूर्व जन्म की कथा वह तोता स्वरूप गन्धर्व अपनी स्त्री से कहने ल. ।

कवित्त

वाल मान सरिता उतंग, तोइ^१ आनग अग सुज ।

रूप सु तट मोहन तडाग, भाइ^२ भ्रम भए कटाच्छ दुज ॥

प्रेम पूर विस्तार, जोग मनसा विध्वंसनि ।

दुति ग्रह नेह अथाह, चित्त करखन पिय तूसनि ॥

मनसा विमुद्ध बोहिध्य वर, नहि थिर चित जुगिगद^३ तिहि ।

उत्तरन पार पावै नहीं, मीन तलफि लागि मत्त विहि ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १, २ भी० का० । ३ पा० ।

शब्दार्थः—उतंग=उच्च, श्रेष्ठ । तोइ=जल । आनग=अनग । सुज=उसमें । भाइ=मात्र ।

भ्रम=भ्रमर (जल चक्र) । ग्रहनेह=वर में प्रेम । नूपति=पतोप देने वाली । मनसा=मनोवृत्ति ।

उत्तरन=उतर पड़ने पर, उतरने पर । मत्त=मति, बुद्धि ।

अर्थः—बालाएँ (स्त्रियों) मान की श्रेष्ठ सरिता के समान है - उनके अंगों में व्याप्त अतग की परिपूर्णता ही जल है, रूप ही तट है, मोह ने की शक्ति ही उस सरिता से सम्बन्धित तड़ाग है, हाव-भाव कटाक्ष ही उसमें भवर (जल चक्र) है, पूर्ण प्रेम ही उसका विस्तार है, वह गोगेन्द्रा की नाशक है, गृह-प्रेम ही चमक और गहराई है, प्रियतम के चित्त को सनोप देना ही उनका आकर्षण है, शुद्ध मनोवृत्ति ही इसे पार करने के लिये नौका है, योगियों के चित्त भी स्थिर नहीं रह पाते और उसमें प्रविष्ट होने पर भी कोई उसका पार नहीं पाता । जिसकी मति उसकी ओर हो जाती है (जिसकी बुद्धि उसकी ओर हो जाती है) वह मद्धती की भाँति तडफ्ला है ।

साटक

जा जीव तप सार पार सुमती, रत्त हरी ध्यानय ।

खिमया कामय चित्त सित्त खिमया, खिमया रस वृद्धय ॥

सा सुपनतर दीह रत्तित^१ मुख, प्रानपि खिमया रुख ।

ना सुममै विय ध्यान, पंडर^२ दृगे^३ खिमयाय खिमया मुख ॥ १३ ॥

प्रा० पा० १, २, ३ पा० ।

शब्दार्थः—जा=जिसका । जीव=जीवन । सारपार=तत्व से परे । खिमया=क्षमा, अभाव रहित, शांत । सित्त=श्वेत । खिमया रस=शांत रस । रत्तिन=रात्रि । मुख=प्रमुख । प्रानपि=प्राण, प्राणी । विय=दूँधरा ।

अर्थः—जिसका जीवन तत्त्वयुक्त तप और सुमति से दूर था, जो हरि के ध्यान में लीन था, जिसका विशुद्ध चित्त काम से रहित और क्षमायुक्त था, जिसमें शांत-रस का बाहुल्य था, उसकी प्रमुख प्रवृत्ति, स्वप्न में, दिन और रात्रि में प्रत्येक प्राणी के लिये क्षमा ही थी, उसके पांडुर दृग किसी अन्य का ध्यान नहीं करते थे (केवल ईश्वर के ही ध्यान में पुलकित थे) और वह केवल मुख से क्षमा-क्षमा ही उच्चारण करता था ।

गाथा

खिमया सुखमय भ्रमिय, रमयाइ भ्र ग कीट्यो मनय ।
जिहि चित्त^१ न भेदियं ग, सो भिदेव काम वामाइ ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—भिदेव=भेदा गया ।

अर्थः—यद्यपि वह क्षमा-सम्पन्न सुख में रक्त होकर भ्रमण करने वाला ऋषि था, फिर भी उसका मन भ्रमर-कीट की भांति रमण करने के लिए आकर्षित हुआ । जिसका चित्त कभी नहीं भेदा गया, वह वामा के कारण काम द्वारा भेद दिया गया ।

प्रथम तित्थ अइसट्ठि, न्हाय वट्ठी तय रत्तौ ।

जठराग्नि करि त्रपत, छुधा निद्रा त्रस जित्तौ ॥

हिमरित हिमतनु दह्यौ^१ पंच अग्नि^२ ग्रीसम सद्यौ ।

घरखा काल प्रचण्ड, मेघ धारह वयु^३ वहह्यौ ॥

कर धूम पान मुख अद्व रहि, कर अंगुष्ठ सु देह^४ धरि ।

सत वरख ध्यान लगै भयौ, जोति चित्त चिहुटी सुहरि ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १, २, ३ पा० । ४ का० पा० ।

शब्दार्थः—त्रपत=पतुष्ट । त्रम=तृपा । चिहुटी=चिपट गई ।

अर्थः—ऋषी ने प्रथम ६८ तीर्थों की यात्रा की, पश्चात् स्नान कर वट्टिका-श्रम में निवास कर तपस्या में लीन हुआ, फिर जठराग्नि को अपने आप सतुष्ट कर भूख, प्यास और निद्रा को जोत लिया । हेमन्त ऋतु में हिम से अपने शरीर को दग्ध किया । ग्रीष्म में पचाग्नि सहन की । वर्षा-काल में प्रचण्ड मेघों की जल-धारा शरीर पर प्रवाहित की । अधोमुख होकर धूम्र-पान किया (ओंवे मुह लटक कर नीचे धूनी लगा, उससे नैत्र, मुख, नासिका द्वारा धूम्र को ग्रहण किया । पैर के अंगूठे के बल पर अपनी काया ठहराई (अंगुष्ठ के आधार पर खड़े होकर अपने इष्ट देव का चिंतन किया) । इस प्रकार सौ वर्ष (या सात वर्ष) तक ध्यान करता रहा फिर उसके चित्त में ईश्वर की ज्योति चिपट गई ।

तप थल कपित सुर^१ भुवन^२, राखी ध्यान दिव देव ।

सुस्त तेज द्विग मिथल हुप्र, लगौ सुरप्पी भेय ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—सुर भुवन=देवलोक । सुरप्पी=सुरपति । भेय=भेद ।

अर्थः—उसके तपोबल से सुरलोक काप उठा । उसकी तपस्या का ध्यान इन्द्र का हुआ । वह सारे भेदों को जान गया, जिससे उसकी काति मलीन होगई और द्रग शिथिल हो गये ।

तव चिंतिय सुरराज मन, का विचित्र वरवाम ।

आदि अत सोधिय सकल, अच्छरि^१ अच्छरि^२ नाम ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—सोधिय=खोज की, स्मरण किया ।

अर्थः—तब इन्द्र ने मन में सोचा कि सुन्दर कामिनिया भी क्या विचित्र है ? फिर उसने आदि से अत तक प्रत्येक आसरा के नामों को ढूँढा (स्मरण किया) ।

बोलि घृताची मेनिका, रभ उरवसी रूप ।

जानि सुकेस तिलोत्तमा, मजुघोष सुनि-भूप ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—सुनि-भूप=राजा ने सुना, (देवराज इन्द्र ने सुना) ।

अर्थः—इन्द्र के बुलाने पर रूपवती घृताची, मेनिका, रभा, उर्वशी, सुकेशी, तिलोत्तमा, मजुघोषा आदि उपस्थित हुई ।

अति आदर आ-दर क्रियौ, कह्यौ आप इह वैन ।

छलह सुमतन जाइ के, रहै राज सुख चैन ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—आ-दर=द्वार पर आकर । आप=स्वयं ने । सुख चैन=आनन्द पूर्वक, शान्ति पूर्वक ।

अर्थः—द्वार पर आकर इन्द्र ने इनका विशेष सम्मान किया और ये वचन कहे- तुम सुमन्त को जाकर छलो ताकि हमारा राज्य आनन्द पूर्वक रह सके ।

गाथा

नयन नलिन नवीन, गवन गय मत्त तुल्लाय ।

वैन पर अत दीन, भीन कट्टी अग्न राजेस ॥ २० ॥

शब्दार्थः—नलिन=नीलकमल । गवनं=गमन । गयं=गज, हाथी । तुल्लायं=तुल्य । १५२=दूसरों को ।
अतः=दास । दीनं=दीन । भीनं=घीण ।

अर्थः—नवीन नीलकमल के समान नेत्रों वाली, मस्त हाथी के समान चलने वाली, वाणी से दूसरों को दास व दीन बना देने वाली, और मृगराज के समान घीण कटिवाली वे सब अप्सरायें थीं ।

आर्या

सपत सुर ज्ञान निपुना, नृत्य कला कोटि आलया मानं ।

तार तरलेव भ्रमरी, भ्रमरी भ्रमरीय सयस ॥ २१ ॥

प्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—सपत=सप्त, सुर=स्वर, आलयायामानं=इन्द्र भवन के योग्य । तार=हृग की पुतली, तरलेव=चंचल । भ्रमरी=भ्रमण, सयस=समान ।

अर्थः—सप्त स्वरों के साथ गाने में निपुण, नृत्य कला की कोटि में इन्द्र भवन में शोभा पाने योग्य उन अप्सराओं के चंचल पुतली का भ्रमण भ्रमरियों के समान था ।

कवित्त

भो आयसि सुर राज, मजु घोषा मुनि बन्धिय ।

मृत्युलोक मे जाहु, सुमति छल छलौ तुरन्तिय ॥

दुसह तेज को सहै, मोहि आसन डर डुल्लिय ।

सेस सकि कलमलिय, नेन तिय तालिय खुल्लिय ॥

जल सु खचि रह सुर न दिय^१, सूर सपत्तौ डर^२ भुवन ।

तप ताप देव सब कलमलित, सुकज काज रक्खहि दुअन ॥ २२ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ सं० ।

शब्दार्थः—आयसि=आदेश । तुरन्तिय=तुरन्त । दुसह=असह्य । तिय=नृतीय । खुल्लिय=खुल गयी हो । खंचि=रोषण । दुअन=दूसरा, अन्य कोई नहीं ।

अर्थ—इन्द्र की प्रमुख अप्सरा मजुघोषा नाम की थी, उसको आदेश दिया कि तुम सब मृत्युलोक में जाकर तुरन्त छल द्वारा सुमन्त ऋषि को छलो । क्योंकि उसके असह्य तेज को कोई भी सहन नहीं कर सकता । भय-वश मेरा आसन भी ढालने लगा है । शेष नाग भा शक्तिन होकर तिजमिलाने लग गया है । ऐसा घात होता है

मानों शिव का तृतीय नेत्र खुल गया हो। उसके तरफे आगे आकाश-गंगा का जल सूखने लग गया है। सूर्य भी डर कर अपने गृह में जा गया है। सब देवता घबरा गये हैं। अतएव हमारे इस श्रेष्ठ कार्य को रक्षा तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता।

दोहा

खग खग पति आसन प्रह्वौ, गण वित्ति बहु काल ।

रभ बिमा सम रूपधरि, आय सपत्नी ताल ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—खगपति आसन=गरुडासन । सपत्नी=पहुँची । ताल=तालाब ।

अर्थः—ऋषी को गरुडासन लगाये हुए बहुत समय बीत गया था, तब इन आसराओं में से रभा नाम की आसरा ने जग के समान शीत स्वरूप वारण कर उस तालाब पर आ पहुँची जहाँ वह (सुमत) ऋषि था।

मानि बैन सुरराज लिय, नरपुर पत्तिय आइ ।

जहँ ताली लग्गी सुमति, तहँ नूपुर बज्जाइ ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—नरपुर=पृथु लोक । पत्तिय=पहुँची । ताली=पमाधि । सुमति=बुद्धिमान की, सुमत की ।

अर्थः—इन्द्राज्ञा का पाजन करने के लिये वह मृत्युञ्जय में आ पहुँची और जहाँ पर सुमत ऋषि ने समाधि लगा रखी थी, वहाँ वह आकर नूपुर बजाने लगी ।

अच्छरि अट्ट विमान बनि, कुसुम समान सरीर ।

नग जगमग अँग अँग सुबनि, कनक प्रभा दुति चीर ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—चीर=दुकूल, साड़ी ।

अर्थः—आठों आसराएँ विमानों में सुशोभित थीं। उनका शरीर पुष्पवत् था और उनके अंग २ से नगों की जगमगाहट पैल रही थी, दुकूल के अंदरसे उनकी अंग-प्रभा कनक-कांति की भांति दिखाई पड़ती थी।

करिय गान विविधान सुर, ताल काल रस भाइ ।

छिनक पलक मुख उघरिय, अच्छरि रही लजाइ ॥ २६ ॥

पा० पा० १, पा० का० भी ।

शब्दार्थः—विविधान=विविध या तरीके से । काल=समय । माह=मात्रे ।

अर्थः—समय और इसके अनुसार हाव भावों सहित विविध स्वरों के साथ वह अप्सरा गाने लगी, जिससे क्षण मात्र के लिये ऋषि की पलक खुली, यह देख कर अप्सरा लज्जित हो गई ।

उलटि गये सुरपति हँसै, रहै रिखीस रिसाइ ।

इह चिंता मन उप्पनिय, फिर दिव लोक सुजाइ ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—उलटि गये=लौट जाने पर । उप्पनिय=पैदा हुई ।

अर्थः—अप्सरा के मन में स्वर्ग की ओर जाने में दो चिंतायें उत्पन्न हुई । पहली यह कि यदि लौटकर जाऊँगी तो इंद्र उपहास करेगा और यहाँ रहूँगी तो ऋषि क्रोध करेंगे ।

जौ न छरौं तौ देव-हर, रिखि जप तप्प प्रचंड ।

दुहुँ विधि संकत कामिनी, आप-ताप सुरदइ ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—छरौं=छलौं । प्रचंड=महान ।

अर्थः—यदि ऋषि को नहीं छनती हूँ तो देव (इंद्र) के क्रोध का भय है, इंद्र ऋषि का जप और तप महान है । इस प्रकार ऋषि-आप और देव-दण्ड के भय से वह युवती आशंकित हो उठी ।

उलटि गई सुर-घर नि-घर, देव न देव बुलाइ ।

इंद्र रोस कै हर हरी, आप ताप हर पाइ ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—सुर-घर=स्वर्ग । नि-घर=स्थान नहीं । देव=इंद्र । देव=देवता ।

अर्थः—लौट कर जाने से स्वर्ग में स्थान नहीं मिलेगा । देवता और देवराज सामने नहीं बुलवायेंगे । इस प्रकार वह अप्सरा इंद्र-प्रकोप और ऋषि-आप के डर से भयभीत हो गई ।

मन माया भ्रम दूरि करी, फिर लग्यौ रिखि ध्यान ।

ब्रह्म जोति प्रगटी बरह, रंभ प्रगट्टिय आन ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—उरह=हृदय । आन=आकर ।

अर्थ:— उधर ऋषि मन से माया और भ्राति को दूर कर फिर ध्यान मग्न हो गया । उसके हृदय में ब्रह्म ज्योति प्रकट हो गई । इतने में रभा पुन प्रगट हुई ।

कवित्त

बहुरि गई रिखि पास, सास जिन गहिय उरध गति ।
 मूल पवन द्विग बधि, गरजि ब्रह्मन्ड मेघ अति ॥
 बंक नाल जल खचि, सींचि डर कमल प्रफूलित्य ।
 ब्रह्म अग्नि^१ प्रव्जरिय, पाप करि भसम समूलित्य ॥
 तब मारग सुब्जौ मीन जल, पछि खोज पायौ सगुन ।
 सुनि तार सु बज्जै करनि बिनु, सह स्वाद छंडिय त्रिगुन ॥ ३१ ॥
 प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—बधि=ऐंच, बंद करके । ब्रह्मन्ड=ब्रह्मरंध्र । सगुन=फल । सुनि=शून्य ।

अर्थ:—वह अप्सरा उस ऋषि के पास गई, जिसके श्वास ने उर्ध्व गति प्राप्त करली थी । मूल से पवन (श्वास) को ऐंच लेने और नेत्रों को बन्द कर लेने से ब्रह्म-रंध्र में ओंकार की मेघ के समान विशेष ध्वनि होने लगी । वक नाली से जल खींच कर हृदय कमल सींच लिया । जिससे वह प्रफुल्लित हो उठा । ब्रह्माग्नि प्रवज्ज्वलित कर उसने अपने सब पापों को समूल भस्म कर दिया । इतना करने पर मानों मीन ने जल-मार्ग और पक्षी ने फल खोज लिया हो वैसा आनन्द उसे प्राप्त हुआ । बिना हाथ के बजाये हृद तंत्री के शून्य तार बजने लगे । वह उस ध्वनि के आनन्द में मग्न हो, त्रिगुण (सत्व, रज, तम) छोड़ चुका ।

तार्क्षिय लगिय ब्रह्म, लीन मन जोति जोति मिलि ।
 कमल अमल उघरिय, हृदय अवनीय, धरनि अलि ॥
 त्रिकुटिय ताटँक लगि, भ्रगुटि गगा तन मडिय ।
 रिक्खि सबद श्रवन्न, नह अनहद सु बज्जिय ॥

अधमुख ऊरधन चरनं^१ करि, गति पत्तिय मडल गगन ।
 ता रिखहि जगावत सु दरिय, रह्यौ सु धुनि मभभह मगन^२ ॥ ३२ ॥
 प्रा० पा० १ स० । २ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—उध्वरिय=खिल पड़ा, विकसित होगया । अवनिय-ध्वनि=पृथ्वी के धारण कर्ता । अलि=भ्रमर । त्रिकुटिय=भृकुटी का मध्य भाग । ताटक=तालियाँ, ध्वनि । गंगा तन=गंगा को धारण करने वाले शिव । गगन=ब्रह्माण्ड । धुनि=धुन ।

अर्थः—उसकी ब्रह्म-ताली लग गई (समाधिस्थ होगया) । उसी में उसका मन लीन होगया और उसकी ज्योति परम ज्योति में मिल गई । उसका निर्मल हृदय-कमल विकसित होगया । पृथ्वी का धारण कर्ता (विष्णु) इस हृदय-कमल का भ्रमर बन गया । त्रिकुटी की ताली लग (या ध्वनिहो) जाने से उसकी भाल-स्थली में गंगा को शरीर पर धारण करने वाले (भगवान शिव) ने वहां निवास किया । उस ऋषि के कानों में अनहद नाद के शब्द गूँजने लगे । उसने अधोमुख हो चरणों को ऊर्ध्व कर दिया । उसकी श्वास-गति गगन-मंडल (कपाल) में पहुँच गई । ऐसी धुन में जो मग्न था, उस ऋषि को वह सुन्दरी जगाने लगी ।

दोहा

जंत्र मृदंग उपंग सुर, धुनि भ्रमर मलकार ।

करत राग श्रीराग सुर, कर वर वज्रत तार ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—भ्रमर=भ्रमर, पैर का आभूषण ।

अर्थः—तंत्री, मृदंग और उपंग, स्वरों के साथ पद-भूषण की ध्वनि की मकार करती हुई श्री राग के स्वर में गाती हुई वह अप्सरा कुशल हाथों से तंत्री-तार बजाने लगी ।

चट्वात माठा धुआ, गीत प्रवध प्रवीन ।

उघट त्रिघट तालललित, पुजवति सुर कर वीन ॥ ३४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—उघट=प्रगट करना । त्रिघट ताल=त्रिविध ताल ।

अर्थः—चक्कवात, माठा, धुवाद्रि, गाने में प्रवीण यह अप्सरा हाथ में वीणा लेकर सुन्दर त्रिताल के साथ स्वर प्रगट कर उस ऋषि की पूजा (उपासना) करने लगी ।

श्लोक

मृदगी दडिका ताली, गुरघुरी^१ स्तुति माहली ।

गीत राग प्रवध च, अष्टाग नृत्य उच्यते ॥ ३५ ॥

पा० पा० १ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—प्रागं=पाठ प्रकाश के । नृत्य उच्यते=नृत्य कहे जाते हैं ।

अर्थः—मृदगी (मृदग के स्वर पर), दडिका (दडियों पर रास रूप में), ताली (ताली बजाकर), स्तुति (प्रार्थना रूप में), माहली (उन्मत्तावस्था में), गीत राग (गायन के साथ), प्रवध (शास्त्र रूप में), ये नृत्य के अष्टाग कहे गये हैं ।

दोहा

सोर सुरनि के सुर जग्यो, भग्यौ ध्यान जग ईस ।

चित्त चकित करि सोच मन, इह अपुच्य महा दीस ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—सुर=देव तुल्य ऋषि । इह=यह । अपुच्य=अपूर्व । दीस=दिखाई देता है ।

अर्थः—वह देव तुल्य महर्षि उन स्वरो की ध्वनि से जागा । उसका ईश्वर में जो ध्यान था वह दूर हो गया । चकित होकर वह मन में सोचने लगा कि यह अपूर्व दृश्य क्या दिखाई देता है ?

नूपुर धुनि श्रवननि सुनत, भई ध्यान गति पग ।

ताली छुटिय गगन मय, खुलिय पलक मन लग ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—पग=पगुर टूट गई ।

अर्थः—कानों के द्वारा नूपुरों की ध्वनि सुनते ही उस ऋषि की ध्यानावस्था टूट गई (कपाली में लगाया हुआ महा प्राणायाम छूट गया) पलकें खुल गईं और उसका मन उस आसरा में जा रहा ।

कहिय रिकखसुर अचछरी^१, मन्या गधध जच्छि^२ ।कै नागिनि जनमो कुअरि, तोसिव रख्या रच्छि^३ ॥ ३८ ॥

पा पा १, २, ३ पा ।

शब्दार्थ—रिकखसुर=कृषीश्वर । जच्छि=यत् । तोसिव=सतोष, सतुष्ट कर । रख्या=कृषि की । रच्छि=रक्षा कर ।

अर्थः—अप्सरा को देख कर ऋषीश्वर बोला :— 'तू अप्सरा, है या गंधर्वया यक्ष-
कन्या अथवा नाग कुमारी ? संतुष्ट कर (मेरी) ऋषि की रक्षा कर ।

कायातुर^१ त्रिय कर प्रहौ, जप तप छंडिय आस ।

हँसि छुड़ाइ कर तडित जिम^२, गइ आयास^३ अयास^४ ॥ ३६ ॥

प्रा. पा. १ का. पा. भी. । २, ३, ४ का. ।

शब्दार्थः—तडित=विजली । आयास=आकाश । अयास=अकायक ।

अर्थः—जप तप की आशा छोड़ कर कामातुर हो ऋषि ने उस स्त्री का हाथ पकड़
लिया । तब वह वाला हँस कर हाथ को छुड़ाती हुई कर यकायक विद्यत् गति से आकाश
की ओर चलती बनी ।

छिन इक धर मूरछि पर्यौ, चित कजमल्यौ अधीर ।

बहुरि ज्ञान मन आनि कै, मुनि वर भयौ सधीर ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—छिनइक=क्षणिक, क्षणमात्र ।

अर्थः—अप्सरा के चले जाने पर क्षण भर के लिये वह ऋषि मूर्छित हो जमीन
पर गिर पड़ा । उसका अवीर मन तिलनिला गया । कुछ समय बाद पुनः मन में ज्ञान
प्राप्त कर उस श्रेष्ठमुनि ने धैर्य को धारण किया ।

कचित्त

फिरि उत्तारि मन धर्यौ, हेम गिर वरह ध्यान धरि ।

चित्त ब्रह्म लवलीन, वरख सित कियौ तेम करि ॥

छुधा पिपासा जीति नौद निसि नसिय इद्रि तसि^१ ।

बहुत जतन तप कियौ, बधि दृढ पवन सरध वसि^२ ॥

पीवत वाम दच्छिन^३ मुचै, कुंभक पूरक जोग बल ।

करि उरध^४ चरन ध्यान सु रह्यौ, गह्यौ पंथ गगनह अकल ॥ ४१ ॥

प्रा० पा० १, २ भी० । ३, पा० । ४ पा० का० ।

शब्दार्थः—सित=सौ, या सात । तसि=तैसे ही । अकल=अज्ञात ।

अर्थः—फिर उसने उत्तर की ओर मन किया और हेमान्तल परभ्यानावस्थित होगया। उसने सौ (सात) वर्ष तक अपने चित्त को ब्रह्म में लीन कर दिया, जुभा और प्यास को जीत लिया। रात्रि में निद्रा का नाश किया, उसी प्रकार इन्द्रियों का भी उसने दमन कर लिया, बहुत प्रयत्न के साथ उसने तपस्या की और अपने श्वास पवन को ऊँचा खींच कर वश में कर लिया। वाम नामारध्र से खींच कर दक्षिण नासा रध्र में छोड़ दिया। इसप्रकार वह कुम्भक और पूरक किया जो योग बल से कर सका। ऊर्ध्व-चरण कर ध्यान ग्रहण किया और अन्य की जानकारी में नहीं है, ऐसे कपाली आसन को उसने स्वीकार किया।

दोहा

सुकी सुकह पुच्छै रहसि, नख सिख बरनहु ताहि ।

जा दिक्खन मुनि मन टर्यौ, रह्यौ दगदृग चाहि ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—दग दृग=टकटकी ।

अर्थः—तब शुकी रूप गधर्व-पत्नी ने शुकर-रूपी गधर्व से रहस्य पूर्ण बात पूछी कि जिस अस्त्र को देखकर मुनि का मन विचलित होगया और टकटकी लगाकर वह उस पर आकर्षित हुआ उस सुन्दरी के नख-शिख का वर्णन करो—

साटक

चरने रत्तय पत्त राइ रितए, कजाय चन्द्रानने ।

मातग गय हस मत्त गमने, जघाय रमाइने ॥

मध्य छीन मृगेन्द्र भार जघना, नाभिच कामालए ।

सिमे सिम उरब्ज एत नयनौ^१ एने ससी भालयौ ॥ ४३ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—रत्तय=धरुण । पत्त=पत्ते, पत्र । राइ रितए=ऋतुराज, वसन्त, रमाइने=कदली के समान । छीन=छीण । मार=मारी, सिमे सिम=पुगल शिव । एने=उसका ।

अर्थः—तब गधर्व कहने लगा —उस अस्त्र के अरुण-चरण (पदस्थली) ऋतुराज की नवीन पत्रावली के समान, आनन कमल या चन्द्रमा के समान, मतवाली घाल मस्त हाथी या हम की भांति, जघा कदली की तरह और भारी, छीण कटि सिंह के मध्य भाग

के समान, नाभी कामालय के समान, उरोज-युगज शिव लिंग की भांति, नेत्र मृग के समान और भाल (वाल) चंद्रमा के समान था ।

मालिनी (श्लोक)

हरित कनक कांती कापि चंपेव गोरी ।
रसित पद्म गंधा, फुल्ल राजीव नेत्रा ।
उरज जलज सोभा नाभि कोसं सरोजं ।
चरन कमल हस्ती, लीलयाराज हंसी ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—हरित=हरण करके । कापि=को । चंपेव=दवा दिया । गोरी=सुंदरी । फुल्ल=विकसित । राजीव=कमल । लीलया=लीला, क्रीड़ा, (गमन क्रीड़ा) ।

अर्थः—जिस सुन्दरी ने कनक की कांति हरण कर चंपा के रंग को दवा दिया है, वह रस-युक्त पद्म गन्धा की भांति थी (या सुवास कमल की भांति रस युक्त थी) । उसके नेत्र, और नाभि-कोष विकसित कमल के समान तथा उरोज कमल कली के सदृश थे । उसके चरणों की लीला (गमन क्रीड़ा) हस्ती और राज हंसनी की भांति थी ।

दोहा

कामालय सी ' सुंदरी, जिम अरि-अंग-अनंग ।
विधि विधान मति चुक्यौ, किये मेन रन अंग ॥ ४५ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—जिम=जैसे ही, साथ ही । अरि-अंग-अनंग=कामदेव के शरीर का शत्रु (शिव) । चुक्यौ=भूल की । मेन=कामदेव । रन=कलह ।

अर्थः—उस सुंदरी को काम भवन के समान सजा कर साथ ही काम-शत्रु (शिव-लिंग स्वरूप कुच) को स्थान देकर विधाता स्व-विधान में भूल कर बैठे, इसीलिये उसके अंग काम और कलह के कारण वन गये ।

मालिनी (श्लोक)

अधर मधुर विव, कठ कलयठ रावे ।
दलित दलक भ्रमरे, भ्रिग भ्रकुटीयभावे ।

तिल सुमन समान, नासिका सोमगती ।

कलित दसन कुट्ट, पुर्न चद्राननच ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—कलयठ=कलकठ । रात्रे=रव, स्वर । दलक=पत्तों को । भृग=भगुर । कलित=ए दर । कुट्ट=मोगरा ।

अर्थः—जिसके बिम्बोष्ठ मधुर, कठ स्वर कलकठ के समान, भृगुर भृकुटि के भाव, पत्तों को दलित करने वाले भ्रमरों के तुल्य नासिका तिल कुसुम के समान शोभायुक्त दांत सुन्दर मोगरे की कलि के समान और मुख पूर्ण चन्द्रमों की तरह था ।

दोहा

न्याय छर्यौ^१ मुनि रूप इन, सुरति प्रीय त्रिय आहि ।

जा मोहै सुर नर असुर, रहे ब्रह्म मुख^२ चाहि ॥ ४७ ॥

मा० पा० १ का । २ टि० ।

शब्दार्थः—ब्रह्म=ब्रह्मा ।

अर्थः—सुरति प्रिया सुन्दरो ने सुर, नर, असुर इत्यादि को मोहा है, उसकी रचना कर ब्रह्मा भी उसके मुख को इच्छा पूर्वक देखने लगा । ऐसी उस आसरा ने न्यायपूर्वक ही मुनि को छला ।

कत्तिव

इनह काज सुर धरत, सूर तन तजत ततच्छिन ।

परत कध नंचत कर्मंध, पर-हनत स्वामि-रन ॥

भरत पत्र जुगिगनि समत, रति पिवत पिबावती ।

चरम चकव पल ध्रवत, पछि^३जबुन न अघावत ॥

पुनि वपु किरच्चि करतें समर, तब लहत रस अच्छरिय ।

तजि मोह पुत्त पुत्तिय सु तिय, वरत वरग नमच्छरिय ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—ततच्छिन=तत्क्षण । पर-हनत=विपत्तियों को नष्ट कर देते हैं । स्वामि रन=स्वामी के द्वारा युद्ध छेड़ने पर । पत्र=पात्र । रति=लीन । ध्रवत=पीकर । किरच्चि=टुकड़े । लहत=लेते हैं, प्राप्त करते हैं । रस=प्रेम । पुत्त=पुत्र । पुत्तिय=पुत्री । वरग=वारांगना या वर । नमच्छरिय=आकाशनिवासी अप्सरायें ।

अर्थः—ऐसी ही रूपवतियों के हेतु स्वयं देवता वीर-शरीर-धारण कर उसे उमीक्षण नष्ट कर देते हैं । उनके सिर लुढ़कते हैं । किन्तु धड़ नाचने लगते हैं । वे

अपने स्वामी द्वारा छेड़े हुए युद्ध में उसका साथ देकर शत्रुओं का नाश कर देते हैं। योगिनियों के रक्त पात्र भर देते हैं। वे उस पर मुग्ध होकर पीतो-पिलाती और मस्त हो जाती हैं। उनके चर्म, चतु तथा मासांदि को पाकर पत्नी और जवुक गण नहीं आघाते, उनकी इच्छा वनी रहती है। वे युद्ध-स्थल में अपने शरीर के टुकड़े २ करवा देते हैं। तब ही वे अप्सराओं का प्रेम प्राप्त कर पाते हैं। पुत्र-पुत्रियों तथा प्रिय-गृहिणी का मोह छोड़कर वे इस प्रकार आकाशीय वार-वधू अप्सराओं का वरण करते हैं (या वे वर रूप होकर वरण करते हैं)।

दोहा

तिन मोहनि मोह्यौ सु मुनि, मोहे इद्र कुनिंद ।

नर नरिंद जुग जोग रत, उड़ उड़गन रवि इंद ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—कुनिंद=शेषनाग। जुग जोग=दोनों प्रकार के योग, सगुण-निर्गुण। उड़=गृह (नक्षत्र)।

अर्थः—इसी मोहिनी ने उस ऋषि को मोहा। जिसने कृष्णान्द्र, नर, नरेन्द्र दोनों प्रकार के (सगुण, निर्गुण) योग में लीन रहने वाले मुनि, गृहों, नक्षत्रों, रवि और चन्द्रमा को भी मोहित कर लिया था।

कवित्त

तीय धर्यौ तन जोग, श्रवन मुद्रा सु फटिक मय ।

करि अष्टग विभूति, न्हाय जनु विकसि सिंधुपय ।

जटा जूट सिर वधि, दिसा दस अमर मानिय ।

सिंगी कंठ थराइ, जोग जगम सिव जानिय ।

पवनसु अरध ऊरध चढै, वंक नारि पूरै गगन ।

घरि ध्यान सुमन नासिक धरै, रहै ब्रह्म मंडल मगन ॥ ५० ॥

शब्दार्थः—अष्टग=आठों अंग। न्हाय=स्नान कर। सिंधु पय=क्षीरसमुद्र। अमर=अंवा। जगम=चलते फिरते। सिव=शिव, कल्याण। अरध=अध, नीचे।

अर्थः—उस सुन्दर बाला ने शरीर पर योग-वेष धारण किया। उसने कानों में में श्वेत स्फटिक मणि की मुद्रायें धारण की। आठों अंगों को विभूति से इस प्रकार विभूषित किया मानों वह क्षीर-समुद्र से स्नान कर निकली हो। उसने सिर पर जटा

जूट बाधा । दसों दिशाओं ने उसे प्रवा-रूप में माना । गले में सिंगी धारण कर उसने चलते फिरते यागियों के सावन और शिव (शकर या कल्याण) को जान लिया । अधोपवन को ऊर्ध्व चढ़ाकर उसे वरु नाली में पूरकर कपाली में चढ़ा लिया । मन को प्राणायाम में लगा ध्यान धर कर वह ब्रह्म-मण्डल में मग्न होगई ।

दोहा

तजिग भोग मन जोग धरि, निकट सुमतह आइ ।

करि वर डँवरु डहडह्यौ, अवर सब सिव भाइ ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—करि=कर । डहडह्यौ=बजाया । अवर=अमर देवता । भाइ=पसन्द आयी ।

अर्थः—वह दूसरा मन से भोगादि छोड़ योग धारण कर सुमत ऋषि के निकट आई । उसने अपने श्रेष्ठ हाथों से डमरु बजाया । जिसको ध्वनि सब देवताओं और शङ्कर को भी पसन्द आई ।

गिरिजा पसु नह सग, गग नह झलक अलक जल ।

भूत न प्रेत पिशाच, नयन^१ नह त्रितय गरल गल ॥

कटिन बवि गज चर्म, पहरि अँग अग दिगम्बर ।

नह गनेस बटवदन, पुत्र गन नदि भ्र ग सुर ॥

नह बिय ललाट पट तिलक समि, व्याल न माल बनाइ उर ।

नाहिन त्रिशूल-त्रिपुरारि शल^२, नह कर लगिगय धवल धुर ॥ ५२ ॥

प्रा० पा० १ टि० । २ स० ।

शब्दार्थः—पसु=सिंह । पिशाच=पिशाच । शल=शल्य=चुभने वाला । धुर=धोरी, वृषभ, नारी ।

अर्थः—उसके योगिनी वेश से गिरिजा का भ्रम हो सकता था, किन्तु सिंह के पास में न हाने से तथा शिव की निम्न विभूतियों से छलकता हुआ गगाजल, भूत, प्रेत, पिशाच, तृतीय नयन, गरल कठ, कमर में बंधा हुआ गज चर्म, दिगंबर वेप, और गणेश कार्तिक स्वामी, जैसे पुत्र, गण समूह, नदी गण का भ्रम गुजार के समान स्वर, शिव भालस्थित बाल शशि, शिव हृदय की व्याल माल, चुभने वाली शिव की त्रिशूल और शिव कर ग्रहित धवल नदी आदि के न होने से गिरिजा का भ्रम निवा-

रण हो सका । (अर्थात् अर्द्ध नाटेश्वर के रूप में वह योगिनी गिरिजा स्वरूप थी । एकांग गिरिजा का भ्रम देती थी) ।

कवित्त

बहु आदर आदरिय, अरघ आतिथि तिहि दिन्नौ ।
करिय ज्ञान गुन गोष्ठ, कष्ट बहु^१ तप करि किन्नौ ॥
डुल्लिग इंद्र रवि चद्र, इंद्र सुरलोकह मानिय ।
मो अग्नौ कर जोरि, देव सब तजत गुमानिय ॥
तव्वह सु ज्ञान मन उपज्यौ, देव दुखी करि सुख लह्यौ ।
चिदनंद ब्रह्मपद अनुसरिय, धरिय ध्यान गगनह रह्यौ ॥ ५३ ॥

ग्रा० पा० १ भी० का० ।

शब्दार्थः—आदरिय=अपनाया, स्थान दिया । गोष्ठ=गोष्ठी । गुमानिय=गर्व । चिदनंद=चिदानंद । अनुसरिय=अनुसरण ।

अर्थः—जब वह अप्सरा सुमत ऋषि के पास पहुँची तो ऋषि ने उसे सम्मान पूर्वक स्थान दे अर्घ्य और आतिथ्य दिया । फिर उन्होंने ज्ञान-युक्त गोष्ठी की और कहा :—मैंने बहुत कष्ट सहन कर तपस्या की है । जिससे इंद्र, सूर्य, चन्द्रमाँ आदि कांपने लगे हैं तथा इंद्र और स्वर्ग ने मुझे स्थान दिया है । सब देवता मेरे सम्मुख हाथ जोड़ कर गर्व छोड़ देते हैं । ईश्वर ने दुःख (तप कष्ट) देकर सुख दिया है, तब मेरे मन में यह श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त हुआ है । मैंने सच्चिदानंद, परब्रह्म के चरणों का अनुसरण कर कपाल में ध्यान धारण किया है ।

- दोहा -

मात गरभ आवागमन, मेदि भ्रमन ससार ।

ज्यौ कचन कंचन मिले, पय पय मक्त संचार ॥ ५४ ॥

शब्दार्थः—भ्रमन=भ्रम, आतियां ।

अर्थ—मैंने माता के गर्भ से आवागमन और संसार के भ्रम को इस प्रकार दूर कर दिया है जैसे सुवर्ण सुवर्ण में, दूध दूध में मिलता है । उसी प्रकार आत्मा को परमात्मा में मिला दिया है ।

सोइ ग्यान तुमसो कहौ, निरगुन गुन विस्तार ।

बरन्यौ वपु वैराट हरि, जा मुनि लहै न पार ॥ ५५ ॥

शब्दार्थः—वपु=रूप, शरीर । जा=जिसका ।

अर्थः—मैं उसी निर्गुण के गुण-विस्तार का ज्ञान तुमसे कहता हूँ । यह कहकर ऋषि ने ईश्वर के उस विराट-रूप का वर्णन किया । जिसका मुनि लोग भी पार नहीं पा सकते ।

मन माने सोई भजहु, कष्ट तजहु तुम देह ।

सुरति प्रीति हरि पाइयै, उर मेटहु सदेह ॥ ५६ ॥

घा० पा० १ का० भी० पा० ।

शब्दार्थः—सुरति=रूप, शरीर ।

अर्थः—शारीरिक कष्ट छोड़ कर हृदय से सदेह को दूर कर निर्गुण या सगुण जोभी मन माने उसी का तुम भजन करो । जिससे हरि-रूप के प्रेम को प्राप्त कर सकोगी ।

सुरग बसै फिर धर बसै, मनो ग्यान मनईस ।

गरभ दोष मेटहु प्रबल, उर धरि ध्यान जगीस ॥ ५७ ॥

शब्दार्थः—मनो ग्यान=मानसिक ज्ञान, मन के विचार, मनईस=मानना चाहिये । जगीस=जगदीश्वर, ईश्वर ।

अर्थः—स्वर्ग में बसना, फिर पृथ्वी पर जन्म लेना, यह तो मानसिक (मन की-प्रवृत्ति) ज्ञान माना गया है, किन्तु ऐसे गर्भ के आवागमन के प्रबल दोष को ईश्वर का हृदय में ध्यान धर कर दूर कर देना चाहिये ।

कहै ब्रह्म अवतार दस, धरे भगत हित काज ।

रूप रूप अति दैत्य दलि, द्रूपद सुता रखि लाज ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—रूप-रूप=प्रत्येक अवतार ।

अर्थः—जिसने द्रौपदी की लज्जा रक्खी थी उस ब्रह्म के दशावतार कहे गये हैं । सब भक्तों के हित के लिये ही हुए हैं । उन विविध रूपों को धारण कर ईश्वर ने बहुत से व्यक्तियों का दलन किया है ।

कविस्त

मच्छ कच्छ वाराह, अप्प नरसिंह रूप किय ।
वामन बलि छलि दान, राम छति छत्र छीन लिय ॥
लकपती संहर्षौ, उभय बलदेव हलायुध ।
दयापाल प्रभु बुद्ध, रहै धरि ध्यान निरायुध ॥

कलि अंत कलंकी अवतरहि, सत्य धम्म रक्खन सकल ।

करि सरस रास राधा रमन, मवन ज्ञान ब्रह्मह अकल ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः—मच्छ=मत्स्य । कच्छ=कच्छप । अप्प=स्वयं । राम=परशुराम । मवन=मतवालापन ।

अकल=अज्ञात ।

अर्थः उस स्वयं ब्रह्म के मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, दान द्वारा बलि को छलने वाला वामन, पृथ्वी के क्षत्रियों के छत्र छीनने वाला परशुराम, लंकापति का संहार करने वाला राम, हलधारी बलदेव सहित कृष्ण, ध्यानावस्थित नि शस्त्र, दयालु बुद्ध और कलि काल के अंत में होने वाला कलिक ये दस अवतार हैं । ये सब सत्य और धर्म की रक्षा के लिये हैं । प्रत्यक्ष में राधारमण (कृष्ण) की रासलीला सरस है, किन्तु अज्ञात रूप में वह भी ब्रह्मज्ञान का मतवालापन है ।

दोहा

कपट ज्ञान मुख उच्चरै, मन छल धूत अधूत ।

कपट-रूप-कठोर कर, चरन चित्त अवधूत ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—धूत=धूर्त । अधूत=अवधूत । कठोर=सिंह । कर=के ।

अर्थः—मुख से कपट-ज्ञान उच्चारण करने वाला और मन को छलने वाला अवधूत धूर्त होता है, छल पूर्वक नृसिंह रूप धारी के चरणों में जिसका चित्त है, वही वास्तव में अवधूत (संत) कहा जा सकता है ।

इह कहि छल सध्यौ तिनह, भै विन प्रीति न होइ ।

हरि^१ छल तजि हरि^२ रूप करि, मान प्रगट्टिय सोइ ॥ ६१ ॥

प्रा पा. १, २ स. ।

शब्दार्थः—मै=मय । हरी छल तजि=छल के कारण हरिपन (गसली रूप) छोड़कर । हरी=सिंह, नृसिंह । मान=अभिमान ।

अर्थः—प्रभू ने यह कहते हुए कपट को काम में लिया कि बिना भय के प्रीति नहीं होती अस्तु—हरि ने छलने के लिये अपना असली रूप तज कर सिंह-रूप धारण कर गर्व प्रगट किया था (अर्थात् दुष्ट दैत्य को यह बताया कि मैं दुष्टों के नाश के लिये प्रत्येक रूप में प्रत्येक स्थान पर उपस्थित होता हूँ) ।

कवित्त

पीत वरन कजलीय, छोह आरोह सरप जनु ।

दसन सु तिकल कुदाल, नयन बियवज्र धर्यौ तनु ।

वज्र बक अकुस गयद, नख कुंभ विदारन ।

उर्द्ध केस कग सह गरब दती दल गारन ।

धर पटकि पुछ सु छाल बल, पीठ दिठु अवधू पर्यौ ।

भय भीति कपि कामिनि कुटिल, धाय विप्र अकह भर्यौ ॥ ६२ ॥

शब्दार्थः—तिकल=तीक्ष्ण । बिय=दूमरा, द्वितीय । तनु=रूप । उर्द्ध=उठे हुए । कग=करिग, किया, की । सह=आवाज, पहाड़, शब्द । गरब=गर्भ । दती=हाथियों का समूह । गारन=नष्ट करना । बल=बलवान । पीठ=पल । अवधू=तपस्वी (प्रह्लाद) ।

अर्थः—वाद में ऋषि ने नृसिंहावतार का वर्णन करते हुए कहा कि भगवान् नृसिंह पीले वर्ण के थे और उसमें काली रेखाएँ ऐसी प्रतीत होती थीं मानों चर्म पर सर्प बैठे हों उनके दात कुदाली के समान तीक्ष्ण थे, उनके नैत्रों ने मानों द्वितीय वज्र-रूप धारण किया हो । उनके वज्र-तुल्य वक्र नख हाथियों के कुंभ-स्थल को विदीर्ण करने वाले अकुश तुल्य थे, रोम उनके उठे हुए थे । उनका दहाडना गज-समूह के गर्भ को गिरा देने वाला था । ऐसे उस बलशाली मूछ वाले नृसिंह ने पृथ्वीपर पूछ पटकी और तपस्वी प्रह्लाद के पक्षपर वह दिखाई पड़े थे । यह सुन कर उस भया-तुर कापती हुई दुष्ट स्त्री (आसरा) ने दौड़कर ऋषि को अपने बाहुपाश में बाँध लिया ।

दोहा

उर उरोज लगगत सु मुनि, सर सरोज हति काम ।

रोमचित अंग अंग सिथल, मन मोह्यौ सुरवाम ॥ ६३ ॥

शब्दार्थः—हति=मारे, लगे ।

अर्थः—उस भयातुर वाला के उरोज मुनि के हृदय से स्पर्श होते ही काम देव के कमल-रूपी वाणों के समान मुनि को लगे, जिससे वह रोमांचित होगया तथा उसका प्रत्येक अंग शिथिल होगया इस प्रकार उस वाला ने मुनि के मन को मोहित किया ।

दिक्खत अच्छरि^१ अष्ट उन, रह्यौ नेन मन लाइ ।

देह भुलानौ नेह कै, और न सूझै काय ॥ ६४ ॥

ग्रा० पा० १ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—काय=कुछ भी नहीं ।

अर्थः—विमान स्थित अन्य अप्सराओं के देखते हुए उसने (ऋषि ने) उस वाला (अप्सरा) को नैत्रों के द्वारा मन से लगालिया और वह स्नेह वश होकर शरीर को भूल गया । उसको अन्य कुछ नहीं दिखाई दिया ।

भ्रमन भयानक सुपन छल, सिद्धन अवधू^१ संग ।

जानिक पंख परेवना, करि डमरु इन अंग ॥ ६५ ॥

ग्रा० पा० १ सं ० ।

शब्दार्थः—भ्रमन=भ्रमण करने लगा । सिद्धन=योगिनी, अप्सरा । करि डमरु=डवर वरके, अंग फुलाकर ।

अर्थः—वह तपस्वी भयानक स्वप्न द्वारा छड़ा जाकर उस योगिनी के साथ इस प्रकार फिरने लगा । जैसे शरीर को फूलाकर कपोत पक्षी कपोतिनी के आसपास फिरता हो ।

कामजारि सिव भसम क्रिय, करवि भूत रति सोक ।

भोग भुगति रति सुदरी, द्विद नह जोग न जोग ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—करवि=करते हैं । भूत=प्राणी । रति=प्रेम । सोक=दुःख की बात । भोग भुगति=भोग मुक्ता । रति=स्त्रीन । जोग=योग्य । जोग=योगियों के ।

अर्थः—यषि कहता है—शिष ने जिस कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया वह शोक का विषय है। प्राणी उसी से फिर प्रेम करता है। भोग-भुक्ताओं से लीन रहने वाली सुन्दरिये स्थिर चित्त नहीं होती। वे योगी पुरुषों के योग्य नहीं कही जा सकती।

गाथा

वनिता वदत विष्णं, जोग जुगति केन कम्माय ।

स्यामा सनेह रमन, जनम फल पुन्व दताई ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—वदत=कहने लगी। विष्णं=हे विष्णु। केन=किस। कम्माय=काम की। पुन्व=पूर्व।

अर्थः—वह सुन्दरी (आसरा) मुनि से कहने लगी— योग-युक्ति किस काम की ? श्यामा के स्नेह में रम जाना ही पूर्व जन्म के फल की प्राप्ति के तुल्य है।

चित्त चलयौ मन डगगयौ, रच्यौ रूप रस रग ।

आनि पहुतौ जरज रिखि, दही भात ज्यों डग ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—आनि पहुतौ=आ पहुँचा। दही=दग्ध हो गई, नष्ट हो गई। भात=मा अति, विशेष काति। डग=शुष्क काठ।

अर्थः—पुनि का चित्त चञ्चल हो गया और उसका मन डगमगाने लगा। वह रूप के रस-रग में लीन हो गया। इतने ही में सुमत मुनि के पिता (या गुरु) जरज ऋषि वहाँ आ पहुँचे। जिससे सुमत की काति नष्ट हो गई और वह शुष्क काष्ठवत् खड़ा दिखाई पड़ा।

दिक्खि तात परदिक्खि^२ फिरि, भय लज्जा लवलीन ।

खिमा अरथ तप रभ कै, काम कामना भीन ॥ ६९ ॥

मा पा १, २ पा.।

शब्दार्थः—दिक्खि=देख कर। परदिक्खि=प्रदक्षिणा। खिमा अरथ=क्षमार्थ।

अर्थः—पिता को देख कर प्रदक्षिणा देना हुआ सुमत ऋषि भय और लज्जा के वश में हो गया। जो क्षमार्थ (शान्ति के लिए) तपस्या करता था वह रभा के कारण कामेच्छा में रम गया।

पहचानी रिखि सुंदरी, कुस गहि कीनौ दाप ।

भृगुदि बंक रिस नैन रत, दिय अच्छरी सराप ॥ ७० ॥

पा० पा० १ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—'१' = अरुण । सराप = आप ।

अर्थः—जरज ऋषि ने उस सुंदरी (अम्सरा) को पहचान लिया, पश्चात् अभिमान पूर्वक हाथ में कुश गृहण कर क्रोध वश वक्र भ्रुकुटी और अरुण नैत्र कर उसने अम्सरा को आप दिया ।

हम रीखीसर वन घन बसहि, रसह न जाने एक ।

कंद भलत तन कष्ट करि, लेइ आप इक मेक ॥ ७१ ॥

पा० पा० १, २ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—भलत = मलय । मेक = एक ।

अर्थः—ऋषि बोला-हम ऋषीश्वर गहरे वन में निवास करते हैं और किसी विज्ञासरस को नहीं जानते । कन्द-मूल भक्षण कर कष्ट सहन करते हैं । अतः मेरा एक आप तुम्हें ग्रहण करना होगा ।

कवित्त

नयन नीच किय वाल, भाल भ्रुकुटी दिखि तातह ।

गयौ वदन कुमिलाइ, जानि दीपक लखि प्रातह ॥

पुत्र कवन तप तप्यौ, भयौ वसि काम वाम रत ।

इन्हि आप करु भस्म, कवन छंडेब तोहि-हित ॥

धपु क्रोध वंत रिखि देखि करि, रमअ रंभ न कह्यौ रह्यौ ।

सम अग्नि रूप दिक्खौस रिखि, तबह आप रंभह कह्यौ ॥ ७२ ॥

शब्दार्थः—तोहि-हित = तेरे कल्याणार्थ । रमअ = रमा । रम = बोलना । दिक्खौस = देखा ।

अर्थः—पिता को क्रुद्ध भाल-भ्रुकुटी को देख वर वाल-ऋषि सुमंत ने नैत्र नीचे कर लिये । उसका मुख इस प्रकार कुम्हला गया मानों प्रातः समय दीपक प्रभाहीन होगया हो । जरज मुनि कहने लगे-हे पुत्र ! तुमने यह कैसी तपस्या की ? जो वामा-पर मुख होकर काम के वश हो गया ? मैं इस सुंदरी को आप के प्रभाव से नष्ट कर

दूगा । देखें तेरे हित-कार्य में कौन बाधा दे सकता है ? इस प्रकार क्रोध युक्त ऋषि को देख कर रमा कुछ बोल न सकी (उसकी वाणी बंद होगई) । तब अग्नि ज्वाला के समान ऋषि ने उसकी ओर देखा और श्राप दिया ।

कलह करने ही डहि कुबुद्धि, कलहतर कहि एह ।

पुहची भार उतारनह, जनमि पग कै गेह ॥ ७३ ॥

शब्दार्थः—डहि=डसि, डसा । पग=जयचंद ।

अर्थः—कलह के लिये ही इसे कुबुद्धि ने डसा है, अतः यह कलह-कारिणी कहला-यगी । और पृथ्वी का भार उतारने के लिये ही यह पशुराज (जयचंद) के गृह में जन्म लेगी ।

कवित्त

एम छल्यौ त्रयवार, रोस करि श्राप आप दिय ।

मृत्युलोक अवतार, नाम तुअ कलह-प्रिया किय ।

इन अवधू मन छल्यौ, सुख नन लहहि त्रिय तन ।

पित पति कुल सहरहि, पीय तौ हथ रहै जिन ।

जैचदराइ कम धज कुल, उअर जुन्हाइय पुत्र-छल ।

सयोग नाम प्रथिराज वर, दुअ सु मार अनभग दल ॥ ७४ ॥

शब्दार्थः—एम=इस प्रकार । पित=पिता । हथ रहै=वश में होकर रहै । उअर=कोख, गर्भ । पुत्र-छल=पुत्र को छलने वाली । दुअ=दोनों । मार=मारकाट ।

अर्थः—तूने मेरे पुत्र को इस प्रकार तीन बार छला है । इसीलिये मैं क्रोध हो तुझे यह श्राप देता हूँ कि तू मृत्यु लोक में अवतार लेकर कलह-प्रिया के नाम से कही जायगी । तूने इस अवधूत (सुमत) का मन छला है । अतः तू पृथ्वी शरीर से किसी तरह का सुख प्राप्त नहीं कर सकेगी । पितृ कुल और जो तेरा प्यारा तेरे वश में होगा, उस पति के कुल का सहार करायेगी, मेरे पुत्र को छलने वाली सुन्दरी तू राजा जयचंद के यहाँ कमधज कुल में रानी जुन्हाई के गर्भ से पैदा होगी और नरा नाम सयोगिता होगा तथा तेरा पति पृथ्वीराज होगा । पिता और पति के शक्ति-शाली दल का तू नाश करेगी ।

दोहा

श्रवण सुने रंभा हँस, रही जोर कर दोड़ ।

अब साईं अपराध मुहि, मुगति कहो कब होइ ॥ ७५ ॥

शब्दार्थः—साईं=स्वामी । मुहि=मेरी । मुगति=मुक्ति ।

अर्थः—श्राप को श्रवण कर रंभा भयभीत हो गई और दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगी :— हे स्वामी ! अब इस अपराध से मेरी कब मुक्ति होगी ? सो कहिये ।

कवित्त

सुनहि रभ पहु पंग पुत्रि, वर ग्रह देव गुर ।

वर कनवज्ज प्रमान, गग अस्तान सार कर ॥

इन्द्र मरन वछई, गंग स्नान जिय काजं ।

ता कारण तुहि त्रीय, श्राप सुध्यौ गुन-भाजं ॥

पहु पंग ग्रह जनमिय तदिन, तिय सराप तरुनिय भइग ।

आरम्भ विनै-मंगल पढ़न, तदिन महरत वर लइग ॥ ७६ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—पहुपग पुत्रि=पगुराज के यहा पुत्री रूप में होगी । वर ग्रह=पति गृह, देव गुर=देवों में बड़ा (इन्द्र) । इन्द्र=इन्द्र स्वरूपी पृथ्वीराज । सुध्यौ=हुआ । भाज=भाजन । तिय सराप=श्रापित बाला । भइग=होने पर ।

अर्थः—तब ऋषि कहने लगे—हे रम्भा सुन । तू जयचन्द की पुत्री होगी, और तू उस घर के घर जायगी, जो देवताओं में बड़ा है (अथात् इन्द्र का अवतार है) । श्रेष्ठ कन्नौजपुरी में तू तब युक्त गंगा स्नान करेगी । जिस गंगा स्नान के लिये स्वयं इन्द्र स्वरूपी तेरापति मृत्यु चाहेगा । हे गुण-भाजन वनिता (सुन्दरी) उसी (इन्द्र स्वरूपी पृथ्वीराज) के लिये ही तुझे श्राप हुआ है । तब उस अप्सरा ने पंगुराज के गृह पर उसी दिन जन्म लिया, वह श्रापित बाला जब युवती हुई । तब उसने विनय-मंगल का पठन पाठन श्रेष्ठ दिवस और श्रेष्ठ मुहूर्त में प्रारंभ किया ।

दोहा

पुच्छकथा सजोग की, कही चद वरदाइ ।

पग घरह जुन्हाइ उर, आनि प्रगट्टिय लाइ ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ:—लाइ=अग्नि-ज्वाला ।

अर्थ:—यह सयोगिता की पूर्व कथा मैंने (चद वरदाई) ने वर्णन की है । सयोगिता जुन्हाई की कोंख से राजा जयचद के यहा क्या प्रगट हुई मानों अग्नि-ज्वाला का प्रादुर्भाव हुआ है ? (अर्थात् वह त्रितु कुल और पति-कुल के नाश के लिये अग्नि ज्वाला स्वरूप थी) ।

—*॥ —*

हाँसी प्रथम युद्ध

(समय ४६)

दोहा

हुंदि फौज जैचंद फिरि, वर लभ्यौ चहुआन ।

चपि न उपर जाहि वर, रहै ठठुक्कि समान ॥ १ ॥

शब्दार्थः—हुंदि फौज=हुंदे दानव के वंशज चाहुआन पृथ्वीराज की सेना, चाहुआनी सेना ।
वर लभ्यौ=अच्छा हुआ, सौभाग्य वश । चंपि न=दवा नहीं सके । ठठुक्कि=डटे रहे ।

अर्थः—दोनों सेनाएँ समान रूप से डटी रहीं और एक-दूसरे को दबा सका । अंत में चाहुआन के सौभाग्य से जयचंद लौट गया और चाहुआना सेना भी लौट आई ।

कवित्त

मास एक पहुपंग, फवजि^१ आहटि सु पच्छी^२ ।

दिल्ली तें पच कोस, रंक लुट्टी गहि लच्छी ॥

फिरि आए नृप पास, देस दोऊ अरि वरसे ।

राह रूप प्रथिराज, जगि पंगह गहि गस्से^३ ॥

निम्मान भान कूरंभ भुज, हाँसी पुर त्रप रक्खिए ।

सामंत सत्रै कैमास विन, दुज्जन मुख सु दिक्खिए ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ का० । ३ भी० ।

शब्दार्थः—पहुपंग=पंगुराय, जयचंद । फवजि=फौज, सेना । आहटि=अड़ पड़ी, आकर अड़ी ।
पच्छी=पीछे, फिर से । दिल्ली=दिल्ली । पच कोस=पंच कोस । गहि=प्राप्त की । लच्छी=
लक्ष्मी । दोऊ अरि=दोनों शत्रु-जयचंद और गौरीशाह । वस्से=वसे । राह=राहु । जगि=यज्ञ ।
पंगह=पंगुराय । गस्से=ग्रसे, निगलना । निम्मान=निर्माण । भान कूरंभ=कछवाहों का सूर्य ।
दुज्जन=दुर्जन । दिक्खिए=देखे गये, देखा गया ।

अर्थः—उपर्युक्त घटना के एक मास पश्चात् फिर जयचंद की सेना आकर अड़ गई और उन दरिद्रियों ने दिल्ली से पांच कोस की दूरी तक लूट मचा कर अपना

की सपत्ति छीन ली और फिर बापस जयचन्द के पास लौट गई । इसी प्रकार दिल्ली के भूभाग के लिये दो शत्रु (गौरी और रजयचन्द) गड़े होगए । तब राहू स्वरूपी पृथ्वीराज, जिसने उसके यज्ञ का विध्वंस कर दिया । अन्धे कार्यों के करने वाली जिनकी भुजाएँ हैं, ऐसे कछवाहों के सूर्य को (पञ्जून को), कैमास के अतिरिक्त, सब सामंतों के साथ हॉसीपुर में जो गौरी शाह के रास्ते का मुहाना है, नियुक्त किया ।

हॉसीपुर सामन्त, कन्ह रख्यो परिमान ।

रख्यौ भीम पुँडीर, सलख रख्यौ सुत भान ॥

रख्यौ जैत पँवार, कनक रख्यौ रघुवसी ।

रख्यौ देवहकन्न, रक्खि उद्दिग कन गसी ॥

बगरी राव रख्यो त्रपति, रा - चामंड सु रक्खिए ।

सामन्त सूर तेरहत्रिगढ, गौरी मुखह^१ दिक्खिए ॥ ३ ॥

प्रा० पा० स० ।

शब्दार्थः—परिमान=योग्य समझ कर । उद्दिग=उद्दिग पगार । कन गसी=प्रसित करने वाला । बगरी राव=बागड़ी प्रमारों का मुखिया देवराज (देवकर्न बगरी इससे भिन्न है) ।

अर्थः—हॉसीपुर पर पञ्जून के साथ योग्य समझ कर नरनाह कन्ह, भीम पुण्डीर, सलखानी भानराय, जैत्र प्रमार, कनकराय (रघुवशी बडगूजर), देवकन्न (बगरी), शत्रुओं को प्रसने वाला उद्दिग पगार, देवराज बगरी, और चामण्डराय को नियुक्त किया । वे वीर सामन्त शत्रुओं को तीन तेरह (जत्र तत्र) करने वाले थे, गौरी शाह के रास्ते के मुहाने पर डट गये ।

दोहा

नृप^१ आखेटक मडिकै, दिल्ली रखि कैमास ॥

पच पच सामत सह, जुगिनि पुह आवास^२ ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ भी० घ० । २ घ० ।

शब्दार्थः—जुगिनि=दिल्ली । पुहयावास=राज महल ।

अर्थः— पाच २ सामंतों की ठुठडी बना कर दिल्ली और राज-प्रासाद की रक्षा के लिए कयमास की अध्यक्षता में वहीं रखा और आप स्वयं शिकार के लिए तैयार हुआ ।

दिल्लीवै आखेट वर, पहु पंगानौ^१ त्रास ॥

नैर सु रखी सेन सह, नृप हांसी पुर पास ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—नैर=कोई स्थान विशेष ।

अर्थः—पगुराज को सशक्ति रखने के लिए श्रेष्ठ दिल्लीश्वर आखेट में लग गया और अपनी सब सेना हांसी पुर के निकट ही किसी नैर (नामक स्थान) पर नियुक्त कर दी ।

कवित्त

चढ़ि चहुआन नरेश, भजि मेवास सवै वर ।

गुज्जर गोरी पग; देस दक्खिन^१ सु पत्ति^२ घर ॥

विषम वाय ज्यों तूल, मूल सव अरिन उड़ाइय ।

वीर भोग वसुमती, वीर रस वीर अघाइय ॥

चामंडराव गोरी दिसा; भोज कुँवर दिल्ली करी ।

सामंत सूर असिवर बलह; हांसीपुर अगगर^३ धरी ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ २ ३ पा० मी० घ० ।

शब्दार्थः—भजि=नष्ट करके । मेवास=मेव जाति के रहने का स्थान, (अलवर मरतपुरादि) ।

गुर्जर=गुजरात । सुपत्ति=पहुच कर, धावा करके । वाय=वायु । तूल=रूई की पैल, फौया । मूल=जड़से ।

अघाइय=तृप्त हुआ । भोज कुँवर=नाम विशेष (यह चामण्ड राय या किसी सामन्त का पुत्र था) ।

असिवर=श्रेष्ठ तलवार । बलह=शक्ति से । अगगर धरी=आगे की, सामने की, प्रदर्शित की ।

अर्थः—शिकार के बहाने चढ़ कर चहुआन नरेश्वर ने मेवासियों का बल नष्ट कर दिया । गुर्जर गौरीशाह और जयचन्द के देश तथा दक्षिण तक के भू-भाग पर धावा किया । पवन के तुल्य आक्रमण कर शत्रुओं को जड़ मूल से उखेड़ते हुए तूल के समान उड़ा दिये । यह वसुंधरा वीर/भोग्या है । अतः वह वीर नरेश वीर रस से भर गया । उन्हीं प्रकार गौरी सेना के मुहाने पर चामण्डराय और कुमार भोज ने दिल्ली में, तथा बहादुर सामन्तों ने हांसीपुर में श्रेष्ठ तलवार की शक्ति को प्रदर्शित किया ।

चहुआना सम सूर, सवै सामंत धरि वार ।

सगपन सम जुत लाज, समै सामंत पुव धार ॥

आदर वर चहुआन, हथि अप्पे सुरता^१ रं^२ ।

हम किरनि सम राज, राज सोभै हज्जार ॥

आसनी सीम^३ हासी पुरह, वर रक्खै^४ सुरतान दिसि ।

सतपत्र सूर सप्राम रवि, सोन-उदै^५ देहीं प्रहसि ॥ ७ ॥

प्रा० पा० १, २ स० । ३, ४ पा० । ५ सर्व प्रति ।

अर्थ:—धरि वार=वार करने वाले, दाव लगाने वाले । छत=युत, सहित । सगपन=सगध ।

शब्दार्थ:—^१र=पूर्व । हथि=हाथों से अप्पे=दे, अर्पित करना । सुरता=सूरता, गहादुरी ।

सम=समय । ^३सीम=सीमा । सतपत्र=समल । सोन उदै=शोणित वर्ण होजाने से, ^५उदै=वे । किरनि=किरणों से ^४रक्खै=पंवार, रक्त रजित हो जाना । प्रामि प्रम=प्राम प्रम ।

अर्थ:—चाहुआन नरेश के समान ही वर व ^१सुर मे ^२मन्त शस्त्र-प्रहार करने, सम्बन्धों मे और लज्जा मे पूर्व काल से ही समानता रखने वाले थे ^३दि। चाहुआन नरेश भी उनकी गहादुरी के सम्मान से सम्मानित किए हुए थे । राजा सूर्य स्व ^४रूपी था और उसके सामन किरणों तुल्य थे । उन वीरों को हाँस पुर और उसकी सीमा पर सुनतान से लोहा लेने के लिये नियुक्त किया । सूर्य स्वरूपी पृथ्वीराज जब सप्राम मे लोहित वर्ण होता था तब वे कमल-स्वरूपी गहादुर खिच उठते थे ।

हासीपुर सामन्त, सुनिय वालोच पहारी ।

हैमारू पतिमाह, तत वेगम पय वारी ॥

अति बलवान बलोच, भेद दीनौ पतिसाह ।

हामीपुर हिंदवान, देस अरिदुष्ट^१ सु गाह ॥

तुम हुकम जुद्ध इन मू^२ करू^३, अरू^४ वेगम सत्ये सुभर ।

मिलि सत्रै मत ततह करै, तौ कट्टे हासी जु वर ॥ ८ ॥

प्रा० पा० १ भी २, ३ घ० । ४ स० ।

शब्दार्थ:—हैमारू=भीमादू, सीमा पर रहने वाला । तत=उसकी । पय-धारी=पैर दिया । गाह=ग्रहण किये हुए । अरू=अड़पट ।

अर्थ:—हासीपुर पर सामन्त नियुक्त हुए यह बात बलौचो पहाड़ी ने सुनी, वह शाह की सीमा पर रहने वाला था । उसने अनौ वेगम को साथ ले हाँसी की ओर कदम बढ़ाया ^१उस अति बलवान ने बादशाह को बताया कि हाँसीपुर प्रदेश पर

हिन्दू-शत्रु धृष्टतापूर्वक डटे हुए हैं, यदि आप की आज्ञा हो तो मेरे साथ वेगम होने के कारण इनसे रास्ता मागने के बहाने छेड़-छाड़ कर अड पड़ें, आप और हम मिल कर यदि तत्व युक्त मन्त्रणा कर लें तो हाँसीपुर के भू-भाग को हिंदुओं से निकलवा लें ।

दोहा

हम भूमिया भुमवट करहिं, तुम सहाय हम भीर ।

सब खवार बलोच मिलि, खनि कट्ढें^१ ग्रह तीर ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—भूमिया=भूमि पति, भू-स्वामी (थान मी राजस्थान में भूमिया कहलाते हैं) । भुमवट=पृथ्वी का बटवाड़ा, हिस्सा रसी । भीर=समूह । खनि=खदेड़ कर । ग्रह तीर=घर के निकट रहने वाले, सीमा पर रहने वाले ।

अर्थः—हम भूमि-पति (भू-स्वामी, भूमिया) कहलाता हूँ और ओरों की पृथ्वी हड़प कर बराबर बांट लेते हूँ । यदि हमारे समूह की आप सहायता करें तो हम सब कंधारी और बलोंची मिल कर सीमा पर रहने वाले शत्रुओं को खदेड़ कर निकाल दें ।

इक्क वरख प्रथिराज वर, रह्यौ ग्रेह तिन^१ थान ।

चावदिसि घर भुगवै, वर इच्छा^२ घर-मान ॥ १० ॥

ग्रा० पा० १ पा० भी० (ख)^१, घ० का० । २ का० भी० (क) ।

शब्दार्थः—ग्रेह=ग्रहण किए । तिन=उन । चावदिसि=चारों ओर । भुगवै=अधिकार में लें । इच्छा=इच्छा । घर-मान=पृथ्वी का सूर्य ।

अर्थः—एक वर्ष तक पृथ्वी का सूर्य राजा पृथ्वीराज उन स्थानों पर अधिकार किये था, वह अपनी इच्छा के अनुसार चारों ओर के (शत्रुओं के) भू-भाग पर अधिकार करता रहा ।

घर बत्तिय^१ मत्तिय बरी^२, घर नागौर निधान ।

जिनह^३ भुजनि^४ दिल्ली वरा, ते रक्खे परिमान ॥ ११ ॥

ग्रा० पा० १, ३, ४ पा, २ भी (ख) ।

शब्दार्थः—घर बतिय=घरबट, कुल की शान । मतिय=मस्ती । पसी=पिरी । जिनह=जिनके । भुजनि=भुजों पर । परिमान=प्रमाण युक्त (उसी रूप में) ।

अर्थः—इस प्रकार पृथ्वीराज घरबट की मस्ती छेड़े रहा, उधर जिनकी भुजाओं के भरोसे दिल्ली छोड़ी गई थी उन्होंने नागौर तक को सुरक्षित रक्खा ।

कवित्त

पाहागी बल्लोच, पास सामत सपन्नौ ।

साख धम्म सूरतान, भेद करि भेद सु दिन्नो ॥

है आमिष्ट सुवास, तमकि सब वीर सु हल्लिय ।

भर गोरी सूरतान, सग खुरसान सु चल्लिय ॥

वर उमगि लच्छि गोरी ग्रहै, हों खंधार अगिवान^१ वर ।

सो धीर कौन चहुवान^२ कौ, लोइ लकलुट्टे सुधर^३ ॥ १२ ॥

प्रा० पा० । १-२-३ सबे प्रति ।

शब्दार्थः—सपन्नौ=पहुँचा । साख=शाखा । भेद करि=भेद प्राप्त करके । आमिष्ट=आनिष्ट, अनिष्ट । सुवास=अपना वास । तमकि=तैश में आकर । हल्लिय=चले, बढे । लच्छि=लक्षण । अगिवान=अग्रगण्य । लोइ=लौं, तक ।

अर्थः—वह बलौच पहाड़ी जहाँ होंसी पुर पर सामत थे वहाँ पहुँच गया । मुस्लिम और सुलतान का सहधर्मी होने से यहाँ के (सामतों के) भेद को प्राप्त कर गौरीशाह को सूचना दी । इधर अपने सुरक्षित स्थान का अनिष्ट सोच कर सब सामत बलौची की ओर बढे उधर से गौरी शाह के योद्धा और खुरासानी योद्धा बलौची से आ मिले । जिससे बलौची ने उत्साहित होकर गौरीशाह के लक्ष्यों को ग्रहण कर लिया (आक्रमण करने की इच्छा की) और कहने लगा मैं खधारियों का अग्रगण्य हूँ । चाहुआन के सामतों में ऐसा कौन धैर्यवान है जो मुझे रोक सकें मैं लका देश के भूभाग को लूटने तक की शक्ति रखता हूँ ।

तव सामन्त सु तक्क, चूर चितय सब धाए ।

अरु रयनि परि सोइ, जोर हिंदू भर आए ॥

ग्रहि वेगम सब सत्थ, लुट्टि लिय खास खजीना ।

भजि बलौच केइ भुक्तिय, सु वर रन्नी बह-दीना ॥

बुनार सह दस दिसि भइय, अन चितन अनवत्त इय ।

दैवत्त गत्त ऐसी हुइय, लहिय घत्त रतवाह दिय ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—तक्कि=ताककर, देखकर । चूक=छल । चितिय=चितन कर, विचार कर । रयनि=रात्रि । परि सोइ=सो जाने पर । जोर=शक्ति । ग्रहि=पकड़ ली । मजि=भाग गए । भुभिय=जू भे, लड़े, मारे गए । सु चर=अपने बल । रन्नी=रात्रि में । वह दीना=वहीर कर दिये, बहा दिये, मगा दिए, विचलित किए । बु बार सह=अर्धघोष । अनचितन=अचानक, अकल्पित ध्यान से बाहिर की बात । अनवत्त=चुरी बात, आपत्ति । इय=यह । लहिय घत्त=मौका पाकर, दाव लगाया । रतवाह=छापा । दिय=दिया, मारा ।

अर्थ—बलौच की इस प्रकार बढ़ती हुई शक्ति देख कर सब सामन्त ब्रह्म-युद्ध करने का विचार कर आगे बढ़े और यकायक अर्द्ध रात्रि होने पर, जब सब सो गए, तब हिन्दू वीरों ने छापा मारा और विशेष शक्ति से कान लिया । वेगमें पकड़ ली गई । बलौच के सब साथियों और खजाने को लूट लिया । बहुत से यवन मारे गये और बलौची भाग गए । इस प्रकार एक ही रात्रि में सामन्तों ने शत्रुओं को अपने बल द्वारा विचलित कर दिया । उस समय दशों दिशाओं में ऊर्ध्व घोषणा हुई । शत्रुओं पर इस प्रकार यह बिना सोची आपत्ति आपड़ी जैसे कोई दैविक घटना घटी हो । इस प्रकार छापा मारने के कारण सामन्त का दाव लग गया ।

दोहा

इह कहंत पुक्कार वर, पाहारिय सं' खेद ।

वेगम लुट्टि नरिंद भर, लुट्टि लच्छि भर भेद ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—इह=ऐसे । सं खेद=खेद सहित । भर=भट, सामत । लच्छि=लक्ष्मी । भेद=मारना, वेधना ।

अर्थ—भाग कर बलौच पहाड़ी ने दुःख प्रकट करते हुए शाह के पास जाकर यह पुकार की कि राजा पृथ्वीराज के सामन्तों ने योद्धाओं [मुस्लिमों] को मार दिया है और वेगमों को लूट लिया ।

हीन वदन पत्ती तहा, जहँ गज्जनी सहाव ।

सुद्धि बुद्धि पुच्छिय सकल, विवरि देत सब जाच ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—घर बत्तिय=घरवट, कुल की आन । गत्तिय=मस्ती । गरी=गिड़ी । जिनह=जिनके । भुजनि=भुजों पर । परिमान=प्रमाण युक्त (उसी रूप में) ।

अर्थः—इस प्रकार पृथ्वीराज घरवट की मस्ती छेड़े रहा, उधर जिनकी भुजाओं के भरोसे दिल्ली छोड़ी गई थी उन्होंने नागौर तक को सुरक्षित रक्खा ।

कवित्त

पाहागी बल्लोच, पास सामत सपन्नौ ।

साख धम्मम सुरतान, भेद करि भेद सु दिन्नो ॥

है आमिण्ट सुवास, तमकि सब वीर सु हल्लिय ।

भर गोरी सुरतान, सग खुरसान सु चल्लिय ॥

वर उमगि लच्छि गोरी ग्रहै, हों खंधार अगिवान^१ वर ।

सो धीर कौन चहुवान^२ कौ, लोइ लकलुट्टे सुधर^३ ॥ १२ ॥

प्रा० पा० । १-२-३ सबे प्रति ।

शब्दार्थः—सपन्नौ=पहुंचा । साख=शाखा । भेद करि=भेद प्राप्त करके । आमिण्ट=आनिष्ट, अनिष्ट । सुवास=अपना वास । तमकि=तैश में आकर । हल्लिय=चले, बढे । लच्छि=लक्षण । अगिवान=अग्रगण्य । लोइ=लौ, तक ।

अर्थः—वह बलौच पहाड़ी जहाँ होंसी पुर पर सामत थे वहाँ पहुँच गया । मुस्लिम और सुलतान का सहधर्मी होने से यहाँ के (सामतों के) भेद को प्राप्त कर गौरीशाह को सूचना दी । इधर अपने सुरक्षित स्थान का अनिष्ट सोच कर सब सामत बलौची की ओर बढे उधर से गौरी शाह के योद्धा और खुरासानी योद्धा बलौची से आ मिले । जिससे बलौची ने उत्साहित होकर गौरीशाह के लक्षणों को ग्रहण कर लिया (आक्रमण करने की इच्छा की) और कहने लगा मे खधारियों का अग्रगण्य हूँ । चाहुआन के सामतों में ऐसा कौन वैर्यवान है जो मुझे रोक सकें मैं लका देश के भूभाग को लूटने तक की शक्ति रखता हूँ ।

तव सामन्त सु तकिरु, चूरु चितय सब धाए ।

अद्ध रयनि परि सोइ, जोर हिंदू भर आए ॥

ग्रहि वेगम सब सत्य, लुट्टि लिय खास खजीना ।

भजि बलौच केइ भुक्तिय, सु वर रन्नी वह-दीना ॥

बुंवार सद्दस दिसि भइय, अन चितन अनवत्त इय ।

दैवत्त गत्ता ऐसी हुइय, लहिय घत्त रतवाह दिय ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—तक्कि=ताकर, देखकर । चूक=छल । चितिय=चितन कर, विचार कर । रयनि=रात्रि । परि सोइ=सो जाने पर । जोर=शक्ति । अहि=पकड़ ली । मजि=भागगए । कुम्भिय=जूंभे, लड़े, मारे गए । सु वर=अपने बल । रन्नी=रात्रि में । वह दोना=वहीर कर दिये, वहा दिये, मगा दिए, विचलित किए । बु वार सद्द=अर्धघोष । अनचितन=अचानक, अकल्पित ध्यान से बाहिर की बात । अनवत्त=बुरी बात, आपत्ति । इय=यह । लहिय घत्त=मौका पाकर, दाव लगाया । रतवाह=छापा । दिय=दिया, मारा ।

अर्थ—वलौच की इस प्रकार बढ़ती हुई शक्ति देख कर सब सामन्त छद्म-युद्ध करने का विचार कर आगे बढ़े और यकायक अर्द्ध रात्रि होने पर, जब सब सो गए, तब हिन्दू वीरों ने छापा मारा और विशेष शक्ति से कान लिया । वेगमें पकड़ ली गई । वलौच के सब साथियों और खजाने को लूट लिया । बहुत से यवन मारे गये और वलौची भाग गए । इस प्रकार एक ही रात्रि में सामन्तों ने शत्रुओं को अपने बल द्वारा विचलित कर दिया । उस समय दशों दिशाओं में ऊर्ध्व घोषणा हुई । शत्रुओं पर इस प्रकार यह विना सोची आपत्ति आपडी जैसे कोई दैविक घटना घटी हो । इस प्रकार छापा मारने के कारण सामन्त का दाव लग गया ।

दोहा

इह कहत पुक्कार वर, पाहारिय सं^१ खेद ।

वेगम लुटि नरिंद भर, लुटि लच्छि भर भेद ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—इह=ऐसे । सं खेद=खेद सहित । भर=भट, सामंत । लच्छि=लक्ष्मी । भेद=मारना, बेधना ।

अर्थ—भाग कर वलौच पहाड़ी ने दुःख प्रकट करते हुए शाह के पास जाकर यह पुकार की कि राजा पृथ्वीराज के सामन्तों ने योद्धाओं [मुस्लिमों] को मार दिया है और वेगमों को लूट लिया ।

हीन वदन पत्ती तहा, जहँ गज्जनी सहाव ।

सुद्धि बुद्धि पुच्छिय सकल, विवरि देत सब जाव^१ ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—हांग वदन=मलिन देह । पत्नी=पहुची । तहां=उस जगह । विनरि=ग्योरें वार, विस्तृत । जाव = जवाव ।

अर्थः—उधर वेगमे भी मुरझाया मुख लेकर गजनेश्वर शहाबुद्दीन के पास जा-पहुँचीं । उनसे कुशल पूछी गई, तब सबने द्यौरेंवार उत्तर दिया ।

साटक

अँ^१ गोरी सुरतान साहिव वर, साहाव साहावन ।

जैन जोवत तस्य सेवक वृत्त, मानस्य मर्द^२जग ॥

वोय जाचत अर्थवीय^३ धनयो, धनयोपि^३ जीवोधिग ।

धिगता तस्यय सेवकाय वरय, ना दीन सा मानय ॥ १६ ॥

पा० पा० १, २ घ० । ३ घ० भी० (क) ।

शब्दार्थः—जैन=जिसके । तस्य=उसके । वृत्त=व्रत, समूह । मानस्य=उनका मान । मर्द^२जग=मर्दन हो गया । वीय=दूँसा । अर्थवीय=धनवान होते हुए भी । धनयो=बहुत । धनयोपि=ऐसे धनवान को भी, या ऐसे मेरे पति को भी । जीवोधिग=जीवन धिक्कार है । धिगता=धिक्कार । तस्यय=उसके । वरय=बलको । ना=नहीं । दीन=मजबूत । सा=उनके । मानय=मान, सम्मान ।

अर्थः—ओ शाहों के शाह सुलतान शहाबुद्दीन गौरी । आपके जीवित रहते हुए आपके सेवक-समूह का मान-मर्दन हो गया है । जिसके पास धन (शक्ति) के होने पर भी धन की याचना की, ऐसे मेरे पति का जीवन धिक्कार है (मेरे पति के साथी बलौच खवारियों के होते हुए भी औरों से सहायता माँग कर युद्ध किया) । बहादुर मुस्लिम योद्धाओं के बल को भी धिक्कार है, जो अपने दीन की इज्जत नहीं बचा सके ।

दोहा

विप^१ सु खडन वेद विन^२, नर खडन निरग्यान ।

त्रिय खडन इह मैं सुन्यौ, विग जावन^३ सुरतान ॥ १७ ॥

पा० पा० १ पा० भी० । २ घ० पा० । ३ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—विप=विष, ब्राह्मण । विन=विन । निरग्यान=यज्ञानो । इह=यह, ऐसा । धिग=धिक्कार ।

अर्थः—वेद नहीं पढ़े हुए ब्राह्मण का और अज्ञानो मनुष्य का नाश होना संभव है । इसी प्रकार तेरे जीते जी स्त्रियाँ का अरमान हुआ है । अतः दे सुलतान ! तेरा जीवन भी धिक्कार है (अर्थात् तू भी मृतवत ही है) ।

पातिसाह श्रवन्न सुनी; जंपी मात निधान ।

मैं^१ प्रभह भुठ्यो^२ धरचौ; सुंठिन खड़ी खान ॥ १८ ॥

प्रा० पा० १ भी० (क) १२ स० ।

शब्दार्थः—जंपी=कहा । निधान=आधार, सहारा । प्रभह=गर्म । भुठ्यो=व्यर्थ । सुंठिन=सौंठ नहीं । खड़ी=खाई ।

अर्थः—बादशाह की माता कहने लगी और बादशाह सुनने लगा मैंने वृथा ही गभं धारण किया जो तेरे जैसा पुत्र पैदा हुआ, मानों मैंने सौंठ खाई ही नहीं । (अर्थात् पुत्र पैदा ही नहीं किया) ।

गाथा

सुनि गोरी सुरतानं, सुनि साहाव सूर सब्बानं ।

जा जीवत धरवान, भुग्गे को तास अप्रमान ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—सुरतान=सुलतान । साहाव सूर=शाहाजुद्दीन के योद्धा । सब्बान=सब । धरवान=भूमिपति । भुग्गे=भोगे, उप भोग करे । तास=उसका । अप्रमान=विशेष रूप से ।

अर्थः—बलौंची वेगमों और शाह की माता को व्यग भरी बातें, शाह और उसके सब सामंतों ने सुनीं और बादशाह सहित वे सब आवेश में आकर कहने लगे—हमारे जीते हुए कौन भूमिपति विशेष रूप से उसका भोग कर सकता है ?

अति आतुर अप्पानं; खानन पान खाइयं पान ।

हिय^१ धकि धकि^२ कपानं, दीय खवरि सच्चै फुरमानं ॥ २० ॥

प्रा० पा० १-२ घ० ।

शब्दार्थः—अप्पान=अपने सहित । खानन पान=खान पान, ताम्बूल । धकधकि=जलन । कपानं=कैंपकैंपी । दीय=दी । फुरमानं=फरमान ।

अर्थः—उन सबने आवेश में आतुर होकर खान-पान और ताम्बूल छोड़ दिया और हृदय में जलन होने से कापने लग गए । इसकी खबर मुसलमानों को फरमान द्वारा दी गई ।

दोहा

थान थान फुरमान फटि, वद्धन^१ हिंदु नरिंद ।

दै दुवाह^२ सों त्रिमयौ, को कट्टे कवि चद ॥ २१ ॥

प्रा० पा० १ सं० । २ ३ पा० ।

शब्दार्थः—फुरमान कटि=आदेश पर दिए गए । तरन=मारने का । ०:ताह=हाथ पसार कर मिलना, अपने समान ही समझना । सों=उसे । निम्मगो=रत्ना, पैदा किया । कटे=काट सकता, मार सकता ।

अर्थः—यत्र तत्र मुस्लिम राज्यों में हिंदु नरेश पृथ्वीराज को मारने के लिए शाही फरमान भेजे गए । किंतु कवि (चंद) कहता है—सृष्टि के निर्माता ने जिसे अपने समान ही मान कर पैदा किया है, उसे कौन मार सकता है ?

कवित्त

नाग भूमि सिर तजै, चढ छडै सुचंद कल ।
 कलिन भान उगई, पथ मुक्कै सु वान छल ॥
 रघु सु ग्यान छडई, भीम छडै बल दधै ।
 रूप छडि मारन^१, कद छडै हर सधै ॥
 मुक्कै जु जोग जोगिंद उर^२, कर फरसु^३ छडै गुनह ।
 इत्तने धीर छडै जदपि, साहिन कस मुक्कै मनह ॥ २२ ॥

प्रा० पा० १ स० । २-३ पा० ।

शब्दार्थः—नाग=शेष नाग । कलि=कलियुग । पथ=पार्थ, अर्जुन । वान बल=बाण चलाने की शक्ति । मारन=कामदेव । कद=कद मूल, या नाश । हर-सधै=सिद्धेश्वर शिव । कर फरसु=हाथ में फरसा रखने वाले । साहि=शाह । कस=कसक । मुक्कै=छोड़े ।

अर्थः—शेष नाग पृथ्वी को सिर पर रखना छोड़ दे, चन्द्रमा अपनी कला को छोड़ दे, अर्जुन बाण चलाने की शक्ति छोड़ दे, राजा रघु अपना ज्ञान छोड़ दे, भीम अपने दृढ बल को त्याग दे, कामदेव अपनी छवि को छोड़ दे, सिद्धेश्वर महादेव कद खाना (या नाश करना) छोड़ दे, योगी हृदय से योग को निकाल दे और फरसाधारी अपने क्रोध के गुण को छोड़ दे और उपर्युक्त व्यक्ति अधीर होकर अपनी विशेषताएँ छोड़ दे तो भी बादशाह अपने मन को कसक (चुभी हुई बात) को नहीं छोड़ सकता ।

दोहा

मन मुक्कै सुक्कैसु वृत, वृत गौरी सुरतान ।
 सकल सेन सज्जे त्रपति, सुनहुँ तौ कहँ प्रमान ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—सुकैसु=शुकदेव । वृत्त=प्रतिज्ञा ।

अर्थः—किसी ने कहा-गौरी शाह ! तू अपनी प्रतिज्ञा को शुकदेव की प्रतिज्ञा जैसी अटल मानता है, किन्तु तू अपनी इस बात को मन से दूर कर दे । यदि तू सुनना चाहे तो सत्य कहता हूँ कि वह हिंदू राजा दबने का नहीं है । वह अपनी सारी सेना सजाकर आवेगा ।

सुनिय मीर मीरन चवै, दिक्खि^१ सक्खि रह मोर ।

जितौ कस्स सुरतान कौ, तितौ न दिक्खूँ^२ तोर ॥ २४ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थ—चवै=कहा । दिक्खि=देखो । सक्खि=साक्षी । जितौ=जितनी । कस्स=कसक । तितौ=उतनी । दिक्खूँ=देखी गयी ।

अर्थः—यह बात किसी मीर ने सुन कर मीरों को साक्षी बनाते हुए कहा-सुलतान के चित्त में जैसी बात चुभी, वैसी चुभन तीक्ष्ण तोर में भी नहीं देखी गई ।

खा ततार जपै सुन्नर; हम बंदे सुविहान ।

जु कछु साह अग्या दियै; करें वनें हम्मान ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—सुविहान=सुवहान, सुमान (खुदा) । करें वनें=कगना पड़ता है । हम्मान=हमको, या सम्मान ।

अर्थः—श्रेष्ठ तत्तारखां कहने लगा-हम-सुमान (खुदा) के वंदे हैं । जो भी हुक्म बादशाह देगा, वह हमको करना लाजमी है (अर्थात् हमको उसका सम्मान करना पड़ता है) ।

खां ततार वर वेन सुनि, है आसन अरु पान ।

जु कछु मन्त्र तुम उच्चरौ, सोइ करें सुविहान ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—सुविहान=मुस्लिम धर्म वाले, मुसलमान ।

अर्थः—तत्तारखां के श्रेष्ठ वचन सुन कर बादशाह ने उसे आसन और ताम्बूल दिया और कहा-जैसी तुम्हारी मन्त्रणा हो, वैसा हम मुस्लिम धर्म मानने वाले करेंगे ।

कवित्त

हासीपुर पुर विपुर; करौ सुविहान तेज वर ।

तो गज्जानिय सुद्ध, हांसि मंडौ जु अप्प घर ॥

अर्थ:—तत्तारखों करने लगा— मैं हासीपुर का बग़ीच कर वहाँ सुभान का प्रताप फैला दूँगा तभी मैं युद्ध गजनी सेना का मुगिया कहलाऊँगा । हासीपुर को आपके कब्जे में ले प्राऊँगा नाश-कर्ता शत्रुओं का मार कर अपने शरीर को भी वर्धित कर दूँगा, किन्तु मार शब्दों के साथ उन (सामतों) के पैर छुड़ा कर उनका नाश कर दूँगा तभी आपसे आकर सलाम करूँगा और उसी दिन मेरा तत्तारख कहलाना सार्थक होगा, जब मैं प्रत्येक विपक्षी से लोहा ले पाऊँगा । चाहुआन से ऐसा युद्ध अवश्य करूँगा, मुझे सुभान की दुहाई ।

दोहा

पाहारी बल्लोच तहँ, करि सलाम सुरतान ।

हम बदे हाजुर निजरि, दें हासीपुर थान ॥ २६ ॥

शब्दार्थ:—हाजुर निजरि=आपके सामने उपस्थित हैं, आपके इशारे पर चलने वाले हैं ।

अर्थ:—उसी समय सुलतान से पहाड़ी बल्लोच ने भी सलाम किया और कहा — हम आपके सकेत पर चलने के लिये सामने उपस्थित हैं । हमें आप हासीपुर प्रदान कर दीजिए ।

कवित्त

सत्त बेर^१ पाहरी, तेग बधी जु आप कर ।

सब बद्धों सामत, बीटि खुरसान देउ धर ॥

आन^२ साहि साहाव, वीय^३ सन सज्जिय अरिपय ।

खां खुरसान ततार, खान विय सरद सु घण्णिय ॥

चतुरंग अनी हिंदू दिसा, वर गोरी सज्जिय सुवर ।

जुम रत्ति^४ वीय ससि^५ वदिवर, चढ़े सेन सुविहान भर ॥ २६ ॥

पा० पा० १ ३ भौ० (ख०) । २ भौ० का० । ४, ५ घ० ।

शब्दार्थः—सच वेर=सच्चा बदला लेने को । बीटि=घेर कर । आन=दुहाई । वीय=अपने दूसरे साथियों सहित । सरद=सीमा । घण्णिय=चल पड़े । जुम रत्ति=जुमारान्त्रि । वीय ससि=दूज का चन्द्रमा ।

अर्थः—यह कह कर वास्तव में बदला लेने के लिए पहाड़ी वल्लौच ने अपने हाथ से कस कर तलवार बांधी और कहा—खुरासानियों द्वारा हॉसी के भूभाग को घेर कर सब सामतों को मार दूँगा । मैं शाह की दुहाई देकर कहता हूँ कि मैं पुरुषार्थ के साथ अपने साथियों सहित तैयार हुआ हूँ । इसी तरह खुरासानखाँ, ततारखाँ और अन्य खान विपक्षी की सीमा की ओर चले । इस प्रकार गौरीशाह ने चतुरगिनी सेना हिंदू राजा के भूभाग की ओर खाना की । वे सुभान धर्म को मानने वाले वीर जुमे की रात्रि को दूज के चन्द्रमा की बदना कर के चले ।

दोहा

सिंधु मुक्कि गए दूत वर, तजि गोरी सुरतान ॥

कै विधि पर्वत चंपई; अवनी उनमी भान ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—सिंधु=नदी विशेष । विधि=शला । चंपई=दवाना । अवनी=पृथ्वी । उनमी=उठकर । भान=सूर्य ॥

अर्थः—सिंधु नदी पर पहुँचने के बाद गौरीशाह को छोड़ कर दूत मन में विचार करते हुए आगे चले कि या तो इन पर्वत-स्वरूपी यवनों की ओट में पृथ्वी के सूर्य पृथ्वीराज को विधाता दवा देगा या वह उठ कर इनके शिखर (सिर) पर चढ़ बैठेगा ।

कवित्त

कूच कूच चप्परे, खान खुरसान ततारी ।

हसम हयगाय सूर, दुसह दुब्जन जम-कारी^१ ॥

दल ब्रह्म सुविहान, सूर पच्छिम दिसि उठै ।
 लज सकर गल बंधि, सिंध मद नद सु नुहै ॥
 दिसि दुरंग अभंग हासी पुरह, सजिय सेन समुह धवै ।
 धर दहन वीर चहुआन की, हठ ततार सम्मुख धवै ॥ ३१ ॥

प्रा० पा० १ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—कूच कूच=मुकाम पर मुकाम । उपरे=चल पड़े । दुसह=असह्य । दुजन=दुर्जन, शत्रु ।
 जमकारी=यमराज से कृत्य वाले । पच्छिम दिसि=पच्छिम देशीय । उठु =उठ पड़े, उमड़ पड़े । लज=
 लज्जा । मद नद=मतवालों की आवाज । धवै=चल पड़े । दहन=भस्म करने । चवै=रुहने लगा ।

अर्थः—कूच पर कूच करते हुए खुरासानखां, तत्तारखा आगे बढ़ने लगे । उस
 असह्य शत्रु (गौरी) के बड़े-नडे हाथी-घोड़ों के समूह और बहादुर काल-रक्षुपी
 थे । उन पश्चिम देशीय सुभान धर्म मानने वाले वीरों की सेना बादल के समान
 उमड़ रही थी । वे वीर अपने गले में लाज की जजीरें डाले हुए थे और मतवाले
 हाथियों की आवाज पर, जैसे सिंह झपटता है, उसी प्रकार वे कठिन दुर्ग हासीपुर की
 ओर सजकर झपटते हुए बढ़ रहे थे । इस प्रकार पृथ्वीराज के भूभाग को भस्म
 करने के लिए तत्तार ने हठपूर्वक प्रतिज्ञा की ।

कूच कूच उपरे, राज अग्या नन मानै ।
 सुवर जूह सुरतान, सैन चावहिमि वानै ॥
 उगन हार ज्यों प्रात, लेन उयो बर गोरी ।
 तिम रलिंग जुनि कन्न, राज रज कन्न सु जोरी ॥
 धनि धनि धनि गोरी सुवर, बल भग्गा भगौ न बल ।
 आसीस भजि दिल्लीपुरा, तय^२ लगगों मेवात खल ॥ ३२ ॥

प्रा० प्रा० १ भौ० (ख) । २ पा० ।

शब्दार्थः—अग्या=आज्ञा । नन=नहीं । सुवर=सबल । जूह=समूह । वानै=धवि, शोभा ।
 तिम=तैसे । रलिंग=पैली । जुल=चमकती हुई । कन्न=किरणें । रज कन्न=राजसी किरणें ।
 जोरी=समानता पर । बल-भग्गा=सैन्य शक्ति नष्ट होने पर । बल=आत्मबल । आसीस=हासीपुर ।
 दिल्ली पुरा=दिल्ली के अधिकृत नगर । लगगों=लगगा ।

अर्थः—राजाज्ञा का भग करता हुआ पृथ्वीराज के भू-भाग की ओर कूच पर कूच करता हुआ, 'सुलतान' का सबल समूह बढ़ा और उसकी सेना चारों ओर विस्तृत होती हुई उस प्रकार शोभित दिखाई दी मानो प्रातः उदित होने वाले सूर्य-स्वरूपी गोरी शाह के उदय होने से उसकी किरण-समूह पृथ्वीराज की राजसी किरणों की समानता करने के लिये फैल गई हो। धन्य है, श्रेष्ठ गौरी शाह को जिसकी सैन्य-शक्ति के नष्ट होने पर भी आत्म-शक्ति कम न हुई। वह शक्ति हासीपुर का नाश कर दिल्ली और मेवात तक के भू-भाग की इच्छा करने लगी।

दोहा

जानि सकल गोरी सुवर, गरुज मत्ति त्तार ।

ते भारत्य सु वृत्त-पति, पति ना लभ्यौ पार ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—गरुज=महान, मारी। मत्ति=बुद्धि। वृत्त-पति=समूह-पति, महारथि। पति=पक्षि, प्रतना, सेना।

अर्थः—समस्त लोग गौरी और त्तार को महा-मतिमान और महाभारत के महा रथियों के समान मानते थे। उनकी सेना का पार नहीं पाया जा सकता था।

खा-त्तार सुरतान वर, नर-नाइक सुरतान ।

दस कोसैं आसी हुतें, आय सपत्ते थान ॥ ३४ ॥

मा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—नर-नाइक=सेनापति। कोसैं=कोस। आसी=हॉसी। सपत्ते=पहुंचे। थान=स्थान।

अर्थः—श्रेष्ठ सुलतान, त्तारखा और शाही सेनापति ने हासी से दस कोस की दूरी पर आकर पड़ाव किया।

कवित्त

आय सपत्ते थान, वीर आसी गिरह करे ।

सरद काल ससि मित्त, परी पारस सुमत घर ॥

बहुरि चद - वरदाय, साह लगगा कस धारिय ।

चावहिसि रू वये, मत पावै न विचारिय ॥

गढ़ रक्कि मन्गी चरम रानी, नेन गारा जग्गी पगी ।

चामडराट साहर नगी, चार गोट भूनी मूरी ॥ ३५ ॥

प्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—गिरा पर=दे। रंग। गिरा=गिरा। भूमा=भूमि, गीमा के अत तक। कस धारिय=कस धारण कर, उभय भा रमण कर। कभय र। रिया, रोक दिया, रोक करदी। गढ़ रक्कि=गढ़ के रक्षण पर गया, न निपा। रंग मार। रंग मारित हो गया या उसे देव-तुल्य देख का मोहित हो गया। भूनी ममी। भूमि पर गया या पड़ी।

अर्थः—दम कोस की दूरी पर पड़ा कर उद्धान (शाही सेना ने) हाँसीपुर को इस तरह घेरा, जिस प्रकार शरद्वज्र की छटा पृथ्वी की सीमा को घेर लेती है। चद बरदाई कहता है—फिर दिल में चुभी घान को स्मरण कर शाह ने दुर्ग के चारों ओर रुकावट करने के लिये ऐसा प्रबन्ध करवाया कि विपक्षी कुछ भी सत्रणा न कर सके। इस प्रकार गढ़ में जाकर जाकर रुकावट होने पर एक घंटे में अपनी सेना तैयार कर बलवान और साहसी दाहर-पुत्र चामडराय स्वयं सुमज्जित हो गया, जिसे देख देवता मोहित हो गए और देवागनाएँ उस पर इतनी मुग्ध हो गईं कि वे अपने आप को भूल गईं (अथवा उन्हें एक नये देव के प्रकट होने का भ्रम हुआ)।

चट्यौ ग्यान तत्तार, सोर हल्लें द्विगपाल ।

घुरै निसान धुनि पूर, नाद अवर लगि ताल ॥

पावस चद-सरह, घटा घुमरि ज्यो घेरै ।

ज्यो आपाढ रित^१ भान, धुम्म धु धरि नन हेरै ॥

गोरी सयन्न^२ सज्जिय सुभर, ज्यो झयल्ल कुलटा सु बसि^३ ।

अवसान अचानक ल्यों पुरह, हासिय खान ततार मसि ॥ ३६ ॥

प्रा० पा० १ सर्व प्रति । २ भी० का० । ३ का० भी० घ० ।

शब्दार्थः—द्विगपाल=द्विगुण। अवर-लगि-ताल=आकाश में स-जल (नाद) होने लगा। रित=ऋतु। धुम्म=धुम्र वर्ण। धु धरि=धु धल। नन हेरै=नहीं दिखाई पड़ता। सय न=सेना। झयल्ल=छेला। बसि=वश में। अवसान=मृत्यु। खान ततार=तकारी यन्त्र, तकारी सेना। मसि=घेर लिया।

अर्थ:—तत्तारखान की चढ़ाई के शोरगुल से दिग्पाल हिल उठे। नक्कारों की ध्वनि प्रतिध्वनित हो उठी, और आकाश से स ताल नाद (देव, ऋषि या देवांगना द्वारा) होने लगा। सेना सहित दुर्ग इस तरह घिर गया, मानों वर्षा ने घुमड़ कर शरद्-चंद्र को घेर लिया हो या आषाढ की धूम्रवर्ण धूंधल ने सूर्य को दबा दिया हो। गौरी-योद्धाओं की सुमज्जित सेना से दबाया हुआ दुर्ग ऐसा दोख पड़ा, मानों छेला कुनटा के चशीभूत हो गया हो। जैसे अकस्मात् मृत्यु प्राणी को निगल लेती है, उसी प्रकार हाँसी दुर्ग को तत्तारी सेना ने ग्रस लिया।

खा खुरसान ततार; वीय तत्तार खंधारी।

हवसी^१ रोमी खिलचि; इलचि खुरेस बुखारी ॥

सैद सैलानी सेख; वीर भट्टी मैदानो।

चौगत्ता चिमनौर, पीरजादे^२ लोहानी ॥

अनेक जात जानै सु^३ कुन; विहर^४ नेज असि ग्रहि करद।

तुरकाम वोच वल्लौच वर, चिति सु पुर^५ हासी मरद ॥ ३७ ॥

पा० पा० १ २ भी०। ३ सर्व प्रति। ४ का० घ०।

शब्दार्थ:—वीय=दूषण, चौगत्ता=चकता। कुन=कौन, विहर=नेज=नेजा फहराते हुए। चिति=चितना की, इच्छा की।

अर्थ:—खुरामानी तत्तार, खंधारी तत्तार, हवसी, रोमी, खिलची इलची, खुरैसी, बुखारी सैसानी सैयद, शेख, समतल भूमि पर रहने वाले वीर भट्टी (सिंह के रहने वाले सुमलमान आज भी अपने को भाटी कहते हैं), और चिमनौर के रहने वाले चिगता, शस्त्र धारी पीर वराज आदि अनेक जाति के मुस्लिम वीरों ने पताकाएँ फहराते हुए बिनाशकारी तजवारें पकड़ों। उन तुरकों में से बहादुर वल्लौची वीर ने हाँसीपुर के विजय की इच्छा की।

दोहा

सुनि अवाज निसुरत्तिखा, खांततार खुरमान।

वेरज गुर सम्हे^१ सजिग, मचिग जुद्ध विरुमान ॥ ३८ ॥

पा० पा० १, भी०।

शब्दार्थ:—वेरज=रात्र ता। गुर=मारी, विशेष, विरुमांत=उलभना।

रा - त्तार स्तम्भ, गम दागन पाय पागो

रा - निम्नरत्ति पहार, रभ सेना पग लगती ॥

खान खान खुरान, चच चतु रत्ति कमानो ।

कगुरीस गमगह जष मडे दल भानी ॥

खिलची खुरेस भट्टी विहर, पुछ सु इन पच्छह सुगर ।

महनग अग मारुफवा, छत्र मोस धारिय सुभर ॥ ३६ ॥

मा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—नाम=नाया । दक्खिन=दाहिना । पख=पक्ष, बाजू । पखी=पत्नी । उमै=दोनों । पग लक्खी=पैर के स्थान पर देखे गए । चच=चौच । चतु=चतु, नेत्र । कमानो=कपकर । कगुरीस=कागुरे प्रान्त का । जष मडे = जषा के स्थान पर । दल भानी = दल नाशक । विहर=चल कर । पुछ=पूछ । पच्छह=पक्ष पर । सुगर=सबल । महनग अग=महान पिट के स्थान पर ।

अर्थः—युद्धार्थ तत्पर हुए मुस्लिम-यौद्धाओं ने पत्नी की आकृति के समान व्यूह-रचना की । तत्तारखा और स्तम्भवा दाये-बाये स्थान पर, निम्नरत्तिवा और पहाडवा इन दोनों की सेना पैरों के स्थान पर, खानों का शिरोमणि और खुरासान कसकर चौच और चतुओं के स्थान पर बल-नाशक कागुरा प्रान्तीय और गक्खर वोर दोनों जघाओं के स्थान पर, खिलची, खुरेस और भट्टी चल कर श्रेष्ठ पूछ के स्थान पर हुए । महान अग धारी मारुफवा योद्धा ने पिट के स्थान पर होकर छत्र धारण कर सेनापती का स्थान ग्रहण किया ।

सुगर सूर सामत, बीर विरुम्माइ सु धाए ।

नखि कोट गढ ओट मोट किप्पाट डहाए ॥

सत छुट्यौ सामत, राम बुल्यौ रघुवसी ।

रे अभग सामत, साहि वधो बल गसी ॥

बिना नृपति जो बंध तो, किन्ती चावहिसि चलै ।

सार धार तन खंडिते, वीर भारत्य न डुल्लै ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—सुवार=उस समय । नखि=छोड़ कर । कोट=दीवार । ओट=आड़ । विप्पाट=कपाट, किंवाइ सत छुत्रो=साहस छूट गया । बुल्यो=कहा । अमंग=अखंड । साहि=बादशाह को । बल गंसी=शक्ति द्वारा प्रसित करके । बध=बाध लें । किन्ती=कीर्ति । सार धार=लोहधार, शस्त्रधारा । भारत्य=युद्ध से । डुल्लै=विचलित हों ।

अर्थः—उसी समय बहादुर सामंत दीवार की आड़को छोड़ते और दुर्ग के किंवाइों को तोड़ते हुए बाहर आकर शत्रु-योद्धाओं से उलझ पड़े । किंतु अपार शाही सेना को देख और सामंतों के साहस को छूटते हुए देख कर रघुवशी रामराय कहने लगा, हे अभग सामंतों ! बल पूर्वक शाह को पकड़ लेना चाहिये । यदि हम बिना राजा के होते हुए शाह को पकड़ लेंगे तो हमारी कीर्ति चारों दिशाओं में फैल जायगी । वीर पुरुष युद्ध में शस्त्र धार से अपने शरीर को खंड २ करा देते हैं परंतु विचलित नहीं होते ।

बिहसि राव चामड, कहै रघुवसराइ वर ।

तुच्छ सेन सामंत, साहि गोरी अभग भर ॥

दंति घात आघात, खग मगह कटारिय ।

गुरज वीर गोरीस, सेन भंमरि भर भारिय ॥

महनसी मेर मारु मरद, सरद तेज ससि मुख खुल्यो ।

पाहार वीर तौअर^१ उतँग, सार धार ना धर डुल्यो ॥ ४१ ॥

प्रा० पा० १ भों

शब्दार्थः—बिहसि=हँसकर । दंति=हाथी । खग-मगह=तलवार के रास्ते पर । गुरज=गदा । उतँग=ऊँचा ।

अर्थः—तब हंसकर चामडराय ने कहा—रघुवंशराय ठीक कहते हैं । हम सामंतों की अल्प सेना है । उधर गौरी सेना अभग है । युद्ध-मार्ग में हाथियों के दन्त प्रहार, योद्धाओं के खड्ग, कटारियों और गदाओं के प्रहार हो रहे हैं । इनमें से ऐसी विकट सेना के टुकड़े करने के लिये भारी योद्धा सुमेरु के समान महनसी, जिसका विरुद्ध मारु

मरद है, ऐसे उस वीर ने चन्द्र की काति जैसे चमचमाते हुए मङ्ग के तसे तो खोला । इसी प्रकार उत्तंग वीर पटारराय तेंवर भी युद्ध स्थल में शस्त्र-भार से विचलित नहीं हुआ ।

भिरिग सूर सामत, लुत्थि आहुट्टि लुत्थि पर ।

सघन घाड़, आवृत्त, मेर^१ तत्तार ढोड़ वर ॥

चढि हाँसीपुर सूर, खेत दुद्यू न दीन दुहु ।

उतरि मेर असि वरन, गहन जपे न सिद्ध कहु ॥

बहु^२ खड्ग सूर सामन्त रन, भोरी ग्वान खुरेस परि ।

मिलि मिच्छ^३ एकोन किहि, रहे सेन ठड्डे^४ विहरि ॥ ४२ ॥

प्रा० पा० १-३ भी, पा० का० घ० । २ स० । ४ भी ।

शब्दार्थ.—भिरिग=भिड़ पड़े । लुत्थि=लोथें, शव । आहुट्टि=लग गई । आवृत्त=लगातार । मेर=शिखर, पहाड़ । दुद्यू=खोजना । असिवरन=श्रेष्ठ तलवारर खने वाले । गहन=घेरना । सिद्ध=सफल । कहु=कोई भी । बहु=चलाया, प्रहार किया । भोरी=भोली, डोली । मिलि=मिल पाये । मिच्छ-मिच्छ=म्लेच्छ से म्लेच्छ । एकोन किहि=एक दूसरे से एकता न कर सके । रहे सेन=मेना के खेमा में ही । ठड्डे=ठके, विथाम पाया । विहरि=चलकर, भगकर ।

अर्थ:—और बहादुर सामत भी भिड़ पड़े । जिससे शत्रुओं के ढेर लग गए । मेरु तुल्य अटल बने हुए श्रेष्ठ तत्तार के भी कई घाव लगे । शाम होने पर बहादुर सामत पुन दुर्ग में प्रविष्ट होगए । दोनों दीन के वीर रण क्षेत्र में मृत और घायल वीरों को सम्हाल नहीं पाए । श्रेष्ठ खड्गधारी मुस्लिम योद्धा दुर्ग की पहाड़ी से लौट गए । दुर्ग को घेरने में सफल होने की बात किसी विपक्षी के मुँह से न निकल सकी । युद्धस्थल में बहादुर सामतों के खड्ग-प्रहार से खुरेसखान भी धरा-शाई होगया जिससे भोली में उठाया गया । मुसलमान योद्धा ऐसे भागे कि एक दूसरे की सुध बुध न ले सके और वे अपनी सेना के पड़ाव (खेमे) पर ही आकर विश्राम पा सके ।

समरिन^१ रग ततार, वज्जि नीसान खे न^२ रहि ।

हय गय नर^३ विच्छु रहि, रुद्र भूमी^४ सु वीर बहि ॥

निसचर वीर उमार, भूत प्रेतह उच्छ्वे सुर ।

वज्जि घाइ हकि^५ उठत; नचै चौसट्टि रंग वर ॥

नारद नद नंदी सु वर; वीरभद्र सुर ज्ञान वर ।

इन भंति निसा वर मुदरी; वर हर-हर वज्जे सु^६ सुर ॥ ४३ ॥ '

प्रा० पा० १ भी० पा० का घ० । २ भी० घ० । ३ भी० घ० पा० । ४ सर्व० ।

५, ६ भी० घ० पा० का० । ६ भी० घ० ।

शब्दार्थः—समरिन=युद्ध कर्त्ता । खे न=लय से बचा । रुद्र=शकर । वीर=वीर रस । वहि=विचरण करने लगे, प्रवाहित हुआ । निसचर=निशिचर, राक्षस, भूत, प्रेत । वीर=वावन ही वीर । उमार=उगड़ पड़े । उच्छ्व सुर=उत्साह-स्वर । वज्जि घाइ=वज्र तुल्य घाव । हकि उठत=उठ कर चलने लगे । चौसट्टि=चौसठ योगिनियों । रम=रमा । नद=नाद, आवाज । नदी=नदीगण, वृषभ । मति=माति, तरह । मुदरी=मोद प्रद । वज्जे=वज्र घोषणा ।

अर्थः—युद्ध-कर्त्ता-विपक्षियों पर नकारे वज्रवाकर तत्तारखों मारा न जाकर घरोशाई हुआ । युद्ध-स्थल में हाथी, घोड़े और वीरों का बिछोह हो गया । उस श्रेष्ठ भूमि में शिव भी दीखाई पड़े और वीर रस भी प्रवाहित हो गया । राक्षस और वावन ही वीर उमड़ पड़े । भूत-प्रेतों के उत्साह के स्वर सुनाई देने लगे, वज्र तुल्य शस्त्रों से घायल वीर पड़े हुए उठ कर चढ़ने लगे, चौसठ योगिनियों और रंभा श्रेष्ठ ढग से नृत्य करने लगीं, वीरभद्र को आवाज के साथ २ अप्सराओं के या देवांगनाओं के श्रेष्ठ गीत सुनाई दिये । इस प्रकार वह श्रेष्ठ रात्रि वीरों को प्रसन्न करने वाली बीती और प्रातः काल समीप आने पर वीर वज्र घोषणा के साथ हर २ करने लगे ।

वर खीची अचलेस, गरुअ गोयंद महनसी ।

उद्दिग वाह पगार, नरां^१ नरसिंघ समरसी ॥

उभै वध मोरीय, राव रानिग गिरेसं ।

देवक्रन्न साखुलौ, जुद्ध पारत्थ विसेसं ॥

सलखान भीम पुंढोर भर, जैन पवार सु वगरी ।

चामडराड कनकू सुभर, रघुवंसी^२ सिर पघरी ॥ ४४ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—गरुड=वडा । नरा=नरनाह कन्ह । समरसी=गुर में सिंह के समान । नरगिह=नरगिह चाहवान । गिरेस=पहाड़ी प्रदेश का, या गिरिराज तुल्य । पारत्य=पार्थ, यर्जुन । सतामान=गतमानि या स्वयं सलख । वग्गरी=वग्गरी गोत्र का प्रमार क्षत्री । वनकू=वनकराय । पग्गरी=पग्गरी ।

अर्थः—कवि कहता है — श्रेष्ठ अचलेम खीची, वडा गोविंदराय, महनमी, उद्दिग पगार, नरनाह कन्ह । युद्ध में सिंह के समान वीर नरहिम, दोनों भ्राता वीर मोरी, पहाड़ी भूमि का स्वामी या गिरिराज तुल्य रानिगराय, युद्ध में पार्थ के समान विशेषता रखने वाला देवकर्ण साखला, सलखानी भोम (या सलख और भीम), पुण्डीर योद्धा, जैत्र प्रमार, श्रेष्ठ वग्गरी, चामडराय, श्रेष्ठ योद्धा कनकराय और रघुवशराय के मिर पर ही पगडी अच्छी शोभा पाती है ।

देहा

प्रात उदित घायन मिले, प्रात घाइ घरियार ।

रोम लगे हिंदू तुरक, मनु वज्जत कठतार ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—घायन=वार करने । घाइ=डका, आघात । रोस=गुस्ता । मनु=मानों । वज्जत=वज्रते । कठतार=कुठाराघात ।

अर्थः—उधर सुबह घडियाल पर डका पड़ा और उधर प्रात होते ही, एक-दूसरे पर वार करने के लिये वीर सामने हो गए । क्रोध में आये हुए वे हिन्दु और तुरुक इस प्रकार प्रहार करने लगे, मानों कुठाराघात हो रहा हो ।

कवित्त

अद्ध सेन अध परिग, परिग दती सत इक्क^१ ।

अयुत अद्ध^२ अस परिग, पयह को गनै असक^३ ॥

दमत दून बानेत, घाय मौरी करि लिन्ने ।

पच्छ^४ पेंड पचाम, सेन भग्गा तिन दिन्नै ॥

पछ पु छ खान आलील तव, अति आतुर असिवर खरिय ।

भग्गौ न मीर मो भीर सुनि, अव भ नो हिंदू ररिय ॥ ४६ ॥

पा० पा० १ स० । २ घ० भों० का० पा० । ३, ४ पा० ।

शब्दार्थः—अद्ध=आधा । अध=नीचे । दती=हाथी । अयुत=दस हजार की संख्या । अस=घोड़े । पयह=पेदल । अमक=असंख्य । दमत दून=बीसों । घाय=घायल किए हुए । पच्छ=पीछे । पेंड=

कदम । पंचास=पच्चास । मग्गा=मगा । तिन=उस । दिन्ने=दिष्ट, दिन । पञ्च पुं०=व्यूह रचना में पृष्ठ के स्थान पर । आलील=आलील खाँ । अखिर=श्रेष्ठ घोड़े । खरिय=बढ़ाया । मीर=सहायता । मंजो=नष्ट करदों, दूर करदों । ररिय=रलिय, उत्साह, उमंग ।

अर्थ:—उस समय शाहीदल आघा घराशाई हो गया, एक सौ हाथी, ५ सहस्र घोड़े भी लुढ़क गए, और असंख्य पैदल सेना घराशाई होगई जिन की गिनती नहीं हो सकती । वीसों बाण चलाने वाले (धनुष धारी) घायल होगये । जिससे वे भोली में उठाये गए । उन सामन्तो ने शाही सेना को ५० कदम पीछे हटा कर भगा दिया । तब व्यूह रचना में शाही सेना के पृष्ठ के स्थान पर पीछे आलील खा था । उसने अपने श्रेष्ठ घोड़े को अधिक शीघ्रता पूर्वक बढ़ाते हुए कहा—हे मीरों सुनो । मैं तुम्हारी सहायता पर आगया हूँ, भागो मत । अब मैं हिन्दुओं के उत्साह को भंग कर दूंगा ।

सुनि सामंत निसान, खान आलील^१ उभंभरि ।

मनहु अरिग घन घृत्त^२; आय ढहूर सम धरि ॥

हू गोरी घर कोट, राज अड्डो चहुआनी ।

मो उभै कुन सूर, भोमि बिलसै सुलतानी^३ ॥

इह कहिरु सेन अगों^४ धरिय; जाय सूर मुख खगयौ ।

तिन सार मार सामत दल, पच डोरि पच्छो गयौ^५ ॥ ४७ ॥

पा० पा० १ भी० । २ पा० का० । ३ ० ४ पा० । ५ भी० पा० ।

शब्दार्थ:—उभंभरि=उभर पड़ा, क्रोध में आगया, घन=विशेष, ढहूर=डडा, लकड़ियें । समधरि=साथ ही रखदी । भोमि=भूमि । अगोंधरिय=आगे किया । खगयौ=खगने लगा, मारकाट करने लगा । तिन=उसकी । सारमार=लोहे की मार, शस्त्राघात से । डोरी=जरीव । पच्छो=पीछे ।

अर्थ:—सामन्तों के नक्कारे सुनकर आलीलखा, इस प्रकार क्रोध में आगया, मानो प्रज्ज्वलित अग्नि में विशेष घृत के साथ लकड़ियों का ढेर आ पड़ा हो और वह कहने लगा, मैं चाहुआन-नरेश को रोकने के लिए गोरी शाह के भूभाग की इह दीवार के स्वरूप हू । मेरे रहते ऐमा कौन बहादुर है जो सुलतान के भूभाग का उपभोग कर सके । यह कह कर उसने सेना को आगे किया और आप स्वयं बहादुरो का सामना कर मारकाट करने लगा । उसके शस्त्राघात से सामन्ती-सेना पाच डोरी (जरीव) पीछे हट गई ।

दोहा

तमकि सूर सामत तव, भुकि लग्गे फिरि गगिग ।
लपट भपट ऐसी वही, ज्यों वन जज्जर गगिग ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—तमकि=तमक कर । जज्जर=काल । गगिग=गगि, जाला ।

अर्थः—तब क्रोध में आकर बहादुर सामत टेढ़े होकर फिर से खड्ग चलाने लगे ।
उन चलती हुई खड्गों की सतत चमचमाहट ऐसी दिखाई देने लगी, मानो वन
में काल-ज्वाला फैल रही हो ।

कवित्त

भइय जित्ति सामत, सेन भग्गी^१ सुरतानह^२ ।
आप सूर सब कुसल, खित्ति रक्खी चहुआनह^३ ॥
उमै सहस परि मीर, सहस दस^४ वाज प्रमान ।
परिय दंति सत एक, करिय अच्छरि वर गान ॥
जै जया सह आयास हुआ, धाव सूर मोरी धरिय ।
वित्तयौ कलह भारत्य जिम, कही चद छदह करिय ॥ ४९ ॥

ग्रा० पा० १ स० । २, ३, ४ भी० ।

शब्दार्थः—भइय=हुई । जित्ति=जीत, विजय । भग्गी=भग गई । अप्प=अर्पित कर के । कुशल=कुशलता । खित्ति=पृथ्वी । उमै=दो । परि=पडे । वाज=घोड़े । प्रमान=प्रमाण, अनुमान । सत=सौ । अच्छरि=अक्षरा । वर-गान=श्रेष्ठ गायन । जै जया सह=जय जय ध्वनि । आयास=आकाश । धाव=धाव लगे हुए, धावल । वित्तयौ=बीता, समाप्त हुआ । कलह=युद्ध । जिम=जैसे ।

अर्थः—शाही दल भाग गया और सामतों की विजय हुई । उन सब बहादुर सामतों ने अपने आराम को रण क्षेत्र के अर्पित कर चाहुआन की पृथ्वी को सुरक्षित रख लिया । उस युद्ध में दो सहस्र मीर, दस सहस्र घोड़े और एक सौ हाथी धराशाई हुए । आक्षराओं के श्रेष्ठ गान के साथ ही आकाश मडल से जय जय की ध्वनि हो गई । धावल वीर भोलियों में उठाए गए । यह युद्ध महाभारत के समान ही समाप्त हुआ । कवि (चद) कहता है— इस युद्ध का मैंने यह वर्णन छंदो बद्ध किया ।

हाँसी द्वितीय युद्ध

(समय ५०)

कवित्त

हसम हयगय लुट्टि, लुट्टि पक्खर रखतान ।
तत्तारी खुरसान, हाम भग्गी सुरतानं ॥
सुनि भग्गी^१ सब सेन, हाय करि पिट्टि^२ सु हत्थं ।
पुच्छि खवरि वर दूत, कहिय भारथ वत^३ कत्थं ॥
रगतैत नैन साहाव सजि, पैगंवर महमुद^४ भजि ।
फिरि सव्यो सेन भर^५ सुचित करि, हांसीपुर जीतन सु कजि ॥ १ ॥

ग्रा० पा० १ भी० । २ सर्व प्रति । ३ पा० । ४ भी० का० घ० । ५ पा० ।

शब्दार्थः—हसम=मेना । पक्खर=पाखरें । रखतान=रसद । हाम=मरोसा, विश्वास ।
पिट्टि=पीटे । मारत=युद्ध । वत=वात । रगतैत=रक्त । साहाव=शहाबुद्दीन । महमुद=मुहम्मद ।
भजि=स्मरण करके । भर=योद्धा । सुचित=सावधान । कजि=लिए ।

अर्थः—बड़े बड़े हाथी-घोड़े पाखरों और रसद सामान हिंदू वीरों ने शाही सेना से लूट लिया । यह सुन कर वादशाह के दिल से तत्तारी और खुरासानी वीरों का विश्वास उठ गया । समस्त शाही सेना के पराजित होकर भाग जाने की सूचना पाकर शाह ने अपने हाथ पर हाथ मार कर दुःख प्रकट किया । शाह ने दूतों से पूछा तो उन्होंने युद्ध सम्बन्धी सब बातें कह सुनाई । इस पर शहाबुद्दीन के नेत्र लाल २ हो गए और उसने पैगम्बर मुहम्मद का स्मरण कर हांसीपुर को विजय करने के लिए सब वीरों को सावधान कर पुनः सेना एकत्रित की ।

साहवरी^१ सुरतान, समुद व्यूह रचि धाइय ।
अष्ट सेन रचि अष्ट, इष्ट करि सेन बनाइय ॥
इक्क^२ लख सारद्ध, सुभर अमवार ति साज ।
दती पति विसाल, अरिग^३ सज्जे अगि वाज ॥

पावस यान मानो पगटि, दिस दिमान नीमान टिय ।
आसी अचित इक दौर करि पानि सुभर घन घेरि किय ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ ४ भी० २, ३ पा० ५ प० भी० ।

शब्दार्थः—समुद्र=समुद्र । व्यूह=यूह । इष्ट करि=ए का स्मरण कर, इष्टा कर । गारर=शय्य
धारी । ती=उसने । साज=सजाया । दती=इष्टी । पति=पति । अगि=आगे । राज=घोरे ।
पावस=वर्षा । दिस दिमान=दमो दिशाओं । नीमान=नकरों निशान । आसी=आमीपुर सरीपुर ।
अचित=अचानक ।

अर्थः—बादशाह शहाबुद्दीन अपनी सेना को समुद्र व्यूह के रूप में जमा कर बढ़ा ।
उसने अपने इष्ट का स्मरण कर आठ सेनापति नियुक्त किये (अथवा न सकेत
करके) और सेना की न टुकड़ियों की । एक लाख शस्त्रारो वीर, प्रमुख योद्धा और
अश्वरोहियों की उसने सजाए । मय से आगे विशाल हाथिया की पक्ति और
उसके बाद अश्वारोही सेना नियुक्त की गई । दमा दिशाओं में नकरों की ध्वनि
ने पावस के प्रकट होने का भ्रम पैदा कर दिया । इस प्रकार मुस्लिम योद्धाओं ने
अचानक तीव्रता के साथ एक बार पुन आकर हॉसो दुर्गको घेर लिया ।

दोहा

घेरि सुभर साहावदी, कहिय वत्त चर चाह ।
कै भुमभट्टु बुमभट्टु सपरि, (कै) निकरौ धम्म दुआरु ॥ ३ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—चर=दूत । चाह=य छ । भुमभट्टु=युद्ध करो । बुमभट्टु=पूछो । सपरि=परिवार ।
दुआरु=द्वार ।

अर्थः—इस प्रकार पृथ्वीराज के सामंतों को घेर कर शहाबुद्दीन ने दूतों द्वारा कह-
लाया कि तुम अपने साथियों में पूछ कर या नो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ, नहीं
तो धर्म-द्वार के रास्ते (प्रत्येक दुर्ग में एक छोटा दरबजा रक्खा जाता था, जिसमें
आत्म समर्पण करने वाले धर्म की शपथ लेकर निकला करते थे जिसे धर्म द्वार कहते
थे) होकर निकल जाओ ।

कवित्त

सुधर सूर सामंत, वीर बिरुम्माइ सु धाप ।
 वढ़ गुज्जर रा राम, राइ रावत्त सब^१ आप ॥
 सम दुरंग सो सीस, वीर लोकिंग असमान^२ ॥
 तमकि^३ तमकि भर सुभर, वीर वीरं बिरुम्मान ॥
 कूरंभराव पञ्जून दे, गयौ हरख सामंत वर ।
 तम पलै मरन दीजै नहीं, मरहु तुम्ह जिन परि^३ सु धर ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० घ० । २ भी० । ३ पा० घ० भी० का० ।

शब्दार्थः—सुधर=श्रेष्ठ । बिरुम्माए=उलम्माए । सम=से । दुरंग=दुर्ग, किला । लोकिंग=विलोका, देखा । असमान=विषम । तमकिर=आवेश में आकर । बिरुम्मान=उलम्मा पड़े । तम=तमोगुण । पलै=पक्ष में । मरन दीजै=प्राण देना । जिन परि=जिन पर अपने पर ।

अर्थः—यह संदेश पाकर उस समय श्रेष्ठ बहादुर सामंत गणों में वलभक्त पैदा हो गई और बड़गूजर रामराय आदि सब राजवशी एकत्रित हुए । दुर्ग पर चढ़ वे शाही वीरों को देखने लगे और आवेश में आकर प्रत्येक वीर युद्ध के वाद-विवाद में वलभक्त पड़े । यह देख श्रेष्ठ सामंत कूर्मराज पञ्जून-देव खुश होकर कहने लगा—हम पर पृथ्वी का भार है । इसलिए मरना तो है, ही किंतु आपको केवल तमोगुण के वश में होकर प्राण नहीं देना चाहिए ।

सुनिय मत कूरंभ, मतौ जानहि सु मरन वर ।
 जीवन मत जानत, सामग्रम जाइ धम्म नर ॥
 हम वीरा रस धञ्ज, जोग जीतन सिर बंधी ।
 हम अभज अरि भज, मत जानै जस संधी ॥
 रुक्यौ हस पंजर सु पँच^१, सो पजर भंजहि ति भिरि^२ ।
 जानियै जगत तनु तिनुक वर, अरि बंधन वधेति फिरि ॥ ५ ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० घ० का० । २ भी० ।

शब्दार्थः—मत=मंत्रणा । मतौ=मंत्रणा । मत=मंत्रणा । जानत=जानते हैं । सामग्रम=स्वामी-धर्म । जाइ=जा । धञ्ज=धजा । अभंज=अभग । भज=भग, नाश । जस=यश । सधि=साधना, जोड़ना । रुक्यो=रोक रक्खा है, रुका है । हस=हास पखेरू । पजर=शरीर । पच=पंचतत्त्व ।

भजहि=नष्ट कर सकते हैं । ति=उसको । गिरि=भिन्नार । तत्त=शरीर । तिनक=तृण प ।
वधन=घेरा । वधेति=घिर चुके । फिरि=पन , फिर ।

अर्थः—मरने की श्रेष्ठ मंत्रणा जानने वाले कर्मराय की बात सुनी गई । वह जीवन-
विषयक, स्वामी धर्म-विषयक और मनुष्य-धर्म-विषयक मंत्रणा जानने वाला वीर
कहने लगा-हम योगियों से विजय प्राप्त करने वालों ने (योगी योग द्वारा मारा
जीवन बिता कर मोक्ष प्राप्त करते हैं, वही मोक्ष वीर क्षण मात्र में प्राप्त कर लेता है
इसी लिए वह बड़ा है) । वीर-रस की पताका सिर से बांध रखी है, हम अडिग
शत्रुओं का नाश करने वाले और यश-संग्रह की बात जानने वाले हैं । पंच तत्वों
के पिंजरे में हमारा यह प्राण-पखेरू निवास करता है । इस पिंजरे को शत्रुओं से
लड़ कर नष्ट कर सकते हैं । हम संसार को और शरीर को तृण तुल्य समझने
वाले हैं, तब फिर देखना ही क्या है जबकि हम शत्रुओं के घेरे में घिर चुके हैं ?

सुबर वीर सामत, मत^१ लग्गे विरुमान ।

रा चामंड जैतसी, रात बड गुज्जर दान ॥

उद्दिग बाह पगार, कनक कूरभ पजून ।

खीची रा परसग, चन्द पुडीर स कन्ह ॥

महनंग मेर मोरो महन^२, दोऊ वीर बगरि सलख ।

देव क्रन कुँअर अल्हन सुबर, लखिय सोभ भुज बर लिख ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ का० भी पा० घ० ।

शब्दार्थः—दान=दान सहित, मद सहित, मतवाला

महन=महान ।

अर्थः—फिर भी वीर श्रेष्ठ सामत ।

मतवाला बड़गुज्जर रामराय, उद्दिग प
खीची, चन्द पुण्डीर, नर-नाहर कर्म^३
राय, सलख, देवकर्ण और श्रेष्ठ^४ शपथ
दशा भी व्याकुल सी दिखा^५

दोहा

निसि चिंता सामंत सह, उद्दिग^१ वाह^२ पगार^३ ।

मात वीर^४ अस्तुति करै, सत्त सु मंगन हार ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १ भी० का० । २, ४ भी० । ३ का० भी० ।

शब्दार्थः—चिंता=चिंतित । वाह=वाहु । मात=देवी । वीर=वावन वीर । सत्त=साहस । मंगन-
हार=याचना करना ।

अर्थः—उस रात्रि को सब सामंत चिंता अस्त रहे और उद्दिग पगार ने देवी और
वावन ही वीरों की स्तुति कर साहस की याचना की ।

फुट्टि सरोवर नीर गय, अब कि^१ वंघै पालि ।

तौ मन सत्त^२ पयान किय, इह भावी इह कालि ॥ ८ ॥

ग्रा० पा० १ भी० पा० घ० । २ भी० पा० ।

शब्दार्थः—फुट्टि=फूट गया । कि=कैसे क्या । पयान किय=चला गया । इह=यही । भावी=
भविष्य । कालि=समय ।

अर्थः—देवी का उत्तर उसको मिला (स्वप्न द्वारा या साक्षात् किसी प्रकार से)
कि तालाब फूट गया है और पानी वह चुका है, अब पाल बाधना बृथा है ।
जब तेरी हिम्मत जाती रही तो समझ लेना चाहिये कि इस समय यही भविष्य
होने वाला है ।

कवित्त

निड्डर वर हरिसिंघ^१, वीर भोहा भर रूप ।

वरसिंह रु हरसिंघ, गरुअ गोयद अनूपं ॥

रा - बड़ गुज्जर^२ राम, बली वंभन रस वीर^३ ।

दाहिम्मो नरसिंघ, गौर सगार रन धीर ॥

वालुक्क^४ वीर सारंगदे, दर्ई देव दुज्जन दहन ।

सुलतान सेन समुह मिलै, गात जु हाँसीपुर गहन ॥ ९ ॥

ग्रा० पा० १ स० । २ पा० । ३, ४ भी० ।

शब्दार्थः—भर=भट, सामंत । गरुअ=बड़ा । वालुक्क=वाल भूमि काठियावाड़ को कहते हैं
इसीलिए चालुक्यों को वालुक्क भी लिखा है, यह बलमेश्वर का विकृत रूप है । दर्ई=दी,

दिए । दुष्जन=दुर्जन । दरन=जलाना । समर=सम्पन्न, सामने । मिले=मिला गए, मिट गए ।
गहन=महन, घेरा ।

अर्थ:—निड्डुरराय, श्रेष्ठ वीर हरिसिंह (हरिराय), सामंतों का शोभा स्वरूपी वीर भौहा, वरसिंह, हरसिंह, चड़ा गोविंदराय, रामराय बड़गुज्जर, वीर रस रूपी बलवान ब्रह्मराय (या कोई ब्रह्म-क्षत्रिय चालुक्य), नरसिंह दाहिमा, युद्ध में धैर्य रखने वाला सगर गौड और वीर सारगदेव चालुक्य (चालुक्य) आदि देव-स्वरूपी वीरों ने दुर्जनों को दग्ध कर दिया और हॉसीपुर के घिरे जाने पर उन्होंने सुलतान की सेना का सामना किया ।

उद्दिग गयौ निकरै, सुतौ मरनह तें डरयौ ।

समर सूर निकरै, सु फुनि अलेंगे उत्तरयौ ॥

चवड-रा निकरै, सुहड सावला सहितौ ।

गोयँद रा गहिलौत, सु फुनि निकरै विगुतौ ॥

साखुलौ सूर भूँहा^१ सु तन^२, कलू कथ भारथ करै ।

इत्तने राव गय^३ निकरे, देवराव क्यों निकरै ॥ १० ॥

प्रा० पा० १ का० । २, ३ सं० ।

शब्दार्थ:—सुतौ=वह तो । समर=युद्ध । फुनि=पुनि, फिर । अलेंगे=दिशा । उत्तरयौ=पार कर गए । सुहड=सुमर । सहितौ=सहित । विगुतौ=भुला कर । भूँहा=भौहा, चदेला । सु=श्रेष्ठ । तन=शरीर । कलू=कलियुग । कथ=ख्याति । भारथ करै=युद्ध करे । गय=गए ।

अर्थ:—उद्दिग पगार का युद्ध छोड़कर निरुज्जना मृत्यु-भय का कारण हो है और जो यौद्धा निकल गए, वे दिशा कौ पार कर गए । इसी प्रकार चामडराय, सावला-सूर, सुभट सहित निकल गया । पश्चात् गोविंदराय गहिलौत अपने को भुलाकर निकल गया । इतने सामंतों के निरुज्जने पर भी साखला सूर और श्रेष्ठ शरीर वाला भौहा तथा देवराज कैसे निरुज्ज सकते थे, उन्हें तो इस कलियुग में युद्ध-ख्याति प्राप्त करनी थी ।

० सामंत अभग, मेर धुअ मडल जाम ।

सेस सीस रवि चद, भूँअ^१ मडल अभिराम ॥

एउ टरें कोउ बेर, जोग जुग अंतर आयौ ।

अटल एक सामत, जुद्ध जोगा रस पायौ ॥

दैवान देव गति अलंघ^२ है, नन गुमान कोइ कर सकै ।

एकैक मत्त चूकै सवै, जित्ति कोइ जाइन सकै ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १ भी०, घ० पा० का० । २ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—अमग=अलंघ, नाश न होने वाला । मेर=सुमेरु । ध्रुव=भुव । मंडल=संसार । जाम=जामे । सेस=शेषनाग । भूश्र=भुश्र, पृथ्वी । अमिरम=अमिराम, सुद । ए^२=यह भी । जोग=संयोग । जुग=युग । अंतर=फर्क । जुद्ध जोग=युद्ध के लिये अलंघ=उलंघन न करने योग्य । नन=नहीं । गुमन=अभिमान । एकैक=एक २ । मत्त=मत्तणा । चूकै=भूल की । जित्ति=जीत ।

अर्थः—दुर्ग से निकल जाने वाले वे सामंत अडिग वीर और सुमेरु तथा ध्रुव के समान अटल इस भू मंडल पर पैदा हुए थे । शेषनाग के तम पर पृथ्वी है, उस पर प्रकाशित होने वाले श्रेष्ठ सूर्य और चंद्रमा भी समय का फेर आने से किसी समय टलते रहे हैं । विचलित हुए वीरों में से एक सामंत ने, देवराज या देव कर्ण) ही युद्ध के योग्य रम (वीर रम) प्राप्त किया । देवताओं की गति के विपरीत कोई नहीं कर सकता, किन्हीं को अपनी बात पर अभिमान नहीं करना चाहिए । दैविक गति पर विजय नहीं पाई नासक्ती, किन्हीं न किसी जगह (किसी २ बात में) सभीने भूल की है ।

राम चुकि अग हेम^१, सीय लिय रावन चुककौ^२ ।

हनुअ वत्त कहिरि ग्रव्व, भरथ चुककवि सर मुक्कौ^३ ॥

विक्रम जीव जतन्न, कग आमिप मुख मडिय ।

इन्द्र अहल्या काज, सहस भग काया भंडिय^४ ॥

नलराय दमती कारणै, और नाम जानौं न उन ।

सामत दोप लगयो इतौ, मतौ इक्क^५ चुकयौ न कुन ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १ सर्व० । २-३५ पा० । ४ भी० का० घ० पा० ।

शब्दार्थः—चुककवि=भूल की । हेम=सोना । हनुअ=हनुमान । ग्रव्व=गर्व । भरथ=भरत, राम के भ्राता । चुककवि=भूल कर सर=वाण । मुक्कौ=छोड़ा । विक्रम=विक्रमादित्य । जतन्न=यत्न । कग=काग । आमिप=मास । सहस=सहस्र । भग=योगि । मडिय=अपवाद । दमती=मंत्रणा बुद्धि । कुन=कौन । उन=उसने ।

अर्थ:—राम ने स्वयं मग की आगोट करत रागण ने मोता हा हरण करते, हनुमान ने राम क सामने गर्व की बात करत, भगव ने हनुमान पर तार चलाते, आयुष्य बात के लिए रिक्तता-य ने रणायण माने भूल ही । इसी प्रकार इन्द्र ने आहल्या से मयोग करने से भूल कर के मरुता भग शरीर पर प्राप्त कर अपना अपना करवाया । मती-नगरी जो कभी पर-पुरुष का नाम तक नहीं जानती थी उसका नाम हर नन न भूल ही । इस लिए सामंतों को ही किस बात का दाप दिया जा सकता है जबकि तेमे तेमे महान पुरुषों की बुद्धि से भी भूल पाई जाती है (अर्थात् किमसे भूल नहीं पड़े है) ।

साहि मलिक साहाय-दीन जिहि द्वारे वदिय ।

जेन द्वार निक्करौ, जेन निक्करे न कहिय ॥

मिर तुष्टे भडि पडहु, सहित धर जाह सरीरह ।

हुँ स भीछ पट्टेचे न, तनो निकलक सरीरह ॥

साखुलौ सूर सामत वल, देवराव कटि नदि मरै ।

ता नथि पुत्त बापह तनौ, धम्म द्वार होइ निक्करै ॥ १३ ॥

पा० पा० १, २, ३ पा० का० । ४, ५ भी० । ६ भी० पा० ।

शब्दार्थ:—साहि मलिक=मुल्क का बादशाह । साहाय दीन=शहाबुदीन । जिहि=जिस । द्वारै=द्वार, धर्म द्वार । वदिय=कहा, हट किया, वाद किया । जेन=जिस । निक्करौ=निककरउ, निक्करे निकले । कहिय=कभी भी । भडि पडहु=भड़ पड़े । धर=धड़, रुएड, शरीर । जाह=जाय । हुँ स=हम । भीच=सकुचित होना । तनो=हमारा । ता=वह । नथि=नहीं । पुत्त=पुत्र । बापह=पिता । तनो=का ।

अर्थ:—मुल्क के शाह शहाबुदीन ने जिस द्वार से सामंतों को निकालने की जिह की थी, उसी द्वार से अनेक सामंत जो कभी इस द्वार से नहीं निकले थे, उससे (धर्म द्वार से) निकल गये, किन्तु सामंतों के समान ही बल रखने वाले साखुला सूर और देवराय ने कहा— हमारे सिर कट कर क्यों न गिर जायँ, यह पृथ्वी हमारे शरीर सहित क्यों न नाश को प्राप्त हो जाय, किन्तु हम निष्कलक देह धारो हैं । अतः सकुचित होकर पीछे नहीं होंगे । वह अपने पिता का पुत्र नहीं कहला सकता जो धर्म द्वार से निकल जाय ।

दोहा

भयौ प्रात फट्टे^१ तिमर^२, मिलिष संग^३ तत्तार ।

करत कूँच तुट्टे सुभर, गढ़ लग्गे चिहुँ वार ॥ १७ ॥

प्रा०पा० , २ पा०भी०का० ।

शब्दार्थः—फट्टे तिमर=अंधेरा दूर हुआ । मिलिष=मिलगए । संग=साथी-समूह । कूँच=प्रस्थान ।

तुट्टे=टूट पड़े । चिहुँ=चारों ओर । वार=बाहर को ।

अर्थः—सुबह होने पर जब अंधेरा दूर हो गया तब तत्तार के सब साथी एकत्रित हुए, उसी समय गढ़ के बाहर चारों ओर घिरे हुए शत्रुओं पर हिन्दू वीर आकर दूट पड़े ।

कवित्त

खां-तत्तार गढ़ घेरि, दोह वज्जे वजाए^१ ।

दो दस दिन सामंत, पन्न^२ पानह^३ मुमम्माए^४ ॥

पन्न पान सोचंत^५, दीह तिन सूर न पाइय ।

गयो वीरपा हार, नाम किन सूर न साइय ॥

पारथ्य जीत भारथ्य सह, गो^६ पन^७ रखि अपु बल तिया ।

हथ्य धनुख आइ वनर बली, सीय कज्ज अपु सह किया ॥ १८ ॥

प्रा०पा०१ से ४ तक, घ०का०भी० । १पा० । ६, ७ का० ।

शब्दार्थः—दोह=दहाने के लिए । पन्न=पानि=हाथ । पानह=शक्ति । दीह=दिन । तिन=उन ।

सूर=वहादुरी । वीरपा=वीरत्वपन । हार=चला गया । साइय=साह पाया, रख पाया । गो=गया ।

पन=प्रण । अपु=अपने । तिया=गोपियें, स्त्रियों । हथ=हाथ । वनर=वानर । कज्ज=लिए ।

सह=सहना ।

अर्थः—तत्तार खां ने दुर्ग को घेर कर दहा देने के लिए वाजे वजवाए, कुछ दिनों तक तो सामंत-गण अपने हाथों के बल पर जूमते रहे । किंतु उनके जूमते हुए भी उन दिनों में किसी की वहादुरी ने स्थान नहीं पाया, उनकी वहादुरी चली गई, कोई भी अपना नाम उस समय नहीं रख सका । समय प्रबल है । जिस अर्जुन ने महाभारत युद्ध में विजय प्राप्त की थी, वह भी अपने बल से गोपियों को सुरक्षित रखने में प्रतिष्ठा रहित हुआ और सीता की सुधि लाने के लिए ही हनुमान जैसे बलि-वानर ने वाण साधन द्वारा पकड़ा जाना सहन किया ।

अर्थ:—उपर्युक्त सामंतों के हिम्मत दोन देने पर तत्तार ने शाह में कहा कि गीराज के दुर्ग में रहे जेप गद्गधारी सामंतों ने अपनी हिम्मत जग करती है। तब मुलतान के सैनिक मिलकर वहाँ आगम और गद्ग सेना ने दुर्ग का घेरा बान दिया। स्वयं शहाबुद्दीन चलकर हॉसीपुर आया और गद्गधारी सामंतों में से दोन २ हिम्मत छोड़ कर दुर्ग से निकल गए, यह उसे ज्ञात होगया। सामंतों की सुभाषणा और अमत्रणा का भी उसे आभास हो गया और उसने कहा—हम लोगों का निरन्तर शक्ति की वृद्धि करनी चाहिये और श्रेष्ठ तलवार कमर के बांध कर कुरान को पढ़ शीघ्र ही कार्य सफल कर लेना चाहिये।

सजे सीस गयनग, रथौ रूपे रन माही ।

सवल सेन सुरतान, परिय पारस परछाही ॥

हक्क धक्क किलकार, करै आसुर असमान ।

गोर नार जबूर, बान रुकै रह मान ॥

पावे न मभक्त पखी पसर, विसर नह बज्जे सवल ।

साखुलौ सुभर जुझ्यौ समर, उदधि मभक्त लग्यौ अनल ॥ १६ ॥

शब्दार्थ:—सजे=उषत किया, लगा दिया। गयनग=आसमान से। रूपे=डटकर, दड हँसर। पारस=घेरा। हक्क=हुक्कार। धक्क=चल पड़े। आसुर=असुर, मुस्लिम। अममान=विषमता पूर्ण। गार=गोले। नार=नाली। जबूर=छोटी तोप। बान=तीर। रह=रथ। मान=सूर्य। पखी=पक्षी। पसर=चल सकै, उड़ सकै। विसर=बिसर, भयानक नह=नाद, आवाज। सवल=जोर से।

अर्थ:—इधर से सौंखला शूर अपने सिर को अकाश की ओर उठाता हुआ युद्ध-स्थल में आकर डट गया। बादशाह की सवल सेना जिमने दुर्ग के चारों ओर घेरा डाल रखा था उस पर उसके उन्नत सिर की परछाई पड़ी। यह देख कर मुस्लिम योद्धा भयकर हुंकार और किलकारी करते हुए चले (बहादुर हुंकार करते हुए सामने और कायर किलकारी करते हुए पीछे चले)। छोटी २ तोपों से गोले और बाण इतने चले जिससे सूर्य-रथ रुक गया। उनके अन्दर से पक्षी भी नहीं उड़ सकते थे, भयानक स्वर में बाजे बजने लगे। ऐसे युद्ध में वह वीर सौंखला जूझता हुआ इसप्रकार दिखाई दिया मानो समुद्र में बाड़वाग्नि प्रज्वलित हो गई हो।

दोहा

भयौ प्रात फट्टे^१ तिमर^२, मिलिघ संग तत्तार ।

करत कूच तुट्टे सुभर, गढ़ लग्गे चिहुँ बार ॥ १७ ॥

प्रा०पा० , २ पा०भी०का० ।

शब्दार्थः—फट्टे तिमर=अंधेरा दूर हुआ । मिलिघ=मिल गए । संग=साथी-समूह । कू च=प्रस्थान ।

तुट्टे=टूट पड़े । चिहुँ=चारों ओर । बार=बाहर को ।

अर्थः—सुबह होने पर जब अंधेरा दूर हो गया तब तत्तार के सब साथी एकत्रित हुए, उसी समय गढ़ के बाहर चारों ओर घिरे हुए शत्रुओं पर हिन्दू वीर आकर टूट पड़े ।

कवित्त

खां-तत्तार गढ़ घेरि, दोह षज्जे वजाए^१ ।

दो दस दिन सामत, पन्न^२ पानह^३ झूमफाए^४ ॥

पन्न पान सोचंत^५, दीह तिन सूर न पाइय ।

गयो वीरपा हार, नाम किन सूर न साइय ॥

पारथ्य नीत भारथ्य सह, गो^६ पन^७ रखि अपु बल तिया ।

इथ्य धनुख आइ वनर बली, सीय कज्ज अपु सह किया ॥ १८ ॥

प्रा०पा०१ से ४ तक, घ०का०भी० । १पा० । ६, ७ का० ।

शब्दार्थः—दोह=दहाने के लिए । पन्न-पानि=हाथ । पानह=शक्ति । दीह=दिन । तिन=उन ।

सूर=बहादुरी । वीरपा=विरत्वपन । हार=चला गया । साइय=साह पाया, रख पाया । गो=गया ।

पन=प्रण । अपु=अपने । तिया=गोपियों, स्त्रियों । इथ्य=हाथ । वनर=वानर । कज्ज=लिए ।

सह=सहना ।

अर्थः—तत्तार खां ने दुर्ग को घेर कर दहा देने के लिए वाजे वजवाए, कुछ दिनों तक तो सामंत-गण अपने हाथों के बल पर जूमते रहे । किंतु उनके जूमते हुए भी उन दिनों में किसी की बहादुरी ने स्थान नहीं पाया, उनकी बहादुरी चली गई, कोई भी अपना नाम उस समय नहीं रख सका । समय प्रवृत्त है । जिस अर्जुन ने महाभारत युद्ध में विजय प्राप्त की थी, वह भी अपने बल से गोपियों को सुरक्षित रखने में प्रतिष्ठा रहित हुआ और सीता की सुधि जाने के लिए ही हनुमान जैसे बलि-वानर ने वाण साधन द्वारा पकड़ा जाना सहन किया ।

अर्थ:—उपर्युक्त सामंतों के हिम्मत छोड़ देने पर तत्तार ने शाह से कहा-पृथ्वीराज के दुर्ग में रहे शेष खड्गधारी सामंतों ने अपनी हिम्मत दृढ़ करली है। तब सुलतान के सैनिक मिलकर वहाँ आगए और शाही सेना ने दुर्ग का घेरा डाल दिया। स्वयं शहाबुद्दीन चलकर हॉसीपुर आया और बहादुर सामंतों में से कौन २ हिम्मत छोड़ कर दुर्ग से निकल गए, यह उसे ज्ञात होगया। सामंतों की सु-मन्त्रणा और अमन्त्रणा का भी उसे आभास हो गया और उसने कहा-हम लोगों को निरन्तर शक्ति की वृद्धि करनी चाहिए और श्रेष्ठ तलवार-रुमर के बाध कर कुरान को पढ़ शीघ्र ही कार्य सफल कर लेना चाहिये।

सजे सीस गयनग, रह्यौ रूपे रन माही ।

सवल सेन सुरतान, परिय पारस परछाही ॥

हक्क धक्क किलकार, करै आसुर असमान ।

गोर नार जवूर, बान रुक्के रह भान ॥

पावे न मभक्त पखी पसर, विसर नह बज्जे सवल ।

साखुलौ सुभर जुझ्यौ समर, उदधि मभक्त लग्यौ अनल ॥ १६ ॥

शब्दार्थ:—सजे=उद्यत किया, लगा दिया। गयनग=आसमान से। रूपे=डटकर, दृढ़ होकर।

पारस=घेरा। हक्क=हुक्कार। धक्क=चल पड़े। आसुर=असुर, मुस्लिम। अममान=

विपमता पूर्ण। गोर=गोले। नार=नाली। जवूर=छोटी तोप। बान=तीर। रह=रथ।

मान=सूर्य। पखी=पक्षी। पसर=चल सकें, उड़ सकें। विभर=वेसर, भयानक। नह=नाह, यात्राज।

सवल=जोर से।

अर्थ:—इधर से साँखला शूर अपने सिर को अकाश की ओर उठाता हुआ युद्ध-स्थल में आकर डट गया। बादशाह की सवल सेना जिमने दुर्ग के चारों ओर घेरा डाल रखा था उस पर उसके उन्नत सिर की परछाई पड़ी। यह देख कर मुस्लिम-योद्धा भयकर हुंकार और किलकारी करते हुए चले (बहादुर हुंकार करते हुए सामने और कायर किलकारी करते हुए पीछे चले)। छोटी २ तोपों से गोले और बाण इतने चले जिससे सूर्य-रथ रुक गया। उनके अन्दर से पक्षी भी नहीं उड़ सकते थे, भयानक स्वर में बाजे बजने लगे। ऐसे युद्ध में वह वीर साँखला जूझता हुआ इसप्रकार दिखाई दिया मानो समुद्र में वाइवागिन प्रज्वलित हो गई हो।

दोहा

भयौ प्रात फट्टे^१ तिमर^२, मिलिष^३ संग तत्तार ।

करत कूंच तुट्टे सुभर, गढ लग्गे चिहुँ बार ॥ १७ ॥

प्रा०पा० ; २ पा०भी०का० ।

शब्दार्थः—फट्टे तिमर=अंधेरा दूर हुआ । मिलिष=मिलगए । संग=साथी-समूह । कूंच=प्रस्थान ।

तुट्टे=टूट पड़े । चिहुँ=चारों ओर । बार=बाहर को ।

अर्थः—सुबह होने पर जब अंधेरा दूर हो गया तब तत्तार के सब साथी एकत्रित हुए, उसी समय गढ़ के बाहर चारों ओर घिरे हुए शत्रुओं पर हिन्दू वीर आकर टूट पड़े ।

कवित्त

खां-तत्तार गढ घेरि, दोह वज्जे वजाए^१ ।

दो दस दिन सामंत, पन्न^२ पानह^३ सुममाए^४ ॥

पन्न पान सोचंत^५, दीह तिन सूर न पाइय ।

गयो वीरपा हार, नाम किन सूर न साइय ॥

पारथ्य नीत भारथ्य सह, गो^६ पन^७ रखि अपु वल तिया ।

हथ्य धनुख आइ वनर बली, सीय कज्ज अपु सह किया ॥ १८ ॥

प्रा०पा० १ से ४ तक, घ०का०भी० । ५ पा० । ६, ७ का० ।

शब्दार्थः—दोह=दहाने के लिए । पन्न-पानि=हाथ । पानह=शक्ति । दीह=दिन । तिन=उन ।

सूर=बहादुरी । वीरपा=वीरत्वपन । हार=चला गया । साइय=साह पाया, रख पाया । गो=गया ।

पन=प्रण । अपु=अपने । तिया=गोपियों, स्त्रियों । हथ=हाथ । वनर=वानर । कज्ज=लिए ।

सह=सहना ।

अर्थः—तत्तार खां ने दुर्ग को घेर कर दहा देने के लिए वाजे वजवाए, कुछ दिनों तक तो सामंत-गण अपने हाथों के बल पर जूमते रहे । किंतु उनके जूमते हुए भी उन दिनों में किसी की बहादुरी ने स्थान नहीं पाया, उनकी बहादुरी चली गई, कोई भी अपना नाम उस समय नहीं रख सका । समय प्रव्रल है । जिस अर्जुन ने महाभारत युद्ध में विजय प्राप्त की थी, वह भी अपने बल से गोपियों को सुरक्षित रखने में प्रतिज्ञा रहित हुआ और सीता की सुधि लाने के लिए ही हनुमान जैसे बलि-वानर ने वाष्प साधन द्वारा पकड़ा जाना सहन किया ।

अरस पूर तत्तार, भूभ वज्जी मग सुद्धी ।
 इक्कल्लो दिवक्कन्न, वान अर्जुन मग बुद्धी ॥
 और सबै सामंत, माहि विसहर^१ आलुद्धी ।
 मरन भार उद्दग विहार, तेग^२ वीरा रम वधी ॥
 सांवल्लो सूर सारगदे, तिन वधी लज्जी -जगत ।
 उच्चरै सूर सामत सू^३ जेन भिरत पच्छड मरत ॥ १६ ॥
 पा० १-२ सर्व प्रति । ३ पा० ।

शब्दार्थः—अरस=अश्व, घोड़ा । पूर=ठेलकर, बढ़ाकर । भूभ=भूभावात् । वज्जी=चली ।
 मग=रास्ता, युद्ध मार्ग । सुद्धी=साधन । माहि=में, अन्दर, युद्ध में । विसहर=विपथर, सर्प ।
 आलुद्धी=उलझ पड़े । मरन=मृत्यु । भार=भारी । उद्दग=उन्नत । विहार=चलते हुए, विहरते
 हुए । तेग=तलवार । तिन=उपने । लज्जी=लज्जा । सू=से । जेन=जो नहीं । भिरत=भिडते ।
 पच्छड=पीछे सी ।

अर्थः—घोड़े को भूभावात् की तरह बढ़ाते हुए तत्तारवां ने युद्ध-मार्ग को पकड़ा ।
 और मार्ग साफ किया । इधर से अकेला देवकर्ण, जो बाण और बुद्धि में अर्जुन
 के समान था उसने भी युद्ध में पैर दिया । अन्य सामंत भी उस युद्ध में विपैले-सर्प
 के समान होकर उलझ पड़े । वे मृत्यु की झड़ी करते और उन्नत होकर चलते हुए
 वीर रस में ओत-प्रोत होगये और तलवारें कसी । किन्तु साखले सूर और सारग-
 दे ने उसी तलवार को समार की लज्जा के लिये कसते हुए बहादुर सामंतों से कहा,
 जो युद्ध में नहीं भिडता है वह भी एक दिन मरता ही है ।

अनल मद्धि दिवराज, परे पारस दधि^१ गोरी ।
 लहरि सेन वाजत, धार भारां^२ भूकभोरी ॥
 वज्जि धार विम्भार, मार मारह मुख जपहि ।
 सूर मत्त रन रत्त, कलह कायर उर कपहि ॥
 लगि सार धार रुधि छंछ छुटि^३, सहस सूर उट्टुहि लरन ।
 आवट्टि सेन अद्धों सु अध, अद्ध २ लगौ भिरन ॥ २० ॥
 पा० पा० १, ३ सर्व प्रति । २ भी० का० घ० ।

शब्दार्थः—अनल=अग्नि, वाइवाग्नि । मडि=मध्य में । दिवराज=देव कर्ण । परे पारस=घेरा-पड़ा ।
 दधि=समुद्र । गौरी=गौरी सेना । लहरि=लहरें, तरंग । बाजत=चल कर, चलने पर । धार=खड्गधार ।
 भारी=ज्वाला । भकभारी=हिल्लोर दिया । वजिज=चलाई । विम्मार=उठा कर । मत्त=मुस्त,
 मतवाला । रत्त=अनुरक्त । कलह=युद्ध । रधि=रधिर । छछ=धारा । छुटि=छूटी । आवट्टि=आवेश
 में आकर । अद्ध२=धरासाई होते हुए भी, गिरते २ भी॥

अर्थः—गौरीशाह का घेरा समुद्र के समान था । उसके मध्य में देवराज वाइवाग्नि
 स्वरूप दिखाई देता था । तरंग रूपी सेना के बढ़ने पर उसकी खड्गधार ज्वाला
 रूप होकर सैन-सिंधु को हिला देती थी । उसने मार २ शब्द उच्चारण कर
 तलवार उठाकर चलाना शुरू कर दिया । उस समय मतवाले वीर ही रण में
 अनुरक्त दिखाई पड़े और कायरों के हृदय कांपने लगे । उस वीर (देव कर्ण) के
 शस्त्राघात से इस प्रकार रक्त-धारा ऊपर छूटने लगी, मानों सहस्त्रों वीर लड़ने
 के लिये खड़े हुए हों । उसने आवेश में आकर विपक्षी सेना को इतना काटा कि
 आधा रख दिया । गिरते २ भी वह शेष आधी सेना से लड़ता रहा ।

दीहा

देवकन्न सुरलोक वसि^१, हय नर धर गज भान^२ ।

नाग असुर सुर नर सुरभ^३, बहि भारध्य वखान ॥ २१ ॥

प्रा० पा० १ सर्वप्रति । २ भी० का० । ३ घ० भी० का० ।

शब्दार्थः—मान=नाश । रम=रम्मा । मारप्य=युद्ध ।

अर्थः—अश्वारोही-गजारीही सेना का नाश करता हुआ देवकर्ण स्वर्गलोक में जा
 वसा । उसके युद्ध की विशेष प्रशंसा नाग गण, असुर गण, सुर गण, नर गण
 और रम्मा ने की ।

कवित्त

जीति समर दिवकन्न, धार पति चद्रिय धार ।

निगम ध्रम्म अजमेध, द्रुभ्म थल दुज्जअचारं ॥

रथ रभन वर^१ थकि, रच्चि थक्यौ रथ लोचन^२ ।

वध इन्द्र सर वध, मंदु वारा रहि सोचन^३ ॥

शिव वध सथथ रथ ऊर चहि, भूनिग तन गय^४ ब्रह्मपुर ।

इह करि न कोइ करि है नहीं, करौ सु को रजपूत धर ॥ २२ ॥

प्रा० १ भी० का० घ० । २ पा० घ० का० भी० । ३ पा० । ४ भी० का० ।

शब्दार्थः—धारपति=शैली के अनुसार धार राज-वशज होने से धारपति लिता गया । धार=राजगधारा । चट्टिय=बलि हो गया । निगम=वेद । भ्रम्म=धर्म । अजमेध=अश्वमेध । दग्ध धल=दर्भस्थल, वेदी । दुज्जअचार=द्विजाचार । (द्विज समुदाय और हाथियों की रद पक्ति) । रम्मन=रम्मा का । रवि=रवि, सूर्य । वध इन्द्र=इन्द्र का प्यारा, मोर । मद्दु=मलिन, उदास । धारा=नारागिनाएँ, अप्सराएँ । शिव वध=शिव प्रिय, विष्णु । ऊर=पर । भूनिगतन=भूषिण का पुत्र । गय=गया ।

अर्थः—इस प्रकार धार राजवशी देवकर्ण प्रमार युद्ध स्थल में विजय प्राप्त करता हुआ खड्ग धार पर बलि हो गया । उसका अन्तिम युद्ध धर्म शास्त्र में लिखे अश्वमेध यज्ञ के समान हुआ । यहाँ यज्ञ वेदी हाथियों के समूह को ही कही जा सकती है । जहाँ द्विजाचार है (द्विज समुदाय और हाथियों की रद पक्ति है) उस वर के युद्ध को देखते २ रम्मा का श्रेष्ठ रथ रुक गया । सूर्य के नेत्र रथ से देखते २ थक गए, सिर पर मोर (सेहरा) बाँध कर आसरा चरण की इच्छा करती ही रह गई । स्वयं विष्णु आ उपस्थित हुए और वह भुनिग-पुत्र विष्णु सहित ब्रह्मलोक में चला गया । ऐसी करणी कोई कर नहीं सकता, और यदि कोई कर सकता है तो सच्चा क्षत्रिय ही कर सकता है ।

देवक्रन्न वर वीर, धीर भर भीर अभीर^१ ।

चौ च्यालीस प्रमाण, तुष्टि तन धार सु धीर ॥

धुति सुदेव^२ उच्चार, करै अस्तुति दें तारी ।

सिर तुष्टे धर उठि, भिरन कट्टी कट्टारी ॥

अरि मुख गयौ चढि चित्त^३ अरि, तनु धारा हर ब्रिटयौ ।

कायरन जेम तज्यौ न रन, करि कुट्टा जिम कुट्टयौ ॥ २३ ॥

पा० पा० १ सर्व० । २ घ० ३ पा०

शब्दार्थः—धीर=धैर्यवान् । भर=भट । भीर=सहायक । अभीर=असहाय । चौच्यालीस=चौवालीस । तुष्टि=टूट गई । धुति=स्थित, टकटकी लगाए हुए । धर=धड़ । मुख=पामने । चढि=चढ़ गए । तनु=शरीर । धाराहर=धाराधर, खड्ग धाराएँ । ब्रिटयौ=धिरगया । कुट्टा=कुट्टी (टुकड़े २) । कुट्टयौ=कटा, कटा ।

अर्थः—वीर श्रेष्ठ देवकर्ण धीर वीर था, जिसका कोई सहायक नहीं उसका वह सहायक था । उसके शरीर पर चौवालीस खड्गों की धारें टूट गई (खिर गई) ।

टकटकी लगाकर देवतागण ताली देकर उसकी जय २ कार करने लगे । उस वीर का मुण्ड कट जाने पर रुण्ड खड़ा होगया और कटारी निकाल शत्रु का सामना किया । उस समय वह शत्रु के चित्त में भी बस गया । उसका रुण्ड तलवारों से आच्छादित होगया । उसने कायरों के समान युद्ध को नहीं छोड़ा । युद्धस्थल में उसके शरीर के कुट्टी के समान टुकड़े २ होगए ।

दोहा

रा-देवग रहंत रन । सहस एक वर वीर ।

तामें एक कमध खिलि । तिन संचारिग मीर ॥ २४ ॥

शब्दार्थ:—रा=राय, राव, राजा । रहंत=रहने पर । खिलि=प्रसन्न हुआ । तिन=उसने । संचारिग=संहार कर दिया । मीर=मुसलमान ।

अर्थ:—जिस समय तक देवकर्ण रणक्षेत्र में काम आ चुका, उस समय तक एक सहस्र हिन्दू वीर शेष रहे थे । उनमें से एक वीर कमधज ने युद्धार्थ हर्षित होकर मीरों (यवनों) का संहार कर दिया ।

बाने विद्र वका^२ वहै, वका^३ खान अलील ।

दस सहस्र सम मीर वर, तिन लीनो गढ़ कील ॥ २५ ॥

। प्रा० पा० १, २, ३ पा० ।

शब्दार्थ:—बाने=सुशोभित, शोभा । विद्र=विरुद्ध । वहै=प्रचलित, प्रसिद्ध । वका=वाँका । लीनो=लिया । कील=घेर, रोक ।

अर्थ:—जो प्रसिद्ध वाँका विरुद्धों से सुशोभित था, ऐसे अलीलखान ने अपने समान ही दस सहस्र मीरों को साथ में लेकर पुनः दुर्ग को घेर लिया ।

कोट मद्धि रजपूत सौ, तिनह सद्धि दरवार ।

गिरद वाज^१ चहुँकोद फिरि, मीर पीर सिरदार ॥ २६ ॥

प्रा० पा० १ सूचप्रति ।

शब्दार्थ:—कोट=दुर्ग । मद्धि=मध्य, अन्दर । सौ=वे या १०० सख्या । सद्धि=माघा, किया । दरवार=समा । गिरद वाज=घेरा देने वाले । चहुँकोद=चारों ओर ।

अर्थः—दुर्ग के भीतर बचे हुए राजपूतों ने सभा की। सधर मेरा देने वाले मीर और पीर योद्धा दुर्ग को चारों ओर से घेरे हुए थे।

होसीपुर प्रथिराज पै, चद सुपन बरदाइ।

धवल वस्त्र उज्जल सु तन, पुक्कारिव नप राइ ॥२७॥

शब्दार्थः—सुपन=स्वप्न। बर=भ्रेष्ठ। दाइ=दिया। धवल=श्वेत। उज्जल=उज्ज्वल। पुक्कारिव=कहो। राइ=कविराव।

अर्थः—पृथ्वीराज को सचेत करने के लिये होसीपुर ने कविचन्द को धवल वस्त्र और उज्ज्वल शरीर धारण कर स्वप्न दिया और कहा— है कविराव! इस स्वप्न की बात तुम राजा से कहो।

हासीपुर उच्चार बर, वींदि^१ सेन सुलतान।

अजहूँ हूँ भगिय^२ नहीं, करि उपर चहुआन ॥ २७ ॥

प्रा०पा०१ पा०भी०। २ भी०।

शब्दार्थः—वींदि=वेरलिया। सेन=सेना। हूँ=मैं। भगिय=दूटा। उपर=सहायता।

अर्थः—तब कविचन्द ने राजा से कहा— हे चाहुआन राय। होसीपुर का श्रेष्ठ कथन यह है कि मैं सुलतान की सेना द्वारा घिर गया हूँ। फिर भी अब तक नहीं दूटा हूँ। अतः आपको चाहिये कि आप सहायता करें।

कवित्त

उमै दीह गढ़ ओट, सस्त्र बज्जे सुबान अग।

अगवान कम्मान, सार सिधुर अभग जग ॥

ता पच्छे सामत, मत कीनौ परमान।

नखि कोट गढ़ ओट, सस्त्र लगगे असमान ॥

नृप राज अर्यौ आसी सुन्यो, सुपनतर ऐसी^१ कहिय।

दिल्ली नृपत्ति दिल्ली धरा, डौली ँहै अगों रहिय ॥ २८ ॥

प्रा०पा०१ भी०।

शब्दार्थः—सुबान=सुमान धर्म को मानने वाले मुस्लिम। सार=लोहा, शस्त्र। सिधुर=हाथी। अभग=अवय, नष्ट न होने वाला। जग=ज्ञात हुआ। पच्छे=पीछे। परमान=निश्चय, प्रमाण।

नंखि=छोड़ कर। ओट=दीवार। असमान=विषम। अरसौ=अध पड़े। हाँसी=हाँसी। दिल्ली=दिल्ली।
दोली नै=दिल्ली का भूभाग आपका ही होकर।

अर्थ:—दो दिन तक दुर्ग की ओट में रह कर मुसलमानों से हिन्दुओं ने लोहा लिया। उस समय कवानों से बाण और अडिग हाथियों पर लोहा बरसने लगा, उस के पश्चात् सामतों ने निश्चित मन्त्रणा की और दुर्ग की दीवार की आड़को छोड़ दिया तथा भयंकरता से शस्त्र-प्रहार करने लगे। नृपराज ! इस प्रकार हाँसीपुर के निवासी वीर भिड़े हैं और स्वप्न में मुझे हाँसीपुर ने यह कहा है कि दिल्लीश्वर ! आपकी दिल्ली का भूभाग हाँसीपुर अब तक तो आपका होकर रहा है (अभी तक शत्रुओं का कब्जा नहीं हो पाया है)।

हाँसी पुच्छै पहुमि-राय तू काइन भगिगय ।

मोव^१ भीर^२ पम्मारि, तेन भू दंड विलगिय ॥

तिन ए रस चच्चरे, त्रिया छल श्रव गमिज्जै ।

जै सिर पड़े तो जाहु, कज्ज साई बल^३ किज्जै ॥

सहसा परि मुममे सांखुलौ^४, एह अचिज पिक्खन रहिय ।

दिवराव सूर खडे परिग, ताम तुरक्के संग्रहिय ॥ ३० ॥

पा०पा०१, २ भी० । ३ पा०घ० । ४ घ०भी०का० ।

शब्दार्थ:—पहुमी राय=भूमि पृथ्वीभट्ट ने (भूमि पृथ्वी चंद कवि ने)। काइन=क्यों नहीं।

भगिगय=टूटा, टूटा। मोव=मेरी श्व। भीर=सहायता। पम्मारि=प्रमार क्षत्री-देवकर्ण। तेन=उसी से।

भू दंड=पृथ्वी पर दंड स्वरूप। विलगिय=लग गया। तिन=उसने। ए=यह। रस=रस मरी बात।

धम्भ=सर्व। गमिज्जै=छोड़ देना चाहिए। जै=जो, यदि। जाहु=जाने दो। कज्ज=काम, लिप।

साई=स्वामी। किज्जै=करिए। मुममे=भूमि पहा। सांखुलौ=सांखुला लंबी। एह=यह। अचिज्जै=

आश्चर्य, अचरज। पिक्खन=देखना। दिवराव=देवकर्ण। खडे=खण्ड-खण्ड हो, टुकड़े-टुकड़े हो

कर। परिग=पड़ गया। ताम=तब। तुरक्के=तुरकक। संग्रहिय=वेरा दिया।

अर्थ:—तब भूमि पृथ्वीभट्ट (चंद) ने पूछा—तू किस कारण से नहीं टूटा है ? उसने कहा मेरी सहायता पर प्रमार वीर (देवकर्ण) हो गया। मैं पृथ्वी का दण्ड स्वरूप दुग

उसके गले लग गया है। उस वीर ने यह रस भरी बात मुझ से कही कि त्रिगों को जैसे सर्व छल छद्म छोड़ देने चाहिए। उसी प्रकार यदि सिर पड़ जाय तो कुछ परवाह नहीं, स्वामी के कार्य के लिए शक्ति अजमानी चाहिये। उसी समय यकायक सहभूमल या साखला वीर मारा गया। ऐसे आश्रय दायक युद्ध को देखने के लिए मैं रह गया हूँ (अर्थात् मैं नहीं टूटा) और जब बहादुर देवकर्ण पण्ड-पण्ड होकर गिर पड़ा, तब तुरुष्को ने मुझे फिर घेर लिया है।

दोहा

सुनिय बचन प्रथिराज ने, हासी भारथ वित्त ।

ध्रम दुआरि^१ निकरि सुभर, देवराव परि खित्त ॥ ३१ ॥

पा० पा० १ पा० घ० का० ।

शब्दार्थः—भारथ=युद्ध । वित्त=बात, वर्णन । ध्रम दुआरि=धर्म द्वार । निकरि=निकले । परि=पढ़ गया । खित्त=क्षेत्र ।

अर्थः—हासीपुर पर जो युद्ध हुआ तथा धर्मद्वार से होकर सामंत निकले उसका और देवकर्ण युद्ध में काम आया तब तक का वर्णन राजा ने सुना ।

इह भविष्य चितै नृपति, भयो करुन^१ रस चित्त ।

रुद्र वीर अरु हास रस औ^२ अपुच्य कथ वित्त ॥ ३२ ॥

पा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—इह=यह । भविष्य=भविष्य । चितै=चितन । औ=यह । अपुच्य=अपूर्व । वित्त = बीती ।

अर्थः—आश्चर्य जनक बात यह है कि इस हौनहार के सम्बन्ध में चितन करते हुए राजा के चित्त में करुणा रौद्र, वीर और हास्य रस ने एक साथ ही स्थान प्राप्त किया। (हासीपुर की जनता की दुखद घटना से करुणा, शत्रुओं पर क्रोध करने से रौद्र और वीर, बहादुर सामंतों का धर्म द्वार से निकलना ही हास्य का कारण हो सकता है)।

कवित्त

सुनत राज प्रथिराज, बोलि कैमास महा भर ।

तम मत्री मत्रण, मत्र रक्खन सामंत वर ॥

हयति नट्ट गज नट्ट, नट्टि रधि वासह नट्टी ।

सोच सु नट्टि सनेह, नट्ट गुन विद्य अनुट्टी ॥

त्यो सेन नट्ट हाँसी पुरह, मंत चपजै सो करौ ।

कैमास मंत मती सुमत, मति उच्चारन विच्चरौ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—महामर=महायौद्धा । तम=तुम । मंत्रंग=मंत्रणा के अंग । रक्खन=रखने वाले । हयति=विशेष घोड़े । नट्ट=नष्ट होगई । रधि=रिद्धि, संपत्ति । वासह=निवास, स्थान । सोच=शौच, पवित्रता । विद्य=विद्यमान । अनुट्टि=अनोखे । त्यो=तैसे ही । उप्पजै=उपजे, सोच सके । मंत=मतवाला । मति=मंत्रो । विच्चरौ=कार्यरूप में परिणित को, तदनुसार चलो ।

अर्थः—स्वप्न की यह बात सुनकर पृथ्वीराज ने महायौद्धा कयमास को बुलाया और कहा कि हे मन्त्रिवर ! तुम प्रत्येक विषय के जानने वाले और उसका श्रेष्ठ समतों में प्रचार कर देने वाले हो । हाँसोपुर के युद्ध में घोड़े, हाथी, सम्पत्ति, निवास, पवित्रता, स्नेह और विद्यमान अनूठे गुण तथा सेना का नाश होगया है । इसलिए जो भी ठीक सम्मति हो वैसा करो । हे मतवाले मन्त्रो कैमास ! तुम में श्रेष्ठ बुद्धि है, जैसी भी तुम्हारी सम्मति हो, उसे कार्य-रूप में परिणित करो ।

दोहा

मंत्रि मन्त्र कैमास कहि, राजन चित्त विचार ।

ए सामत अमत मत, कोइ देवान प्रकार ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—अमन=अमन्त्रणा । देवान=देवता । प्रकार=तुल्य ।

अर्थः—तब मन्त्री कमयास ने अपनी मन्त्रणा राजा के सामने रखी और कहा हे राजन् । आप अपने चित्त में यह विचार लीजिये कि अपने सामन्तों की बुद्धि तो सलाह के योग्य नहीं है । इसलिये किसी देव तुल्य पुरुष से मन्त्रणा करनी चाहिये ।

कवित्त

कहै मन्त्रि कैमास, पास रावल जन मुक्कौ ।

वह आहुट्ट नरेम, वाहि तिन मत सु चुक्कौ ॥

तुम आतुर अति तेज, और मिली है चित्र गी ।

जनु पत्रलंनो अगिग, मद्धि घत सचित्त-तरंगी ॥

इम' मन्त्रि मन्त्र गिरि-राज दिसि, दिय पत्री समर विगति ।

दिन दिवस अवधि पंचमि कहिय, दिसि हाँसो आवन सुगति ॥ ३५ ॥

पा० पा० १ सर्व प्रति ।